HINDI BALSAHITYA EK ADHYAYAN

By Dr Hari Krishna Devasare

Price Rs 25 00

प्रकाशक
रामलाल पुरी, सचालक
आत्माराम एण्ड सन्स,
कश्मीरी गेट,
दिल्ली ६।

शाखाएँ :
धामानी मार्केट, चौडा रास्ता, जयपुर।
१७ अशोक मार्ग, लखनऊ।
सेक्टर १४, विश्वविद्यालय क्षेत्र, चडीगढ।
हौज खास, नयी दिल्ली।

प्रथम सस्करण १९६९
मूल्य . रु० २५ ००

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग,
राष्ट्रभाषा प्रिण्टर्स,
शिवाश्रम, नवीन्म रोड,
दिल्ली-६।

यह प्रबन्ध

बालसाहित्य मे मुझे बचपन से ही रुचि रही है। इस रुचि-निर्माण का श्रेय मेरे पिताजी श्री इकबाल बहादुर देवसरे को है, जिन्होने मेरे लिए बहुत-सा बालसाहित्य एकत्र किया था। उन्ही की प्रेरणा से मैंने बचपन मे ही बालसाहित्य स्वय भी लिखना आरभ कर दिया था। तब अक्सर लोगो से यही सुनता था कि हिन्दी मे बालसाहित्य है ही नही। बडा आश्चर्य होता था, बडो से यह सुनकर। धीरे-धीरे बडे होकर मैंने देखा कि वास्तव मे बालसाहित्य लिखा तो गया है, पर उसको न तो महत्त्व दिया गया और न इस दिशा मे अध्ययन-अनुसन्धान ही हुआ। आज के साहित्य-जगत् मे जब तक किसी विषय पर शोध-अनुसन्धान न हो जाय तब तक उसे कोई महत्त्व नही मिलता। बालसाहित्य भी इसीलिए अब तक उपेक्षित रहा है। अत मैंने इस विषय पर अध्ययन-अनुसन्धान का व्रत लिया। मेरे इस व्रत को साकार बनाने की प्रेरणा दी आदरणीय डा० उदयनारायण तिवारी तथा डा० शुकदेव दुबे ने। उन्ही की कृपा से यह विषय शोध-प्रबन्ध लिखने के लिए स्वीकृत हुआ और मैंने आदरणीय डा० पूरनचन्द श्रीवास्तव के निर्देशन मे कार्य आरभ कर दिया।

इससे पूर्व कई वर्षो से मैं बालसाहित्य की विविध विधाओ तथा उनके स्वरूपो पर अनेक निबन्ध लिखता रहा हू। उन सभी से अपने अध्ययन की रेखाए निश्चित करने मे सहायता मिली। किन्तु सबसे अधिक कठिनाई थी हिन्दी या अन्य किसी भारतीय भाषा मे लिखे ऐसे ग्रन्थ की, जो बालसाहित्य के शास्त्रीय-विवेचन का मार्ग-दर्शन कर सके। किन्तु वह नही मिला। हो सकता है, कुछ लोग यह सोचें कि भला उसकी क्या आवश्यकता थी, क्या बालसाहित्य, साहित्य-शास्त्रीय-विधानो से अलग है ? पर मेरा उत्तर यही है कि हा, वह बडो के साहित्य से हर प्रकार से भिन्न है और इस प्रबन्ध में प्रस्तुत विवेच्य सामग्री स्वय इसका प्रमाण है। अतः मुझे अंग्रेजी बालसाहित्य के शास्त्रीय-समीक्षा-ग्रन्थो का सहारा लेना पडा। वहा इनकी रचना पर्याप्त मात्रा मे हुई है। इन ग्रन्थो को पढते समय मैं यह जानता था कि हर देश के बच्चे अनेक बातो मे एक से होते हैं; फिर भी भाषा, सस्कृति, जाति, जलवायु, रहन-सहन तथा धर्म मे भिन्नता होने के कारण कुछ अन्तर आ जाता है और इसलिए मुझे केवल सैद्धान्तिक पक्ष वही स्वीकार

करना है, जो भारतीय बच्चों तथा जीवन के अनुकूल तथा समान है। कई स्थानों पर मैंने वैसे ही भिन्न सिद्धान्त भारतीय परिवेश से भी लिए। इस प्रकार अपने अध्ययन की आधार-भूमि तैयार कर मैंने कार्य आगे बढाया।

सबसे पहली आवश्यकता यह थी कि बालसाहित्य के स्वरूप को स्पष्ट कर लिया जाय। अतः यही पहले अध्याय का विवेच्य विषय बना। बालसाहित्य के प्रति बच्चो का आकर्षण उस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का परिणाम है, जो उन्हें जगत् की बहुविध आकर्षक वस्तुओं के प्रति जिज्ञासु बनाती है। ज्ञानोपार्जन तथा जिज्ञासा शात करने की अदम्य आकाक्षा इतनी तीव्र होती है कि यह केवल पाठशाला मे ही शात नही हो पाती। इसीलिए बालसाहित्य का अपना स्वतत्र अस्तित्व निर्मित हुआ। उसे पढने वाले बच्चे भी स्वतत्र विचारधारा के होते हैं। बालसाहित्य मे न तो आयु-सीमा का बन्धन होता है और न ज्ञान की ही कोई परिधि होती है। भारतीय तथा पाश्चात्य विचारक बच्चो के स्वतत्र अस्तित्व तथा साहित्य को सदैव स्वीकार करते रहे हैं। भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य-रचना मे एक समान तत्त्व यह भी है कि सरल भाषा मे बडो द्वारा कुछ भी लिखा गया साहित्य—बालसाहित्य नही हो सकता। बच्चो के साहित्य के अनुरूप हर विषय को बनाया जा सकता है, यह मानना समीचीन नही प्रतीत होता। वास्तव मे बच्चों की रुचि तथा प्रवृत्ति के अनुकूल ही विषयों का चुनाव करना चाहिए। इसीलिए बच्चे, बालसाहित्य के सर्वश्रेष्ठ समीक्षक होते हैं। बालसाहित्य का मूल्याकन बच्चों की रुचि की कसौटी पर ही सही ढग से हो सकता है। इसी कसौटी पर बालसाहित्य-आलोचना के प्रमुख तत्त्व निर्भर करते है।

बालसाहित्य का अध्ययन, बालमनोविज्ञान के आधारभूत तथ्यो की जानकारी के बिना सभव नही। बच्चो की रुचि तथा मनोवृत्ति का सम्यक् ज्ञान बालमनोविज्ञान की सहायता से प्राप्त होता है। बच्चो मे कहानियो, गीतों तथा पुस्तकों के प्रति एक स्वाभाविक अभिरुचि होती है। इसी की तुष्टि के लिए उनकी विभिन्न मनोवैज्ञानिक क्रिया-कलापो द्वारा ही सफल बालसाहित्य की रचना हो सकती है। इस प्रकार बालसाहित्य तथा मनोविज्ञान का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध हो जाता है। किन्तु बालसाहित्य को बच्चो की आयु-सीमाओ मे बाधकर नही लिखा जा सकता। बालसाहित्य की एक ही कृति विभिन्न आयु के बच्चो को अलग-अलग ढग से मनोरजन देती है। इस आयु-सीमा से मुक्त लेखन पर इस प्रबन्ध मे मौलिक स्थापना की गई है।

वास्तव मे बच्चो का अपना पृथक् ससार होता है। बडो की अपेक्षा बच्चे, उन सब वस्तुओ के लिए धनी होते है, जो उनकी नही होती है। उनके पास प्रत्येक वस्तु को अपना बनाने की उर्वर कल्पना-शक्ति इतनी जागृत होती है कि वे चाहे तो समस्त ब्रह्माण्ड को भी अपना बना ले। प्राचीन साहित्य मे बच्चो के लिए पृथक् रूप मे कुछ न होते हुए भी, बच्चे उसमे से अपनी रुचि की सामग्री निकाल लेते थे और अपना मनोरजन करते थे। लोकसाहित्य इसीलिए बच्चो का आनन्द

जाती है कि ससार की विचित्रता तथा रहस्यो को समझने के लिए प्रयत्नशील बालक, अपनी अनेक गुत्थिया उनके माध्यम से सुलझा सकें।'''बच्चो के नाटक वे हैं जो उनकी कल्पनाशक्ति को जागृत एव उत्तेजित कर सकें, उनके व्यक्तित्व का विकास कर सकें और उनके अनुभव क्षेत्र का प्रसार करने मे समर्थ हो। इस सैद्धान्तिक विवेचन के साथ-साथ मूल्यांकन के लिए हिन्दी में बालसाहित्य की उस विधा मे हुई प्रगति का इतिहास, प्रमुख प्रवृत्तियो तथा प्रमुख लेखको तथा रचनाओ के बारे मे भी विस्तार से विवेचन किया गया है।

हिन्दी मे जो बालसाहित्य लिखा गया है, वह कई तरह से, अन्य भारतीय भाषाओ के बालसाहित्य की तुलना मे शीर्ष स्थान पर है। इस निष्कर्ष की पुष्टि के लिए तथा विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करने की दृष्टि से हिन्दी के अतिरिक्त अन्य सभी भारतीय भाषाओ के बालसाहित्य का विवरण भी दिया गया है। छठवें अध्याय मे प्रस्तुत इस तुलनात्मक अध्ययन को अग्रेजी बालसाहित्य के साथ भी प्रस्तुत किया गया है।

सातवें अध्याय मे बच्चो के भाषा-ज्ञान के विषय मे बालसाहित्य के महत्त्व-पूर्ण योगदान को स्पष्ट किया गया है। बच्चे पुस्तको के माध्यम से न केवल अपनी जिज्ञासा तुष्ट करते है बल्कि अपने शब्द-ज्ञान को बढ़ाकर अपने विचारो को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

बालसाहित्य के विकास मे बच्चो के समाचार-पत्रो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सभी भारतीय भाषाओ मे बच्चो के लिए पत्र-पत्रिकाए प्रकाशित हो रही हैं। हिन्दी में बच्चो की पत्रिकाओ का इतिहास तो बहुत पुराना है। किन्तु आज आधुनिक छपाई सुविधाओ के उपलब्ध होने पर भी विदेशी बाल-पत्रो की तुलना मे, हमारे यहा बहुत कम तथा साधारण किस्म के बाल-पत्र प्रकाशित होते हैं। अध्ययन-अनुसन्धान के समय यह भी देखने को मिला कि हिन्दी में सन् '४६ से '४९ तक हस्तलिखित बाल-पत्रिकाए निकालने का प्रचलन बहुत लोकप्रिय हुआ था। यह आन्दोलन न केवल उपयोगी था बल्कि इससे अनेक उदीयमान बाल लेखकों को प्रोत्साहन मिला। आठवें अध्याय के चर्चित इस विषय के साथ ही सक्षेप मे अग्रेजी की बाल-पत्रिकाओं का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है। इससे अध्ययन मे सुविधा होगी। यहा यह अवश्य ही उल्लेखनीय है कि हिन्दी तथा अन्य भार-तीय भाषाओ मे प्रकाशित बाल-पत्रिकाओं का विषय स्वतन्त्र अध्ययन तथा अनुसन्धान मागता है और भविष्य मे इस कार्य को आगे बढाया जा सकता है।

परिशिष्ट मे बालसाहित्य मे अनुवाद, बालपुस्तकालय तथा पहेलियों पर विस्तृत टिप्पणिया दी गई हैं। बच्चों के साहित्य के अनुवाद की भी आज काफी आवश्यकता है। बाल-पुस्तकालयो के आयोजन की समस्या भी महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध मे हिन्दी बालसाहित्य के विविध पक्षो के विस्तृत अध्ययन द्वारा उसके स्वरूप, विकास तथा रचना-विधि तथा भविष्य पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। यह प्रबन्ध न केवल हिन्दी मे बल्कि समस्त भारतीय

विषय-सूची

पाचवा अध्याय :

छठवा अध्याय :

हिन्दी बालसाहित्य : एक अध्ययन

पहला अध्याय

बालसाहित्य का स्वरूप-विवेचन

बालसाहित्य बच्चो के उन अकुरो को पुष्ट करता है, जो बडे होकर उन्हे जीवन मे सत्य को पहचानने मे सहायता करते हैं।'' बच्चो के लिए अब सदैव कल्पनालोक मे ही विचरण करना आवश्यक नही रह गया है। उन्हे यथार्थ के धरातल पर लाकर जीवन के सत्य और मूल्यो को पहचानने योग्य बनाने का भी प्रयत्न किया जाने लगा है।'''भारतीय और पाश्चात्य-बालसाहित्य रचना मे एक समान तत्व यह भी है कि सरल भाषा मे बडो द्वारा कुछ भी लिखा गया साहित्य—बालसाहित्य नही हो सकता।'''एक बडे लेखक के लिए यह कुछ कठिन काम हो जाता है कि वह बच्चो की सी मनोवृत्ति और रुचि का अनुभव करे और तब बालसाहित्य लिखे।

शैशवावस्था मे बालको की वृद्धि बहुत तीव्र गति से होती है। इसी अवस्था मे वे अपने चारो ओर की वस्तुओ का परिचय प्राप्त करते है, अपनी कर्मेन्द्रियो तथा ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग करना सीखते है और अपने मन के भावो को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा सीखते है। इस अवस्था मे वे आवश्यक वस्तुओ के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त कर, अपनी अनुभूतियो को अस्पष्ट भाषा मे अभिव्यक्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते है।

शैशवावस्था पार करते ही उनकी रुचि तथा ज्ञान का स्वत विकास होने लगता है। वे अपने पास-पडोस की वस्तुओ मे अधिक रुचि लने लगते हैं और उनके प्रति मन मे उठने वाले कौतूहल को शान्त करने का माध्यम खोजते हैं। उन्हे

अद्भुत प्राणियो, विचित्र परिस्थितियो, विचित्र देशो तथा चकित कर देने वाली क्रियाओ की कल्पना मे विशेष आनद मिलता है। इस अवस्था मे बच्चो की श्रव्य तथा दृश्य—दोनो ही शक्तिया विकसित हो जाती है और इनकी सहायता से वे चित्रो तथा ध्वनियो को समझने और उनमे अन्तर करने लगते है। ससार की तमाम बातो के बारे मे जानने की इतनी प्रबल इच्छा होती है कि उनकी तुलना उस भूखे व्यक्ति से की जा सकती है, जिसे कई दिनो से खाना नही मिला हो। पीटर सेंडीफोर्ड के अनुसार बच्चे इस अवस्था मे वाह्य जगत् की ओर आकृष्ट होते है। वे जिन वस्तुओ को देखते तथा व्यवहार मे लाते है, उनका रहस्य जानने के लिए उत्सुक रहते हैं। वे अपने ही बारे मे जानकर सतुष्ट नही होते बल्कि वे दूसरो के जीवन मे अनुभूत भय, आश्चर्य, आशाओ, आविष्कारो तथा वेदनाओ को भी जानने तथा अनुभव करने का प्रयत्न करते हैं। उनके हाथो मे जो चीज होती है वे उसे अच्छी तरह देखभाल कर उसके बारे मे विस्तृत जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। यह इच्छा इतनी प्रबल होती है कि कभी-कभी वे पुरानी, मोटी तथा न समझ मे आने वाली पुस्तकें पढ डालते हैं।[1]

ज्ञानोपार्जन तथा जिज्ञासा शात करने की यह अदम्य आकाक्षा इतनी तीव्र होती है कि केवल पाठशाला मे ही शात नही हो पाती। बच्चे अपनी पाठ्य पुस्तकें भी ऐसी ही चाहते हैं जिनसे उनकी तुष्टि हो सके। लेकिन निर्धारित पाठ्यक्रम वाली आधुनिक शिक्षा प्रणाली मे वह सभव नही है। पाठ्यक्रम तो केवल पगडडी बनकर रहता है, जिस पर चल कर बच्चे मुख्य मार्ग खोजना सीखते हैं। पाठशाला की पुस्तको मे और ज्ञानार्जन तथा मनोरजन के लिये लिखी गई पुस्तको मे मौलिक अतर यही है कि एक का उद्देश्य सैद्धान्तिक तथा शिक्षा पद्धति के नियमो से आबद्ध ज्ञानार्जन कराना है तथा दूसरी पुस्तको का उद्देश्य बच्चो के लिए मनोरजन, मानसिक एव बौद्धिक तुष्टि प्रदान करने के साथ आतरिक जीवन की भावनाओं तथा जिज्ञासाओं का समाधान प्रस्तुत करना है। वास्तव मे ये दूसरे प्रकार की पुस्तकें ही बालसाहित्य हैं। इन पुस्तकों की रचना का आधार बाल-

---

1. The child becomes interested in the outer world and wants to hear of other people and other lands He wishes to get behind the things he sees and handles His own self and his own plans no longer satisfy him, he is curious to hear of the lives of others—their fears, hopes, discoeri es and sorrows He now becomes eager to read everything he can 'Lay his hands on' and so great is this desire that dry ponderous tomes will be religiously read if no others are available.

—Peter Sandiford, *Mental & Physical Growth of Children* Page 290

सुलभ रुचिया तथा प्रवृत्तिया होती हैं, जो बच्चो मे स्वतः जागृत होती हैं।

बच्चो का संसार सर्वथा अलग होता है। वे नैतिकता, नियम और शासन के बधनो से अपने को मुक्त मानते हैं। वे किसी अफसर, पुलिस या नेता से न तो भयभीत होते और न उसे कोई महत्त्व देते। उनके लिए कोई महान् नही होता। वे सभी को अपने ज्ञान के मानदण्ड से ही नापते हैं। जिसमे सहृदयता होती है, उसे बच्चे अपना समझ लेते हैं। इसी तरह उनका साहित्य भी भिन्न होता है। जिसमे उनके मन के अनुकूल बातें कही गई होती है, उमे वे स्वीकार कर लेते है और वही वालसाहित्य है।

कुछ लोग बालसाहित्य को स्कूली साहित्य के सदर्भ मे ही देखते है। यह धारणा भारत में ही नही विदेशों मे भी है। बच्चो के लिए पुस्तकें लिखना, उन्हे पढने के लिए देना तथा बालसाहित्य का मूल्याकन करना स्कूलो के अनुभवी अध्यापको का ही काम समझा जाता है। किन्तु यह बहुत भ्रामक बात है। बाल-साहित्य का स्कूली साहित्य से कोई सम्बन्ध नही है, यह हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं। स्कूल के अध्यापक बच्चो के साथ रहते हैं तथा उनके पढने-लिखने की समस्याओ से सम्बद्ध होते हैं। यह तथ्य स्वीकार करते हुए प्रश्न यह उठता है कि क्या माता-पिता तथा अभिभावक बच्चो की पढाई-लिखाई की समस्याओ से सम्बद्ध तथा उनके प्रति जिम्मेदार नही होते ? मैं समझता हू कि वे निश्चय ही होते है। स्कूल मे बच्चो को नियमो से आवद्ध सीमित वातावरण मिलता है जबकि घर मे मुक्त तथा व्यापक वातावरण होता है। बच्चो की कल्पनाशक्ति वास्तव मे इस मुक्त और व्यापक वातावरण मे ही विकसित होती है। स्कूल के नियमावद्ध वाता-वरण मे बच्चे अपनी मनपसद की पुस्तकें तथा पत्रिकाए नही पढ पाते हैं—चाहे वह स्कूल कितना ही आधुनिक तथा मनोवैज्ञानिक क्यो न हो ? बच्चो के मन मे स्कूल के बारे मे एक भिन्न कल्पना होती है। वे वहा की हर गतिविधि को एक निश्चित परिप्रेक्ष्य मे देखते हैं। दूसरी ओर घर के वातावरण मे जो स्वच्छन्दता होती है, वह भला अन्यत्र कहा है ? यही कारण है कि बालक की रुचियो तथा प्रवृत्तियो और भविष्य निर्माण के लिए स्कूल के अध्यापको की अपेक्षा माता-पिता तथा अभिभावको के पास अधिक अवसर होता है। वे बच्चो की रुचियो का अध्ययन भी अधिक व्यापक तथा सूक्ष्मता से कर सकते हैं और अपना उत्तरदायित्व पूरा कर सकते हैं। वे ही बच्चो की मनपसद पुस्तकें खरीद सकते है। और इन सबके बाद एक मनोवैज्ञानिक पहलू है जो वालसाहित्य और स्कूली साहित्य मे मौलिक भेद करता है—वह है दोनो प्रकार की पुस्तको के वर्ण्य-विषय, भाषा तथा शैली। स्कूली साहित्य जहा बच्चो को एक-एक सीढी चढना सिखाता है, उनकी उगली पकड़कर आगे ले चलता है, वही बालसाहित्य ज्ञान के असीम भडार को बच्चों के सामने प्रस्तुत करता है और बच्चे उसमें से अपनी इच्छानुसार अपनी जिज्ञासाओ तथा ज्ञान की तुष्टि के लिए ग्रहण कर लेते हैं। बालसाहित्य बच्चो के लिए ऐसा मुक्त वातावरण प्रदान करता है जिसमे उनकी कल्पना विकसित होती

है और भविष्य के अनेक बाल-सुलभ सपनों को साकार बनाती है।

ऐसी दशा मे बालसाहित्य, स्कूली साहित्य से पूरी तरह स्वतन्त्र हो जाता है। स्कूल के अध्यापकों का बालसाहित्य के प्रति उत्तरदायी तथा विशेषज्ञ बनना भी व्यर्थ ही लगता है। केवल बच्चों से सम्बद्ध होने के कारण या मनोवैज्ञानिक पढ़ाई के तरीकों का अध्ययन-अध्यापन करने मात्र से उन्हे बालसाहित्य का सर्वज्ञ घोषित करना भ्रामक है।

बालसाहित्य का अपना स्वतंत्र अस्तित्व सदैव रहा है। उसे पढने वाले बच्चे भी बडों की तरह स्वतन्त्र हैं। न तो उसमे आयु सीमा का बंधन रहता और न ज्ञान की ही कोई परिधि होती है। आज दुनिया के हर देश मे बालसाहित्य का महत्त्व आंका जा रहा है। सभवत. इसीलिए श्री विष्णु प्रभाकर ने लिखा है—"बीसवीं सदी को बालकों की सदी कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी, क्योंकि इस सदी मे पहली बार यह स्वीकार किया गया कि बच्चों का स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है। इससे पहले वे केवल बडों का छोटा रूप ही माने जाते थे। बीसवीं सदी ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे, विशेषकर मनोविज्ञान के क्षेत्र मे, नयी खोजों के कारण इसी भ्रम का निराकरण किया।"[1] इस निराकरण द्वारा ही यह स्पष्ट हुआ कि बच्चों के लिए स्वतन्त्र साहित्य होना ही चाहिए। आज विश्व मे बालसाहित्य के महत्वां-कन का कारण भी यही है।

(अ) बालसाहित्य : भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में

बालसाहित्य के सम्बन्ध मे प्राचीन काल से ही लोगो मे एक विचारधारा रही है। लोरियां अनेक युगों से बच्चों का मन बहला रही है और वे आज भी शाश्वत बालसाहित्य के रूप मे हैं। इसी तरह परी-कथाएं भी बच्चों का युगों से मनोरंजन कर रही हैं। वे सभवत. पहली कलात्मक-कथा-विधा हैं, जो मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ उद्‌भूत हुई हैं।[2] लेकिन साहित्य के विकास के साथ-साथ बालसाहित्य का भी एक निश्चित स्वरूप बनता गया। उसके प्रति विद्वानों ने एक निश्चित विचारधारा को जन्म दिया और अब वह 'बालसाहित्य' की स्वतंत्र संज्ञा से अभिहित है।

भारतीय विद्वानों के विचार :

भारतीय साहित्य मे अनेक ऐसी कृतियां हैं जो सैकड़ो वर्षों से वृद्ध तथा युवा

---

१. कादम्बिनी, जून १९६६, पृष्ठ ११०—'भारतीय भाषाओं का बालसाहित्य' शीर्षक लेख से।

2. Fairy tales represent the first or one of the forms of artistic

वर्ग का ही नहीं, अपितु बालकों का भी मनोरंजन करती आई हैं। 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'कथासरित्सागर', 'सिंहासन बत्तीसी' आदि ऐसी ही कथा-कृतियां हैं, जिनमें आज भी बाल मन को आकृष्ट करने की क्षमता है। 'पंचतंत्र' की रचना के पीछे बालसाहित्य के निर्माण का ही उद्देश्य था। विष्णु शर्मा यह जानते थे कि नीतिग्रन्थों का पठन-पाठन इन राजकुमारों के लिए व्यर्थ है। इन्हें तो ऐसे माध्यम की आवश्यकता है जिसमें इनकी रुचि हो, जो इनके मन में औत्सुक्य का भाव जागृत कर सके और साथ ही मन पर एक ऐसा अमिट प्रभाव छोड़ जाय जो इनके लिए जीवन-दीप बनकर इन्हें सदा आलोक दे। 'पंचतंत्र' के लेखक ने लिखा था—

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत।
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते॥

अर्थात् जिस प्रकार किसी नवीन पात्र के कोई संस्कार नहीं रहते, उसी प्रकार बच्चों की स्थिति होती है। इसलिए उन्हें तो कथा आदि के द्वारा ही नीति के संस्कार बताने चाहिए।

'पंचतंत्र' विश्व की सबसे प्राचीन पुस्तक मानी गई है और इसलिए आचार्य विष्णु शर्मा की यह परिभाषा, बालसाहित्य की प्रथम परिभाषा मानी जानी चाहिए। भारतीय साहित्य में 'पंचतंत्र' के बाद अनेक कथा-ग्रन्थों की रचना हुई। उनमें से अनेक ने बच्चों का मनोरंजन तथा ज्ञानवर्धन किया। किन्तु उन पुस्तकों के लेखकों ने बच्चों के किसी विशिष्ट साहित्य की सैद्धान्तिक चर्चा नहीं की।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बालसाहित्य की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति आरंभ हुई। यह वास्तव में पाश्चात्य प्रभाव का परिणाम था। उस समय तक पश्चिमी देशों में बालसाहित्य ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाना आरंभ कर दिया था। हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह युग गद्य-प्रवर्तन का युग था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बच्चों के लिए 'बालबोधिनी' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया था। इसमें वे स्वयं बालोपयोगी रचनाएं लिखते थे और अन्य तत्कालीन सहयोगी लेखकों को भी प्रेरित करते थे। इस समय मुख्य प्रयत्न यह था कि खड़ी बोली को अधिकाधिक लोकप्रिय बनाया जाय। इसी प्रयास का एक पहलू यह भी था कि बच्चों के लिए खड़ी बोली में ऐसी पुस्तकें लिखी जाएं जिन्हें वे स्कूलों में पढ़कर, आरंभ से ही खड़ी बोली का ज्ञान प्राप्त कर सकें।

इस तरह उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बच्चों के लिए पुस्तकों का महत्त्व समझा जाने लगा था। द्विवेदी युग में आकर बालसाहित्य को विशेष महत्त्व मिला। उस समय अन्य भारतीय भाषाओं में भी बालसाहित्य रचना आरंभ हो

---

stories arising during the childhood of humanity.

—Karl Buhler : *The Mental Development of the Child.*

चुकी थी। बगला भाषा मे बच्चो के लिए विशेष रूप से पुस्तकें लिखी गईं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बच्चों के साहित्य पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा, "ठीक से देखने पर बच्चे-जैसा पुराना और कुछ नही है। देश, काल, शिक्षा, प्रथा के अनुसार वयस्क मनुष्यो मे कितने नये परिवर्तन हुए हैं, लेकिन बच्चा हजारो साल पहले जैसा था, आज भी वैसा ही है। वही अपरिवर्तनीय पुरातन बारम्बार आदमी के घर मे बच्चे का रूप धरकर जन्म लेता है, लेकिन तो भी सबसे पहले दिन वह जैसा नया था, जैसा सुकुमार था, जैसा भोला था, जैसा मीठा था आज भी ठीक वैसा ही है। इस जीवन चिरतनता का कारण यह है कि शिशु प्रकृति की सृष्टि है, जबकि वयस्क आदमी बहुत अशो मे आदमी की अपने हाथ की रचना होता है। उसी तरह बच्चो के बहलाने के लोकगीत भी शिशु-साहित्य है, वे मनुष्य के मन मे अपने आप जन्मे हैं।"[1] गुरुदेव के विचार से बाल-साहित्य, शाश्वत साहित्य है। गीत, लोरिया, कहानिया आदि मानव-सृष्टि के आरभ से ही चली आ रही हैं। इन विधाओ ने सदैव बाल-मन को बहलाया है और उसे जगत की विचित्रताओ से परिचित कराया है। इसलिए गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बालसाहित्य को एक ऐसा साहित्य मानते है जो कभी पुराना नही होता, उसमे वही रस, वही माधुर्य, वही आनद सदैव मिलता रहता है, जो उसने अपने रचनाकाल के प्रारभ मे दिया होगा। शिशु को प्रकृति की सृष्टि मानते हुए, शिशु साहित्य मे भी उन्होंने प्रकृति की विचित्रता को सुलझाने वाला स्वीकारा। उन्होने लिखा, "बालक की प्रकृति मे मन का प्रताप बहुत क्षीण होता है। जगत-ससार और उसकी अपनी कल्पना उस पर अलग-अलग आघात करती है, एक के बाद दूसरी आकर उपस्थित होती है। मन का बधन उसके लिए पीडाजनक होता है। सुसलग्न कार्यकारण-सूत्र पकडकर चीज को शुरु से लेकर आखिर तक पकडे-पकडे चलना उसके लिए दुस्साध्य होता है। बहिर्जगत मे समुद्र के किनारे बैठकर बच्चा बालू का घर बनाता रहता है। बालू को बालू से जोडा नही जा सकता, वह स्थायी नही होता है—लेकिन बालू मे यह जो जोडे न जा सकने का गुण है, इसी के कारण बच्चे के स्थापत्य के लिए वह सबसे अच्छा उपकरण है। क्षण भर मे मुट्ठी भर बालू इकट्ठा करके एक ऊचा आकार बनाया जा सकता है—और अगर वह मनपसद न हुआ तो उसका सशोधन करना भी अत्यन्त सहज होता है और थकान मालूम होने पर भी फौरन पैर की एक ठोकर से उसे जमीन पर बिछाकर लीलामय सृजनकर्ता हल्का दिल लिए हुए घर लौट सकता है। लेकिन जहा पर अच्छी तरह ईंट पर ईंट जमाकर काम करना जरूरी है, वहा पर कर्ता को भी जल्दी ही कार्य का नियम मानकर चलना पडता है। बच्चा नियम मानकर नही चल सकता—वह अभी-अभी तो नियमहीन इच्छा-आनदमय स्वर्गलोक से आ रहा है। अभी वह हमारी तरह बहुत दिनो की नियम की दासता का

१. रवीन्द्रनाथ के निबध - साहित्य अकादमी—पृष्ठ ३६२-६३।

अभ्यस्त नही हुआ है। इसीलिए हमारे शास्त्रो मे सदा ईश्वर के कार्यों की तुलना बालक की लीला के साथ की जाती है, दोनो मे एक इच्छामय आनद का सादृश्य है।"[१]

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के ये विचार, उनके प्रकृतिजन्य-दर्शन और आध्यात्मिक-चेतना से परिपूर्ण हैं। बालक प्रकृति की सृष्टि है और उसका साहित्य वही है जो उसकी प्रकृतिजन्य जिज्ञासा को शात कर सके, इस तथ्य को केवल आंशिक रूप मे ही स्वीकारा जा सकता है। कारण यह कि बालक की जिज्ञासा के दायरे मे प्रकृति ही नही बल्कि वे मानव-क्रियाकलाप भी होते हैं, जो रात दिन उसके चारो ओर घटित होते हैं और वह उन्हे बूझने तथा अनुभव करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। इसलिए यह विवेचन एकागी हो जाता है। किन्तु जहा तक बालक की स्वच्छन्दता की बात है, उसे अवश्य ही स्वीकारा जा सकता है। बालक के लिए यह आवश्यक नही है कि वह हर काम नियमाधीन होकर ही करे। बालसाहित्य मे भी उसे स्वच्छन्दता मिलनी चाहिए और तभी वह मुक्त भाव से उसे आत्मसात् कर सकेगा।

हिन्दी मे बालसाहित्य रचना के सम्बन्ध मे गम्भीरता से विचार करने वाले विद्वानो मे कविवर सोहनलाल द्विवेदी का शीर्ष स्थान है। उन्होने अपने मधुर गीतो द्वारा बालसाहित्य का भडार भी भरा है और उसकी श्रीवृद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहे हैं। उनका विचार है, "सफल बालसाहित्य वही है जिसे बच्चे सरलता से अपना सकें और भाव ऐसे हो, जो बच्चो के मन को भाए। यों तो अनेक साहित्यकार बालकों के लिए लिखते रहते हैं, किन्तु सचमुच जो बालको के मन की बात, बालको की भाषा मे लिख दे, वही सफल बालसाहित्य लेखक है।"

हिन्दी के सुप्रसिद्ध बालगीतकार श्री निरकारदेव सेवक ने भी बालसाहित्य के उन्नयन तथा विकास मे पूर्ण योगदान किया है। बालसाहित्य की परिभाषा करते हुए उनका विचार है, "जिस साहित्य से बच्चो का मनोरजन हो सके, जिसमें वे रस ले सकें और जिसके द्वारा वह अपनी भावनाओ और कल्पनाओ का विकास कर सकें वह बालसाहित्य है।" सेवक जी ने अपने इस वक्तव्य का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—'साहित्य की अनेक परिभाषाए, विद्वान् विचारक अत्यन्त प्राचीनकाल से करते आए हैं। पर उन परिभाषाओं मे से किसी एक को भी बालसाहित्य की सही परिभाषा नही कहा जा सकता। बच्चो का मन इतना चचल और कल्पनाए इतनी तेज होती हैं कि किन्ही निश्चित नियमो मे बधा हुआ साहित्य उनके लिए लिखा ही नही जा सकता। बडो के लिए जो सर्वथा असगत और अर्थहीन होता है, वह बच्चो के लिए युक्तिसगत और अर्थपूर्ण हो सकता है। बच्चो का साहित्य, बडे ही उन्हे रचकर देते हैं। इसलिए बालसाहित्य की सबसे बडी कठिनाई यह है कि जब तक वह बडे उनकी भावनाओं-कल्पनाओ

---

१ रवीन्द्रनाथ के निबध साहित्य अकादमी—पृष्ठ ३९३।

से पूर्णत आत्मसात् नही कर पाते, तब तब उनके लिखे पर उनके अनुभव, ज्ञान तथा जीवनादर्शो की छाप आ जाना नितान्त स्वाभाविक है। बच्चा की कल्पनाए और अनुभव बडो से सर्वथा भिन्न होते हैं। उनकी दुनिया ही बडो की दुनिया से अलग होती है। बडो के ससार मे जो बहुत महत्त्व का समझा जाता है, बच्चो की दुनिया मे उसका कोई मूल्य नही होता। और बच्चो की दुनिया मे जो कुछ बहुत महत्त्व का होता है वह बडो की दृष्टि मे कोई विशेष महत्त्व नही रखता। इस दृष्टि से बडो द्वारा बच्चा के लिए लिखा सारा साहित्य, बच्चा के लिए दूसरी दुनिया के लोगा द्वारा दिया साहित्य होता है। अतएव बच्चो का साहित्य लिखने मे वही सफल हो सकता है जो बडप्पन के भार को रत्ती-रत्ती कम कर, बच्चो की सरलता, कौतूहल और जिज्ञासा को स्वाभाविक रूप से अपने मन मे धारण कर ले। बच्चा के मन की अत्यधिक चचलता और उनकी कल्पनाओ के असगत प्रतीत होने के कारण बच्चा के स्वभाव जैसा अपना स्वभाव बना लेना, बडो के लिए साधारण कार्य नही है। इसके लिए निरन्तर अभ्यास और सतत साधना की आवश्यकता है, इसलिए इस कार्य मे बडो के समाज की बडी बडी उलझी समस्याओ मे फसे हुए मन वाले बडे लोग कम ही सफल हो पाते हैं।"[1]

सेवक जी की परिभाषा और उससे सम्बन्धित कथ्य बहुत कुछ यथार्थ है। लेकिन बालसाहित्य की रचना तो बडे ही करेंगे। वैसी दशा मे यह उत्तरदायित्व लेखक का ही हो जाता है कि बच्चो की रुचि, मनोवृत्ति, भावनाओ और कल्पनाआ मे पूरी तरह डूबकर बालसाहित्य की रचना करे। यदि वह ऐसा करने मे असमर्थ है तो बालसाहित्य नही लिखना चाहिए। हिन्दी म ऐसे लेखको की कमी नही है, जिन्होने कुछ पैसा के लोभ मे, जिस तरह भी चाहा, बालसाहित्य लिख कर प्रस्तुत कर दिया। वास्तव मे ऐसा साहित्य बच्चो के लिए अरुचिकर होता है, उसका कुप्रभाव भी पडता है। एक कुप्रभाव तो यही है कि अब अभिभावक हिन्दी म प्रकाशित बालसाहित्य को खरीदने मे कतराते हैं। उन्हे बालसाहित्य के नाम पर हो रहे इस भ्रष्टाचार तथा व्यवसाय का पता लग गया है। परिणाम यह हुआ कि जो स्वस्थ बालसाहित्य लिखा गया, वह भी दब गया और बच्चो को जो हानि हुई, वह अलग है ही।

इन कारणा से अब यह बहुत आवश्यक समझा जा रहा है कि बालसाहित्य रचना के मूलाधार तथा उसके उद्देश्य व स्वरूप को बहुत स्पष्ट ढग से प्रस्तुत कर कर दिया जाय, जिससे यह भ्राति दूर हो सके।

डा० रामकुमार वर्मा ने बालसाहित्य के उद्देश्य व स्वरूप का विवेचन प्रस्तुत करते हुए लिखा है, "बालसाहित्य का महत्त्व केवल राष्ट्रीय ही नही, अन्तर्राष्ट्रीय भी है। इसके द्वारा उन बालका को दिशा प्राप्त होगी, जो न केवल हमारे देश के

---

१ 'शिक्षा' त्रैमासिक, जनवरी' ६१, पृष्ठ १० 'हिन्दी बालगीतो का एक सकलन निबन्ध से।

कर्णधार है, वरन् जिन्हे दूसरे देशो मे भारत के प्रतिनिधि के रूप मे काम करना है। हमारा देश मूलत धर्म और अध्यात्म प्रधान देश है। हमारे देश की नैतिक परम्पराए हमे वस्तुवाद से ऊपर उठाती हैं। दर्शन और धर्म यहा प्रत्येक श्वास-प्रश्वास मे है। अत हमारा साहित्य भी इन्ही मान्यताओं पर आधारित होना चाहिए। फ्रायड का यह कथन कि बच्चे का मा के प्रति आकर्पण, पुरुष-स्त्री के प्रति आकर्पण का ही रूप है, हमारे दर्शन के अनुरूप नही है। मनोवैज्ञानिक तथ्य चाहे जो भी हो, भारतीय वाङ्मय मे तो मा और शिशु के सम्बन्ध का एक ऐसा लोकोत्तर दृष्टिकोण प्रस्तुत है जो एक ओर तो मातृत्व को स्वर्गीय गरिमा से मंडित करता है और दूसरी ओर शिशु को तीर्थ जैसा पुनीत बना देता है। बाल-साहित्य के दो रूप उल्लेखनीय हैं—

१ सस्कार उत्पन्न करने वाला—माताए बच्चो के मनोरजन के लिए कथाए, कहानिया और गीत सुनाती हैं। उसके माध्यम से ही बच्चे सास्कृतिक परम्पराए ग्रहण कर लेते हैं। शिवाजी को मां वीर रस भरी कहानिया सुनाती थी। उन कहानियो से कितनी प्रेरणा मिली थी, यह इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है।

२ प्रभाव डालने वाला—जिसे पढकर नए जीवन सघर्ष मे सफल हो सकें। इस प्रकार के साहित्य से जीवन की समस्याओ को सुलझाने की क्षमता प्राप्त होती है। राष्ट्रभक्ति, अनुशासन प्रियता और सास्कृतिक तत्त्वा को ग्रहण करने मे यह साहित्य सहायक होता है।

"बालसाहित्य ऐसा हो जो बच्चो मे सहज सात्विक उत्सुकता उत्पन्न करे, उनके कुतूहल का पोपण और प्रवर्द्धन करे, जिज्ञासा की तृप्ति करे। बालसाहित्य का विपय ऐसा होना चाहिए जिससे बालक सकीर्णताग्रो से ऊपर उठकर सच्ची मानवता और विश्व कल्याण की भावना से अपना जन जीवन व्यतीत करने का सकल्प ले। साहित्यकार के हाथ मे ही बालक का भाग्य है। उसे अपनी सामग्री भारतीय इतिहास के उन स्वर्ण पर्वो से लेनी चाहिए, जिनसे भारत का मस्तक आज देदीप्यमान है। भूत प्रेतो की कहानिया स्वस्थ बालसाहित्य का अग नही है। हम बालसाहित्य के लिए उन महान कवियो की कृतियो से सामग्री लें, जिन्होने कवि कुल को गरिमा दी।"[1] इस तरह डा० रामकुमार वर्मा ने, बालसाहित्य रचना की कसौटी, शुद्ध भारतीय परिवेश ही माना है और एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर सकेत किया है कि भारतीय बच्चो के लिए वही बालसाहित्य उपयोगी है, जो इस वातावरण मे लिखा गया हो।

बच्चो के सुप्रसिद्ध मासिक 'पराग' के सम्पादक श्री आनन्दप्रकाश जैन ने,

---

१ 'बालसाहित्य का लक्ष्य और हमारा कर्तव्य' शीर्पक निबन्ध से।

आधुनिक बालसाहित्य को बिलकुल ही नए परिवेश में और नए रूप में देखने का प्रयास किया है। उनके विचारों ने हिन्दी बालसाहित्य-रचना को आधुनिक विचारधारा मे क्रान्ति-सी ला दी है। उन्होंने प्राचीन कथा-प्रयोगों के विरोध में लिखा है, "जादूगरों और राक्षसों की कहानियां अब बच्चों के साहित्य में स्थान पाने के योग्य नहीं रह गई हैं। वही जादू नहीं चलता, आज का राक्षस बहुत खूबसूरत होता है, बहुत उजले कपड़े पहनता है और बहुत शायस्ता जबान बोलता है। जनजीवन को नष्ट करने वाले उसके माध्यम भी सीधे नहीं रह गये हैं—वे भी बिजली के तारों की तरह जमीदोज रहकर काम करते हैं। इस विषम जीवन की प्रणालियों से बच्चों को भी किसी न किसी प्रकार हमें परिचित कराना ही होगा। विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्तों से परिचित कराने के लिए उनकी कोर्स-पुस्तकें ही पर्याप्त नहीं होतीं। जीवन के साथ विज्ञान के दर्शन का जो मेल आज अधिक स्पष्ट होकर उभरा है, वही सस्कारगत अंधविश्वासों से उन्हें मुक्त कर सकता है।"[१] इस नूतन और क्रान्तिकारी विचारधारा को स्थापित करने वाले श्री आनन्दप्रकाश जैन, इस प्रकार भारतीय बालसाहित्य मे उन बीजों को अकुरित करना चाहते हैं, जो बड़े होकर विश्व के अन्य देशों के बालसाहित्य की तुलना मे खड़े हो सकेंगे। किन्तु दु ख तो यही है कि हमारे यहा के साहित्यकार बालसाहित्य को एक महत्त्वपूर्ण साहित्य-विधा स्वीकारना नहीं चाहते। उनकी दृष्टि में जिस तरह बच्चे बचकाने विचारों वाले होते हैं, उसी तरह उनके लिए लिखा गया साहित्य भी बचकाना होता है। श्री आनन्दप्रकाश जैन के शब्दों मे, "इस सम्बन्ध मे हिन्दी के एक मूर्धन्य लेखक के विरोध शब्द यहा दिए बिना बात पूरी नहीं होगी। उनका कहना है—'आपने साइक्लोस्टाइल किए अपने गश्ती पत्र मे बालसाहित्य के सम्बन्ध मे कुछ मौलिक प्रश्न उठाए है। इससे मैं बहुत खुशी हू, पर मैं आपके साथ सहमत होने मे असमर्थ हू। यह बहुत लम्बा विषय है, पर सक्षेप मे इतना कहना ही यथेष्ट होगा कि प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने ढग से दो जीवन जीता है—एक वास्तविक जीवन, जिसमे उसकी वस्तुस्थिति आती है। दूसरा वह जीवन, जो वह कल्पना मे जीता है। पागल, कवि, युग निर्माता, क्रातिकारी दूसरे जीवन को ही प्रधान रूप से जीते है। साहित्यकार का दूसरा जीवन इतना तगडा होता है कि वह उसमे से कुछ हिस्सा अपने पाठक को बाटता है'''अवश्य चर्वित-चर्वण व्यर्थ है, जैसा कि आपने लिखा है।' इसके उत्तर मे उन्हें जो लिखा गया था वह उद्धृत करने योग्य है—'सहमत असहमत होने के लिए ही ये 'मौलिक' प्रश्न हिन्दी साहित्यकारों के सम्मुख मैंने बालसाहित्य के सम्बन्ध मे उठाए हैं। मगर आपके पत्र से मैं भली प्रकार यह समझने मे असमर्थ रहा कि आपका विरोध वस्तुत मेरी विचारधारा से कहा पर है। हा, आपका दो जीवन वाला सिद्धान्त अवश्य विचारणीय है। तब लगता है कही मूल मे ही विरोध है।

१. 'बच्चों का नया साहित्य' : निबन्ध : शृंगार (मासिक) जुलाई, १९६२।

अपनी बात स्पष्ट करू तो मैं अपने बच्चो को कभी दोहरे व्यक्तित्व की शिक्षा नही दूगा। कविता के नाम पर पागलपन करने या फैलाने वालो, युगनिर्माण के लिए खाली सब्जबाग दिखाने वालो तथा क्रान्ति के नाम पर अन्धविश्वासो से भरे रहस्यपूर्ण अध्यात्मवाद की ओर पीछे घसीट ले जाने वाले साहित्य से बच्चो का वास्ता न पड़े, तो ही अच्छा है। वास्तव मे मेरी तुच्छ बुद्धि मे यह बात आती ही नही कि कल्पनाशील-साहित्य यथार्थ जीवन से दूर कैसे है और क्यो है ? जब तक कि वह पलायनवादी न हो…।"[१]

श्री आनन्दप्रकाश जैन के इस स्पष्टीकरण से हिन्दी लेखको की, बालसाहित्य के प्रति उपेक्षा व उसमें निहित मूल विरोधी भावना सामने आ जाती है। लेकिन बालसाहित्य का अस्तित्व मानव-निर्मित नही है बल्कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार वह चिरन्तन और शाश्वत है। ऐसी स्थिति मे बालसाहित्य के स्वरूप व उसके उद्देश्य, विरोधो के बावजूद भी उसकी स्थिति बनाने मे समर्थ रहे हैं।

वास्तव मे बच्चे, साहित्य, समाज और सस्कृति के लिए नवागत के रूप मे होते हैं। यह सच है कि प्रत्येक युग की अपनी विशिष्टताए होती है, किन्तु बच्चो का उसमे निश्चित महत्त्व होता ही है। आज की दुनिया मे जहा हम एक ओर लोगो को प्रस्तर-युग से निकलते हुए देखते हैं, दूसरी ओर नई विचारधारा, नई खोज और जीवन के नये मूल्यो की स्थापना के लिए व्यस्त परिश्रमी सभ्यता को पाते हैं, वहा बच्चो के जीवन और उनकी समस्याओ का रूप भी उतना ही वैविध्य लिए हुए होता है। किन्तु इस वैविध्य के बीच भी बाल-मनोवृत्ति की एक समान विचारधारा की जो सूक्ष्म रेखा है, वह बच्चो को सुनियोजित और महत्त्वपूर्ण विकास की ओर इगित करती है। यह रेखा कभी-कभी इतनी प्रभावहीन और धूमिल हो जाती है कि बच्चो के जीवन के मूल्यो का कोई महत्त्व नही रह जाता। यह तभी होता है जब कोई ऐसी विचारधारा अधिक प्रभावशाली बन जाती है, जो आज के युग के अनुकूल राजनीतिक, धार्मिक या पारम्परिक मान्यताओ का प्रतिपादन करना चाहती है। यह ठीक है कि युग के साथ साहित्य, सस्कृति और मानव जीवन के रूपो मे भी अन्तर आता है, पर यह परिवर्तन बच्चो के जीवन पर किसी सीमा तक ही प्रभावशाली बनने देना श्रेयस्कर होता है।

बालसाहित्य की रचना के मूलाधार वे ही तत्त्व तथा मनोवैज्ञानिक नियम है, जो बच्चो को स्वस्थ मानसिक विचारधारा वाला व्यक्ति बनाने के लिए आवश्यक हैं। बालसाहित्य बच्चो के उन अकुरो को पुष्ट करता है, जो बडे होकर उन्हें जीवन के सत्य को पहचानने मे सहायता करते है। पूर्वी यूरोप के ज्वीस कबीलो मे तो यह प्रथा है कि जब तक शिशु मा की गोद मे है, पिता उसकी विशेष

---

१. 'बच्चो का नया साहित्य' : निबन्ध : शृगार (मासिक) जुलाई, १९६२।

चिन्ता नही करता। किन्तु जैसे ही वह पढने लगता है, उसका सम्मान बढ़ने लगता है। यह सम्मान उसके अध्ययन के स्तर के साथ आगे बढ़ता जाता है। बच्चे को समाज मे उसकी योग्यतानुसार उचित सम्मान देकर उसकी प्रतिभा और विकास की गति को बल प्रदान करते हैं।

आज विश्व जिन नए सिद्धान्तो और विचारो को लेकर बढ रहा है, उसमे बच्चों की अपनी पृथक् स्थिति नही है। उनकी रुचि, मनोवृत्ति और स्वाभाविक विकास की गति का कोई महत्त्व नही रहा। आज तो हर देश अपनी नीतियो और विचारधाराओ मे ही बच्चो को भी रग लेना चाहता है।

भारतीय बालसाहित्य को भी आज इसी स्तर पर लाने की आवश्यकता है। आज के जीवन मे बच्चों का जो स्वरूप है, वह किसी न किसी राजनीतिक या पिछडी हुई सामाजिक विचारधारा से प्रभावित है। बच्चो को जिस मनोवैज्ञानिक साहित्य और व्यवहार की आवश्यकता होनी है, उसे बिलकुल ही अलग कर दिया गया है। तद्युगीन समाज और वातावरण के अनुकूल बच्चों को बनाना आवश्यक तो है, किन्तु उनकी मूल-प्रवृत्तियो को विकसित न होने देना, उनके प्रति अन्याय है। यदि इस परिप्रेक्ष्य मे हम भारतीय बालसाहित्य को देखें तो उसमे अधिकाश ऐसा है जो बच्चो को सदियों पीछे ले जाना चाहता है। वही जादूभरी घाटिया, परीकथाएं, पुराणो की कहानिया घुमाफिराकर परम्परागत रूप मे सुनाते रहते है। ऐसे बहुत कम लोग हैं जो बच्चों की वास्तविक आवश्यकता को ध्यान मे रग कर पुस्तकें लिखते है।

इस युग के महान विचारक और बाल-कल्याण की दिशा मे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सोचने वाले चाचा नेहरू ने भी बालसाहित्य के महत्त्व को सदैव समझा और उसके विकास के लिए प्रयत्नशील रहे। दिल्ली मे 'बाल भवन' और 'चिल्ड्रस बुक ट्रस्ट' की स्थापना का श्रेय उन्ही को है और वे संस्थाएं उनकी रुचि की मूर्तिमान प्रतीक हैं। श्री नेहरू चाहते थे कि बच्चो मे चारित्रिक उन्नति, स्वतत्र विचारधारा, सस्कृति और आत्मनिर्भरता की भावना जागृत हो। वह इसीलिए कहते थे कि सारी शिक्षा बचपन से ही मिलनी चाहिए, क्योंकि नौ से दस वर्ष की अवस्था तक पहुचने पर बच्चो मे चरित्र निर्माण के अकुर उग आते हैं। श्री नेहरू का बचपन, इन तथ्यो के लिए स्वय एक सुन्दर उदाहरण रहा है। उन्होंने बालसाहित्य की अनेक उत्कृष्ट पुस्तकें पढी थी और बचपन मे उनके मन पर वे पुस्तकें जो प्रभाव डाल सकी उसी के परिणामस्वरूप बड़े होने पर उन्होंने बच्चो के बौद्धिक विकास की महत्ता को समझा और स्वय भी उपयोगी बाल-साहित्य की रचना की। सन् १९५७ मे १४ नवम्बर से २१ नवम्बर तक मनाए गए बाल-पुस्तक-सप्ताह के अवसर पर दिए गए अपने सन्देश मे उन्होने बाल-साहित्य के महत्त्व की ओर इगित करते हुए कहा था, "बचपन मे ही पढने की रुचि जागृत की जा सकती है। अत' यह विशेष रूप से आवश्यक है कि हम बच्चो को पढने की आदत डालने के लिए प्रोत्साहित करें और उन्हे उचित मनोरजक

पुस्तकें दें। बच्चों का दिमाग, जिज्ञासाओं और अधिक जानकारियों के लिए लालायित रहता है। यदि इस उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर बच्चों की रुचि के अनुकूल पुस्तकें तैयार की जाए तो निश्चय ही बच्चों की रुचि पढने की ओर बढेगी।"[१]

किन्तु श्री नेहरू का यह प्रश्न आज भी उसी जगह है। वास्तव मे वह बच्चों को अपने स्वाभाविक गुणो के अनुरूप विकसित होते देखना चाहते थे। उनमे मानव-प्रेम, सत्य और अहिंसा के गुणो के बीज बोना चाहते थे। वह बच्चो को अपने देश की सस्कृति, इतिहास और परम्परा से प्रेम करना सिखाना चाहते थे। वह इस दुनिया को एक बहुत बडी परी-कथा मानते थे। शकर्स वीकली के, 'बाल अक' को दिए गए एक सन्देश मे उन्होने कहा था, "अगर तुम मेरे साथ रहो तो मैं तुम्हे प्यार करूगा। फूल, पेड, चिडिया, पशु, तारे, पहाड और उन तमाम आश्चर्यजनक चीजो के बारे मे बातें करूगा जिनसे यह दुनिया घिरी हुई है। यह विचित्र दुनिया एक बहुत बडी 'परियो की कहानी' है।"[२] चाचा नेहरू अपने छोटो को जब भी पत्र लिखते तो उन्हे बालसाहित्य की उत्कृष्ट पुस्तकें पढने की सलाह देते। अपनी बहन कृष्णा हठीसिह को लिखे पत्र का अश इस बात की पुष्टि करता है—"तुम किसी पुस्तक की दूकान पर जाना और वहा कुछ ऐसी पुस्तकें चुनना जिनमें अतीत का ज्ञान हो, मध्य-युग का विश्वास मिले, आज की नास्तिकता की बातें जानने को मिलें तथा जिनमे हमारे गौरव की झाकी मिले। इन्हें तुम खरीद लेना और अपने भाई की भेंट के रूप मे स्वीकार करना। इन पुस्तको को पढना और एक जादू के शहर का निर्माण करना, जिसमे सपनो के घर हो, फूलो से भरे उपवन हो, झरने हो और जहा सुन्दरता तथा खुशी का निवास हो।"[३]

साराश यह कि आज बालसाहित्य-लेखन, पहले जैसा नही रहा। बीसवी शताब्दी मे बालसाहित्य की एक विश्वव्यापी क्रान्ति-सी हुई है और भारतीय बालसाहित्य भी उससे पूरी तरह प्रभावित हुआ है। इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप ही बालसाहित्य को नैतिक उपदेशो की सीमा से बाहर निकाला गया। बच्चों के जीवन और मनोभावो को प्राथमिकता दी गई। बच्चों के लिए अब सदैव कल्पना-लोक मे ही विचरण करना आवश्यक नहीं रह गया है। उन्हे यथार्थ के धरातल पर लाकर जीवन के सत्य और मूल्यो को पहचानने के योग्य बनाने का भी प्रयत्न किया जाने लगा है।

---

१ 'बाल-पुस्तक सप्ताह १९५७' के लिए दिए गये सन्देश से।
२. शकर्स वीकली—चिल्ड्रस आर्ट नम्बर, ३ दिसम्बर, १९४९।
3. *Nehru's Letters to his Sister*, Page 11.

पाश्चात्य विद्वानों के विचार :

पाश्चात्य देशो मे इगलैंड, अमरीका और रूस का बालसाहित्य सबसे अधिक समृद्ध है। इगलैंड और अमरीका का बालसाहित्य अग्रेजी मे है और रूस का रूसी भाषा मे। वास्तव मे इगलैंड का अग्रेजी बालसाहित्य पाश्चात्य देशो मे सबसे अधिक प्राचीन है। सभवत. इसीलिए पाल हेजार्ड ने कहा था कि बच्चो की पुस्तको के द्वारा इगलैंड का पुनर्निर्माण किया जा सकता है।

डा० हेनरी स्टील कोमागर के शब्दो मे, "बालसाहित्य क्या है ? क्या यह वह साहित्य है जो विशेषकर बच्चो के लिए लिखा गया हो—यानी परी और रहस्य कथाए, शिशु-गीत और गीत, नीति की पुस्तके, स्कूल या खेल के मैदान या किसी लम्बी यात्रा की कहानी आदि ? वास्तव मे यह पूरे साहित्य के रूप मे है, जिसे बच्चो ने अपना लिया है। इसमे कुछ ऐसा है, जिसमे उनका बराबरी का हिस्सा है और कुछ पर उन्ही का पूरा अधिकार है। पूरे साहित्यिक अर्थो मे यह उन्ही का साहित्य है, क्योकि अन्त मे न तो माता-पिता, न अध्यापक, न उपदेशक और न ही लेखक—इस बात का निश्चय कर पाते हैं कि यह बालसाहित्य है। इसे तो बच्चे स्वय ही तय करते हैं कि उनका साहित्य क्या और कैसा हो ?"[१]

लेकिन यहा यह स्पष्ट नही है कि बालसाहित्य के मूलभूत गुण क्या होने चाहिए, उसमे बड़ो के साहित्य से भिन्न होने के लिए क्या प्रमुख तत्त्व होने चाहिए और उसका स्वरूप निर्माण किन तथ्यो द्वारा होता है ? वास्तव मे यह कहना कठिन है कि 'बच्चे इस प्रकार की पुस्तकें पसन्द करते हैं' या 'इस प्रकार की पुस्तकें नही पसन्द करते।' इसका कारण यह है कि यह निर्णय रुचि, वातावरण, सामाजिक परम्पराओ और सस्कृतियो के वैविध्य पर निर्भर करता है। एक कथा या पुस्तक जो इंगलैंड के लिए अच्छी है, रूस के लिए बुरी हो सकती है—क्योकि दोनो

1. What after all do we mean by the term ? Is it the literature written especially for the young—the fairy and wonder tales, the nursery rhymes and songs, the dull books of etiquette and adomonition and moral persuasion, the stories of school or playing field or of far-flung adventure ? It is all of this, to sure, but it is far more. It is the whole vast body of literature that children have adopted, commonly to share with their elders, but some times to monopolize. It is, quite literally, their literature. For it is, in the end, not the parents, the teachers, the preachers, not even the authors, but the children themselves who determine what their literature is to be.

—Dr. Henry Steel Commager,
From Introduction of the '*A Critical History of Children's Literature* : *Meigs.*' Page vii.

की नीतियो और विचारो मे बहुत अन्तर है।

फिर भी बच्चो के लिए साहित्य लिखना बहुत कठिन काम है। इसकी तुलना जादू से की जा सकती है, जो कि अपने दर्शको को चमत्कृत करता है। बच्चो के लिए पुस्तकें लिखने मे भी जादू का सा ही कमाल होता है—क्योकि वह जादू बच्चों को भुलावे मे डाल देता है, उन्हे दूसरी दुनिया मे ले जाता है। यह ऐसा जादू है कि जो साहित्य की परिभाषा की भी उपेक्षा कर देता है। वास्तव मे बच्चो का जीवन-अनुभव, उनके सकीर्ण वातावरण की सीमाओ मे बन्द रहता है। वे इसके बाहर एक खुला हुआ मार्ग खोजने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। एक बार यदि यह मार्ग किसी पुस्तक मे दिख गया तो उसे वह ऐसा उपहार प्रतीत होती है, जिसने उसे मानो उडने के लिए पख दे दिए हो। इसलिए दुनिया मे ऐसी कोई ताकत नही है जो बच्चो को किसी पुस्तक को पढने के लिए बाध्य कर सके। वे पुस्तकें चुनने की स्वतत्रता की पूरी रक्षा करते हैं। यह और बात है कि वे यह न जानें कि क्यो किसी पुस्तक को पढते या उसे नही पढते हैं। फिर भी उनका निर्णय विश्लेषणवादी तो होता ही है।

लिलियन स्मिथ के शब्दा मे, "यह आवश्यक नहीं है कि बच्चो के लिए लिखी गई सभी पुस्तकें साहित्य ही हो और न यही आवश्यक है कि बडे लोग जिसे बाल-साहित्य मानते हैं, बाल-रुचि के अनुकूल चुनी गई पुस्तक उस कसौटी पर खरी उतर जाए। ऐसे भी लोग हैं जो बडो की बातो का सरल ढग से विवेचन बाल-साहित्य मानते हैं। लेकिन यह विचार बच्चा को बडो का सूक्ष्म सस्करण सिद्ध करता है और वास्तव मे यह गलत धारणा बचपन द्वारा उत्पन्न ही हुई है। बच्चे वास्तव मे एक ऐसी जाति होते हैं, जिनका जीवन अनुभव बडा से बिलकुल भिन्न होता है। उनकी एक अलग दुनिया होती है, जिसम जीवन के मूल्य बाल-सुलभ मनोवृत्ति के आधार पर निर्धारित होते हैं—बडो के अनुभव के आधार पर नही।"[1] यह सही भी है। बडो की अपेक्षा बच्चा की समस्याए अधिक सरल और सीधी-सादी होती हैं। लेकिन दूसरी ओर वे बडो की अपेक्षा अधिक मर्मस्पर्शी होते

---

1 All books written for children are not necessarily literature, nor does the adults conception of what constitutes a children's book coincide always with that of the child There are those who think of a child's book as just a simpler treatment of an adult theme This point of view considers children only as diminutive adults and arises from misunderstanding of childhood itself For children are a race whose experience of life is different from that of adults Theirs is a different world—a child's world in which values are expressed in children's terms and not in those which belong to adult experience

—Lilian Smith *A Critical Approach to Children's Literature* P 15

पाश्चात्य विद्वानो के विचार

पाश्चात्य देशो मे इगलैंड, अमरीका और रूस का बालसाहित्य सबसे अधिक समृद्ध है। इगलैंड और अमरीका का बालसाहित्य अग्रेजी मे है और रूस का रूसी भाषा मे। वास्तव मे इगलैंड का अग्रेजी बालसाहित्य पाश्चात्य देशो मे सबसे अधिक प्राचीन है। सभवत इसीलिए पाल हेज़ार्ड ने कहा था कि बच्चो की पुस्तको के द्वारा इगलैंड का पुनर्निर्माण किया जा सकता है।

डा० हेनरी स्टील कोमागर के शब्दो मे, "बालसाहित्य क्या है ? क्या यह वह साहित्य है जो विशेषकर बच्चो के लिए लिखा गया हो—यानी परी और रहस्य कथाए, शिशु-गीत और गीत, नीति की पुस्तकें, स्कूल या खेल के मैदान या किसी लम्बी यात्रा की कहानी आदि ? वास्तव मे यह पूरे साहित्य के रूप मे है, जिसे बच्चो ने अपना लिया है। इसमे कुछ ऐसा है, जिसमे उनका बराबरी का हिस्सा है और कुछ पर उन्ही का पूरा अधिकार है। पूरे साहित्यिक अर्थों मे यह उन्ही का साहित्य है, क्योकि अन्त मे न तो माता-पिता, न अध्यापक, न उपदेशक और न ही लेखक—इस बात का निश्चय कर पाते हैं कि यह बालसाहित्य है। इसे तो बच्चे स्वय ही तय करते है कि उनका साहित्य क्या और कैसा हो ?"[1]

लेकिन यहा यह स्पष्ट नही है कि बालसाहित्य के मूलभूत गुण क्या होने चाहिए, उसमे बडो के साहित्य से भिन्न होने के लिए क्या प्रमुख तत्त्व होने चाहिए और उसका स्वरूप निर्माण किन तथ्यो द्वारा होता है ? वास्तव मे यह कहना कठिन है कि 'बच्चे इस प्रकार की पुस्तकें पसन्द करते हैं' या 'इस प्रकार की पुस्तकें नही पसन्द करते।' इसका कारण यह है कि यह निर्णय रुचि, वातावरण, सामाजिक परम्पराओ और सस्कृतियो के वैविध्य पर निर्भर करता है। एक कथा या पुस्तक जो इगलैंड के लिए अच्छी है, रूस के लिए बुरी हो सकती है—क्योकि दोनो

---

1 What after all do we mean by the term ? Is it the literature written especially for the young—the fairy and wonder tales, the nursery rhymes and songs, the dull books of etiquette and adomonition and moral persuasion, the stories of school or playing field or of far-flung adventure ? It is all of this, to sure, but it is far more It is the whole vast body of literature that children have adopted, commonly to share with their elders, but some times to monopolize It is, quite literally, their literature For it is, in the end, not the parents, the teachers, the preachers, not even the authors, but the children themselves who determine what their literature is to be

—Dr. Henry Steel Commager,
From Introduction of the '*A Critical History of Children's Literature Meigs*' Page vii

हैं। बच्चे सच और झूठ, अच्छे और बुरे, सुख और दु ख, न्याय और अन्याय के बीच स्पष्ट अन्तर करके उसे ग्रहण करते हैं। उनके लिए बडो के वे नियम और नीतिया आवश्यक नही होते, जो उन्हे यह अन्तर स्पष्ट करने के लिए बताए जाते हैं। बालसाहित्य की अच्छी पुस्तकें इस बारे मे बहुत स्पष्ट ढग से स्थिति को प्रस्तुत करती हैं। ऐसी पुस्तको मे जिन बातो की चर्चा होती है, उनके मूल्य गम्भीर और प्रभावकारी होते है, लेकिन वे इन सिद्धान्तो का उपदेश नही देती।

बालसाहित्य के बारे मे एक और गलत विचारधारा है कि चूकि हम बडे होते हैं और हमारा जीवन अनुभव बच्चो की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होता है इसलिए उनकी ओर ध्यान कम दिया जाय। लेकिन सच बात तो यह है कि बचपन प्रभावकारी और निर्माणाधीन अवस्था होती है। वह सूक्ष्म होने के साथ-साथ ग्राह्य शक्ति से पूर्ण होती है। इस कारण अनेक बातें बच्चे, बडो की अपक्षा अधिक शीघ्रता से ग्रहण करते है। पाल हेज़ार्ड क अनुसार "पुस्तकें वे ही अच्छी होती हैं जो बच्चो को बाह्य ज्ञान ही नही बल्कि अन्तर्ज्ञान भी दे सकें, एक ऐसा सरल सौन्दर्य दे सकें जिसे वे सरलता से ग्रहण कर सकें और बच्चा की आत्मा मे ऐसी भावना का सचार करें जो उनके जीवन मे चिरस्थायी बन जाय। वे सार्वलौकिक जीवन के प्रति उनके मन मे आस्था उत्पन्न करें और खेल की महत्ता तथा साहस के प्रति आदर जाग्रत करें।"[१] उन्होने इस बारे मे आगे विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, "बच्चो की पुस्तको मे गम्भीर नीतियो की बातें होती हैं और वे अनेक सत्यो को जीवन मे शाश्वत बनाती हैं : जो अपनी ओर से बच्चो मे सत्य और न्याय के प्रति आस्था जगाती है। इस तरह के बालसाहित्य का लेखन, लेखक से बहुत कुछ अपक्षा करता है—सार्वलौकिक आदर्श और आध्यात्मिक मूल्यो की जानकारी, क्रियात्मक और काल्पनिक शक्तिया तथा सशक्त भाषाभिव्यक्ति।"[२]

---

1 Books that remain faithful to the very essence of art, those that offer to children an intuitive and direct way of knowledge, a simple beauty capable of being perceived immediately, arousing in their souls a vibration which will endure all their lives That gives them respect for universal life, that respects the valor and eminent dignity of play

—Paul Hazard, *Books, Children & Men*, Page 42

2 That children's books contain a profound morality, that they set in action certain truths worthy of lasting forever, that maintain in their own behalf faith in truth and justice To write for children in this way demands a great deal from the writer, a sense of the importance of universal moral and spiritual values creative and imaginative powers and strength of expression of language

—Paul Hazard, *Books, Children & Men*, Page 42.

यदि अंग्रेजी बालसाहित्य का इतिहास देखें तो पता चलता है कि उसमे वास्तविक प्रगति १९वी शताब्दी मे ही हुई है। वर्ड्सवर्थ के मतानुसार बच्चा ईश्वर का अश लेकर ससार मे प्रकट होता है, किन्तु सासारिक प्रभावो से धीरे-धीरे उसका जीवन मलिन और कुत्सित हो जाता है। यहा तक कि प्रौढता प्राप्त करते-करते वह पूर्ण रूप से पार्थिव हो जाता है। बालक के लिए सच्ची शिक्षा स्कूलो मे नही वरन प्रकृति के साहचर्य से ही सभव हो सकती है। अपने इन्ही विचारो को वर्ड्सवर्थ ने अपने काव्य मे दर्शाया है और बच्चो के जीवन तथा मनोभावो को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

लेकिन बीसवी शताब्दी मे बालसाहित्य की दिशा मे एक क्रान्ति सी हो गई। अमरीकी बालसाहित्य भी अपनी पराकाष्ठा को पहुच गया और इसे साहित्य का एक विशिष्ट अग माना जाने लगा। किन्तु अमरीकी और इगलैंड के बालसाहित्य मे भाषा साम्य होने के बाद भी कुछ मौलिक अन्तर हैं। उन्हे यहा स्पष्ट कर देने से दोनो देशो की बालसाहित्य-रचना के पीछे चल रही विचारधारा का स्पष्टीकरण हो जायगा।

यह सही है कि अग्रेजी मे इगलैंड का बालसाहित्य सर्वाधिक समृद्ध है। कारण यह है कि वहा कई शताब्दियो से इस दिशा मे किसी न किसी रूप मे ध्यान दिया गया है। प्राय सभी बडे लेखको ने भी बच्चो के लिए कुछ न कुछ अवश्य लिखा। कई बडे लखको की रचनाए—बच्चा के लिए न होने पर भी—बच्चो ने अपना ली। इसके अलावा इगलैंड के समाज मे यह भावना सदैव से रही है कि वे भविष्य मे जिन बाता को बताना चाहते थे—उनके लिए अपने बच्चो को उसी के अनुरूप तैयार करते रहे। एक तरह से वहा का बालसाहित्य, आदर्श के लिए लिखा गया साहित्य है, जो चाहे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नीतिपरक हो सकता है। वहा का बालसाहित्य बच्चा मे क्रियात्मक भावना का सचार करता है, अपने राष्ट्र के लिए भावना जागृत करता है। उन्हे खेलकूद का महत्त्व तथा वहा के नियमो की जानकारी देना है। उनमे सत्य और न्याय के प्रति निष्ठा की भावना जगाता है।

किन्तु अमरीकी बालसाहित्य इगलैंड के बालसाहित्य से कई तरह से भिन्न विचारधारा लेकर लिखा जा रहा है। वहा बच्चा मे आपस मे समानता की भावना जगाई जाती है। प्रजातन और मानवता के प्रति प्रेम सिखाया जाता है। अमरीका मे आज जीवन को सुखी ढग से बिताना एक महत्त्वपूर्ण बात है। इसलिए वहा के बालसाहित्य मे जीवन के इसी पक्ष को बढावा देने की प्रवृत्ति मिलती है। पुस्तको का बच्चो के लिए कहा और कितना महत्त्व है, यह बात पूर्व निश्चित-सी हाती है और वे उसी अनुपात मे दी जाती हैं। अमरीकी, बालसाहित्य म जीवन के भावनात्मक पक्ष पर कम, व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल दिया जा रहा है। उसम काल्पनिक और जादूभरी कहानियों के लिए कोई स्थान नही है। ये विषय बच्चो के लिए वहा घातक तथा कुप्रभाव डालने वाले माने जात ह। इनसे बच्चे जीवन के सही मूल्य जानने मे भूल कर सकते हैं। ऐसे साहित्य के स्थान पर उन्हे

सत्य बातों का ज्ञान कराना अधिक उपयोगी माना जाता है। मशीन कैसे बनती है, हवा मे कैसे उडते हैं, पानी पर जहाज कैसे चलता है आदि बातें अधिक उपयोगी मानी जाती हैं। अमरीकी बच्चों के साहित्य मे मनोरजन का पक्ष तो पर्याप्त माना मे होता ही है, किन्तु उसका भावनात्मक पक्ष भी बच्चों की स्वाभाविक रुचि, मनोवृत्ति और विचारो के अनुकूल होने की अपेक्षा व्यावहारिक अधिक होता है। वह किन्ही ऐसी शक्तियो से सचालित होता है जिनकी लगाम बड़ो और पूजीवादी विचारधारा वाले लोगो के हाथ मे होती है।

रूस मे बच्चो के विकास और उनके जीवन-मूल्यों पर विशेप ध्यान दिया जाता है। वहा प्रत्येक बालक को समाज का एक आवश्यक नागरिक समझा जाता है। रूस मे हुई क्रान्ति के बाद आरभ मे यह काम सरकार ने पूरी तरह अपने हाथो मे ले रखा था। वह चाहती थी कि रूस मे ऐसे नागरिक जन्म लें जो साम्य-वादी विचारधारा के पोपक हो और उसकी जडो को मजबूत कर सकें। लेकिन एक पीढी के पश्चात् धीरे-धीरे यह काम माता-पिता को सौप दिया गया—क्योंकि अब वहा के हर माता-पिता को साम्यवाद से प्यार है। हर माता-पिता अपने बच्चो को निश्चित उद्देश्यों की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं। इस कारण वहा माता-पिता तथा बालक के सम्बन्धो में भी काफी परिवर्तन आ गया है। इसमे माता-पिता को इस बात की पूरी छूट है कि वे बच्चो को हर तरीके से साम्यवादी विचारधारा का भक्त बना लें। इस तरह रूस मे 'अगर वे बच्चे साम्यवाद के आदर्शो के अनुकूल बनते है, यदि वे मार्क्स और लेनिन के दर्शन के सिद्धान्तो को भलीभाति समझ लेते हैं, यदि उनके जीवन के सारे उद्देश्य तथा सघर्ष यह हैं कि वे अपनी सारी शक्ति और ज्ञान साम्यवाद की स्थापना के लिए देंगे तो फिर उनके भविष्य की चिन्ता नही होती।'[१]

रूस मे आज का समाज, बच्चो के प्रति अधिक सजग और सावधान है। वे उन नियमो और सिद्धान्तों के प्रति विशेप रूप से जागरूक रहते हैं जो बच्चों की सुरक्षा, नियन्त्रण और अनुशासन के लिए आवश्यक हैं। रूस मे आज बच्चो की हर नई पीढी को पूरी चौकसी के साथ विकसित होने देना आवश्यक माना जाता है। हर नई पीढी को पूजीवादी भावनाओं की बुराइयो से बचाने के प्रयास किए जाते हैं। बच्चों की प्रत्येक क्रियाए, बातचीत, प्रत्येक शब्द या तो उनके आत्म-विकास मे मदद देते हैं या उसकी मूल भावना को ही समाप्त कर देते हैं। एक

---

1. If children have been brought up in the spirit of communist morality, if they have mastered the principles of Marxist-Leninist philosophy, if their main purposeful life-attitude is to give all their strength and knowledge to the struggle for communism, one need not worry about their future

—*Childhood in Contemporary Cultures* by Margaret Mead. P. 184.

बच्चा जैसे जैसे बडा होता जाता है वैसे-वैसे माता-पिता की अधिकाधिक जिम्मेदारी बढती जाती है कि वे उसके विकास मे मदद दें और अपने स्वय के व्यवहार को भी उसी के अनुकूल स्तर का बनाए रखें।[१]

रूस मे बच्चो के मनोविज्ञान पर विशेष बल दिया जाता है। बच्चो के लिए किये गए सभी कामो का एक निश्चित मनोवैज्ञानिक आधार होता है। छोटी से छोटी बात के लिए भी वहा बाल-मनोविज्ञान का पूरा ध्यान रखा जाता है। यदि कोई बच्चा बिगड गया है और कोई बात नही सीखता—चाहे उसे सिखाने की सारी तरकीबें असफल क्यो न हुई हो—तो उसे विशेष रूप से ध्यान देकर सुधारना होगा और तब यह आवश्यक होगा कि माता पिता उसके प्रत्येक कार्य के प्रति पूरी सावधानी रखें और उसे अपने नियत्रण मे रखे। रूस मे आज के बाल मनोविज्ञान के पीछे तथ्य इस प्रकार है—"आज की रूसी नई पीढी मे, अपनी कल्पनाओ का मार्गदर्शन करने की क्षमता उत्पन्न करना, उसे सही दिशा मे अग्रसर करना, अपनी मातृभूमि को साम्यवादी रूप मे बदलने के लिए मौलिक शक्ति का उपयोग।[२] इस तथ्य का भी एक निश्चित आधार बनाया गया है—क्योकि उसका विकास न केवल रोचक है बल्कि महत्त्वपूर्ण भी है। उदाहरण के लिए बच्चा के मन म उडकर चाद तक पहुचने की कल्पना जगाई जाती है। वास्तव म यह

---

1 The establishment of a Socialistic Society may indeed make it possible to add parents to the set of authority figures through which children are guarded, controlled and disciplined Each new generation of children must be brought up with equal vigilance, each new generation of masses must be protected from the evil effects of capitalistic propoganda Each action, each conversation, each word, either helps the blossoming of the child's soul forces or on the contrary, breaks and maims his soul In upbringing, in this many sided deep process of personality formation, there is nothing which may be considered trifle The older a child becomes, the more heightened parental responsibility for his upbringing as well as for their own behaviour
—*Childhood in Contemporary Cultures* by Margaret Mead, Pages 184 185

2 The ability of the young soviet generation to guide their imagination, to develop it in the necessary direction, to utilize creative force in the interest of the communistic transformation of our motherland—those are the concrete problems of the psychology of upbringing
—From *'Lecture on Upbringing of Children* by Makarenko *'Childhood in Contemporary Cultures'*, Margaret Mead, Page 190.

सब कुछ उस रूप मे घटित होता है जो वास्तविकता से बहुत दूर है। लेकिन इतना अवश्य है कि इस कल्पना की भावभूमि, उन सफल उड़ाकों की कहानियां होती हैं जो अन्तरिक्ष पारकर चन्द्रलोक पहुंचने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

रूसी बालसाहित्य मे पौराणिक-धार्मिक कथाओं का कोई महत्त्व नही है। ये कथाएं हृदयहीन ससार को बढ़ावा देने वाली समझी जाती हैं। इन्हे वहा के बच्चों के लिए अफीम की गोलियां समझा गया है जो निष्क्रिय, कल्पनाहीन और लकीर का फकीर बना देती है। रूस मे यदि कोई बच्चा रूसी सिपाही, वैज्ञानिक, उड़ाका या मजदूर बनता है तो उसे विकास की दिशा मे अग्रसर समझा जाता है। आज के रूसी बालसाहित्य मे पुरानी सभ्यता और परम्परा को भूलकर नई मान्यताओं को ग्रहण करने की बात होती है।

जर्मनी मे दो महायुद्धों के बाद बच्चो के साहित्य के रूप मे बहुत से परिवर्तन आगए है। वहा बचपन से ही यह देखा जाता है कि बालक मे ऐसी विचारधारा जन्म ले जो उसको जीवन के मूल्यों और उद्देश्यों को जानने के योग्य बना सके। जर्मनी मे बच्चों को आरम्भ से ही 'जीवन-युद्ध' मे लड़ने योग्य एक कर्मठ सिपाही बनाने के प्रयत्न किये जाते है। किन्तु इसका वास्तविक परिणाम यह होता है कि वे अपने जीवन मे कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने के योग्य नही रह पाते। उनमे चरित्र की दृढ़ता का अभाव होना है, उनमे उत्तरदायित्व सम्हालने की तत्परता नही रह जाती, उनके जीवन मे आत्मविश्वास की भावना नही जाग्रत हो पाती और उनके कार्यों का कोई निश्चित उद्देश्य नही होता। जर्मनी के बालसाहित्य को, वहा की राजनीतिक विचारधारा ने अधिक प्रभावित कर रखा है। परिणाम यह होता है कि बच्चों के जीवन मे वह रस नही रह पाता जो प्रकृति प्रदत्त है। बड़े होने पर वे अपने जीवन को एक विशेष प्रकार के साचे में ढला पाते है, जिसमे किसी प्रकार के परिवर्तन की आशा नही होती।

फ्रास मे अमरीकी बच्चों के साहित्य का विपरीत रूप मिलता है। वहा बच्चों को युवावस्था के लिए तैयार किया जाता है। सुखी जीवन को बिताने के लिए उन्हे मुसीबतों से सघर्ष करना सिखाया जाता है। वहा जीवन का भावनात्मक पक्ष ही प्रबल होता है और मनोरंजन का कोई महत्त्व नही होता। वहा तो एक मात्र उद्देश्य यह होता है कि बच्चे युवक बनकर जीवन की परिस्थितियों से सघर्ष करके उन्हे अपने अनुकूल बनाना सीखें। फ्रास मे, बच्चों मे युवावस्था के अकुर उगाए जाते है, जो भविष्य मे उन्हे जीवन का एक सफल उपभोक्ता बनाते हैं।

इस तरह पाश्चात्य बालसाहित्य की विचारधारा का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वहा युग के अनुरूप साहित्यिक मानदण्डों और जीवन के मूल्यों को भी परिवर्तित करना आवश्यक समझा जाता है। वहा बच्चों को केवल काल्पनिक भूलभुलैयों मे रखने की प्रवृत्ति नही होती और इसलिए जो भी बालसाहित्य लिखा गया है और लिखा जा रहा है, उसके पीछे एक निहित उद्देश्य है।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जो मार्ग अपनाया जाता है वह निश्चय ही बाल-सुलभ-प्रवृत्ति के अनुकूल होता है और उसमे बच्चो को किसी भी प्रकार का बोझिल अनुभूति नही होने पाती। किन्तु एक विरोधी विचारधारा भी मन मे जन्म लेती है कि पाश्चात्य वालसाहित्य को पढ़कर लगता है—मानो वहा बच्चों की स्वतंत्रता, प्रवृत्ति और विचारधारा का कोई मूल्य नही रह गया है। वे जैसे बडो के हाथ की कठपुतली बन गए हैं, जिसे वे अपनी ही इच्छानुसार जैसा चाहते है, घुमाते है। वहा आज बच्चों का जो स्वरूप निर्मित हो रहा है, वह किसी न किसी राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित है। बच्चो को जिस शुद्ध मनोवैज्ञानिक साहित्य और व्यवहार की आवश्यकता होती है उसे अलग-सा कर दिया गया है। जबकि युग के अनुरूप बच्चों को बनाने के लिए आवश्यक है कि उनकी मूल प्रवृत्तियो को पूरी तरह विकसित होने दिया जाय। उन्हें किसी राजनीतिक साचे मे ढला मानव-पुतला न बनाया जाए।

इस सन्दर्भ मे जब हम भारतीय बालसाहित्य को देखते है तो लगता है कि हमारे यहां अभी तक ऐसी कोई निश्चित विचारधारा ने अपना स्वरूप नही निर्मित किया है। वही घिसी-पिटी पारम्परिक मान्यताएं आज भी 'नई बोतल में पुराना शराब' वाली कहावत को चरितार्थ करती हैं। वास्तव मे आज आवश्यकता है ऐसे बालसाहित्य की जो उनकी मानसिक तुष्टि—मनोरंजक और बौद्धिक दोना ही—मनोवैज्ञानिक ढंग से कर सके। ऐसा साहित्य ही बालसाहित्य कहा जा सकता है जो बच्चो की रुचि के अनुकूल, उन्ही की भाषा मे, उनकी ज्ञान सीमा को विस्तार दे सके और उनकी ज्ञान पिपासा को शांत कर सके। युग के अनुरूप लिखा गया साहित्य—चाहे वह बालसाहित्य हो या प्रौढसाहित्य हो—अधिक प्रभावशाली होता है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के मतो का मनन करने पर एक समान विचारधारा यह मिलती है कि बाल-रुचि और बाल-मनोविज्ञान के बिना बालसाहित्य रचना सभव नही है। लेखक जब तक बाल-रुचि का अध्ययन न करे और बालमनोविज्ञान के मूलभूत तथ्यो को ध्यान मे न रखे तब तक उसका रचना सफल बालसाहित्य नही सिद्ध हो सकती। वास्तव में बालसाहित्य के सर्वश्रेष्ठ आलोचक और मूल्यांकनकर्ता स्वयं बच्चे ही होते हैं। उनकी कसौटी यदि जाननी है और सफल बालसाहित्य रचना करनी है तो निश्चय ही बाल-रुचि एवं मनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। बच्चे सदैव अपनी रुचि के अनुकूल अपना वस्तुओ का चयन करते रहे है। साहित्य के सम्बन्ध मे भी यही मान्यता है। वे जानते हैं कि उसमे से उन्हे क्या लेना है और क्या छोड़ना है। उनकी इसी प्रवृत्ति ने 'बालसाहित्य' की स्वतन्त्र विधा को जन्म दिया है। यद्यपि उन पर बहुत कुछ थोपा गया, आज भी बहुत कुछ थोपा जाता है, परन्तु वे उसे अपनी कसौटी पर कसकर ही स्वीकार करते हैं। ससार की कितनी ही पुस्तकें, जो बालसाहित्य नहा थी—बच्चों ने अपनी बना लीं और जो बालसाहित्य थी वे निरर्थक सिद्ध हो गईं।

भारतीय और पाश्चात्य बालसाहित्य रचना मे एक समान तत्त्व यह भी है

कि सरल भाषा मे बडो द्वारा कुछ भी लिखा गया साहित्य, बालसाहित्य नही हो सकता। भारत मे स्वातन्त्रोत्तर काल मे लिखे गए अधिकाश बालसाहित्य मे यही बात है। वह वास्तव मे व्यावसायिक दृष्टिकोण लेकर लिखा गया और उद्देश्य यह बताया गया कि बालसाहित्य की कमी को पूरा करना है। किन्तु अब वह समस्त साहित्य कसौटी पर रखा जा चुका है और १९६० के बाद प्रकाशित भारतीय बालसाहित्य मौलिक और अधिक उपयोगी सिद्ध हो गया है। वैसे अवसरवादी लेखक-प्रकाशक इस समय भी नही चूकते है और वे स्वस्थ बालसाहित्य के ढेर मे कुछ अ बालसाहित्य की पुस्तकें लिखकर मिला ही देते है। वास्तव मे यह काम हमारी नैतिक-मनोवृत्ति का परिचायक है। यदि इस दिशा मे थोडा सुधार हो जाय तो निश्चय ही भारतीय बालसाहित्य अधिकाधिक समृद्धिशाली और उपयोगी बन सकता है। विदेशो मे ऐसे साहित्य को कोई महत्त्व नही मिलता जो अनैतिक भावना से लिखा गया होता है। वहा पर माता-पिता बच्चो को पुस्तकें देने के पूर्व उसे जाच-परख लेते है। भारतीय बालसाहित्य के साथ भी ऐसी ही जाच-परख की आवश्यकता है।

साराश मे इस सातवें दशक मे भारतीय बालसाहित्य ने अपना निश्चित रूप बनाना आरभ कर दिया है और वह न केवल बाल रुचि और मनोरजन के उद्देश्य की ही पूर्ति कर रहा है बल्कि देश की भावी पीढी को नई दुनिया के साचे मे ढाल-कर उन्हे भविष्य के लिए तैयार कर रहा है।

(ब) बालसाहित्य के उपयुक्त विषय

गीत, कहानिया, चित्र, नाटक आदि कुछ ऐसी विधाए हैं, जिनके माध्यम से कोई भी बालक अपना ज्ञानार्जन कर सकता है। लेकिन बच्चे जो कुछ भी प्राप्त करते है, वह उनके बडो के माध्यम से तैयार किया हुआ होता है। बहुत कुछ ऐसा भी होता है जिसे बच्चे और बडे साथ साथ देखते पढते हैं और दोनो उसमे से अपनी-अपनी रुचि की बातें ग्रहण कर लेते है। किन्तु बालसाहित्य का विकास तो पूरी तरह उन बडो पर ही निर्भर करता है जो उसे लिखते छापते है और बच्चो के समक्ष प्रस्तुत करते है। वे बच्चो को जिस तरह बनाना चाहते है, उन्हे वैसा ही साहित्य देकर बना लेते है। दूसरे शब्दो मे, बच्चो को जिस विचारधारा से अभिभूत साहित्य दिया जाता है, वे उसी दिशा मे विकसित होते हैं। यूरोप मे अठारहवी शताब्दी के अन्त मे क्रातिकारी सामाजिक सिद्धातो तथा राजनीतिक आदोलनो के सयोग से बच्चो का स्वरूप एकदम परिवर्तित होने लगा था। बच्चो को बडो के सिद्धातो के अनुकूल न केवल एक अपूर्ण-प्रौढ माना गया बल्कि इस प्रौढ-सरक्षण की शक्ति का दुरुपयोग भी किया गया और उनकी स्वाभाविक विकास की गति मे बाधा पहुचाई गई। इसका परिणाम यह हुआ कि तत्कालीन बाल-साहित्य लेखको ने ऐसे साहित्य की रचना की जो बच्चो को इन दिशाओ की ओर ले जाने वाला था। उसमे बच्चो का स्वरूप उच्च भावनाओ वाला, छिद्रान्वेषी

वेश मे नृत्य 'केवल' न सही, अधिकाशत लडकियो के लिए ही है। कोई कला-प्रिय पुरुष उसमे दक्षता प्राप्त कर ले यह और बात है। किन्तु कुछ तत्त्व ऐसे अवश्य हैं जो दोना जगह समान हैं। ये उस मनोविज्ञान से सम्मन होते है जो विश्व भर के बच्चो को एक सा सिद्ध करता है। कहानी की कुतूहलप्रियता के प्रति आकर्षित होना, गीतो की सगीतमयता मे खो जाना, साहस और वीरता के कार्य करना हर नई वस्तु के बारे मे अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने की उत्कठा, अपने परिवार, नगर, देश के इतिहास-भूगोल के बारे मे जानना बहुत स्वाभाविक है। ये कुछ ऐस विषय है जो सामान्यत सभी देशो के सभी बच्चो के लिए अनुकूल होते है। आयु के साथ साथ इन विषयो का दायरा भी बढता है। जीवन को सुगम और सुखमय बनाने के साधनो का परिचय प्राप्त करते ही बच्चा के मन मे क्रियाशीलता की भावना जागृत होती है और वे स्वय सभी कुछ करके देखने के लिए उत्सुक हो उठते हैं। यही क्रियात्मक भावना, बच्चो मे विज्ञान, जीवन दर्शन और आध्यात्मिक चेतना का सचार करती है। विज्ञान उन्हे जहा प्रत्येक वस्तु के विश्लेषण और पुनर्निर्माण की प्रेरणा देता है वहा जीवन दर्शन, जीवन को सुखमय बनाने, अपनी समस्याओ को हल करने और राष्ट्र के प्रति दायित्वो का निर्वाह करने की प्रेरणा देता है। आध्यात्मिक चेतना यदि सही मार्ग मे जागृत होती है तो वह निश्चय ही उन्हें अलौकिक और अज्ञात शक्तियो की खोज की ओर उन्मुख कर सकती है किन्तु यदि वह अन्धविश्वास या पाखड से निर्देशित है तो उसमे क्षति पहुचने की अधिक सम्भावना होती है।

विदेशो मे विज्ञान ने आज अपना प्रमुख स्थान बना रखा है। उससे पहले वहा जीवनानुभवो पर आधारित परम्परागत नियम और जीवन सिद्धान्त थे। किन्तु विज्ञान न उन्हे बदल दिया। वहा अब विज्ञान न केवल उनकी विश्लेषणवादी तथा अनुसन्धानात्मक प्रवृत्ति को जागृत करता है बल्कि उनके जीवन को भी नियत्रित करता है। इसीलिए आज विदेशी (अमरीकी, रूसी, ब्रिटिश) बालसाहित्य का मुख्य स्तर आधुनिक वैज्ञानिक चेतना है। टॉलस्टॉय के नाटक 'अभी तुम्हारी समझ मे नही आएगा' मे बच्चो को विज्ञान के छोटे से छोटे क्रियाकलापो के प्रति जानकारी देने का प्रयास किया गया है। इसी तरह हमारे यहा 'हाऊ एण्ड व्हाई' सीरीज की कई पुस्तको का अनुवाद शिक्षा-मत्रालय ने प्रकाशित किया है। ये सभी पुस्तकें बच्चा को वैज्ञानिक जीवन की ओर ले जाने के उद्देश्य से लिखी गई हैं। आज के युग के लिए विज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय माना गया है, क्योंकि आगे आने वाली दुनिया विज्ञान के ही धरातल पर खडी होगी। यदि आज के बच्चे विज्ञान से सीधा सम्पर्क नही रखते तो उन्हे आने वाली दुनिया स सामजस्य स्थापित करना कठिन हो जायगा।

जीवन-दर्शन का विषय भी कुछ ऐसा ही है। अब बच्चे पहले से अधिक सचेतन और जागरूक होते हैं। आज के समाज मे बच्चा की समस्याओ को समझना और उनके लिए सम्भव हल खोजना भी आवश्यक है। यह नही समझना चाहिए

कि बच्चो की अपनी कोई समस्या नही होती। स्कूल के बदमाश लडको का भय, सवाल न आने पर मास्टर जी की डाट का भय, लेट होने का भय आदि अनेक ऐसी गुत्थिया होती हैं जिनके समाधान के लिए बच्चे प्रयत्नशील होते हैं। यदि उन्हे इनके प्रति आवश्यक निर्देश नही प्राप्त होते तो वे गलती पर गलती करते जाते हैं—झूठ बोलते है और घर से भागते हैं। ये सारी बुराइया उस साहित्य के माध्यम से दूर की जा सकती हैं जो बच्चो की इन समस्याओ के विभिन्न विषया को लेकर लिखा गया हो। भारत ही नही विदेशो मे भी आज 'एग्री यूथ' यानी 'नाराज युवा-पीढी' की एक भयकर समस्या है। भारत मे हर साल सैकडो लडके फेल होने पर आत्महत्या करते हैं, घर से रुपया चुराकर भाग जाते हैं, सिनेमा स्टार बनने के चक्कर मे बरबाद हो जाते हैं और अपने जीवन को अन्धकारपूर्ण बना बैठते हैं। बालसाहित्य के ऐसे विषय आज बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और इन पर अनेकानेक रचनाए अपेक्षित हैं।

आध्यात्मिक चेतना उस सीमा तक ठीक हो सकती है, जहा तक वह बच्चो को गुमराह होने से बचाए। लेकिन जब वह उनमे पाखड और अन्धविश्वास प्रचुर मात्रा मे जागृत करे तो उसे रोकना होगा। हमारे यहा पौराणिक और धार्मिक कथाओ का भडार है। किन्तु अनेक कथाए आज के बच्चो मे न केवल उलझन और अनास्था उत्पन्न करती हैं बल्कि उनसे उनके विकास मे भी बाधा उत्पन्न होती है। अत बालसाहित्य के लिए आध्यात्मिक चेतना जागृत करने वाले साहित्य को बहुत छानबीन कर देना ही अधिक उपयोगी होता है।

बालसाहित्य के अनुकूल विषयो का चुनाव करते समय कई बार एक बहुत बडी भूल यह हो जाती है कि उन्हे बडो के ज्ञान और अनुभव के आधार पर चुना जाता है। वास्तव मे बालसाहित्य रचना बडो द्वारा ही होती है। एक बडे लेखक के लिए यह कुछ कठिन काम हो जाता है कि वह बच्चो की-सी मनोवृत्ति और रुचि का अनुभव करे और उसके अनुसार साहित्य लिखे। अधिक से अधिक वह इतना ही कर सकता है कि अपने बचपन की धुधली स्मृतिया को याद करे और फिर कुछ उसी के अनुरूप साहित्य लिखने का अपने जीवनकाल मे बहुत-सा ज्ञान और अनुभव इकट्ठा कर लेता है और उसी के आधार पर बालसाहित्य लिखता है। लेकिन इस भावभूमि पर लिखे गए बालसाहित्य म और बाल रुचि के अनुरूप लिखे गये बालसाहित्य मे मौलिक अन्तर अनुभवो का होना है। यही वह कसौटी है जो बालसाहित्य के किसी भी विषय की उपयुक्तता और अनुपयुक्तता प्रमाणित करती है। श्री भारतभूषण अग्रवाल ने एक उदाहरण द्वारा इस तथ्य को बडी कुशलता से स्पष्ट किया है, "मैंने हवाई जहाज पर लिखी एक किताब देखी। चूकि पुस्तक बहुत सुन्दर रगो और चित्रो से सजी हुई थी और मेरा छोटा पुत्र हवाई जहाज मे विशेष रुचि लेता है, इसलिए मैंने उसे खरीद लिया। जब मैंने वह पुस्तक अपने पुत्र को दी तो वह खुश हुआ और उसे एक ही बैठक मे पढ गया। मैंने पुस्तक के बारे मे उसकी राय जाननी चाही तो उसने कहा

कि बहुत अधिक पसन्द नहीं आई। दरअसल वह तो यह जानना चाहता है कि हवाई जहाज कैसे उडता है ? मैंने पुस्तक लेकर जब देखना चाहा कि वास्तव मे मत-वैभिन्न्य किस बात पर है। उस पुस्तक मे हवाई जहाज की पूरी कहानी, यानी—मनुष्य की उडने वाली कल्पना, गुब्बारे, राइट बन्धु से लेकर आधुनिक हवाई जहाजो तक की प्रगति तथा उनके विकास की कहानी दी गई थी। निस्सन्देह किसी भी पढे लिखे व्यक्ति की राय मे वह उपयोगी पुस्तक मानी जा सकती है क्योकि उसे अच्छी छपाई, सुन्दर रगो और चित्रो से सजाया भी गया था। लेकिन वह बच्चा के लिए उतनी उपयोगी नही थी क्योकि वह हवाई जहाज के विकास की कहानी मात्र ही नही जानना चाहता बल्कि वह उसके उडने के विज्ञान को समझना चाहता है।"[१] बालसाहित्य के अनुरूप विज्ञान या उसके अन्तर्गत चुना गया हवाई जहाज का यह विषय भी उपयोगी होते हुए भी पुस्तक को अनुपयोगी सिद्ध कर देता है। इसका कारण यही है कि पुस्तक लिखते समय बाल रुचि और जिज्ञासा को उतनी बारीकी से नही परखा गया जितना सफल बालसाहित्य रचना के लिए आवश्यक है। अत, बालसाहित्य के अनुरूप विषय होने पर भी, बाल रुचि के अनुकूल उसका कौनसा पहलू प्रस्तुत किया जाना चाहिए, यह अधिक ध्यान देने की बात है।

(स) बालसाहित्य-आलोचना के प्रमुख तत्त्व

प्रत्येक पुस्तक का अपना एक निश्चित स्वरूप, महत्त्व और रचना विधान होता है, लेकिन फिर भी सभी मे कुछ ऐसे तत्त्व अवश्य होते हैं, जो अन्तत साहित्य के वे आलोचना-सिद्धान्त बन जाते हैं—जिन पर शेष या परवर्ती साहित्य का मूल्याकन किया जाता है। साधारणतया किसी पुस्तक म अच्छे-बुरे का भेद करना बहुत कठिन काम नही होता—चाहे वह प्रौढ साहित्य की पुस्तक हो या बालसाहित्य की। लेकिन जब प्रचुर मात्रा मे बालसाहित्य रचना होने लगती है, तब यह मूल्याकन अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। अनेक ऐसी पुस्तकें होती है जो अपनी साज-सज्जा, छपाई आदि के कारण बच्चा को शीघ्र ही आकर्षित कर लें, लेकिन उनका वस्तु तत्त्व सर्वथा अनुपयोगी होता है। ऐसी भी पुस्तकें होती है जिनका वस्तु-तत्त्व सुन्दर और उपयोगी होने पर भी, अपने रूप रग के कारण वे बाल पाठको को आकर्षित करने मे असमर्थ होती हैं। इसलिए बालसाहित्य के सही मूल्याकन की आवश्यकता होती है।

वास्तव मे बालसाहित्य का मूल्याकन कई भिन्न भिन्न दृष्टियो से किया जाता है। प्रकाशक उसे अपने हानि-लाभ की दृष्टि से देखता है तो पुस्तकालयाध्यक्ष बच्चा की पठन रुचि को ध्यान मे रखता है। लेकिन एक आलोचक को, जो पुस्तक की समीक्षा द्वारा उसे पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता है, अपनी

---

१. भारत भूषण अग्रवाल—*Writing for Children* Page 2

आलोचना उन किन्ही तत्त्वो पर आधारित करनी पडती है जो साहित्य के मानदण्ड के रूप मे स्थापित हो चुके होते है। लेकिन इससे भी पूर्व आलोचक के मस्तिष्क मे यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि वह किसी भी पुस्तक से क्या अपेक्षा करता है ? उस विषय की पुस्तक के लिए साहित्य मे क्या मानदण्ड स्थापित हुए हैं—जिनकी कसौटी पर उस पुस्तक को परखना होगा ? आलोचक के मस्तिष्क मे यह तथ्य भी स्पष्ट होना चाहिए कि अच्छी पुस्तक मे कौन कौनसे गुण होने चाहिए।

यहा एक बहुत स्वाभाविक प्रश्न उभर सकता है कि क्या बालसाहित्य आलोचना के सिद्धान्त होना आवश्यक ही है और यदि है तो वे साहित्यशास्त्रीय नियमा से आबद्ध हो या बालसाहित्य के लिए स्वतत्र हो ? यह प्रश्न निश्चय ही विचारणीय है। जहा तक इस प्रश्न के प्रथम भाग का सम्बन्ध है—बालसाहित्य की आलोचना के लिए कुछ निश्चित सिद्धान्तो का होना आवश्यक हो है। बालसाहित्य लेखन-प्रकाशन, भारत हो नही बल्कि विश्व के अन्य देशो मे भी बीसवी शताब्दी मे एक महत्त्वपूर्ण कार्य हो गया है। पुस्तक व्यवसाय मे लगे अनेक व्यक्तियो ने बालसाहित्य प्रकाशन का काम हाथ मे लिया, क्योंकि यह सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तको को अपने प्रचुर ग्राहको तक पहुचाने मे सफल होता है। यदि देखा जाय तो कहानी-उपन्यासो के बाद सब से अधिक बिक्री बालसाहित्य की ही होती है। बीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे बालसाहित्य एक आवश्यकता तो है ही, उससे भी अधिक कई देशो मे फैशन हो गया है। बच्चो के लिए खिलौने या अन्य वस्तुए खरीदने के साथ कुछ सुन्दर पुस्तकें खरीदना एक आवश्यकता हो गई है जो फैशन के दायरे मे आती है। बालसाहित्य की स्वाभाविक माग और फैशन के इस प्रभाव के कारण उसका व्यावसायिक हो जाना स्वाभाविक ही है। किन्तु बात यही समाप्त नही होती। विदेशो[1] के साथ-साथ भारत मे भी व्यावसायिक दृष्टिकोण लेकर पुस्तक लेखन प्रकाशन अपनी चरम सीमा पर है। इसका परिणाम यह होता है कि कई बार अच्छी पुस्तको को वह महत्त्व नहीं मिल पाता जो मिलना चाहिए। इसलिए ऐसे मापदण्डो तथा सिद्धान्तो का होना बहुत आवश्यक है जो प्रचुर मात्रा मे प्रकाशित होने वाले बालसाहित्य का उचित मूल्याकन प्रस्तुत कर सकें और भ्रष्ट बालसाहित्य को रोकें। यह मूल्याकन पुस्तकों के प्रकाशन के पीछे छिपे

1 "Commercialism and mass production have at times reached such proportions as to overshadow the scores of fine books The trend to write to meet a specific need has some times discouraged the author's writing out of his real affinity. But looking back over the period, the unworthy books have dropped out of sight & the problem of knowing which of the many good books to accent in our discussion has been a difficult one indeed"

—Meigs, Cornelia, *A Critical History of Children's Literature*, Page 432

वास्तविक दृष्टिकोण को स्पष्ट कर सकेगा कि वह व्यावसायिक है या साहित्यिक। साथ ही उससे अच्छी पुस्तकों का चुनाव भी हो सकेगा। यद्यपि यह सही है कि बच्चों मे रुचि-वैभिन्य होता है—लेकिन फिर भी पुस्तक लिखने की शैली, विषय-वस्तु और कथानक तो ऐसे गुण है जो उस पुस्तक के महत्त्व को प्रतिपादित करने मे समर्थ होते है।

वास्तव मे एक अच्छी पुस्तक के गुण उसके साहित्यिक मूल्य होते हैं। ये मूल्य इस बात से कोई मतलब नहीं रखते कि पुस्तक का वर्ण्य विषय किस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है। हो सकता है कि पुस्तक का वर्ण्य विषय बहुत महत्त्वपूर्ण हो किन्तु उसका प्रस्तुतीकरण अत्यन्त शिथिल हो या वर्ण्य विषय शिथिल हो किन्तु प्रस्तुतीकरण प्रभावशाली हो—किन्तु यह वास्तव में लेखक की कुशलता पर निर्भर करता है कि वह साहित्यिक मूल्यो का प्रतिपादन ठीक तरह से करे। प्रत्येक पुस्तक के लिए अलग अलग साहित्यिक मूल्य नहीं होते बल्कि कुछ ऐसे समान सिद्धान्त होते हैं जो सभी पुस्तको पर लागू होते हैं। उदाहरण के लिए नीचे कुछ प्रश्न दिए जाते है, जिनके उत्तर किसी भी पुस्तक के साहित्यिक मूल्यो को जाचने-परखने मे मदद दे सकते हैं—

अ लेखक इस पुस्तक के माध्यम से क्या कहना चाहता है ?

ब इस कथ्य के लिए उसने कौन-से शैली-साधन को स्वीकारा है ?

स क्या वह अपना कथ्य सफलतापूर्वक स्पष्ट कर सका है ?

द यदि वह पूरी तरह सफल नही हुआ तो वह किन किन स्थनो पर असफल हुआ ?

इ कुल मिलाकर पुस्तक से पडने वाला प्रभाव, लेखक के सन्देश से किस सीमा तक मेल खाता है ?

ई क्या पुस्तक अपने उद्देश्य मे सफल हुई है ?

इन प्रश्नों के उत्तर मे किसी भी पुस्तक के अच्छे या बुरे होने का निर्णय सरलता से लिया जा सकता है। लेकिन जब किसी पुस्तक का विश्लेषण करते हैं तो हम अनेक ऐसे निष्कर्षो पर पहुचते है जो पुस्तक को महत्त्वपूर्ण या निकृष्ट सिद्ध करते है। इन निष्कर्षो पर पहुचने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि समालोचक, पुस्तक को तल्लीन होकर सहृदयतापूर्वक पूरी निष्ठा से पढे। इससे लेखक का अभिमत स्पष्ट हो जाता है और पुस्तक म उसका कितनी दूर तक निर्वाह किया गया है यह भी जाना जा सकता है। पुस्तक मे कथ्य, भाषा तथा उसके शिल्प सौन्दर्य को भी पहचानने मे सहायता मिलती है। लेकिन हो सकता है कि दो पुस्तको मे से एक पसन्द आए और दूसरी न पसन्द आए। इन दोनो के कारणो को अलग-अलग स्पष्ट करके लिखना अधिक उपयोगी होता है। इस तरह बालसाहित्य के सही मूल्याकन के लिए कुछ निश्चित सिद्धान्तो का होना बहुत आवश्यक है।

किन्तु जहा तक इन सिद्धान्तो के शास्त्रीय विधानो से आबद्ध होने की बात है वह अधिक उपयोगी नही कही जा सकती। बालसाहित्य वास्तव मे एक

स्वतन्त्र साहित्य-विधा है। जिस प्रकार 'कहानी' या 'निबन्ध' या 'नाटक' के समीक्षा सिद्धान्त एक दूसरे पर लागू नही हो सकते, उसी प्रकार बालसाहित्य के लिए भी साहित्य की समान-विधाओ के सिद्धान्त लागू नहीं हो सकते। बालसाहित्य रचना के मूलाधार बाल-मनोविज्ञान और बाल-रुचिया ही है। अतएव बालसाहित्य के समस्त समीक्षा-सिद्धान्त इन दोनों तत्त्वों को लेकर ही निर्धारित किए जा सकते हैं। यदि बालसाहित्य को प्रौढ साहित्य का बचकाना या सक्षिप्त सस्करण माना जाय तो वह भी असगत होगा। वास्तव मे दोनो के उद्देश्य, रचना-विधान, पाठक-वर्ग आदि पूर्णतया भिन्न है। ऐसी दशा मे बालसाहित्य के स्वतत्र समीक्षा सिद्धान्त होना आवश्यक ही है।

बालसाहित्य की एक बहुत बडी विशेषता उसकी विविधता है। किसी भी विषय पर, कोई भी पुस्तक लिखी गई हो, यदि वह निष्ठापूर्वक बच्चो के लिए ही लिखी गई है तो वह निश्चय ही एक ऐसी कृति होगी जो बच्चों की विविधताभरी रुचियो मे से किसी एक को शात कर सके। एक ही विषय और शीर्षक से कई पुस्तकें विभिन्न रुचि के बच्चो के लिए लिखी जा सकती हैं। वे सब अपने-अपने सिद्धान्तो के अनुरूप ठीक होगी और उन सबका अपने पाठको पर निश्चित प्रभाव भी पडेगा। हालाकि कुछ लोगो का यह विचार है कि बच्चो के लिए नीतिपरक पुस्तकें ही अधिक उपयोगी होती हैं, क्योकि उनसे बच्चे जीवन जीने की कला सीखते है। इसके अतिरिक्त कुछ लोग ऐसी पुस्तको को बच्चो के लिए अच्छी समझते है जो उनका अधिकाधिक ज्ञानवर्धन कर सकें। लेकिन इस कसौटी पर पुस्तकों को देखना सफल बालसाहित्य का मूल्याकन नहीं कहा जा सकता। बालसाहित्य का एक मात्र उद्देश्य न तो ज्ञानवर्धन ही है और न उसकी रचना का मूलाधार इस प्रकार का शुष्क साहित्य ही है। यदि केवल ऐसा ही साहित्य बालसाहित्य के अन्तर्गत स्वीकार किया गया तो बच्चों की अपनी जिज्ञासाए और ज्ञान-पिपासा कुण्ठित होकर रह जाएगी और वे विकसित नही हो सकेंगे। वास्तव मे बालसाहित्य बच्चो को ज्ञानार्जन तथा मनोरजन कराने के साथ, उनकी जिस कल्पनाशक्ति को अधिक उर्वर और शक्तिशाली बनाता है, वही उन्हे जीवन-पथ पर कुशाग्र बुद्धि वाला बनाकर अग्रसर करती है।

अमरीका मे बालसाहित्य आलोचना का आरम्भ सन् १६१८ से हुआ जबकि एन्नी कैरोलमूर ने 'दि बुकमैन' पत्रिका के नवम्बर अक मे लिए बच्चों की पुस्तको पर एक लेख लिखा था। यह लेख तुलनात्मक विवेचन का एक सुन्दर उदाहरण सिद्ध हुआ था।[1] इस लेख से अमरीकी बालसाहित्य के मूल्याकन-कार्य को विशेष बढावा मिला। अनेक लेखक-प्रकाशक, समालोचको के मत-सम्मत पढकर सचेत

---

1. The begining of genuine literary criticism of children's literature dates from this article.

—Meigs, Cornelia : *A Critical History of Children's Literature.* Page 422.

हो गए। उन्होंने युग की माग और बच्चो के हृदय स्पदन को ध्यान मे सुनकर बालसाहित्य रचना आरम्भ की। लेकिन बाल-साहित्य की आलोचना को उसी सीमा तक स्वीकार किया गया, जितनी वह आवश्यक थी। वैसे साहित्य की इस विधा के साथ, इस बात का खतरा सदैव बना रहता है कि उसे सफल कृतियों की अपेक्षा असफल कृतिया आच्छादित कर लें। अक्सर देखा गया है कि पुरानी विचारधारा के लोग नीति-परक पुस्तकें अधिक पसन्द करते हैं और वे बच्चो पर आदर्शों और नीतियों का इतना बडा बोझ लादना चाहते हैं कि बच्चे उनके नीचे दबकर अपनी मौलिकता, कल्पनाशीलता और मुक्त विचारधारा को खो बैठते है। अत यह बात ध्यान देने की है कि बालसाहित्य का सही मूल्याकन ऐसी पुस्तको मे अन्तर स्पष्ट कर सकता है। बालसाहित्य आलोचना द्वारा साधारण और उच्च कोटि की पुस्तको मे स्पष्ट अन्तर प्रस्तुत किया जा सकता है। इससे उच्च कोटि की पुस्तको को चुना भी जा सकता है और यह मौलिक लेखन तथा तदनुरूप चित्र बनाने की प्रेरणा भी दे सकती है। इसलिए सूक्ष्म और सही बालसाहित्य-आलोचना की बहुत आवश्यकता है—जो किसी भी पुस्तक के सबध मे यह स्पष्ट कर सके कि वह क्या है और क्या नही है या क्या होना चाहिए थी ? इसमे पुस्तक के हर रूप का स्पष्ट चित्र सामने आ जाता है।[1] बडो द्वारा जब साधारणतया बच्चो के लिए पुस्तक चुनी जाती है तो वह इसलिए नही पसन्द की जाती कि उसके पीछे एक मौलिक विचारधारा है, उसम कल्पनाशीलता है, बालसाहित्य के अनुरूप वह लिखी गई है—बल्कि इसलिए कि उसकी विषयवस्तु उनकी रुचि के अनुकूल होती है। वास्तव मे किसी पुस्तक की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमे बच्चो के दृष्टिकोण के अनुकूल क्या कुछ कहा गया है। यह आवश्यक नही है कि पुस्तक मे लेखक जो कहना चाहता है वही स्पष्ट हो बल्कि उसे पढने वाला की रुचि क्या है, यह भी स्पष्टतया लिखा जाना चाहिए। 'उदाहरण के लिए एक पुस्तक मे लोमडी की कहानी दी गई है। लेखक का दृष्टिकोण यह है कि वह बच्चो को बताए कि लोमडी बहुत चालाक होती है। किन्तु बाल पाठक इस तथ्य मात्र से सतुष्ट नही होना चाहता। वह तो उन घटनाओ और क्रियाओ को देखना-सुनना चाहता है, जो लोमडी को चालाक सिद्ध करती हैं।''[2] यहा यह स्पष्ट है

1 " ..*that criticism can establish the distinction between the* merely average and genuinely great, that it can stimulate creative writing and creative illustration There is still need for more penetrating and knowledgeable criticism, which estimates the quality of a book in relation to what it is rather than what it is not "

—Meigs, Cornelia *A Critical History of Children's Literature* Page 423

2 To take a simple example If the theme is "the cunning of the fox", children do not want to be told in a story that the fox

कि बच्चे किसी भी पुस्तक में सबसे पहले अपनी रुचि और दृष्टिकोण को लेकर उसको देखते परखते है और यदि वह अनुकूल सिद्ध न हुई तो उसे नही पढते। बच्चो की रुचि कहानी की गत्यात्मकता मे होती है जिसे लेखक प्रस्तुत करता है। अगर कहानी का कथानक अच्छा नही है, भले ही वह अच्छे या बुरे ढग से प्रस्तुत की गई हो, तो वह बच्चो की रुचि अधिक समय तक स्थिर नही रख सकेगी। कई कहानिया एक निश्चित उद्देश्य लेकर लिखी जाती है और उनमे बच्चे रुचि भी लेते हैं—क्योंकि ऐसी पुस्तको के कथानको मे गत्यात्मकता अधिक होती है। लेकिन पुस्तक पूरी हो जाने के बाद, जब उसका रहस्य, कौतूहल और विस्मय समाप्त हो जाता है तो बच्चे उसे दुबारा नही पढते है।

बालसाहित्य की अन्य विधाओ के बारे मे भी यही बातें लागू होती हैं। यदि कथ्य ऐसा है जो बच्चों के मन के कौतूहल और जिज्ञासा के विपरीत है तो पुस्तक असफल सिद्ध होगी। बालसाहित्य आलोचना के यही कुछ मूलभूत तथ्य है जो कि अपना अस्तित्व स्वय सिद्ध करते हैं।

भारतीय बालसाहित्य मे 'आलोचना' जैसी कोई बात पहले नहीं थी। क्या अच्छा है और क्या बुरा है, यह बात लोगों के मस्तिष्क मे अपने-अपने ढग से थी। जो बालसाहित्य लिखा भी गया, उसे किसी ऐसी तीखी आलोचना की चिन्ता भी न थी और न ही ऐसे किन्ही सिद्धान्तो को लेकर बालसाहित्य लिखा गया। एक सामान्य तथ्य यही सामने था कि कहानियो मे बच्चे बहुत रुचि लेते है और यदि कहानी-शैली मे किसी भी विषय को सरल भाषा मे प्रस्तुत कर दिया जाय तो वह बालसाहित्य बन जायगा। काफी दिनों तक केवल पौराणिक, धार्मिक और लोक-कथाए ही बालसाहित्य कहलाती रही। उनमे वही युगों पुरानी मान्यताए, विश्वास और जीवन के मूल्य प्रगट होते थे। बच्चे उन्हे सुनते थे किन्तु बडे होने पर दुनिया का रूप भिन्न पाकर, सारा ज्ञान पुन. नए सन्दर्भ मे प्राप्त करने का प्रयास करते थे। तब वे यह महसूस करते थे कि उन्होंने जो कुछ पढा है वह केवल एक विरासत है, जिसे लेकर रख लेना है। जीवन मे जो कुछ काम आएगा उसे तो उन्होंने अर्जित किया ही नही। और फिर वे स्वभावत. ही पुराने के प्रति विद्रोही और घृणा का भाव लेकर नए की ओर बढते थे।

हिन्दी मे बालसाहित्य के आलोचनात्मक निबन्ध लिखने का आरम्भ, बच्चों के सुप्रसिद्ध कवि श्री निरंकारदेव सेवक ने किया। उनका पहला लेख—'बालसाहित्य रचना,' 'वीणा' के नवम्बर १९५४ के अक मे छपा था। अपने इस लेख मे सेवक जी ने बालसाहित्य के अनेक प्रमुख तत्वो की ओर इगित करते हुए, साहित्य मे बालसाहित्य के महत्त्व को स्थापित किया। उन्होने बालसाहित्य की

---

is a cunning animal. They want to see him showing craft and cunning in the things that happen in the story and so build up their picture of the nature of the fox."

—L. Smith : *The Unreluctant Years* Page 40.

स्थिति स्पष्ट करते हुए लिखा था—"बड़े अपने साहित्य की रचना अपने लिए स्वय करते हैं। वह खुद ही लिखने और खुद पढ़ने-गुनने वाले होते हैं। पर बच्चे अपने सारे साहित्य के लिए परमुखापेक्षी और दूसरों पर निर्भर होते हैं। वह स्वय लिख-पढ तो क्या, ठीक से बोल भी नही पाते। बडे उनके लिए जैसा साहित्य रचकर दे देते है, वैसा पढने के लिए उन्हे बाध्य होना पडता है।"[१] बालसाहित्य रचना की कसौटी बताते हुए सेवक जी ने लिखा, "बड़ो को लिखना है तो उन्हे स्वय बच्चा बनकर बच्चों के ससार मे रह-बसकर लिखना पडेगा। उन्ही के तरीकों को अपनाकर, उनके मनोभावो और कल्पनाओं को अपना बनाना पडेगा। तभी वह श्रेष्ठ बालसाहित्य की रचना कर सकते हैं। अन्यथा जिस प्रकार एक पूजीपति कलाकार की, मजदूरो के दु ख-दर्द को व्यक्त करने वाली रचना मे अनुभूति की वह तीव्रता और अभिव्यक्ति की वह रोचकता नही आ सकती जो एक मजदूरों के साथ उठने-बैठने वाले कलाकार की रचना मे, उसी प्रकार बड़ो की बालसाहित्य रचना मे भी वह सरसता और हृदय-ग्राहिता नही आ सकती जो स्वय बच्चा बन कर लिखने वाले लेखक की रचना मे आ सकती है। बडे होकर भी बच्चा बनने या बच्चों के ससार मे रहने की साधना कोई सरल कार्य नही है।"[२]

इस तरह सेवक जी ने अपने इस लेख मे बालसाहित्य रचना के कई आवश्यक तथ्यो को उद्घाटित करते हुए, हिन्दी मे बालसाहित्य-आलोचना को जन्म दिया। उन्होने बाद मे भी उत्तर प्रदेश सरकार की पत्रिका 'शिक्षा' मे कई लेख लिखे और अपने कार्यो को आगे बढाकर दिशा निर्माण किया। सेवक जी के इन लेखो से एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह भी हुआ कि साहित्य-जगत मे इस विधा का सम्मानित रूप बना। स्वय उन्होने भी उदाहरण के लिए तथा अपनी लगन से प्रेरित होकर सुन्दर बालसाहित्य की रचना की।

सन् १९५८ मे हरिकृष्ण देवसरे ने बच्चों के कवियों पर एक लेखमाला 'बालसखा' मे आरभ की। इसमे बच्चो के लोकप्रिय कवियों का जीवन, बच्चो की कविताओ के प्रति उनके विचार और उनकी कविताओं की समीक्षा प्रस्तुत की गई थी। यह लेखमाला काफी प्रभावशील तथा उपयोगी सिद्ध हुई।

इन्ही दिनो बालसाहित्य-आलोचना की दिशा मे वाराणसी से प्रकाशित दैनिक 'आज' के *साहित्य-मूल्याकन विशेषाकों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।* हर साल जनवरी महीने मे विभिन्न साहित्य-विधाओ मे गत वर्ष हुई प्रगति का मूल्याकन तथा उनकी समीक्षा से सम्बन्धित लेखो का यह विशेषाक बहुत उपयोगी होता था। इधर कई वर्षों से इस तरह के विशेषाक नही निकल रहे हैं। फिर भी १९५६ से इस परम्परा का आरभ हुआ था। १९५७ मे बालसाहित्य की प्रगति का भी लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया था। बालसाहित्य के प्रकाशनो पर

१. वीणा, नवम्बर १९५४, पृष्ठ ३१।
२. वही, पृष्ठ ३२।

समीक्षात्मक लेख १९५९, १९६०, १९६१, १९६२ और १९६३ के श्री हरिकृष्ण देवसरे ने लिखे और उनमे प्रति वर्ष बालसाहित्य की विभिन्न विधाओ के अन्तर्गत प्रकाशित कृतियो का न केवल मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया, बल्कि तुलनात्मक अध्ययन भी दिया गया जो इस विधा की प्रगति मे बहुत सहायक हुए हैं।

बालसाहित्य की पुस्तकों की समीक्षाए भी १९५७ के बाद से ही प्रकाशित होना आरम्भ हुई। इस बीच बालसाहित्य की अनेक कृतिया इतनी तेजी से प्रकाशित हुई कि उनमे अधिकाश व्यावसायिक दृष्टिकोण से लिखी और प्रकाशित की गई सिद्ध हुई। इस कारण इन पुस्तको की समीक्षा-आलोचना और भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई।

बालसाहित्य की आलोचना-सम्बन्धी कार्य अब काफी आगे बढ रहा है। 'पराग' के सम्पादक श्री आनन्दप्रकाश जैन न केवल बच्चो के लिए नव प्रकाशित पुस्तको का परिचय ही देते हैं बल्कि उनकी उपयोगिता पर भी टिप्पणी करते हैं। इसी तरह 'नन्दन,' 'बालभारती,' 'किशोर' आदि बालपत्रिकाए भी बालसाहित्य की स्वस्थ आलोचना प्रस्तुत करती हैं।

इस दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया 'बालभवन' के सचालक डा० प्रभा सहस्रबुद्धे ने। उन्होने 'बालभवन' से अग्रेजी मे बालसाहित्य लेखन पर एक उपयोगी पुस्तिका प्रकाशित की। इसमे 'बालसाहित्य लेखन की कमिया,' 'बालसाहित्य लेखन, चित्रण और प्रकाशन के मानदण्ड,' 'विज्ञान की पुस्तकें और विकासशील बच्चे,' 'भारतीय बच्चो की अध्ययन रुचि,' 'भारतीय भाषाओ मे बच्चो की कथा-पुस्तकें,' 'बालसाहित्य का प्रकाशन व प्रस्तुतीकरण,' 'अध्ययन की रुचि,' 'किशोर बालिकाओ के लिए साहित्य' शीर्षको के अन्तर्गत क्रमश श्री भारतभूषण अग्रवाल, जान फर्ग्युसन, श्रीमती शिवान गोगिया, डी० आर० कालिया, डा० प्रभाकर माचवे, ओम् प्रकाश, श्रीमती सेविल सहस्रबुद्धे और श्रीमती मुरिएल वासी के निबध सग्रहीत हैं। इस पुस्तक के सभी लेखक बालसाहित्य लेखन, प्रकाशन एवं पठन-पाठन से सम्बद्ध हैं। यह सही है कि सभी मानदण्डो को सभी लोग स्वीकार नही कर सकते है—लेकिन बालसाहित्य आलोचना के मानदण्ड निश्चित करने मे यह पुस्तक निश्चय ही सहायक सिद्ध होती है। इसमे विशेष बात यह है कि व्यक्त किए गए विचार, विदेशी बालसाहित्य की गति-प्रगति का अध्ययन-अनुभव करने के पश्चात् भारतीय परिवेश मे आके गए हैं।

भारतीय बालसाहित्य, विशेषकर हिन्दी बालसाहित्य की आलोचना के आधारभूत मानदण्ड निश्चय ही भारतीय परिवेश के रखने पडेंगे। इस प्रबन्ध मे आगे जहा भी बालसाहित्य का मूल्याकन प्रस्तुत किया जाएगा, उसका परिवेश भारतीय ही होगा। किन्तु इस का यह अर्थ कदापि नही है कि सर्वव्यापी बच्चो की जो मूल-प्रवृत्तिया हैं, उनके आधार पर निश्चित किए गए विदेशी बालसाहित्य के समीक्षा-सिद्धान्त ग्राह्य नही होंगे। बच्चो मे अनेक ऐसी समान बातें होती हैं जो रूप-रग,

भाषा आदि की विभिन्नता के बाद भी एक-सी ही होती हैं।[1] इसलिए भारतीय बालसाहित्य में भी उन्हें उस सीमा तक निश्चय ही स्वीकार किया जा सकता है जहां तक वे सर्वव्यापी तथ्यों का उद्घाटन करते हैं और संस्कृति-वैषम्य या भौगोलिक-राजनीतिक अन्तर नहीं लाते।

आज की बालसाहित्य आलोचना में संस्कृतियों, परम्पराओं और भौगोलिक तथा राजनीतिक स्थितियों का प्रभाव प्रत्यक्ष न सही किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वह निश्चय ही प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए जैसा हम पहले भी लिख चुके हैं कि रूस में बालसाहित्य की ऐसी कोई पुस्तक स्वीकार नहीं होगी जो साम्यवाद के विरोध में हो और बच्चों में पूंजीवादी भावना का संचार करे।

यदि गंभीरता से सोचा जाय तो बालसाहित्य आलोचना में इन प्रवृत्तियों तथा विचारधाराओं को कोई महत्त्व नहीं मिलना चाहिए क्योंकि बच्चों को जिस मनोवैज्ञानिक साहित्य और व्यवहार की आवश्यकता होती है वह इनके कारण अपने स्वाभाविक रूप में नहीं मिल पाता है। प्रसन्नता की बात है कि हमारे भारतीय बालसाहित्य की रचना के पीछे ऐसी किसी राजनीतिक या कट्टर-धार्मिक विचारधारा का प्रभाव नहीं है। भारतीय बालसाहित्य की आलोचना के भी मानदण्ड प्रमुख रूप से मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हैं। ये मानदण्ड केवल उसी विचारधारा को स्वीकार करते हैं जो बच्चों में राष्ट्रीयता का भाव जगाए, जो उन्हें जीवन के मूल्यों को पहचानने और उनके साथ जीवन बिताने की कला सिखाए, जो उन्हें आधुनिक तथा भविष्य के संसार का एक ऐसा सुयोग्य नागरिक बना सकें जो अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर किसी से पीछे न रहे।

संक्षेप में बालसाहित्य आलोचना के इन्हीं सिद्धान्तों को स्वीकार करके साहित्य-रचना के वे मानदण्ड निर्मित हो रहे हैं जो भारतीय बालसाहित्य को संसार की किसी भी भाषा के बालसाहित्य के समानान्तर रख सकेंगे। आज का भारतीय बालसाहित्य अनेक अपेक्षाओं को लेकर लिखा जा रहा है और उसका मूल्यांकन भी पूरी सतर्कता से किया जा रहा है।

---

1 As I looked at those pictures, I thought of the vast army of children all over the world, outwardly different in many ways, speaking different languages, wearing different kinds of clothes and yet so very like one another. If you bring them together, they play or quarrel But even their quarrelling is some kind of play. They do not think of differences amongst themselves, differences of class or caste or colour or status.

—Jawaharlal Nehru · From the message written for Children's Number of *Shankar's Weekly*, New Delhi, December 26, 1950.

दूसरा अध्याय

बालसाहित्य और बाल-मनोविज्ञान

बालसाहित्य बाल-मनोविज्ञान का ही परिणाम है। बच्चो के स्वस्थ विकास और उनकी प्रगति के लिए बाल-मनोविज्ञान को समझना, आज के युग मे एक आवश्यकता है।' 'बाल-मनोविज्ञान की आधारभूमि-रहित कोई भी साहित्य-विधा, बच्चो के लिए उपयोगी तथा प्रभावकारी नही बन सकती।'''यह सही है कि आयु के साथ-साथ बच्चो के ज्ञान, रुचि और आदतो मे परिवर्तन होता है, किन्तु साहित्य को इस परिवर्तन के सूक्ष्म-विभाजन के अनुरूप लिखा जाना अत्यन्त कठिन कार्य है। बालसाहित्य की एक ही कृति विभिन्न आयु के बच्चो को अलग-अलग ढग से मनोरजन देती है। इसलिए बालसाहित्य को बच्चों की आयु-सीमाओ मे बाधकर न तो लिखा जा सकता है और न बच्चो को दिया ही जा सकता है।

बालसाहित्य बाल-मनोविज्ञान का ही परिणाम है। यदि बाल-मनोविज्ञान न होता तो बालसाहित्य का जन्म न होता। बच्चो मे पढने और ज्ञानार्जन करने की प्रवृत्ति ने ही उनके लिए एक पृथक् साहित्य विधा को जन्म दिया है—जिसे आज बालसाहित्य कहा जाता है। बालसाहित्य को जो आज स्वतन्त्र अस्तित्व प्राप्त है वह केवल आज की ही वस्तु नही है बल्कि इसे यदि आदिम-मानव के विकास के साथ जोडा जाए तो असगत न होगा। कथा-कहानियो और लोरियो मे मानव की सदा रुचि रही है। उस समय भले ही बच्चो का स्वतन्त्र अस्तित्व न रहा हो, लेकिन वे भावी मानव के रूप मे तो निश्चित ही महत्त्व प्राप्त करते थे। यही महत्व उन्हें उनकी विशिष्ट रुचि के विशिष्ट साहित्य के पठन की ओर भी आकर्षित करता

था, भले ही उस समय उनके लिए पृथक् साहित्य की रचना न होती रही हो। किन्तु जो भी साहित्य उपलब्ध होता था, उसमे कुछ अश निश्चय ही ऐसा होता था जिसे बच्चे ग्रहण करते थे।

युग परिवर्तन के साथ साथ न केवल जीवन जीने की कला मे ही परिवर्तन आया बल्कि उसका प्रभाव बच्चों पर भी पडा। अब से ३०० साल पहले की ही बात ले तो आज की और तब की स्थितियो मे बहुत अन्तर पाते है। आज दुनिया बहुत आगे बढ रही है। आज के बच्चे भी पहले जैसे नहीहोते। उनमे स्वाभाविक रूप से वर्तमान के प्रति आकर्षण, सजगता और जिज्ञासा का भाव होता है। सभव है प्रगतिशील विज्ञान इस दिशा म कोई महत्त्वर्ण निष्कर्ष निकाले। लेकिन जहा तक बौद्धिक और साहित्यिक निष्कर्षो की बात है, तो यह निश्चय ही कहा जा सकता है कि अणु युग के बच्चे पुराने किसी भी युग की तुलना मे अधिक प्रखर और क्रियाशील मस्तिष्क वाले होते है। यही कारण है कि अब बच्चे न केवल साहित्य मे ही बल्कि मानव-शरीर-विज्ञान और सामाजिक-विज्ञान मे भी अध्ययन के एक महत्त्वपूर्ण पात्र बन गए है। लेकिन इन सभी अध्ययनो के पीछे बाल मनोविज्ञान का सबसे अधिक सक्रिय सहयोग है। अनेक मनोवैज्ञानिको ने बच्चो के जीवन, उनकी रुचियो तथा क्रियाओ का विस्तार से अध्ययन किया है और निष्कर्ष निकाले हैं।

आज यह बात सर्वमान्य है कि जो बालक मानसिक रूप से स्वस्थ है वह हर काम करने की क्षमता रखता है—अर्थात् उसे पूर्ण विकसित समझना चाहिए जो कि कुशल और चतुर—दोनो ही होगा। उसमे सकल्प की दृढता होगी, विचारो म स्थिरता होगी और उसका व्यक्तित्व भी विशाल होगा। उसमे जिज्ञासा और ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति का बाहुल्य होगा और यदि ये दोनो प्रवृत्तिया अनुकूल स्थिति मे चली तो वह निश्चय ही अपने जीवन मे सफल सिद्ध होगा। आवश्यकता इसी बात की होती है कि बालक का विकास सही वातावरण मे किया जाए। तब उसे चाहे जिस भी तरह का बनाया जा सकता है और वह अपनी उसी दिशा मे शीर्ष स्थान पर पहुच जायगा। बालक के लिए दरअसल यह आवश्यक नही होता कि उसके लिए सारे साधन आप जुटा दें या उसका हर काम, हर गुत्थी आप सुलझा दें। वह यह पसन्द भी नही करता। उसे तो स्वय कोई भी काम करके देखने की उत्कण्ठा होती है और इसीलिए वह इसमे किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप पसन्द नही करता। वह तो केवल ऐसा वातावरण चाहता है—जिसमे उसकी कल्पना मुक्त होकर विकसित हो सके, जिसमे उसके विचार स्वतत्र होकर प्रकट हो सकें और जिसमे वह निर्भय होकर अपनी विश्लेषणवादी प्रवृत्ति के आधार पर हर काम को स्वय करके देख सके। प्रसिद्ध विचारक और कवि खलील जिब्रान ने लिखा है—

तुम उन्हे अपना प्यार दे सकते हो, लेकिन विचार नही।
क्योकि उनके पास अपने विचार होते हैं।[1]

तुम उनका शरीर बन्द कर सकते हो, लेकिन आत्मा नही ।
क्योंकि उनकी आत्मा आने वाले कल मे निवास करती है ।
उसे तुम नही देख सकते हो, सपनो मे भी नहीं देख सकते ।
तुम उनकी तरह बनने का प्रयत्न कर सकते हो, लेकिन
उन्हे अपनी तरह बनाने की इच्छा मत रखना ।
क्योंकि जीवन पीछे की ओर नही जाता और न बीते हुए कल के साथ रुकना ही है ।[1]

खलील जिब्रान की यह उक्ति आज से कई सौ साल पुरानी होने पर भी जैसे आज के बच्चो के लिए ही लिखी गई है । आज के बच्चो को जो जीवन जीना पड रहा है वह बहुत अर्थो मे उनके बडो द्वारा ही प्रभावित है । बडे लोग उन्हे जैसा बनाना चाहते है, वैसे ही वे बन जाते हैं । इसी कारण श्री नेहरू ने भी बच्चो मे भाषा, जाति, धर्म आदि के भेदभाव की भावना जगाने के लिए उनके माता पिता को ही दोषी ठहराया था ।[2] पर वास्तव मे इसम बच्चो की विवशता होती है । वे आरभ में अपने विचारो तथा भावनाओ के लिए मुक्त वातावरण प्राप्त करने हेतु छटपटाते अवश्य हैं, विद्रोह भी करते हैं, किन्तु जब बडे लोग अपनी गला घोटनेवाली प्रवृत्ति से प्रभावित होकर पुरानी घिसी पिटी मान्यताए उन पर जबरदस्ती लाद देते है तो वे विवश हो जाते हैं । इससे ऐसा भी नही होता कि वे बडो द्वारा लादी गई विचारधारा के अनुकूल ही बन जाए, बल्कि तब वे विकृत स्वरूप लेकर विकसित होते हैं और बडे लोग बाद मे उन्हे 'नाराज पीढी' या 'बिगडे हुए युवक' कहते हैं । आज के युग मे यही बात बहुत बडे पैमाने पर समस्या बनी हुई है । लेकिन इस समस्या की जडें उसी बाल्यावस्था मे हैं, जिसे लोग एक ओर प्यार तो करते हैं किन्तु दूसरी ओर मीठी जहरीली गोलियो के रूप मे अपनी

---

1 You may give them your love but not your thoughts,
For they have their own thoughts,
You may house their bodies but not their souls,
For their souls dwell in the house of tomorrow,
Which you cannot visit, not even in your dreams
You may strive to be like them, but seek not to make them like you
For life goes not backward, nor tarries with yesterday
—KHALIL GIBRAN

2 "They are wiser then their fathers and mothers As they grow up, unfortunately their natural wisdom is often eclipsed by the teaching and behaviour of their elders "
—From a message to the Children's Number of *Shankar's Weekly*, New Delhi, December 26, 1950

पुरानी विचारधाराएं भी उनमे ठूसते जाते हैं जो बाद मे उनके भविष्य को अन्धकारमय बनाती है। बच्चों के विचारो को अंधेरे म भटकाने की इस प्रक्रिया से घातक, उनके लिए और क्या हो सकता है? खलील जिब्रान ने बाल-मनोवृत्ति के इस तथ्य को सभवत भली भांति समझा था और इसीलिए बच्चों के विचारो को मुक्त होकर अभिव्यक्त होने का अवसर प्रदान करने की बात उन्होने कही है। यह बात आज मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी ठीक है। बच्चो मे हर वस्तु के प्रति एक निश्चित धारणा होती है। वे हर वस्तु को अपनी ही दृष्टि से देखकर उसे समझने का प्रयास करते है—यह प्रयास उनकी उस सरल बौद्धिक प्रक्रिया का परिणाम होता है जो अल्पायु के बालकों मे अधिक विकासोन्मुख होती है। वह केवल उसी रूप मे हर वस्तु को स्वीकार करती है, जिसे ग्रहण करने की उसमे क्षमता होती है। यदि इससे अलग हटकरकोई वस्तु उसके समक्ष प्रस्तुत की जाती है तो वह उसे ग्राह्य नही होती। बच्चो मे हरेक बात के लिए अपनी स्वय की एक राय बनाने की प्रवृत्ति होती है। उसे वे अपनी ही विचारधारा के अनुसार सोचते-परखते है—चाहे वह कोई पुस्तक हो या खिलौना। इसीलिए यदि उनके साथ न्याय करना है तो उनके विचारो, विचारो की अभिव्यक्ति और विचारो के नियात्मक रूप को विशेष महत्त्व देते हुए उन्ही के माध्यम से अपनी बात प्रस्तुत करनी होगी। लेकिन इस 'अपनी बात' को भी स्वीकार करने या न करने का उन्हे पूरा अधिकार होता है। उनकी यह स्वीकृति-अस्वीकृति उस भविष्य पर निर्भर होती है, जिसे वे अपने हाथों स्वय बनाते है। इस निर्माण की क्रिया मे उस वातावरण का पूरा प्रभाव होता है,जिसमे वे रहते हैं। इसलिए यदि हम जबरदस्ती उनसे कोई बात मनवाना चाहे तो उसे असभव ही समझना चाहिए, क्योकि उससे उनमे विद्रोही प्रवृत्ति का जन्म होता है। बच्चों मे किसी बात के प्रति स्वीकृति तभी होती है जब वे उससे तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। यह तादात्म्य स्थापना उनकी रुचि और मनोवृत्ति से अनुमोदित होती है। इसी कारण खलील जिब्रान ने कहा है कि उनके शरीर को मार-पीटकर हम भले ही क्षण-भर के लिए अपनी बात मनवा लें, लेकिन वे अपनी अन्तरात्मा से उसे स्वीकार कर लेंगे, इसमें सन्देह है। वे तो उस भविष्य की ओर देखते हैं, जिसकी ओर उनके कदम स्वभावत ही अग्रसर होते हैं। यदि उस मार्ग मे कोई बाधा आती है या अस्वीकार योग्य बात सामने आती है तो उसका तिरस्कार करना बच्चो की स्वाभाविक प्रवृत्ति ही समझना चाहिए। उनका भविष्य बहुत विशाल होता है। उसमे अनेक रगीन सपने, सुख और आनद के क्षण होते हैं और साथ ही सघर्ष की काली घटाओ से भरा आसमान भी होता है, जिसे देखकर भी उन्हे साहस छोडे बिना अग्रसर होना पडता है और तब जीवन मे सफलता प्राप्त होती है। इस रहस्यमय भविष्य के प्रति न तो वास्तव मे वे जानते हैं और न ही उनके 'बडे' जिनका सरक्षण उन्हे प्राप्त होता है। लेकिन चूकि उस भविष्य से सघर्ष उन बच्चो को ही करना होगा, इसलिए आरभ से ही उनकी जिज्ञासा, कौतूहल और प्रश्नसूचक दृष्टि हर वस्तु का विश्लेषण करती चलती है। जीवन

अध्ययन-रुचि, भावनाएं आदि सभी को अलग-अलग करके देखना होगा।[१]

२. बालक एक ऐसे वातावरण मे रहता है जो उसके व्यवहार और विकास को निरन्तर प्रभावित करता रहता है। उसमे उत्तेजना के भाव इसी वातावरण से आते हैं। दूसरे रूप मे वह अपने विकास के तत्त्व उसी वातावरण से ग्रहण करता है।[२]

मनोवैज्ञानिको के अनुसार बालको में सभी कार्य करने की प्रवृत्तिया तो होती हैं, किन्तु उनका स्फुरण स्वाभाविक रूप से नही, बल्कि दूसरो से सीखने पर होता है। भारतीय बाल-मनोवैज्ञानिक श्री लालजी राम शुक्ल के शब्दो मे, "मनुष्य के बच्चे जन्म से असहाय होते हैं और जीवन के उपयोगी कार्य सीखने मे बहुत समय लगाते है, या यो कहा जाय कि मनुष्य जन्म भर सीखता ही रहता है। उसकी सहज क्रियाए तथा मूल-प्रवृत्तिया ऐसी नही होती जिनसे कि उसके जीवन का काम चल सके।"[३] श्री शुक्ल ने अपने इस कथन की पुष्टि के लिए उदाहरण भी प्रस्तुत किया है, "नेपोलियन ने एक बार मनुष्य का स्वाभाविक रूप जानने के लिए बीस बच्चों को, जब वे कुछ महीनो की उम्र के थे, अकेले रखा और इनसे किसी को बोलने की आज्ञा न दी। उनको खिलाया-पिलाया तो जाता था पर उनके सामने कोई बातचीत नही की जाती थी। दो साल के प्रयोग के बाद ज्ञात हुआ कि उनमे से अधिक लडके गूगे हो गए और कुछ का गूगापन सदा के लिए हो गया। यदि

---

1. The child is a spatially seperated unit that functions as an organized whole in the situations he meets This molar characteristic of behaviour needs particular emphasis. In the physical and chemical sciences, units of organization can be broken up into component parts, reassembled, and broken up again. As a result, the laws governing organization can be worked out with such precision and exactness as to give exceptional prediction and control. Since neither the child nor his behaviour can be broken up and reassembled in the literal sense, difficulties arise in scientific child study.
2. The child lives in a context, itself neither simple nor unitary, which continuously affects his behaviour and development. Patterns of stimulation come to him out of this context. And, in turn, by virtue of his own make-up,* he selects from that context.

—John E. Anderson : *Methods of Child Psychology*,
From the book *"Manual of Child Psychology,"*
Editor : L. Carmichael, Page 3.

३. 'बाल-मनोविज्ञान,' पृष्ठ २८।

अनेक वस्तुओं के वारे मे अनेक अटपटे प्रश्न पूछता है। अधिकाश माता-पिता मे ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने का धैर्य नहीं होता। वे यह भूल जाते हैं कि आज वे जो कुछ जानते है, वह उसी ज्ञान का परिणाम है, जिसे अर्जित करना, उन्होंने इसी अवस्था मे आरभ किया था और उनकी ही तरह का व्यवहार उनसे उस अवस्था मे किया गया होता तो वे शायद इस दुनिया के अनेक रहस्यों के बारे मे शून्य रहते। इसलिए जब कभी भी बच्चे ऐसे प्रश्न पूछते है तो उन्हे डाटकर भगाना या चुप नही करना चाहिए। "वाल-मनोविकास की दृष्टि से यह बडी भूल है। बालक तो ससार मे एक आगन्तुक के समान है। वह ससार के पदार्थों के विषय मे कुछ भी नहीं जानता। यदि अभिभावकगण ससार की नवीन वस्तुओ से उसको परिचित नही कराएगे तो वह अपने जीवन को कैसे सफल बनाएगा? वालक की उत्सुकता की प्रवृत्ति ही उसके ज्ञानोपार्जन का साधन है। जब इस प्रवृत्ति का दमन शिशुकाल मे ही किया जाता है तो बालक के ज्ञान-विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।"[१]

उत्सुकता की यह मनोवृत्ति बच्चों मे क्रम से अनेक प्रश्नो को जन्म देती है। पहले बच्चे वस्तु ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रश्न पूछते हैं कि अमुक वस्तु क्या है? उसका नाम क्या है? इससे उन्हे विविध वस्तुओं को पहचानने और उनमे अन्तर करने मे सरलता होती है। इसके वाद वह वस्तु की उपयोगिता की ओर आकर्षित होता है। सबसे पहली जिज्ञासा यह होती है कि अमुक वस्तु खाने योग्य है या नही? यदि नहीं तो फिर उसकी क्या उपयोगिता है? यदि वालक उसका उपयोग करने मे सक्षम होता है तो वह करके भी देखता है अन्यथा केवल जानकारी प्राप्त कर लेता है। और जिज्ञासा की तीसरी स्थिति वह होती है जब बच्चे किसी भी वस्तु का विश्लेपण करते हैं। वे जानना चाहते है कि अमुक वस्तु कैसे वनी, उसमे क्या है और क्या नही है?

इस प्रकार यदि जिज्ञासा निरन्तर शात होती रही और उसे सही दिशा मिलती रही तो वालक का मस्तिष्क ज्ञान-सचय अधिक तीव्र गति से करता है। उत्सुकता की यही प्रवृत्ति किसी भी वालक को प्रतिभाशाली बनाती है।

२. रचनात्मक प्रवृत्ति—रचनात्मक प्रवृत्ति का मूल वास्तव मे ध्वसात्मक प्रवृत्ति मे होता है। तोड-फोड द्वारा बच्चे नुक्सान अवश्य करते हैं, लेकिन वह वास्तव मे उनकी रचनात्मक प्रवृत्ति की पहली सीढी होती है। तोडने या बिगाडने की यही प्रक्रिया वाद मे उस वस्तु को जोडकर बनाने की प्रेरणा देती है। "इस प्रवृत्ति का मुख्य लक्षण पदार्थों मे परिवर्तन करने की चाह है। यह परिवर्तन विघटनात्मक भी हो सकता है, सृष्ट्यात्मक भी।"[२] लेकिन आरभ में ही इस प्रवृत्ति का दमन नही करना चाहिए। इससे उसकी रचनात्मक प्रवृत्ति को आघात

---

१. लालजी राम शुक्ल, 'बाल-मनोविकास', पृष्ठ ४५।

२. वही, पृष्ठ ४८।

हम बालक को प्रयत्न करके भाषा न सिखाए तो वह बोलना भी न सीखे। समाज के सभी आचार-व्यवहार जिनसे कि वह अपना जीवन चला सकता है, सीखने से आते हैं।"[१]

मनुष्य मे सीखने का गुण सबसे अधिक प्रबल होता है। यही कारण है कि बचपन से ही उसकी समस्त प्रवृत्तियो का स्फुरण धीरे-धीरे होता जाता है। लेकिन ये प्रवृत्तिया स्वाभाविक रूप से परिवर्तित भी होती जाती है। इन्ही परिवर्तनशील प्रवृत्तियो के अध्ययन और नियत्रण की विशेष आवश्यकता होती है, अन्यथा बालक गलत दिशा मे विकसित होने लगता है। मानव शरीर में मुख्य रूप से जो प्रवृत्तिया होती हैं, उन्हे तीन भागो मे विभाजित किया गया है—

(१) प्राणरक्षा सम्बन्धी।
(२) सतानोत्पत्ति सम्बन्धी।
(३) समाज-सम्बन्धी।

लेकिन इनमे सभी प्रवृत्तिया बचपन मे नही विकसित होती। इनके जागृत होने का निश्चित समय और वातावरण होता है। यदि इन्हे अनुकूल समय और वातावरण नही मिलता तो ये मर जाती हैं। इसलिए बचपन मे जो प्रमुख प्रवृत्तिया होती है, उनके प्रति सजग होना बालक के स्वस्थ विकास के लिए अनिवार्य है। बालक मे निम्नलिखित प्रवृत्तिया आरभ मे प्रमुख होती है—

१. उत्सुकता
२. रचनात्मक प्रवृत्ति
३ उपार्जन प्रवृत्ति
४. आत्मप्रदर्शन की प्रवृत्ति
५ द्वद्व की प्रवृत्ति
६ विनय की प्रवृत्ति
७. अनुवृत्ति
८ स्पर्धा
९ निर्देश
१०. सहानुभूति

१ उत्सुकता—इस दुनिया के लिए जिस तरह बच्चे नवजात होते है, उसी प्रकार यह दुनिया भी बच्चों के लिए आश्चर्य और कौतूहल का अपरिमित भडार होती है। वह बडा होकर भी इसके रहस्यो को समझने के लिए प्रयत्नशील रहता है, फिर भी अधिकाश बाकी रह जाता है। इस आश्चर्यजनक और कौतूहलमयी दुनिया की प्रत्येक वस्तु को जानने की प्रबल उत्सुकता, बच्चो मे स्वभावत. होती है। आरभ में वह चीजो को उलट-पुलटकर, तोड-फोडकर ही यह उत्सुकता शात कर लेता है। लेकिन जैसे ही उसे भाषा ज्ञान हो जाता है तो वह अपने बडो से

---

१. 'बालमनोविज्ञान' पृष्ठ २६।

अनेक वस्तुओं के बारे मे अनेक अटपटे प्रश्न पूछता है। अधिकाश माता-पिता मे ऐसे प्रश्नो का उत्तर देने का धैर्य नही होता। वे यह भूल जाते हैं कि आज वे जो कुछ जानते है, वह उसी ज्ञान का परिणाम है, जिसे अर्जित करना, उन्होने इसी अवस्था मे आरभ किया था और उनकी ही तरह का व्यवहार उनसे उस अवस्था मे किया गया होता तो वे शायद इस दुनिया के अनेक रहस्यो के बारे मे शून्य रहते। इसलिए जब कभी भी बच्चे ऐसे प्रश्न पूछते है तो उन्हे डाटकर भगाना या चुप नही करना चाहिए। "बाल-मनोविकास की दृष्टि से यह बडी भूल है। बालक तो ससार मे एक आगन्तुक के समान है। वह ससार के पदार्थों के विषय मे कुछ भी नही जानता। यदि अभिभावकगण ससार की नवीन वस्तुओ से उसको परिचित नही कराएगे तो वह अपने जीवन को कैसे सफल बनाएगा? बालक की उत्सुकता की प्रवृत्ति ही उसके ज्ञानोपार्जन का साधन है। जब इस प्रवृत्ति का दमन शिशुकाल मे ही किया जाता है तो बालक के ज्ञान-विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।"[1]

उत्सुकता की यह मनोवृत्ति बच्चो मे क्रम से अनेक प्रश्नो को जन्म देती है। पहले बच्चे वस्तु ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रश्न पूछते हैं कि अमुक वस्तु क्या है? उसका नाम क्या है? इससे उन्हे विविध वस्तुओं को पहचानने और उनमे अन्तर करने मे सरलता होती है। इसके बाद वह वस्तु की उपयोगिता की ओर आकर्षित होता है। सबसे पहली जिज्ञासा यह होती है कि अमुक वस्तु खाने योग्य है या नही? यदि नही तो फिर उसकी क्या उपयोगिता है? यदि बालक उसका उपयोग करने मे सक्षम होता है तो वह करके भी देखता है अन्यथा केवल जानकारी प्राप्त कर लेता है। और जिज्ञासा की तीसरी स्थिति वह होती है जब बच्चे किसी भी वस्तु का विश्लेषण करते हैं। वे जानना चाहते है कि अमुक वस्तु कैसे बनी, उसमे क्या है और क्या नही है?

इस प्रकार यदि जिज्ञासा निरन्तर शात होती रही और उसे सही दिशा मिलती रही तो बालक का मस्तिष्क ज्ञान-सचय अधिक तीव्र गति से करता है। उत्सुकता की यही प्रवृत्ति किसी भी बालक को प्रतिभाशाली बनाती है।

२. रचनात्मक प्रवृत्ति—रचनात्मक प्रवृत्ति का मूल वास्तव मे ध्वसात्मक प्रवृत्ति मे होता है। तोड-फोड द्वारा बच्चे नुकसान अवश्य करते है, लेकिन वह वास्तव मे उनकी रचनात्मक प्रवृत्ति की पहली सीढी होती है। तोडने या बिगाडने की यही प्रक्रिया बाद मे उस वस्तु को जोडकर बनाने की प्रेरणा देती है। "इस प्रवृत्ति का मुख्य लक्षण पदार्थो मे परिवर्तन करने की चाह है। यह परिवर्तन विघटनात्मक भी हो सकता है, सृष्ट्यात्मक भी।"[2] लेकिन आरभ मे ही इस प्रवृत्ति का दमन नही करना चाहिए। इससे उसकी रचनात्मक प्रवृत्ति को आघात

---

१. लालजी राम शुक्ल, 'बाल-मनोविकास', पृष्ठ ४५।
२ वही, पृष्ठ ४८।

पहुचता है। वास्तव मे रचनात्मक प्रवृत्ति और कल्पना का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है। इस प्रवृत्ति से कल्पना और कल्पना द्वारा रचनात्मकता का विकास होता है। मशीनो के अलग-अलग पुर्जे वाले खिलौने, अक्षर जोडकर बनाने वाले खिलौने, बालू के घरौंदे, मिट्टी के घर, गुड्डे-गुडियो की सजावट आदि मे बच्चो की रुचि, इसी प्रवृत्ति का परिणाम होती है। इससे उनमे क्रियाशीलता के साथ-साथ आत्म-विश्वास भी जागृत होता है।

३ उपार्जन की प्रवृत्ति—बच्चे जो कुछ भी देखते हैं, उसे अपना बनाना चाहते हैं। ऐसा वे अपने 'स्व' से प्रेरित होकर करते है। अपनी रुचि, अपने उपयोग की वस्तुओ को प्राप्त करना और उनका सग्रह करने मे बच्चो की स्वाभाविक रुचि होती है। छोटी पेंसिलें, रगीन कागज, टीन के छोटे रगीन डिब्बे, छोटी तस्वीरें आदि बच्चे खूब एकत्र करके रखते है। जैसे-जैसे वे बडे होते जाते है, उनकी रुचि मे परिवर्तन होता जाता है। लेकिन इस प्रवृत्ति को रोकना नही चाहिए। कारण यह कि इसी से प्रभावित होकर वे अपनी वस्तुओ की रक्षा करते है। अगर यह प्रवृत्ति कम हुई तो बालक लापरवाह और गैरजिम्मेदार हो जाते है। किन्तु यदि अधिक हुई तो लालची और कजूस बन जाते हैं। ऐसी दशा मे इस प्रवृत्ति का सामान्य रूप मे ही विकास होने देना ठीक रहता है।

४ आत्मप्रदर्शन की प्रवृत्ति—आत्मप्रदर्शन की प्रवृत्ति प्रत्येक सामाजिक प्राणी मे होती है। वह स्वय जो कुछ है और जो कुछ करता है, उसे अधिकाधिक महत्त्व देने के साथ-साथ उसके प्रति दूसरो का ध्यान भी आकर्षित करना चाहता है। बच्चो मे उनका यह 'स्व' आरभ से ही जागृत होता है। जब बालक इस दुनिया मे आख खोलता है तो वह धीरे-धीरे यह समझने लगता है कि अमुक मेरी मा है, अमुक दूध की शीशी है और इससे मेरी भूख मिटती है—इसका अधिकारी मैं हू। जब बालक को ठीक समय पर दूध मिलता है, उसे नहलाया जाता है या उसे घुमाने ले जाया जाता है तो वह इसलिए प्रसन्न होता है कि उसकी सभी बातो की ओर ध्यान दिया जा रहा है। किन्तु इनमे से कोई भी काम यदि न हुआ तो उसका 'स्व' जागृत होता है। वह विद्रोह करता है और रोता है। उसका यह 'स्व' तभी शान्त होता है जब उसके अनुकूल कार्य सम्पन्न कर दिया जाता है। लेकिन जिन बच्चो के इस 'स्व' को चोट पहुचती है वे बडे होने पर विद्रोही स्वभाव के हो जाते हैं। जिन बच्चो का 'स्व' अर्ध-विकसित होता है वे विक्षिप्त, विक्षुब्ध और उलझन भरे विचारो के होते हैं। उनमे शीघ्र-निर्णय लेने की क्षमता का अभाव होता है।

सभी कहते हैं मैं मा जैसा दिखता हू।
सभी कहते हैं मेरी छवि आण्ट विया जैसी है।
सभी कहते हैं मेरी नाक पिता जैसी है।
पर मैं तो स्वय की तरह दिखना चाहता हू।[1]

'स्व' की यह भावना कई बार बच्चों की अनेक बुराइया निकाल देती है। एक बच्चा डरता था। वह कभी अंधेरे कमरे मे जाने की हिम्मत न करता। लेकिन एक दिन उसका दोस्त जब अधेरे कमरे मे चला गया तो उसकी मा ने कहा, "बेटे, तुम तो डरपोक हो। तुम्हारा दोस्त बहादुर है, इसलिए अधेरे कमरे मे भी चला गया।" उस बच्चे का 'स्व' जागृत हुआ और वह तुरन्त बोला, "मैं तो झूठ ही डरता था। देखो, मैं भी तो जा सकता हू।" और वह अधेरे कमरे मे चला गया। इस तरह उसकी डरने की आदत छूट गई।

बच्चों मे 'स्व' तथा आत्मप्रदर्शन की प्रवृत्ति, समाज मे अपना एक निश्चित स्थान बनाने की भावना से उद्भूत होती है। जब किसी स्थान पर बडे लोग किसी बालक की ओर ध्यान नही देते तो वह तुरन्त अपनी स्थिति व व्यक्तित्व को प्रदर्शित करने के लिए कोई न कोई ऐसा काम करने लगता है, जिससे बडे लोग उसकी ओर आकर्षित हो।

कुछ माता-पिता मे यह आदत होती है कि वे दूसरो के सामने बच्चे की अत्यधिक बुराई करते हैं। इससे बच्चे के 'स्व' तथा 'आत्मसम्मान' को चोट पहुचती है। कुछ लोग बच्चे के ही सामने उसकी अत्यधिक प्रशसा करके उसे बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। इससे भी बालक दिशाहीन हो जाता है।

वास्तव मे इस प्रवृत्ति का पोषण आवश्यक भी है और उसमे पूरी सावधानी रखनी चाहिए। साथ ही 'स्व' तथा आत्मप्रदर्शन के विकास के लिए अनुकूल अवसर भी उपस्थित करते रहना चाहिए।

५. द्वन्द्व की प्रवृत्ति—यह प्रवृत्ति भी बच्चो मे स्वभावतः ही होती है। इस प्रवृत्ति के ही आधार पर बच्चे, बलवान बच्चो से टक्कर लेते है और कमजोर को वश में करते है। यो द्वन्द्व की प्रवृत्ति हानिकारक अधिक है, क्योकि इससे बालक विद्रोही तथा उद्दड हो जाते हैं। लेकिन इसका दमन भी ठीक नही है, क्योकि तब वह झेंपू और निखट्टू बन जायगा। वास्तव मे यही द्वन्द्व की प्रवृत्ति बड़े होने पर साहसी और वीर पुरुष बनाती है। तब यह प्रवृत्ति सामाजिक गुणो मे परिवर्तित हो जाती है। "जिस राष्ट्र मे लडाकू जाति की कमी होती है, वह अपनी स्वतन्त्रता

---

1. Everybody says I look just like my mother,
Everybody says I'm the image of Aunt Bea,
Everybody says my nose is like my father's,
But I want to look like me.

—Dorothy Aldis, *'Everything and Anything'*, Page 89.

की रक्षा नही कर सकता। दूसरी जातिया उसके ऊपर अपना आधिपत्य जमा लेती हैं।"[१] खेल-कूद, साहसिक यात्राओं आदि मे द्वन्द्व की प्रवृत्ति निरन्तर कार्यरत रहती है। इसलिए इस प्रवृत्ति को सही दिशा मे ले जाने का प्रयास करना चाहिए, अन्यथा इसके दुष्परिणाम भी हो सकते हैं।

६ विनय की प्रवृत्ति––यह प्रवृत्ति 'स्व' तथा 'आत्म-प्रदर्शन' की प्रवृत्ति से बिलकुल उल्टी होती है। लेकिन इसका भी होना आवश्यक है। यह प्रवृत्ति बच्चो मे नम्रता तथा दूसरो के प्रति आदर की भावना जगाती है। अपने माता-पिता, गुरुजन तथा बडे लोगो का सम्मान, उनकी आज्ञा-पालन आदि की भावनाओ को इसी प्रवृत्ति से बल मिलता है। अगर यह प्रवृत्ति न हो तो समाज मे कुशलतापूर्वक व्यवहार करना कठिन हो जाए। इसलिए नैतिक और सामाजिक दोनो ही दृष्टियों से विनय की प्रवृत्ति महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक है।

७ अनुकृति––बच्चों को बन्दर भी कहते हैं। यहा 'बन्दर' शब्द बच्चो की, केवल नटखट तथा विश्लेषणवादी भावना का ही परिचय नही देता, अपितु उनकी अनुकरण करने की प्रवृत्ति की ओर भी इंगित करता है। इससे यह भी सिद्ध है कि अनुकरण की प्रवृत्ति, मानव का जन्म-जात गुण है। बच्चो मे यह प्रवृत्ति चरमावस्था पर होती है और इसलिए वे हर बात का अनुकरण करने के लिए तैयार रहते हैं। यो अनुकरण की प्रवृत्ति बुरी भी समझी जाती है और तब 'नकल' शब्द का प्रयोग होता है। लेकिन अनेक ऐसे तथ्य तथा अनुभव अनुकरण द्वारा ही प्राप्त होते हैं, जिनका जीवन मे विशेष महत्त्व होता है। चलना, खाना, पढना-लिखना, कपड़े पहनना आदि ऐसे गुण है जो स्वभावतः अनुकरण के ही माध्यम से आते हैं। अपने 'डैडी' के कमरे मे जाकर चुपचाप कोई मोटी किताब खोल कर बैठ जाना बच्चो का स्वाभाविक गुण है। पूछे जाने पर वे बड़े भोलेपन से कहते हैं—'अब हम डैडी बन गए हैं।' इसी तरह अपने बाबा की छड़ी लेकर झुककर चलना, पान चबाने जैसा मुह चलाना आदि भी इसी अनुकरण की प्रवृत्ति के परिणाम होते हैं।

अनुकरण की प्रवृत्ति ही बच्चो मे नाटकीयता का गुण जगाती है और बडे होने पर उन्हे एक कुशल कलाकार बनाती है। "बालकों मे अच्छी-अच्छी आदतें उनकी इस सहज अनुकरण की प्रवृत्ति द्वारा डाली जा सकती हैं। अपने बदन की सफाई रखना, अपनी सब चीजें ठीक से रखना, समय पर अपना काम करना, मौका पड़ने पर दूसरो को सहायता देना और खाने-पीने के नियम आदि बालक दूसरो को देखकर अपने-आप सीख लेना है। यदि बालक के आसपास का वातावरण ठीक है तो वह जीवन की अनेक उपयोगी बातें सहज मे सीख जाता है, और यदि दूषित है तो उसमे अनेक चरित्रगत दोष आ जाते हैं।"[२] इसलिए अनुकरण की यह प्रवृत्ति बच्चो के जीवन-विकास मे बहुत महत्त्व रखती है। लेकिन यह प्रवृत्ति वही तक

---

१. लालजी राम शुक्ल, 'बाल-मनोविज्ञान,' पृष्ठ ४८-४६।
२. लालजी राम शुक्ल, 'बालमनो विकास,' पृष्ठ ६०।

ठीक होती है, जहा तक वह बालक के स्वावलम्बी बनने मे बाधक नही होती।

८. स्पर्धा—स्पर्धा के मूल मे 'स्व' की भावना अधिक होती है। बच्चे स्पर्धा की भावना के ही आधार पर दूसरे बच्चो की तुलना मे अधिक अच्छा बनने का प्रयास करते है। पढाई, खेल-कूद, रहन-सहन आदि सभी मे, बच्चो मे स्पर्धा की भावना देखी जा सकती है। लेकिन इस स्पर्धा के दो पहलू है। एक तो यह कि बालक, दूसरे बालक के साथ स्पर्धा की भावना अवश्य रखता है, किन्तु उसे किसी प्रकार हानि नही पहुचाता। दूसरा पहलू वह है जब बालक के मन मे स्पर्धा के साथ-साथ ईर्ष्या का भाव जागृत होता है। पहली स्थिति तो स्वस्थ विचारधारा की परिचायक है और उपयोगी है। लेकिन दूसरी स्थिति हानिकारक है। पढने-लिखने मे प्राय स्वस्थ स्पर्धा के उदाहरण मिल जाते है। ईर्ष्यायुक्त स्पर्धा अक्सर खेल-कूद मे होती है, जबकि बच्चे दूसरे साथी को गिरा देते है या मार देते है। इसलिए स्पर्धा की भावना जब तक निश्चित मात्रा मे रहती है, तो वह बालक के विकास मे सहायक होती है। किन्तु जब वह ईर्ष्यायुक्त हो जाती है तो विकास मे बाधक बन जाती है। साथ ही जिन बालकों में स्पर्धा की भावना का अभाव हो, उसे उकसाना चाहिए। इससे बालक चतुर तथा साहसी बनता है। उसकी सामाजिक भावनाए दृढ होती हैं और बुद्धि परिष्कृत होती है।

९. निर्देश—अपने माता-पिता, गुरुजन, बडे भाई आदि जो कुछ कहे, उसे ज्यो का त्यो स्वीकार कर लेना ही निर्देश कहलाता है। यह एक ऐसी क्रिया है, जिसे बच्चे आरम्भ से ही जानते है—'यह करो', 'यह मत करो' आरम्भिक निर्देश होते हैं। ये निर्देश उसी समय तक अक्षरश. स्वीकार होते है, जब तक बालक मे स्वय सोचने तथा निर्णय लेने की शक्ति नही आ जाती। इस शक्ति के आ जाने के बाद वह हर निर्देश की छानबीन करने लग जाता है। तब वह अधिकाश निर्देश उसी व्यक्ति के स्वीकार करता है जिसके प्रति उसके हृदय मे श्रद्धा तथा प्रेम हो या भय हो। उसे जो भी व्यक्ति सर्वाधिक प्रभावित करता है, उसके ही निर्देश वह अधिक मानता है। ये निर्देश वास्तव मे बच्चो का जीवन-पथ सुगम बनाते है, उन्हे अनेक उलझनो से दूर हटाते है—इसलिए इनकी उपयोगिता तो असदिग्ध है। किन्तु ये जिस रूप मे दिए जाते है, वह आज के सन्दर्भ मे विशेष महत्वपूर्ण है। आज के बच्चे कोई भी सीधा निर्देश या उपदेश पसन्द नही करते। यह सीधा तरीका उनमे विद्रोह अधिक जगाता है। इसलिए अब ये अप्रत्यक्ष रूप से दिए जाने पर ही उपयोगी हो सकते है।

१० सहानुभूति—यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जो बालक अपने आसपास के वातावरण से ग्रहण करते हैं। एक बालक, जिसके घर बकरा, मुर्गा आदि कटता है, उन जीवो के प्रति कोई सहानुभूति नही रखेगा। लेकिन इसके ठीक विपरीत जैन धर्म को मानने वाला बालक चीटी जैसे छोटे प्राणी के प्रति भी सहानुभूति रखेगा, फिर भी समाज मे सहानुभूति एक आवश्यक गुण है और इससे बालक के व्यवहार में मिठास आ जाती है। इसलिए इस प्रवृत्ति को नष्ट होने की बजाय,

पूरी तरह विकसित होने के लिए अवसर उपस्थित करना चाहिए।

ये सभी प्रवृत्तिया बाल-मनोविकास की आवश्यक तत्त्व है। इनके ही आधार पर बालक अपने भविष्य-जीवन को निर्मित करता है। इसलिए इन प्रवृत्तियों को समुचित दिशा मे विकसित होने देना ही, बालक के हित मे होता है।

बच्चों में कल्पना-शक्ति का विकास

बाल्यावस्था अर्थात् चार-पाच वर्ष की आयु को प्राप्त करते ही बालक मे मानसिक परिवर्तन होता है। वह अपने आस-पास के वातावरण से तादात्म्य स्थापित करता है और विभिन्न वस्तुओ के प्रति रुचि प्रकट करता है। उन वस्तुओ के प्रति मन मे जागृत होने वाली उत्कण्ठा से प्रेरित होकर वह अनेक प्रश्न पूछता है। इन्ही प्रश्नों और उनके उत्तरों के माध्यम से धीरे-धीरे उसमे कल्पना का प्रादुर्भाव होता है। वह प्राकृतिक उपकरणो से अपने मन की बातें मिलाता है, खुली हवा मे दौड़ता-खेलता है और मन मे अनेक असम्भव बातों को सम्भव बनाकर कल्पना के ताने-बाने बुनता है।

मनोविज्ञान मे 'कल्पना' उस मानसिक प्रक्रिया की सज्ञा बताई गई है जिसके द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान, अपने अतिरजित रूप मे, अनुपस्थिति के समय मे भी अनुभूत होता है। विलियम जेम्स के शब्दो मे, "जब हमे कोई भी इन्द्रिय-ज्ञान होता है तो हमारे मस्तिष्क के स्नायु इस प्रकार प्रभावित हो जाते हैं कि बाह्य पदार्थ के अभाव मे हम उस पदार्थ का चित्र देखने लगते है। हम अपने सस्कारो के आधार पर ही पुराने अनुभव को मानस-पटल पर चित्रित कर सकते है।"[१] लेकिन यहा स्मृति (पुराना अनुभव) और कल्पना मे स्पष्ट अन्तर कर देना ठीक होगा कि स्मृति केवल पुराने अनुभवो को उसी रूप मे दुहराती है, जबकि कल्पना भूत और वर्तमान के अनुभवो के आधार पर नई विचारधारा की सृष्टि करती है। "कल्पना वास्तविक जगत की मौलिकता को बढाती है। जिस व्यक्ति की, जिस प्रकार की कल्पना होती है, उसको उसी प्रकार का ससार दिखाई देता है। हम अपनी कल्पना द्वारा वास्तविक ससार के कष्टों का सरलता से निवारण कर सकते है। दु खों मे रहकर सुखो का आनन्द ले सकते है।"[२] यह कल्पना-शक्ति आरम्भ मे अपनी सीमाओ मे ही होती है। बच्चा अपने आसपास जो कुछ देखता है, अपने माता-पिता से जो कुछ सुनता है, वही उसकी कल्पना के आधार पर

1. Sensation, once experienced, modify the nervous organism, so that copies of them arise again in the mind after the original outward stimulus is gone. No mental copy, however, can arise in the mind of any kind of sensation which has never been directly excited from without.

—James, *Principles of Psychology*, Vol. II, Page 44.

२. लालजी राम शुक्ल, 'बालमनोविकास,' पृष्ठ २१८।

होते हैं। घोडे की सवारी न कर पाने पर, एक मोटे डडे को घोडा बना लेना और मुह से 'हट'''हट'''टिक'''टिक' का स्वर करते हुए सवारी करना; डाक्टर बनकर बीमार गुडिया को देखना; अपनी मौसी या बडी बहन को सुन्दर कपडो मे सजा देखकर परी की कल्पना करना आदि ऐसी ही क्रियाए हैं जो प्राप्त अनुभव के आधार पर उद्भूत कल्पना की उड़ान कही जा सकती है।

वालक की कल्पना-शक्ति का विकास, उसके अनुभव-वृद्धि के साथ स्वाभाविक रूप से होता जाता है। उसका जीवन-परिवेश जैसे-जैसे विकसित होता है, वह उतनी ही विषम परिस्थितियो का सामना करता है। इन परिस्थितियो से प्राप्त अनुभव, उसे भविष्य की ओर अग्रसर होने समय अनेक सकेत देते हैं। वालक इन सकेतो के ही आधार पर मन मे तरह-तरह की कल्पनाए करता है और जब वे मूर्त रूप मे प्रकट हो जाती है, तो वह बहुत खुश होता है।

कहानिया एक ऐसा सशक्त माध्यम है कि वह बच्चो की कल्पनाशक्ति के विकास मे सर्वाधिक योगदान करता है। कहानी सुनते समय वालक के मस्तिष्क मे तत्काल एक दृश्य उभरता है। फिर जैसे-जैसे वह कहानी बढती है, वालक की कल्पना भी उन दृश्यो तथा घटनाओ को चित्रित करती चलती है। इस तरह अनेक अमूर्त और अनदेखी वस्तुओ तथा वातो का, बच्चो के प्रति मन मे एक काल्पनिक रूप बन जाता है। किसी भयानक दैत्य की कहानी सुना कर यदि कुछ बच्चों से कहा जाय कि 'तुम लोग उस दैत्य का चित्र बनाकर दिखाओ कि वह कैसा रहा होगा,' तो वे अपनी कल्पना के पर्दे पर अकित चित्र को तुरन्त कागज पर उतार देगे। इसी प्रकार किसी साहसी वालक की कहानी सुन कर, स्वय वैसी ही वीरता का कार्य करने की बात सोचना या घने बगीचे मे जाकर जगल की कल्पना कर राक्षस से सघर्ष करने की कल्पना करना बहुत स्वाभाविक वात है। पशु-पक्षियो की कहानिया सुनकर उनसे वैसी ही बातें करना तथा अपने कल्पना-जगत के चित्रो को मूर्त रूप देने का प्रयास, कहानियो द्वारा कल्पना-शक्ति का विकास माना गया है।

लेकिन आज के अणु-युग मे, कहानियो का यह प्रभाव कल्पना-शक्ति के विकास मे सहायक, एक सीमा तक ही स्वीकार किया गया है। जीवन के बदलते हुए मूल्यों ने अनेक मनोवैज्ञानिक तथ्यों की परिभाषाओं मे भी परिवर्तन कर दिया है। आठ साल की अवस्था मे पहुचकर वालक के मन मे किसी भी निर्मूल कल्पना का कोई महत्व नही रह जाता। "परी-कथाए निश्चय ही अवास्तविक विचारो की प्रतीक होती हैं। इस आयु के वालक-वालिका को अवास्तविक से नही वल्कि व्यावहारिक वातों से मतलब होता है। उसकी कल्पना उन व्यावहारिक उपलब्धियो से भरी रहती है जिन्हे वह प्राप्त कर सकता है या करेगा। इसलिए वह परी-कथाओ मे अधिक रुचि नही लेता।"[1] आज के युग की यह मान्यता वालक की

---

1 Fairy tales are really symbolic of abstract ideas, and the

कल्पना के स्वरूप को परिवर्तित परिवेश एव सन्दर्भ मे प्रस्तुत करती है। मेरिया माण्टेसरीका भी यही विचार रखती है। उनके अनुसार काल्पनिक और निर्मूल कहानियो द्वारा बालक के कोमल हृदय पर ऐसे सस्कार पड जाते हैं जिनके कारण वे अनेक अवैज्ञानिक बातो पर विश्वास करने लग जाते है। शैशवावस्था के सस्कार स्थायी होते हैं अत बालक के मन से बाद म अवैज्ञानिक बातो को हटाना कठिन हो जाता है। बालक की कल्पना के विकास मे कहानियो का महत्त्व देखते हुए ही प्लेटो ने कहा था कि प्रत्येक घर की प्रौढ महिलाओ को अच्छी से अच्छी कहानिया याद कराई जाए और उन्हे यह आदेश दिए जाए कि वे अपने बच्चो को, वे कहानिया सुनाए। प्लेटो के अनुसार राष्ट्र के अधिकारियो को चाहिए कि बच्चो को ऐसी कहानिया न सुनाने दे जो उनके मन मे अनैतिकता के सस्कार डालें।[१]

अत बच्चो की कल्पना-शक्ति के स्वस्थ तथा सुन्दर विकास के लिए चुनी हुई कहानिया देना ही श्रेयस्कर होगा—जो उन्हे युग के अनुरूप तैयार होने की कल्पना दे सकेंगी।

बच्चो की कल्पना शक्ति के विकास मे कहानियो की तरह अभिनय का भी अपना महत्त्व है। वास्तव मे अभिनय, बालक की रचनात्मक कल्पनाओ को विकसित करने मे विशेष सहायक होता है। "अभिनय का बाह्य जीवन मे बडा महत्त्व है। अभिनय से बालक के ज्ञान की वृद्धि होती है और उसका आत्मविश्वास बढता है। अभिनय के द्वारा उसका अस्पष्ट ज्ञान स्पष्ट हो जाता है और वह किसी घटना की छोटी से छोटी बात पर भी ध्यान देना सीख जाता है। अभिनय द्वारा बालक की रचनात्मक कल्पना उद्देश्यपूर्ण हो जाती है। वह एक निश्चित दृष्टिकोण से विचार करने लगता है और किसी भी कार्य के प्रधान और गौण अश के भेदो को जानने लगता है। अभिनय से बालक के मन मे वास्तविक कल्पना का भेद स्पष्ट हो जाता है। अभिनय करते समय बालक यह जानता है कि वह वास्तविक घटना या पात्र नही है, बल्कि उसके प्रति की गई कल्पना का प्रतिरूप है। अभिनय से बालक के वास्तविक विचारो की वृद्धि होती है, उसकी कल्पना रसमय हो जाती है, इसलिए वह रचनात्मक कार्यो मे प्रवीण हो जाता है।"[२] इस प्रकार स्पष्ट है कि बाल्य-जीवन मे कल्पना एक बहुत विस्तृत आकाश मे विचरण करती है और वह जीवन के अनेक अनुभवो को ग्रहण करती हुई बालक के विकास की प्रक्रिया को सचालित करती है।

(ब) बालसाहित्य रचना में बाल-मनोविज्ञान का योग

मनोवैज्ञानिको का विचार है कि पुस्तकें पढने से बच्चो का विकास अधिक तीव्रता से होता है। इसलिए बच्चो की पढने की रुचि का विकास भी बहुत आवश्यक है। "पढना केवल बौद्धिक अनुभव नही है। उसके द्वारा भावात्मक अनुभवो की भी प्राप्ति होती है।" पढने से हास्य, रुचि, प्रसन्नता, उत्साह और महत्त्वाकाक्षा का विकास होता है, बालक के व्यक्तित्व का विकास होता है और बौद्धिक ज्ञान की भी वृद्धि होती है।[1] जीवन जीने की कला और उसके उद्देश्यो को प्राप्त करना ही मानव का कर्तव्य होता है, किन्तु यदि वह जीवन-व्यवहार की कला नही जानता तो उसे सफलता नही मिलेगी। "दैनिक जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओ की पूर्ति मे जीवन-यापन के स्तर और स्वास्थ्य को उन्नत करने, नागरिकता के विकासशील भाव की प्राप्ति एवम् समस्त लोगो के कल्याण के निमित्त कार्य करने की उत्सुकता, ससार को समझने की व्यापकता प्रदान करने, सास्कृतिक पृष्ठभूमि को व्यापक करने, धार्मिक आवश्यकताओ की सतुष्टि तथा प्रेरणा हेतु पढना बहुत उपयोगी है।"[2] जीवन को आनदमय बनाने मे पुस्तको का सर्वाधिक महत्त्व होता है।

रगबिरगी और आकर्षक पुस्तको के प्रति बचपन से ही स्वाभाविक रुचि होती है। आरभ मे बच्चे केवल उनके चित्रो को ही देख-समझ कर खुश होते हैं। लेकिन जैसे जैसे उन्हे अक्षर और शब्द ज्ञान होता है, वे उनकी ओर निरन्तर आकर्षित होते जाते है। पुस्तकें पढने और देखने के प्रति बच्चो मे एक सहज प्रवृत्ति होती है। जब कभी वे अपने बडो को पुस्तकें पढते देखते हैं तो उनमे भी उसी तरह पुस्तकें पढने की उत्कण्ठा जागृत होती है। इस उत्कण्ठा के पीछे, उनके मन की जिज्ञासा भी अपना उत्तर प्राप्त करने के लिए तैयार रहती है।

इसी शताब्दी मे बालसाहित्य को इतना महत्त्व दिया गया है कि "पहले कभी भी बच्चो के लिए इतनी अधिक छपी हुई पुस्तको का ससार नही रहा। बहुत कम ही ऐसे घर होंगे जहा कोई दैनिक पत्र न आता हो। धीरे-धीरे पत्र-पत्रिकाओ को खरीदने वाले घरो की भी सख्या बढती जाती है। अब बच्चो के अपने अखबार, मासिक, साप्ताहिक भी प्रकाशित होने लगे हैं।······लेकिन आवश्यक तो यह है कि बालक को इस योग्य बनाया जाए कि वह केवल शब्दो को पढे नही बल्कि उन्हे समझे भी। बच्चे ऐसी पुस्तकें पढकर न केवल प्रसन्न होते हैं, बल्कि सतुष्ट भी होते हैं—जिनमे उनके विचारो के अनुकूल बातें होती हैं।"[3]

---

1. Edger Bruce Wesby, *'Teaching of Social Studies'*. Pages 274-75.
2. William S. Grey. *'The Teaching of Reading & Writing.'* Page 245
3. Never before have children been surrounded by so much

इस वातावरण ने बच्चो को मनोवैज्ञानिक ढग से प्रभावित किया है। उनकी पठन-रुचि को जागृत कर, उन्हे अधिकाधिक अध्ययन-प्रिय बनाने की ओर प्रेरित किया है। यही कारण है कि अब से केवल पचास वर्ष पूर्व की स्थिति से ही तुलना करें तो स्पष्ट हो जाता है कि तब की अपेक्षा अब अधिक बालसाहित्य प्रकाशित हो रहा है और उससे अधिक अनुपात मे पढा जा रहा है।

बालसाहित्य के बारे मे स्पष्ट विचारधारा यही है कि बच्चे जिन पुस्तको को पसन्द करते हैं, जिन पुस्तकों को बार-बार पढते हैं—वे ही बालसाहित्य की कसौटी पर खरी उतर सकती हैं। अपनी रुचि की इन पुस्तको मे, बच्चे जीवन के शाश्वत सत्य को पूरी तरह भले ही न पहचान पाए, लेकिन उन्हे इतना अनुमान अवश्य हो जाता है कि वह सत्य इस साहित्य के गर्भ मे ही छिपा है।

पुस्तकों के प्रति बच्चों की रुचि, उनकी प्रवृत्तियो द्वारा सचालित होती है। हर पुस्तक पहले अपने रूप-रग का एक निश्चित प्रभाव बाल-मन पर डालती है। इसके बाद उसका वर्ण्य विषय प्रभावित करता है। कई बार रूप-रग आकर्षक न होने पर अथवा वर्ण्य-विषय रोचक न होने पर भी पुस्तक असफल हो जाती है।

इसलिए बालसाहित्य प्रणयन एक कला है। सभी लेखक बालसाहित्य नही लिख सकते और सभी प्रकाशक बालसाहित्य के प्रकाशक नही बन सकते। बाल-साहित्य का प्रणयन एक ऐसा निष्ठापूर्ण कार्य है, जिसमे यदि जरा भी कमजोरी आती है तो वह निरर्थक सिद्ध हो जाता है। अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक सघ के लखनऊ अधिवेशन मे श्री अखिलेश्वर पाण्डेय ने कहा था, "बालसाहित्य का प्रणयन प्रकाशन सबसे उत्तरदायित्वपूर्ण, सबसे कठिन और सबसे महगा कार्य है। प्रकाशन का यह वह क्षेत्र है, जिसमे प्रकाशक, लेखक और चित्रकार को समान रूप से सजग होना पडता है। इन तीनो कडियो मे किसी के भी कमजोर पडने पर प्रकाशन के हल्के होने का निश्चित खतरा है। बालसाहित्य का प्रकाशन,

---

print, everywhere one turns, the printed wored is to be seen Very few houses these days are without a daily paper of some sort and more and more homes buy weekly magazines Children have *their* own weekly, monthly issues of comics and periodicals ..It is important that a child should be helped to read intelligently and not just to recite words He should understand what he has read and be able to follow simple written instructions .....young children are proud of their ability to read and write and are satisfied with a book in which they may and record their thoughts, one which they can claim as belonging to them, one which bears the stamp of their authorship

—Lilian Hollamby, '*Young Children Living and Learning*', Pages 72, 84, 85.

अन्य प्रकाशनो से भिन्न योजना-बद्धता की भी सबसे अधिक अपेक्षा रखता है। यहा हम यह भी समझ लेना चाहिए कि यह उत्तरदायित्वपूर्णता, कठिनाई, महगापन और योजनाबद्धता की अपेक्षा, सभी एक सूत्र है। बालसाहित्य का प्रकाशन करते समय यह बात बहुत दूर तक भुला देनी पडती है कि आप व्यवसायी है। आपको महसूस करना होगा कि आप पिता है और अपने बच्चो को सस्कार या साचा देने जा रहे है। कम से कम स्वतत्र लोकतत्रीय देश मे, बालसाहित्य के लेखन-प्रकाशन के क्षेत्र म अपनी भावना को इस ऊचाई पर ले जाकर ही सिद्धान्त और नैतिकता की कसौटी पर कोई प्रकाशक खरा उतर सकता है। इतना तो आपको सजग रहना ही है कि आप अपने बनाये साचे मे देश के भावी को गढ रहे हैं।"

बालसाहित्य मे मनोरजन और सरसता उसका पहला गुण है। यही कारण है कि कई नीतिमूलक कहानिया, कविताए तथा नाटक जब तक पुन बच्चो की रुचि और भाषा के अनुकूल न लिखे कहे जाए तब तक वे उपयोगी नही बन पाते। हमारे यहा कम से कम हिन्दी मे तो निश्चय ही, उपदेशात्मक और नीतिपरक कहानियों को बालसाहित्य मे प्राथमिकता दी जाती थी। यह कार्य अब 'बडे लेखकों' का था जो बच्चो पर अपने मन की बातें लादना चाहते थे। उन्ह यह चिन्ता तनिक भी न थी कि बच्चो का मन क्या चाहता है और क्या वे उनकी दी हुई बातें स्वीकार कर रहे है ? चौथे दशक के बालसाहित्य मे 'सदा सच बोलो,' 'घमण्डी का सिर नीचा होता है,' 'झूठ बोलना पाप है,' 'धोखा देना अधर्म है' आदि वाक्य अधिकाश कहानियो के अन्त मे होना अनिवार्य माना जाता था। ऐसी कहानियों को पढते समय बच्चो की वही स्थिति होती थी, जो स्वादिष्ट भोजन के अन्तिम ग्रास मे किरकिरापन आ जाने पर होती है। आज भी ऐसी कहानियो को पढते समय बच्चो की यही स्थिति होती है। और इसलिए प्रत्यक्ष प्रभाव डालने वाली उपदेशात्मक तथा नीतिपरक कहानिया अधिक प्रभाव नही डाल पाती। उदाहरण के लिए एक शुष्क नीतिपरक, उपदेशात्मक कथा इस प्रकार है—"मैं घास का तिनका हू। छोटा सा, दुबला-पतला। फूक दो तो जाने कितनी दूर जा गिरू। दुनिया मे मेरी कोई कीमत नही। इसलिए लोग कमजोर आदमी से मेरी तुलना करते हुए कहते है—अरे, उसमे क्या रखा है ? तिनके की तरह कमजोर है—चाहे जब मुट्ठी मे रखकर मसल दो। काम तमाम हो जाएगा।

"मैं जरा सी हवा मे उडकर कही का कही पहुच जाता हू।—सडक पर, गली-कूचा मे, गौशाला मे, खेतो मे, बगीचो मे। आप मुझे कहीं भी पा सकते हैं। मुझ अनाथ का कही कोई ठिकाना नही। चाहे जो मुझे लातो-जूतो से रौंदता है, ठुकराता रहता है। सचमुच, इस दुनिया मे कमजोर, दीन, अनाथ की कोई पूछ नही होती।

"मैं घास का तिनका हू। नन्हा-सा, दुबला पतला घास का तिनका। यह सत्य है कि मैं एकदम तुच्छ हू। परन्तु मेल से बडा लाभ होता है। जब हम अनेक तिनके

मिलते हैं तो एक रस्सी बन जाती है। उस रस्सी की कीमत होने लगती है। कई रस्सियो को मिलाकर एक मोटा रस्सा बना लिया जाता है। यह रस्सा ऐसा मजबूत होता है कि उससे हाथी के समान पहाड से जानवर को भी बडी सरलता से बाधा जा सकता है।

'मैं तिनका हू, तुच्छ हू, कमजोर हू, फिर भी मेल से बलवान बन जाता हू। इसलिए बच्चो, तुम भी मिलकर रहो, मेल से काम लो।"[१]

यह कहानी आठ साल तक की आयु के बच्चो के लिए लिखी गई है। कहानी का वर्ण्य-विषय उपयोगी तथा बच्चो के लिए रोचक होने पर भी, लेखक बालमन पर प्रभाव डालने मे असफल है। वास्तव मे प्रयास किया गया है—सरल भाषा और छोटे-छोटे वाक्यों मे, बडी-बडी बातो को कहने का। इस कारण कहानी की रोचकता तो कम हो ही गई है, उसमे कहानी-तत्त्व भी समाप्त हो गया है। एक तिनका अपने सघर्ष की कहानी जितने रोचक और रहस्यात्मक ढग से सुना सकता है, उसकी ओर लेखक का प्रयास नही है, यही कारण है कि पूरी कहानी मे उपदेशो की भरमार हो गई है और उसमे रोचकता तथा कौतूहल का अभाव है। और सबसे अन्त मे दिए गए वाक्य ऐसे है—जैसे बालक को मुह मे मिठाई देकर उसे इन्जेक्शन लगा दिया गया हो—जिससे वह रोए नही। भला ऐसी दशा मे बालक के मन मे कहानी का प्रभाव पडना कैसे सभव हो सकता है।

बच्चो के मन मे ससार के प्रति जो सहज जिज्ञासा और कौतूहल का भाव होता है, वह पहले सतुष्ट होना चाहता है। यह सतुष्टि बिना मनोरजन के उसी तरह सभव नही होती, जिस प्रकार सूखी रोटी का निगलना। लेखक से बाल-साहित्य रचना मे यही आशा की जाती है कि वह अपना उद्देश्य प्रमुख तथा प्रत्यक्ष न होने देगा। बल्कि उसे सम्पूर्ण कथानक मे इस तरह फैला देगा कि बाल-मन पर अप्रत्यक्ष रूप से कुल मिलाकर वही प्रभाव पडे जो लेखक चाहता है।

कई पुस्तको मे वर्ण्य-विषय इस प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है, जिससे यह आभास मिलता है कि बच्चे कुछ नही जानते और पुस्तक का लेखक ही सब कुछ जानता है। ऐसी दशा म ज्ञान का पिटारा बच्चो के मस्तिष्क पर रखने का प्रयत्न होता है। शायद ऐसी पुस्तको के ही प्रति बचपन मे उठने वाली भावना को ज्या पॉल सार्त्र ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है, "विशाल सर्पों की तरह लबे और डरावने वाक्य, अपने अक्षरो और शब्दाशो के साथ कमरे म चक्कर लगाने लगते थे। अपरिचित शब्दा से निर्मित उनकी फुफकार मुझे अपने चारा ओर सुनाई देने लगती थी। वे इतने आत्मलीन रहते थे कि उन्हे मेरी कोई परवाह न होती थी। कभी कभी वे समझ मे आने से पहले ही गायब हो जाते थे। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि मैं उन्हे उनकी समाप्ति के पहले ही समझ लेता था और वे, अपना एक अर्धविराम भी मुझे दिये बिना, धीरे धीरे रेंगते हुए, अपने बिल मे खो जाते

१ घास का तिनका, 'मेरी भी सुनो' पुस्तक से। लेखक : नर्मदाप्रसाद खरे, पृष्ठ ९-१०।

थे। जाहिर था कि वे शब्द मेरे लिए नही होते थे।"[१] इसीलिए बालसाहित्य लेखक की सफलता का रहस्य यही है कि वह बच्चो के लिए जो कुछ लिखे, उसम उनकी ज्ञान की सीमा और स्तर का ध्यान रखकर उसके साथ-साथ चले। वह बच्चो की दुनिया को देखे-समझे, उसके प्रति बच्चा की धारणाओ को जानने का प्रयास करे, बच्चो की समस्याओ, रुचियो तथा क्रियाओ का अध्ययन करे—तो वह बाल-साहित्य निश्चय ही सफल तथा बाल-मनोविज्ञान के अनुकूल होगा।

बालको की जिज्ञासा इतनी बलवती और कल्पना इतनी प्रखर एव विस्तृत होती है कि उनकी भावना, विश्व के हर जीवन को छूती है और निरन्तर कुछ जानना चाहती है। बच्चो की रुचिया भी, बच्चो की जिज्ञासा की भाति विस्तृत होती हैं। यद्यपि उनका मानसिक विकास प्रौढो की भाति परिपक्व नही होता।

बच्चे स्वभाव से ही समझदार और सवेदनशील होते हैं। फिर भी उन्हें भावनात्मक रूप से उचित सरक्षण की आवश्यकता होती है। इसीलिए उन्हे अपने परिवेश से सम्बन्धित वस्तुए ही रुचिकर लगती हैं। उनकी कल्पना इतनी उर्वर होती है कि थोडे से सकेतो के आधार पर ही कहानी के पात्रो मे तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। उनमे क्रियाशीलता का बाहुल्य होता है और साहसिक कार्यो तथा खेल-कूद मे उन्हे बहुत आनन्द आता है।

तीन वर्ष की आयु तक बच्चे घर और पडोस की चीजो से परिचित हो जाते हैं। इस आयु से ६ वर्ष तक की आयु तक बच्चो को ऐसी कहानिया बहुत अच्छी लगती हैं, जिनमे घरेलू वातावरण अकित होता है। लोभी कुत्ते के मुह से रोटी गिर जाने वाली कथा, चूहो की बारात और बिल्ली की शादी से सम्बन्धित कथाए, कौआ, तोता तथा कोयल जैसे पक्षियो की कहानिया उनके मन को लुभाती हैं। इनसे बच्चे तादात्म्य स्थापित कर लेते है। बिल्ली और चूहे की शादी की कहानी सुनते समय बारात या दावत का वर्णन आने पर, किसी देखी हुई बारात या दावत के दृश्य से सामजस्य स्थापित कर लेना बच्चो के लिए बहुत सरल होता है। कल्पना की यह भाव भूमि जैसे जैसे सुदृढ होती जाती है, बच्चो की जिज्ञासा भी उसी के साथ बढती जाती है। छ वर्ष की अवस्था पार करने पर बच्चो की मानसिक अवस्था मे परिवर्तन होता है। इस आयु तक पहुचने मे, उनमे अपने घरेलू वातावरण से बाहर निकलकर देखने और जानने की इच्छा बलवती हो उठती है। वे घरेलू वातावरण की वस्तुओ से ही नही तृप्त होते बल्कि बाहरी दुनिया की वस्तुए भी उन्हे आकर्षित करती हैं। जगली जीव-जन्तु, प्रकृति के उपकरण तथा परियो की कहानिया इस अवस्था मे विशेष रूप से आकर्षित करती हैं। 'पचतत्र' की कहानिया इस आयु के बच्चो को रुचिकर लगने लगती हैं। वास्तव मे यही वह अवस्था है जब बालक शैशव से निकल कर बाल्यावस्था मे प्रवेश करता है। उसके मन मे

१ 'वर्ड्स', ज्या पॉल सार्त्र की आत्मकथा का पहला भाग। हिन्दी अनुवाद—हरिमोहन शर्मा, 'कादम्बिनी,' जून १९६६, पृष्ठ १५५।

जगली जीवो—शेर, भालू, लोमडी, बन्दर आदि के बारे मे तरह-तरह की कल्पनाएं होती है। वे इनके बारे मे कहानिया सुनते समय इसलिए विशेष रूप से उत्सुक रहते है कि उन्हे इन अजीब जीव-जन्तुओ के बारे मे जानकारी मिलती है। ये कहानिया उन जन्तुओ बारे मे के मन मे धारणाए बनाती है। लोमडी का स्वार्थी और चालाक होना, कहानियो द्वारा ही सिद्ध होता है। इसलिए जब घमण्ड से चूर लोमडी अपना स्वार्थ सिद्ध करने मे असफल हो जाती है और कुत्ते या भेडिये उसे मार डालते हैं तो बच्चे बहुत खुश होते हैं। बन्दर की बुद्धिमानी के बारे मे बच्चो के मन मे एक निश्चित धारणा उसी समय बनती है, जब वह मगर को चकमा देता है कि कलेजा तो किनारे पर लगे पेड पर टगा है, और इस तरह अपनी जान बचा लेता है। परियो के बारे म भी बच्चो के मन मे बडी सौन्दर्यमयी और कौतूहलपूर्ण कल्पनाए होती हैं। वे परियो के साथ खेलने तथा घूमने के लिए बहुत उत्सुक होते हैं। ज्या पाल सार्त्र ने अपनी आत्मकथा मे इसी अवस्था की अनुभूति को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "उन दिना मैं पढ भी नही सकता था, पर इससे क्या हुआ ? मेरी भी किताब हो यह कामना मेरे मन मे तब भी थी। भले ही आप इस कासना को मिथ्या वैभव-प्रेम मान लें। लिहाजा मेरे लिए कहानियो की किताबें लाई गईं। मैंने उनमे से दो को चुनकर सूघा और अपनी मा की गोद मे फेंक दिया। मा ने उन किताबो को देखकर पूछा, 'तो तुम परियो की कहानिया सुनना चाहते हो ?'

"मैंने साश्चर्य पूछा, 'परिया ? क्या इन किताबो के अन्दर परिया हैं ?'

'कहानी सुनी तो वही परिचित कहानी निकली जो मेरी मा मुझे नहलाते समय कई बार सुना चुकी थी। यह कहानी सुनते समय मैं एक ऐसे लोक मे पहुच जाता था जहा हम दोनो और परियो के अलावा कोई और न होता था।"[१] अपने अनेक असभव कार्यो को सभव बनाने की बात बच्चे परियो के ही माध्यम से सोचते रहते है। लेकिन बालको की कल्पना-शक्ति जैसे-जैसे और अधिक विकसित होती जाती है, वे निराधार कल्पनाओ को छोडकर यथार्थ की ओर अधिक प्रवृत्त होने लगते है। उन्हे जब यह पता हो जाता है कि परी कुछ नही होती है, जो कुछ करना है वह स्वय ही करेगे, तो वे अधिक क्रियाशील तथा साहसिक हो जाते हैं। वे कठिनाइयो को झेलने और कठिन कार्यो को करने मे विशेष रुचि लेते हैं। 'सिन्दबाद जहाजी', 'राबिनसन क्रूसो', 'डेविड कापरफील्ड' आदि जैसी कहानिया उन्हें बहुत अच्छी लगती हैं। इन कहानियो के माध्यम से उनका न केवल कौतूहलपूर्ण मनोरजन ही होता है, बल्कि वे जीवन के सघर्षो तथा कठिनाइयो से जूझने के लिए साहस का मूलमत्र भी अनजाने मे ही ग्रहण कर लेते हैं। वे ऐसी कहानिया पढते सुनते समय स्वय को राबिनसन क्रूसो या डेविड कापरफील्ड समझ बैठते हैं। इस अवस्था को पार करते ही साहस और वीरता की कहानियो मे भी बच्चे

---

१ 'वर्ड्स'—ज्या पॉल सार्त्र की आत्मकथा का पहला भाग, हिन्दी अनुवाद—हरिमोहन शर्मा, 'कादम्बिनी' जून, १९६६, पृष्ठ १५४-१५५।

रुचि लेने लगते हैं। साहसिक और वीर पात्रों की ऐतिहासिक और काल्पनिक—दोनो तरह की कहानियो मे उन्हे विशेष आनन्द मिलता है। वीर शिवाजी की माता जीजाबाई ने उन्हें बचपन मे ऐसी ही कहानिया सुनाई थी और उन कहानियो के प्रभाव तथा सस्कारो ने ही उन्ह इतना कर्मठ और साहसी योद्धा बनाया। नैतिक बल को बढावा देने वाली कहानिया भी इसी समय उपयोगी होती हैं। आविष्कारो, नेताओ, तथा महान पुरुषो की जीवन-कथाए, अपने बालपाठको के सामने एक स्वरूप प्रस्तुत करती हैं, जिससे प्रेरित होकर ही वे अपने भविष्य की कल्पना करते हैं।

इस प्रकार बच्चो के लिए कहानिया उनके मानसिक विकास के लिए उपयोगी तो हैं ही, किन्तु यदि इस मनोवैज्ञानिक आधारभूमि को ध्यान म रखकर कहानिया लिखी जाए ता वे अधिक प्रभावकारी सिद्ध हो सकती है। ज्या पॉल सार्त्र ने पुस्तको तथा कहानियों के मनोवैज्ञानिक प्रभाव को स्पष्ट करते हुए लिखा है—' मेरी रुचि उन पुस्तको म, जो मेरी उम्र से कही अधिक के पाठको के लिए थी, देखकर मेरी मा न मेरे लिए साहसिक कथाओ से पूर्ण सचित्र पुस्तकें खरीदी। मैं उन्हे इतने शौक से पढता था कि पुस्तक खोलते ही उसके अलावा सब कुछ भूल जाता था। क्या उस अनुभव को पढाई कह सकते हैं ? नही, वह भावोत्कर्ष था। उस अचेतावस्था मे मेरे सामने जो नयी दुनिया प्रकट होती थी, वह शुरु मे मुझे अपनी सुपरिचित दुनिया से कही अधिक विक्षोभकारी लगती थी। उसमे लूट-मार और हत्याए थीं तथा सर्वत्र खून की नदिया बहती दिखाई पडती थीं। देश-देश के अत्याचारी लोग बूढो की नृशस हत्या कर उनकी जवान लडकियो को अपने साथ ले जात थे। बुराई अपने चरम रूप मे मेरे सामने उपस्थित होती थी। परन्तु अगले ही अध्याय मे पापी चरित्र भगवान की शरण मे जाकर अपन कुकृत्यो के लिए क्षमा माग लेता था और स्थिति पूर्ववत् हो जाती थी। भलाई की बुराई पर विजय होने के बाद पापी का दु खद अन्त भी सामने आता था। इन पुस्तको स मुझे एक लाभ हुआ। मुझे वह चीज मिल गई जिसकी मुझे तलाश थी—मेरा शत्रु, जो अन्त मे,मुझे कोई हानि नही पहुचा सकता था, क्योकि उसकी सारी कुटिल योजनाए अन्त म व्यर्थ सिद्ध होती थी। दूसरी ओर ये वीर और पुण्यात्मा लोग जिनके पराक्रम से उनके राजा (या रानी) को एक नया राज्य मिल जाता था, जो नए-नए आविष्कार कर अपने देश के ज्ञान और कला भडार को समृद्ध करत थे। उन्हें उच्च पदो, सम्मानो आदि से पुरस्कृत किया जाता था। व विपदा म फसी सुन्दरियो के प्राण बचाकर उनसे विवाह करते थे। इन कहानियो का पढकर, मरे मन म भी मनोरथ सृष्टि करने की सामर्थ्य जाग्रत हुई। मैं आशान्वित हुआ।'[1] इसी मनोवैज्ञानिक प्रभाव ने कई बच्चो को महान लेखक, महान नेता

---

१ 'वर्ड् स'—ज्या पॉल सार्त्र की आत्मकथा का पहला भाग, हिन्दी अनुवाद —हरिमोहन शर्मा, 'कादम्बिनी', जून १९६६, पृ० १५९-१६०।

और महान आविष्कारक बनाने में सहायता की है। स्वयं ज्यां पॉल सार्त्र एक उदाहरण हैं। इसी तरह महात्मा गांधी, नेहरू जैसे नेता तथा जेम्सवाट, डाल्टन जैसे वैज्ञानिक भी हैं, जिन्होंने भविष्य को मनोवैज्ञानिक साहित्य का माध्यम बनाकर निर्मित किया।

अनुकरण की प्रवृत्ति बच्चों में आरंभ से ही होती है। इसी की सहायता से वे जीवन के बहुत-से उपयोगी कार्य सीखते हैं। बच्चों के लिए नाटकों की उपयोगिता भी इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य से पुष्ट है। प्रसिद्ध एकांकीकार डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में, "मैं समझता हूं कि परिवार और समाज में सबसे बड़ी आवश्यकता नाटकों की, बच्चों के लिए ही है। इसलिए कि बच्चे कुतूहलप्रिय होते हैं। इसलिए भी कि बच्चे जो नई चीज देखते हैं उसमें उनकी रागात्मक प्रवृत्ति रमण करने लगती है। उदाहरण के लिए वे आकाश में इन्द्रधनुष देखते हैं तो उनके पीछे दीवाने हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि उनके मानस का बाह्य जगत सबसे बड़ा अधिकारी है। जिस समय बच्चे कुछ ज्ञान-संचय के लिए प्रवृत्त होते हैं, उस समय जितनी रंगीनी, जितनी विचित्रता, जितना कौतुक आप बाह्य जीवन में उनके समक्ष प्रस्तुत कर सकेंगे, उतना ही अधिक उनके जीवन को प्रभावित कर सकेंगे, उतना ही अधिक वे अपने भविष्य-जीवन के निर्माण के लिए सामग्री प्राप्त कर सकेंगे। यह कार्य नाटकों के माध्यम से सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है।'[1] नाटकों के द्वारा बच्चों के समक्ष अनेक घटनाएं मूर्त रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं। नाटक देखते समय बच्चों का प्रत्यक्ष ज्ञान बहुत जागृत होता है और इस कारण इन घटनाओं का बाल मन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में 'हरिश्चन्द्र' नाटक के प्रभाव को स्वीकार करते हुए बाल मन की इस सूक्ष्म प्रवृत्ति का सुन्दर उदाहरण दिया है। उन्होंने लिखा है, "यह नाटक देखने से मेरी तृप्ति ही न होती थी। उसे बार-बार देखने को जी चाहता, पर बार-बार देखने कौन देता। किन्तु अपने मन में इस नाटक को सैकड़ों बार दोहराया होगा। हरिश्चन्द्र के सपने आया करते। 'हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी सब क्यों नहीं हो जाते ?' यही धुन रहती। हरिश्चन्द्र पर जैसी विपत्तियां पड़ी थीं, वैसी विपत्तियों को भोगना और सत्य का पालन करना ही वास्तविक सत्य है। मैंने तो मान लिया था कि नाटक में लिखी विपदाएं हरिश्चन्द्र पर अवश्य पड़ी होंगी। हरिश्चन्द्र का दुःख देखकर, उसे याद करके, मैं खूब रोया हूं। आज मेरी बुद्धि समझती है कि हरिश्चन्द्र कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं थे। फिर भी मेरे मन में हरिश्चन्द्र और श्रवण आज भी जीवित हैं।'[2] नाटकों का विशेष महत्त्व इसीलिए माना गया है कि उनके द्वारा मनोरंजन तथा जीवन की

---

१ डा० रामकुमार वर्मा से २७ अप्रैल, १९६७ को लेखक द्वारा लिए गए इण्टरव्यू से।

२ सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा—महात्मा गांधी, पृष्ठ २०।

सम्यक् अभिव्यक्ति साथ-साथ हो सकती है। श्री सीताराम चतुर्वेदी ने बच्चो के लिए नाटको की मनोवैज्ञानिक उपयोगिता वताते हुए उनके तीन मुख्य उद्देश्य वताए हैं—

१. अवसर के अनुकूल आचरण करना सिखाना।
२. मानव-स्वभाव और मानव-चरित्र का अध्ययन कराना।
३. सम्यक् रीति से उच्चारण करने, बोलने, अभिनय करने तथा भावो को व्यक्त करने की कला का ज्ञान कराना।[1]

वच्चो मे कल्पना और भावना के बाहुल्य के कारण नाटको का महत्त्व बढ जाता है और उपर्युक्त उद्देश्य सरलता से पूरे हो सकते हैं। नाटको के प्रति बच्चो की इसी स्वाभाविक रुचि का ही परिणाम है कि विदेशो मे वच्चों के लिए पृथक् थियेटर बने हैं और अनेक नाटक, शैली आदि सभी अपनी विशेषता लिए हुए होते है।

गीतों मे सगीतात्मकता तथा गेयता होने के कारण बच्चे उन्हे बहुत जल्दी याद कर लेते है। छोटे-छोटे बच्चे अपने आसपास के पात्रो से सम्बन्धित छोटे गीत बहुत पसद करते हैं। वे इन्हें सरलता से कण्ठस्थ कर, खेल-खेल मे दुहराते है। कई वार बच्चे अपने उन पात्रो को देखकर ही ज़ोर-ज़ोर से वह गीत गाने लगते है। उदाहरण के लिए—

भूरा कुत्ता भागा आया,
नदी किनारे रुपया पाया।
कोट ले आया ढीला ढाला,
पैजामा नीले रग वाला।
छडी घुमाता, पान चवाता,
अपने बूटो को चमकाता।
मोटा चश्मा खूब लगाया,
कुत्ते ने क्या ठाठ वनाया।

इसम एक कुत्ते के ठाठ-बाट का उल्लेख बडे रोचक ढग से प्रस्तुत है। वाल रुचि के अनुकूल कही गई इसकी बातें ही, बच्चो को इसे कठस्थ करने मे मदद करती है। नदी किनारे अचानक रुपया पा जाने पर ढीला-ढाला कोट और नीले रग का पाजामा ले आना, बाल-बुद्धि की उस कल्पना का परिचय देती है, जो परियो जैसी चमत्कारी वातो को सुनकर जन्म लेती है। इसके बाद एक ठाठदार बाबू की कल्पना करते हुए कि वह किस तरह चमकते हुए बूट पहनकर, पान चवाते और छडी घुमाते हुए चलते हैं—वाल-बुद्धि कुत्ते की आंखों पर ऐनक लगाकर उसका निराला ठाठ प्रस्तुत कर देती है।

कविताओ तथा गीतों की सगीतात्मकता तथा भावपूर्णता ही बच्चो को अन्य

---

१. 'भाषा की शिक्षा,' श्री सीताराम चतुर्वेदी, पृष्ठ १८३।

विषयों की ओर आकर्षित करती है। गीतों में कही गई कहानियों को वे विशेष रुचि से सुनते और याद करते हैं। स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त की कविता 'रगा मियार' काफी दिनों तक लोकप्रिय रही और बच्चे उसे खूब पसद करते थे।

जब बच्चे कल्पना जगत से निकलकर यथार्थ मे प्रवेश करते हैं तो उन्हे देश-प्रेम, प्रकृति प्रेम, ईश्वर वन्दना तथा अन्य सामाजिक विषयो से सम्बद्ध कविताएँ अधिक अच्छी लगती हैं। स्वर्गीय गोपालसिंह नेपाली की 'सरिता' कविता आज भी बच्चों को सरलता से कण्ठस्थ हो जाती है और वे इसे पढते समय सरिता-सम्बन्धी अपने प्रत्यक्ष ज्ञान से तादात्म्य स्थापित कर आनन्दित हो उठते हैं—

यह लघु सरिता का बहता जल,
कितना शीतल कितना निर्मल।
हिमगिरि के हिम से निकल-निकल,
यह विमल दूध-सा हिम का जल।
रखता है तन मे इतना बल।
यह लघु सरिता का बहता जल।
निर्मल जल की यह तेज धार,
करके कितनी शृखला पार।
बहती रहती है लगातार,
गिरती उठती है बार-बार।
करता है जगल मे मगल,
यह लघु सरिता का बहता जल।
कितना कोमल कितना वत्सल,
रे जननी का वह अन्तस्तल।
जिसका यह शीतल करुणा जल,
बहता रहता युग-युग अविरल।
गगा यमुना सरयू निर्मल,
यह लघु सरिता का बहता जल।

इस कविता मे नदी के स्रोत, उसकी शक्ति, उसके आकार स्वरूप, उसके यात्रा-पथ, तथा आध्यात्मिक महत्त्व आदि को कवि ने बडी कुशलता से प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि इसकी एक एक पक्ति पढते समय बालक के अनुभव पटल पर एक चित्र स्वत ही अकित हो जाता है जो अन्त मे कविता का अमिट प्रभाव उसके मस्तिष्क पर छोड जाता है।

पडित रामनरेश त्रिपाठी की 'प्रार्थना' आज भी बच्चो मे आध्यात्मिक भावना का स्वत ही सचार करती है और बच्चे उसे याद कर दुहराते रहते हैं—

हे प्रभो आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए,
शीघ्र सारे दुर्गुणों से दूर हम को कीजिए।

लीजिए हमको शरण मे हम सदाचारी बनें,
ब्रह्मचारी, धर्म-रक्षक, वीर, व्रतधारी बनें।

इस छोटी-सी कविता मे, कवि ने बाल-मन की सभी नैतिक अभिव्यक्तियो को शब्द प्रदान करते हुए लयात्मक तथा गेय बनाया है। इसमे उन सभी बातो का समावेश भी है जो एक आदर्श मानव के लिए आवश्यक हैं।

देश-भक्ति, सामाजिक जीवन तथा खेल-कूद आदि से सम्बन्धित गीत भी बच्चो मे यही मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते है। बच्चो की मनोवृत्ति तथा रुचि को ध्यान मे रखकर लिखे गए गीत, उन्हे सरलता से ग्राह्य होते है।

इसलिए बालसाहित्य और बाल-मनोविज्ञान का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। बाल-मनोविज्ञान की आधारभूमि-रहित कोई भी साहित्य-विधा बच्चो के लिए उपयोगी तथा प्रभावकारी नही बन सकती। इसके लिए स्वय बच्चे एक अच्छी कसौटी है, क्योकि वे अपनी मनोवृत्ति और रुचि के प्रतिकूल लिखे गये साहित्य को ग्रहण नही करते हैं। आज के युग मे बाल-साहित्य-रचना का यही मूलाधार है कि वह बाल-मनोविज्ञान के धरातल पर रचित हो।

(स) बालसाहित्य और आयुवर्ग

बच्चो की आयु के अनुसार उनका वर्गीकरण एक महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक तथ्य है। इसका आधार बच्चो की रुचि और प्रवृत्तिया हैं। बाल-विकास का अध्ययन करने मे यह वर्गीकरण सहायक होता है। मनोवैज्ञानिको ने बालकों के विकास की चार अवस्थाए मानी हैं—शैशवकाल, बाल्यकाल, किशोर तथा प्रौढ। बालको की मूल-प्रवृत्तिया प्रत्येक अवस्था मे विशेष प्रकार से कार्य करती हैं।[1] शैशव काल मे (पाच वर्ष तक) मे बालको की शारीरिक व मानसिक वृद्धि बहुत तीव्र गति से होती है। अपनी ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय का उपयोग भी वे इसी अवस्था मे सीखते हैं। बाल्यावस्था (पाच से बारह वर्ष तक) मे बालको की उन्नति होती है—वे प्रत्येक वस्तु के विषय मे जानने के लिए जिज्ञासु होते हैं, उनमे बडी प्रबल उत्सुकता होती है, नैतिक-अनैतिक कार्यों मे अन्तर करने की क्षमता आ जाती है। वे बोलना, पढना-लिखना भी सीख लेते हैं तथा आत्मप्रकाशन की शक्ति आजाती है। किशोर (बारह से उन्नीस) तथा प्रौढ (उन्नीस से ऊपर) अवस्थाओ मे वे जीवन तथा ससार के प्राय. समस्त रहस्यो को समझने-जानने के योग्य बन जाते हैं।

किन्तु बच्चो के साहित्य का सम्बन्ध वास्तव मे बच्चो के बौद्धिक विकास से है। इसके लिए दो अवस्थाए मानी गई हैं—शैशवावस्था और बाल्यावस्था। बाल्यावस्था को भी पुन. दो भागो मे बाटा गया है—बाल वर्ग (६ से १० वर्ष) और पूर्व किशोर वर्ग (११ से १४ वर्ष)। बच्चो के लिए लिखे जाने वाले साहित्य पर, इन्ही वर्गों का बन्धन आज विशेष रूप से लगाया जाता है। किन्तु क्या यह वर्गीकरण

---

1. लालजी राम शुक्ल, 'बालमनोविज्ञान', पृष्ठ २०३-२०४।

बालसाहित्य रचना के लिए स्वीकार हो सकता है ? क्या इस आयु सीमा मे बध-कर बालसाहित्य का सृजन सभव है ? यदि शैशव और बाल्यावस्था के मोटे वर्गीकरण को हम मान भी लें तो क्या बाल्यावस्था (जिसके लिए लिखा गया साहित्य ही मुख्य रूप से बालसाहित्य कहलाता है) मे किए गए वर्गीकरण के अनुरूप बाल-साहित्य लिखा जा सकता है ? ये कुछ प्रश्न है जो आधुनिक बालसाहित्य-रचना के सामने हैं और वे उसके मूल्याकन का मानदण्ड भी माने जाते है।

इन प्रश्नो के उत्तरो पर विचार करने से पूर्व, बच्चो की बौद्धिक-विकास-प्रक्रिया के बारे मे हुई अधुनातन खोजो तथा निष्कर्षों पर एक दृष्टि डालना अधिक उपयोगी होगा। आज बच्चो की मानसिक अवस्था के विकास का अध्ययन इन प्रमुख तथ्यो पर आधारित है—(१) बालक के विकास का स्वरूप, (२) वाता-वरण तथा स्थितिया, (३) वातावरण को प्रभावित करने वाली मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक शक्तिया।[1]

१. दुनिया के हर देश की अपनी निश्चित जलवायु तथा भौगोलिक स्थितिया हैं। इन स्थितियो ने वहा के जीवन, सस्कृति तथा परम्पराओ को भी पूरी तरह प्रभावित किया है। निश्चय ही बच्चों के विकास मे भी इन स्थितियो का एक निश्चित प्रभाव पडेगा और तब वे दूसरे देश के बच्चो से कुछ भिन्न स्वरूप लेकर विकसित होंगे। यूरोपीय तथा भारतीय बच्चो के शारीरिक तथा बौद्धिक विकास मे यह अन्तर स्पष्टत. देखा जा सकता है। आज के युग मे वहा के बच्चे जबकि नर्सरी मे पलते है, भारत मे परिवार के अभिन्न अग माने जाते हैं। ऐसी दशा मे दोनो देशो के बच्चे पृथक् ढग से विकसित होते हैं। वहा के बच्चे जबकि नियम और मनोवैज्ञानिक तथ्यो के आधार पर पलते हैं, भारत मे पारम्परिक ढग से परिवार मे पलते है।

२. हर देश का अपना पृथक् वातावरण तथा स्थितिया होती है। भारत के जो लोग स्वतन्त्रता से पूर्व पैदा हुए थे और जो स्वतन्त्रता के बाद पैदा हुए—उन दोनो की विचारधाराओ मे ही स्पष्ट अन्तर देखा जा सकता है। यही स्थिति एक गुलाम और एक स्वतन्त्र देश के बच्चो मे होती है। यही भिन्नता एक तानाशाही शासन मे पले बच्चो मे और स्वतन्त्र देश के बच्चो मे होती है। आज के युग मे अधिकाश ऐसे देश है जहा बच्चो को उस देश की राजनीतिक विचारधारा के अनुरूप ढालने का प्रयास किया जा रहा है। चीन मे जहा माओ त्से तुग की विचारधारा के अनुसार बच्चो को तैयार किया जाता है, वही रूस मे उन्हे साम्यवादी और अमरीका में पूजीवादी भावनाओ का पोषक बनाने का प्रयास हो रहा है। बहुत स्वाभाविक है कि बच्चो को जैसा

---

1. *Mental Growth and Development.* by Karl C Garrison; From the book "*Educational Psychology,*" Editor Charles E. Skinnor, Pages 219-220.

भी वातावरण मिलेगा, उनका मानसिक तथा बौद्धिक विकास उसी के अनुरूप होगा।

३ लेकिन वातावरण को केवल राजनैतिक शक्तिया ही प्रभावित करती है—ऐसा भी नही है। उसे तो हर देश की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक शक्तियाँ भी प्रभावित करती हैं। अपनी परम्पराओ, सस्कृति, धर्म तथा रीतिरिवाजो के प्रति मोह सभी मे होता है। हर देश उसी के अनुरूप अपने बच्चो को भी ढालने का प्रयास करता है। यही स्थिति मनोवैज्ञानिक शक्तियो की है। आज चेकोस्लोवाकिया मे माताए युद्ध से घृणा करती है। वे अपने बच्चो को उसकी विभीषिका से बचाना चाहती है—इसलिए उनके मन पर युद्ध के प्रति घृणा के भावो को सदैव अकित करती रहती है। दूसरी ओर इगलैंड मे अपने राष्ट्र के लिए मर-मिटने की भावना का सचार बच्चो मे आरम्भ से ही किया जाता है। इसी के परिणामस्वरूप एक युग ऐसा आया जबकि ब्रिटिश साम्राज्य का सूर्य कभी डूबता न था।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि बच्चो का मन, मस्तिष्क इतना लचीला होता है कि उसे चाहे किन्ही भी बधनो मे बाधा जा सकता है। लेकिन वह जैसे ही विकसित होता है, उसमे विद्रोह करने की आग भडकती है और तब वह इन सभी बधनो को तोडने के लिए छटपटा उठता है। आज विश्वभर मे 'ऐंग्री युवक' की समस्या इन्ही बधनो का परिणाम है।

जब इस परिप्रेक्ष्य मे बालसाहित्य को देखते हैं तो लगता है कि अब आयु-सीमा जैसा कोई बधन लगाना व्यर्थ है। यह सही है कि आयु के साथ-साथ बच्चों के ज्ञान, रुचि और आदतो मे परिवर्तन होता है।[१] किन्तु साहित्य को इस परिवर्तन के सूक्ष्म-विभाजन के अनुरूप लिखा जाना अत्यन्त कठिन कार्य है।

बच्चो मे एक स्वाभाविक रुचि होती है—नये की ओर आकृष्ट होने की। जो कुछ उन्हे रुचिकर लगेगा, उसे प्राप्त करने के लिए वे निश्चय ही प्रयत्नशील होगे। जो बच्चे शैशवावस्था पार कर चुकते हैं, विशेषकर इस विज्ञान-युग मे, वे इतने अधिक ज्ञान-पिपासु होते हैं कि कभी-कभी उनके प्रश्न व जिज्ञासाए एक समस्या बन जाते हैं। कभी-कभी तो यह सोचकर बडा आश्चर्य होता है कि इस आयु का बालक ऐसे प्रश्न क्यो पूछ रहा है ? आज का जीवन इतना विषम और बहुरूपी होता जा रहा है कि बच्चे जैसे ही दुनिया को देखना-समझना शुरू करते है, उनके सामने एक-एक तथ्य क्रम से उभरता है और उन्हे प्रभावित करता है।

---

1. It is true that children go through stages in their reading as in their physical growth. A child may turn from reading fairy ta'es to books about the vikings or still later to an Mars. —Lillian Smith, *A Critical Approach to Children's Literature*. Page 15.

वे अपने आसपास की हर वस्तु को विचित्र, पैनी तथा विश्लेषणवादी दृष्टि से देखते है। इस दृष्टि के पीछे वह भाव छिपा होता है जो उनमे अर्जित ज्ञान के माध्यम से आधुनिक जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित करने की शक्ति उत्पन्न करता है। आज के बच्चे अपनी मदद आप करते है। और अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की स्थापना का प्रयत्न करते है। बदलती हुई मान्यताओ के इस सन्धि-काल मे बच्चो के सामने अनेक प्रश्न है। उनके सामने आधुनिक सभ्यता की जहा चमक है, वही उसका अधेरा भी है। इसलिए वे आरभ से ही सचेतन, जागरूक और चुस्त होते है। वे जीवन को खुली आखो से देखते है और इस अबूझ पहेली को समझने का प्रयास करते है। जीवन का कैनवास उनके सामने बहुरगी चित्रो से सुसज्जित होता है और वे उस पर अपने भविष्य की तस्वीर बनाने का प्रयत्न करते है। इतिहास मे बच्चो का जो रूप था, वह अब बदल चुका है। अब बच्चे मानव के पाकेट सस्करण मात्र नही समझे जाते बल्कि उनका स्वतत्र अस्तित्व है। उनमे 'स्व' का भाव पूरी तरह जागृत होता है। वे सोचते हैं कि यह काम 'अमुक' कर सकता है तो 'मैं' क्यो नही कर सकता। यह पुस्तक उसे ही पढने को क्यो दी गई, मैं उसका अधिकारी क्यो नही हू ? विरोध और विद्रोह की अनेक ऐसी समस्याए आज के माता-पिता के सामने आती है। तब लगता है कि अब बच्चो मे इस तरह का भेद करना कठिन है।

इस परिप्रेक्ष्य मे यदि आयु सीमा के अनुसार बालसाहित्य रचना को देखें तो लगता है कि इससे कोई लाभ नही है। वास्तव मे ये आयु सीमाए बच्चो का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने तथा उन्हे क्रम से पाठ्यक्रम पढाने के लिए ही बनाई गई हैं। बालसाहित्य रचना से इनका कोई सम्बन्ध नही है। एक रोचक उपन्यास को १० वर्ष के बालक के लिए घोषित करने के बाद ६ या ११-१२ वर्ष के बालक को उसे पढने से वचित कर देना न्यायसगत या बहुत मनोवैज्ञानिक नही कहा जा सकता। हा, पाठ्यक्रम निश्चित करते समय यह तथ्य स्वीकार किया जा सकता है कि अमुक कक्षा मे बालक की आयु इतनी होगी, अतः उसे पाठ्यक्रम का अमुक अश पढाया जाए, शेष अगली कक्षा मे। लेकिन बालसाहित्य तो स्कूली साहित्य से सर्वथा भिन्न होने के कारण इन सीमाओ मे रखा ही नही जा सकता। यदि ऐसा होता तो आज जो पुस्तकें विश्व के बालसाहित्य में 'क्लासिक्स' मानी जाती हैं, वे न होती।[1] उन पुस्तको को भी आयु-सीमा का बधन तोड़कर स्वीकार किया

---

1. Most of the books which regard as classics of children's literature were written without children in mind and were taken over by them with cheerful disregard of what they could not understand. None of these were aiming at children.

—Meigs, Cornelia : *A Critical History of Children's Literature*, Page viii.

गया था। राबिन्सन ऋूसो, गुलीवर कथाए, ग्रिम कथाए, टाम सायर आदि पुस्तकें बच्चो को उद्देश्य बनाकर नही लिखी गई थी। लेकिन उन्ह बच्चो ने स्वीकार कर लिया और वे सभी आयु के बच्चो को उनके ज्ञान स्तर के अनुसार मनोरजन देती है। सभवत यदि उन पर भी आयु सीमा की मुहर लगा दी जाती तो वे इतनी लोकप्रिय न होती।

यहा एक उदाहरण द्वारा बालसाहित्य के इस सीमा-बधन की समस्या को अच्छी तरह स्पष्ट किया जा सकता है। किन्ही शिवदयाल बाबू ने घर मे प्रवेश करते ही कहा, "पप्पू, तुम यह किताब पढो। और मुन्नी, तुम्हारी किताब यह रही। हा राजू, तुम्हारे लिए तो मैं बहुत बढिया किताब लाया हू। इसमे अनेक जानवरो के बारे में बहुत ही रोचक बातें हैं।" और इस तरह शिवदयाल बाबू ने आयु सीमा के किनारे लिखे बालसाहित्य को अपने बच्चो के बीच बाट दिया। शिवदयाल बाबू एक पुस्तकालय भी चलाते है और वहा भी बच्चो को इसी तरह आयु वर्ग के हिसाब से अलग अलग बिठाकर किताबें दे देते है। लेकिन जब रात मे शिवदयाल बाबू बच्चो के कमरे मे गए तो देखा कि पप्पू ने राजू की किताब चुरा ली है और चुप चाप एक कोने मे बैठा पढ रहा है। पप्पू की किताब मुन्नी ने एक टाफी के बदले ले ली थी और राजू मुन्नी की किताब मे छपी चटपटी कहानियो का मजा लेने में डूबा हुआ था। चूकि झगडा नही हुआ था, इसलिए शिवदयाल बाबू ने इस बात को अधिक महत्त्व नही दिया। लेकिन अगर झगडा हो जाता, जैसा कि आमतौर पर होता है, तो शिवदयाल बाबू बच्चा को मार-पीट कर सीधा कर देते। क्योकि वे उस मूलभूत समस्या को नही समझ रहे हैं कि बच्चो ने आयु सीमा के बधनो को नही स्वीकार किया। सोचने की बात है कि बारह साल के राजू को आठ साल की मुन्नी की किताब पढने की क्या आवश्यकता थी? पप्पू ने राजू की पुस्तक क्यों चुराई? मुन्नी ने पप्पू को टाफी का लालच देकर किताब क्यो ले ली? इस-लिए कि उनकी रुचिया अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और वे इस सीमा-बन्धन को स्वीकार नही कर सकते।

आजकल के बालसाहित्य लेखन मे आयु-वर्ग की सीमाओ की ओर बार-बार ध्यान दिलाया जाता है। यह कहा जाता है कि बालसाहित्य बच्चो की आयु-वर्ग के हिसाब से नही लिखा जाता। उसे विशेष आयु वर्ग के लिए रेखाकित अक्षरो मे लिखकर बेचने पर भी बल दिया जाता है। पुस्तकालया मे पुस्तकें चुनते समय भी इन्ही आयु-सीमाओ का ध्यान रखा जाता है। लेकिन सभवत यह कभी जानने का प्रयास नही किया गया कि बच्चे क्या इस आयु-सीमा के नियमो को मानकर पढते हैं? उत्तर निश्चय ही 'नहीं' होगा। इसका कारण यही है कि इस तरह के आयु-सीमा निर्धारण का कोई ठोस आधार नहीं है। बच्चो के बौद्धिक विकास को आयु के अनुसार रेखाए खीचकर बाटना असभव है। ऐसी दशा में जो भी आयु-विभाजन किया जाता है, वह सभी का पृथक् होता है। यही स्थिति बालसाहित्य लिखने की है। कोई भी लेखक अनुमान से (जो कि बच्चा की बुद्धि-माप के अनु-

सार गलत भी हो सकता है) भले ही, लिख दे, किन्तु निश्चित रूप से इस बारे मे कोई निर्णय नही दे सकता। यह भी निश्चित करना कठिन है कि कौन से शब्द, किस आयु के बालको के लिए लिखे गए साहित्य मे ही प्रयुक्त होने चाहिए। ऐसी दशा मे लेखक के लिए आयु सीमा मे बधकर लिखना असभव ही लगता है।

बालसाहित्य की एक कृति, विभिन्न आयु के बच्चो को अलग अलग ढग से मनोरजन देती है। बालसाहित्य का एक ही पात्र अपनी बराबर की उम्र वाले बाल पाठक के मन मे उस तरह न बन पाने के लिए ग्लानि का भाव जगा सकता है और अपने से कम उम्र वाले बाल पाठक के लिए प्रेरक बन सकता है।

इसलिए बालसाहित्य को बच्चो की आयु सीमाओ मे बाधकर न तो लिखा जा सकता है और न बच्चो को दिया ही जा सकता है। ऐसा करना, बच्चो के प्रति अन्याय होगा और उनकी बुद्धि के विकास की गति को कम करना है।

तीसरा अध्याय

बालसाहित्य का उद्भव और विकास

लोकसाहित्य तो बच्चो का आनन्द है, क्योकि यह किसी भी जाति के बचपन का काव्यात्मक पाण्डित्य होता है।''' ' ससार की सभी भाषाओ का बालसाहित्य, अपने यहा के लोक-साहित्य का ऋणी है, जिसने उसकी न केवल नीव सुदृढ की अपितु उसके विकास मे भी सहायक बना। और बालसाहित्य अपने उन बच्चो तथा अनुसन्धानकर्ताओ के लिए भी ऋणी है, जिन्होने अपनी स्मरण शक्ति द्वारा वे कथाए-गीत आदि सुरक्षित रखे, जो आज हमे लोक-साहित्य के रूप मे प्राप्त हुए हैं।

बच्चे और बडे—दोनो ही का अलग ससार होता है। बडे बहुत कम स्वतत्र होते हैं। वे अपने ही विचारा मे उलझे रहते हैं। उनका खेल मनोरजन भी उनकी इच्छा और किसी कारणवश होता है। वे इसलिए खेलते हैं कि थोडा आराम महसूस कर सकें, अपनी परेशानिया थोडी देर के लिए भूल जाए और अपनी बातो को फिर से सोचने के लिए ताजगी ग्रहण कर लें। केवल आनन्द के लिए शायद कुछ ही बडे लोग खेलते हैं।

लेकिन बच्चो के साथ इससे बिलकुल भिन्न स्थिति है। सवेरे से शाम तक वे बिना थके हुए खेलते रहते हैं—दौडते रहते है, झगडा करते हैं, पढते हैं और फिर खा-पीकर इतनी गहरी नीद सोते हैं कि अगले दिन सवेरे ही आख खुलती है। बडो की अपेक्षा बच्चे उन सब वस्तुओ के लिए धनी होते हैं, जो उनकी नही होती। उनके पास प्रत्येक वस्तु को अपना बनाने की उर्वर कल्पना-शक्ति इतनी जागृत होती है कि वे चाहे तो समस्त ब्रह्माण्ड को भी अपना बना लें। यह उनका सबसे

शक्तिशाली खेल होता है। किन्तु कल्पना हर समय, उनकी हर आवश्यकता नही पूरी कर सकती। इसलिए वे खाना भी खाते हैं, कपड़े भी पहनते है और मनोरंजन के लिए खिलौनो से खेलते है तथा अपनी जिज्ञासा शांति के लिए पुस्तको तथा चित्रो को देखते, पढते और उन्हे अपने मनोनुकूल बनाते रहते है।

अनगिनत वर्षो से यही क्रम चल रहा है। उस समय से अब तक बहुत कम लोगो ने ही बच्चो की भाषा, उनकी बातो और उनकी इच्छाओ को समझने की कोशिश की है। प्राचीन काल मे तो बच्चो को बिलकुल ही उपेक्षित बनाकर रखा गया। शायद कुछ परियो, कुछ कहानी के पात्रो ने उन्हे समझने की कोशिश की हो, लेकिन प्रत्यक्ष प्रमाण कुछ भी उपलब्ध नही है। केवल इतना ही अनुमान लगता है कि उन दिनो घूम-घूमकर गाने वाले गवैया की लोक-कथाए ही बच्चो और बूढो का समान रूप से मनोरंजन करती थी।[१]

जीवन के अनेक अनुभव कथाओ और गीता के माध्यम से मौखिक रूप मे ही विद्यमान रहे। एक कबीले से दूसरे कबीले मे, एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त मे और इसी तरह बढते बढते पूरे विश्व की यात्रा, ये अनुभव मौखिक ढग से ही करते रहे। सागर, नदी, पहाड आदि की सीमाओ को इन्होने कभी नही स्वीकारा। प्रथम-द्वितीय शताब्दी के लगभग हुई—'कथा सरित्सागर' के मूल रूप 'वृहत्कथा' की—रचना के सबध मे विद्वानो का विचार है कि वह भी ऐसे ही अनुभवो के सकलन का परिणाम है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार, "आन्ध्र सातवाहन युग म स्थल-जल-मार्गो पर अनेक सार्थवाह, पोताधिपति एव सायानिक व्यापारी रात दिन चहल पहल रखते थे। टकटक करते तारो से भरी हुई लम्बी रातो मे उनके मनोविनोद के लिए अनेक कहानियो की रचना स्वाभाविक थी, जिनमे उन्ही के देशान्तर-भ्रमण से उत्पन्न अनुभवो का अमृत निचोडा जाता था। .... उन्ही उद्यमी सार्थो और नाविको के अनुभवो की बहुमुखी सामग्री का गुणाढ्य ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से 'वृहत्कथा' के साचे मे ढाल दिया था।"[२]

कडाके की सर्दी मे, आग के अलाव के घेरे मे बैठकर भी बूढे लोग अपने जीवन के अनुभव युवा और बालक दोनो ही वर्गों को सुनाते थे। युवा श्रोता इन अनुभवो के आधार पर जीवन-पथ पर अग्रसर होते थे और बाल श्रोता इनमे मनोरजन के साथ साथ ससार की विचित्रता तथा विशालता का अनुभव करते

---

1 As for in the past as we have any record, the stories that were told around the hearth, the folk tales, the tales that were sung by wandering minstrels in the great halls, were the universal oral literature of all young and old

—Lillian Smith *'A Critical Approach to Children's Literature'* Page 21

२ 'कथा सरित्सागर,' भूमिका पृष्ठ ५, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

थे। इतना ही नही—जगल मे काम करते समय गाए जाने वाले गीतो मे, बच्चो को सुलाते समय गाई जाने वाली लोरिया मे भी बच्चो का मनोरजन करने की पूर्ण क्षमता थी। जिन बच्चो ने इन्हें सुना, उन्होने बडे होकर अपने बच्चो को वे ही कहानिया और गीत सुनाए—और इस तरह इनकी एक परपरा बन गई जो युगो से चली आ रही है।[१] देशकाल और युगबोध से प्रभावित होकर, भले ही इनकी शैली, भाषा और आकार मे कुछ परिवर्तन हुए हो, किन्तु इनकी मूल भावना मे कोई अन्तर नही आया।

इस साहित्य मे बच्चो के लिए पृथक् और विशिष्ट साहित्य न होते हुए भी, इतना सूक्ष्म अवसर अवश्य था कि रुचियो के आधार पर बडो तथा बच्चो के लिए रचनाओ को अलग-अलग किया जा सके।[२]

(अ) बालसाहित्य का मूलस्रोत : लोक-साहित्य

लोक जीवन मे व्याप्त विश्वासो, परम्पराओ तथा अनुभवो ने जिन कहानियो एव गीतो को जन्म दिया, वे सभी वर्गो को उनकी रुचियो और आयु के अनुसार मनोरजन और ज्ञान देते रहे हैं। ये विश्वास, परपराए तथा अनुभव जब भी बदले, वहा नई रचना को जन्म मिला। इस तरह कहानियो और गीतो का एक बहुत बडा भडार तैयार होता रहा। "वह साहित्य उतना ही स्वाभाविक था जितना जगल मे खिलने वाला फूल, उतना ही स्वच्छन्द था जितनी आकाश मे विचरने-वाली चिडिया, उतना ही सरल तथा पवित्र था जितनी गगा की निर्मल धारा। उस समय के साहित्य का जो अश आज अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है, वही हमे लोक-साहित्य के रूप मे उपलब्ध होता है।"[३]

लोक साहित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक माना गया है—"गाव के बूढे जाडे के दिनो मे आग के पास बैठकर कहानिया सुनाया करते है। बूढी दादिया तथा माताए बच्चो को सुलाने के लिए लोरियो तथा छोटी-छोटी कथाओ का प्रयोग करती हैं।

---

1 It is the abiding memory of many children and the research of a few devoted scholars, which have preserved for our time, those humble tales which we call folklore.
—Meigs, Cornelia *'A Critical History of Children's Literature,'* Page 4.

2 In that ancient world of primitive ideas and primitive impulses, there was little distinction between what entertained the elders and what entertained the young
—Meigs, Cornelia *'A Critical History of Children's Literature.'* Page 4

३ डा० कृष्णदेव उपाध्याय, 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास,' सोलहवा भाग, प्रस्तावना खण्ड, पृष्ठ १५।

जनमन के अनुरंजन के लिए गावो मे स्वाग या नाटक भी खेले जाते है जिन्हे देखने के लिए दूर दूर से लोग आते है। गाव के लोग अपने दैनिक व्यवहार मे सैकडा मुहावरो तथा कहावतों का प्रयोग करते हैं। छोटे छोटे बच्चे खेलते समय अनेक प्रकार के हास्यजनक गीत गाते है। ये सभी गीत तथा कथाए लोक साहित्य के अन्तर्गत आती है। इस प्रकार लोकसाहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है तथा यह स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान तथा बूढे सभी लोगो की सम्मिलित सम्पत्ति है।[१]

इस सम्पत्ति के जिस भाग के अधिकारी बच्चे हैं वह भी अपने आप म कम महत्वपूर्ण नही है। चार्ल्स फ्रैंसिस पाटर ने समस्त लोकसाहित्य को बच्चो से सम्बद्ध करते हुए यहा तक कह दिया है कि 'लोकसाहित्य तो बच्चो का आनन्द है क्योकि यह किसी भी जाति के बचपन का काव्यात्मक पाण्डित्य होता है। यह उन बूढो के आनन्द की भी अभिव्यक्ति होता है जो अपने यौवन का नवीनीकरण, जीवन चक्र मे आन्तरिक सरलताओ के पुन सस्कार द्वारा करने मे सक्षम होते हैं।'[२] यहा जीवन चक्र मे आन्तरिक सरलताओ के पुन सस्कार द्वारा यौवन के नवीनीकरण से आशय—उस अनुभव के आदान प्रदान से है जो वे बूढे लोग अपने बच्चों को समय समय पर देते रहे हैं। ऐसा करना न केवल उत्तरदायित्व का निर्वाह था बल्कि यह एक पवित्र कर्म भी था। बच्चो को ये अनुभव सुनाते समय, उन्हे कई बार बच्चा जैसी मनोवृत्ति तथा रुचि का अनुभव अपने-आप मे करना पडता था और तब वे अपनी उस 'अनुभव कथा' का तादात्म्य बाल बुद्धि के साथ स्थापित कर पाते थे। बच्चो की जिद मानना, उनकी इच्छा पूर्ति करना तथा उनके सग उनके ही जैसा साथी बनकर खेलना—भावनाओं के नवीनीकरण के ही द्योतक है। यदि ऐसा न हो तो ये क्रियाए सभव नही हैं। आज भी जो व्यक्ति अपनी इन आन्तरिक सरल भावनाओं का पुन सस्कार करने मे सक्षम नही होते वे बच्चो के साथ न तो तादात्म्य स्थापित कर पाते है और न बच्चे ही उनमे कोई रुचि लेते हैं। इसलिए लोकसाहित्य का वह भाग, जिसके बच्चे अधिकारी हैं, अति मनोवैज्ञानिक और सवेदनात्मक है। उसकी रचना तथा आदान प्रदान की प्रक्रिया भी बाल-

---

१ डा० कृष्णदेव उपाध्याय, 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास,' सोलहवा भाग, प्रस्तावना खण्ड, पृष्ठ १५।

2 Hence, folklore is always the delight of children because it is the poetic wisdom of the childhood of the race It is also the pleasure of the old who are wise enough to renew their youth by rebaptism in the eternal simplicities in completing the circle of life

—Charles Francis Potter, *'Standrad Dictionary of Folklore, Mythology & Legend'* Page 401

मनोविज्ञान के अनुकूल रही है। कहानियों में कौतूहलपूर्ण दृश्यों का संयोजन, बच्चों के प्रिय पशु-पक्षियों का मानवीकरण, छोटे-छोटे गीतों में शब्दों की पुनरावृत्ति तथा क्रम-संवर्द्धन आदि ऐसे गुण हैं जो बाल मनोविज्ञान के अनुकूल हैं। खेल के गीतों में बच्चों की निरर्थक-भावाभिव्यक्ति, लोरियों में लयात्मकता तथा बालक के विकास की कामना आदि ऐसे तत्त्व हैं जो उन्हें मनोवैज्ञानिक तथा बालोपयोगी बनाते हैं। अतः ऐसे समस्त लोकसाहित्य को यदि हम 'बाल-लोकसाहित्य' कहें तो अनुपयुक्त न होगा।

इस बाल लोकसाहित्य को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है—
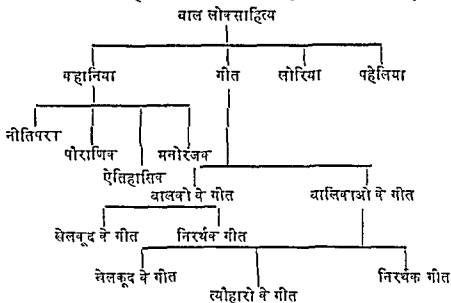
कहानियाँ—लोक-जीवन के अनुभवों को रोचक एवं कौतूहलपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने का सबसे सशक्त माध्यम कहानी ही रहा है। इस लोक कहानी के गुण इस प्रकार माने गये हैं—'यह परम्परागत होती है, यह एक व्यक्ति से दूसरे को प्रदान की जाती है, और इसकी मौलिकता के सम्बन्ध में कोई दावा नहीं होता। इसकी परम्परा बिलकुल मौखिक हो सकती है—इसे सुनने वाला जिस रूप में याद रखता है उसी रूप में दुहराकर सुनाता है। वह चाहे तो कुछ परिवर्तन भी कर सकता है या नहीं भी कर सकता है।'[1] ये गुण वास्तव में उस कहानी के

1 It will be seen that the characteristic feature of the folk tale is the fact that it is traditional. It is handed down from one person to another, and there is no virtue in originality. This tradition may be purely oral. The tale is heard and is repeated as it is remembered, with or without additions or changes made by the new teller.

—*Standard Dictionary of Folklore, Mythology & L...*
Pages 408

हैं जिसे अंग्रेजी मे 'फोक टेल' कहते हैं। हमारे यहा हिन्दी मे इसका समानार्थी शब्द 'लोककथा' प्रचलित है। यह बहुत ही भ्रामक है। "कथा शब्द प्रयोग मे एक विशेष प्रकार की कहानी के लिए आता है। यह कहा जाता है कि 'रामायण की कथा' हो रही है या इसी प्रकार 'सत्यनारायण की कथा' या 'गणेश चौथ की कथा' आदि। इन प्रयोगो से यह प्रकट होता है कि कथा कोई ऐसी वार्ता है जो किसी के द्वारा कहकर सुनाई जाती है और उसे सुनाने का धार्मिक अभिप्राय होता है।"[1] अत नीतिपरक, मनोरजक तथा जीवन के अनुभवो से सम्बन्धित कहानियो को 'लोक कथा' कहना समीचीन नही प्रतीत होता। ऐसी कहानियो के लिए 'लोक कहानी' शब्द अधिक सार्थक होगा। "लोक-कहानी—लोक मे प्रचलित और परम्परा से चली आने वाली, मूलत मौखिक रूप मे प्रचलित, कहानिया लोक-कहानिया कहलाती हैं।'[2] यह परिभाषा अंग्रेजी की 'फोक टेल की परिभाषा के अधिक निकट है। अंग्रेजी की परिभाषा के अन्तर्गत लोककथा, धर्मगाथा, पशु-पक्षियों की कहानिया, नीति कथाए आदि सभी आ जाती हैं। किन्तु 'लोक-कहानी' मे "सास्कृतिक सामग्री बहुत होती है और उसमे लोक-विश्वासो का भी उल्लेख रहता है, पर ये कहानिया किसी भी प्रकार की धार्मिक सन्तुष्टि से सम्बन्ध नही रखती।"[3] इस सम्बन्ध मे डा० पूरणचन्द्र श्रीवास्तव का मत है कि लोक कथाए किसी धार्मिक अनुष्ठान, प्रवृत्ति अथवा विचारधारा की अभिव्यक्ति करती है। जब कि लोक-कहानी मे जीवन की बहुविध घटनाए आ जाती है और वे धार्मिक विश्वासो से अलग होती हैं।

साराश यह कि बालसाहित्य मे लोक-कहानियो को ही स्वीकार किया जा सकता है। ये लोक कहानिया, जिन जीवनानुभवो का परिणाम होती हैं, उनसे बाल-जीवन को दिशा-निर्माण तथा चयन मे सहायता मिलती है। लोक-कहानियो का यह प्रेरक और प्रभावशाली रूप विश्व बालसाहित्य मे बहुत सशक्त रहा है। हजारो सालो से ये लोक-कहानिया मौखिक धन के रूप म आज तक विद्यमान हैं।

ये लोक-कहानिया बच्चो के लिए इन रूपो मे मिलती हैं—

१ नीतिपरक

२ पौराणिक

३ ऐतिहासिक

४ मनोरजक

१ नीतिपरक कहानिया—इन कहानियो की आत्मा—उपदेश देने की प्रवृत्ति होती है। 'पचतत्र' तथा 'हितोपदेश' की सभी कहानिया इसी वर्ग के

---

१ 'हिन्दी साहित्य कोश', भाग १, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, पृष्ठ ६८६।

२ वही।

३ वही, पृष्ठ ६८७।

अन्तर्गत आ सकती है। इनकी कहानियो मे नीति या उपदेश अंतर्निहित है।

२. पौराणिक कहानिया—इन्हे अंग्रेजी मे 'मिथ' कहते है। "पौराणिक कथा वह है जो किसी युग मे घटित दिखाई गई हो और उसमे किसी देश के धार्मिक विश्वासो, प्राचीन वीरो, देवी-देवताओ, जनता की अलौकिक तथा अद्भुत परम्पराओ, सृष्टि रचना आदि का वर्णन हो।'[1] इनमे "विज्ञान-पूर्व युग की घटनाओ का वैज्ञानिक रीति से स्पष्टीकरण किया जाता है।'[2] हमारे यहा पुराणो की कथाए जैसे देवासुर सग्राम, समुद्र मथन, अवतार आदि की कहानिया इसी वर्ग मे आती हैं।

३ ऐतिहासिक—ये दत-कथा से मिलती-जुलती होती हैं। इनमे इतिहास और कल्पना का मिश्रण पाया जाता है। इनकी आधार भूमि इतिहास की ठोस घटनाए होती है। कथाकार इन पर अपनी कल्पना के रग चढाकर सुन्दर बना देता है। राजा विक्रमादित्य, राजा भोज, आल्हा-ऊदल आदि की कहानिया इसी कोटि की हैं।

४ मनोरजक—इस वर्ग मे परियो की कहानिया, पशु-पक्षियो की कहानिया, भूत-राक्षसा की कहानिया आदि आती है। इन कहानियो का मुख्य उद्देश्य बच्चो को मनोरजन प्रदान करना होता है।

गीत—लोकसाहित्य मे बच्चा के गीत "सबसे पुराने और सबसे अधिक फैले हुए लोकगीत माने गए है। इनकी लय तथा विषयवस्तु की समानता विश्वव्यापी है। इन गीतो मे प्राचीन विश्वासो तथा उत्सवो के अवशेष सुरक्षित हैं। इनमे खेल के गीत, गिनती के गीत, ऐतिहासिक गाथाए, लोरिया तथा बच्चो के स्वनिर्मित गीत ही मुख्यत आते है।"[3] यह परिभाषा अंग्रेजी के 'चिल्ड्रन्स साग' की है। भारतीय बाल-

---

1 Myth is a story presented as having actually occurred in a previous age, explaining the cosmological and supernatural traditions of a people, their Gods, heroes, cultural trends, religious beliefs etc

—*Standard Dictionary of Folklore, Mythology & Legend* Vol II Page 778

2 The purpose of a myth is to explain, as Sir G L Gome said, "Myths explain matters in the science of a prescientific age'

—*Ibid*, Page 778'

3 The oldest and most widely diffused of folk songs, showing great similarity both as to melody and to subject matter all over the world and preserving the vestiges of ancient ceremonies and beliefs They include the game songs, counting-out rimes, mocking songs, historical verses sung or chanted by children themselves and the lullabies etc sung to

लोकगीतों की तुलना में यह परिभाषा बहुत विस्तृत है। भारतीय लोक-साहित्य में बाल लोकगीतों की परिभाषा इस प्रकार की गई है—"बच्चों के गीतों में अद्भुत कल्पना का पटाक्षेप होता है अथवा शिक्षा होती है। ये गीत उनके खेलों में सम्बन्धित होते हैं।"[१] यह परिभाषा बहुत कुछ सही प्रतीत होती है। बच्चे खेल-खेल में ही गीत गाते रहते हैं—किसी महफिल में नहीं। उनके लिए गीतों के वे अन्य अवसर भी नहीं होते जैसे—यात्रा, धार्मिक अनुष्ठान, रीति रिवाज आदि—जिनमें वे अपना आनन्द गीतों के माध्यम से व्यक्त कर सकें। इसलिए उनके खेल-गीतों में ही कल्पना का पटाक्षेप होना स्वाभाविक ही है।

खेल-गीत (बालक-बालिकाओं के)—खेल-गीतों के सम्बन्ध में उपर्युक्त विचार के परिप्रेक्ष्य में ही यदि हम इस परिभाषा को देखें तो बात अधिक स्पष्ट हो जाती है—"जहां कहीं भी लोक-गीतों की परम्परा होगी, वहां बच्चों के खेल तथा नृत्य गीत अवश्य मिलेंगे। उनमें कभी-कभी बड़ों के गीतों के अंश मिल जाते हैं। उनमें बड़ों की क्रियाओं का प्रतिबिम्ब भी मिलता है और वे कभी-कभी किसी खेल के अनुकरण का भी आभास प्रस्तुत करते हैं।"[२]

भारतीय लोक-साहित्य में बच्चों के ऐसे लोक-गीत प्रचुर मात्रा में है। डा० कृष्ण देव उपाध्याय का मत है कि "ये गीत प्रायः सभी प्रदेशों में समान रूप से प्रचलित हैं। परन्तु बुन्देलखंड में इनकी संख्या संभवतः अधिक है।"[३] बुन्देलखंड में ये गीत बालकों और बालिकाओं के लिए पृथक्-पृथक् रूप से प्रचलित हैं। बालकों के गीत जहां उन्हें विभिन्न खेलों के माध्यम से मनोरंजन तथा स्वास्थ्य प्रदान करते हैं वहीं बालिकाओं के गीत उन्हें भारतीय त्योहारों तथा परम्पराओं से परिचित कराते हैं। यही गुण अन्य भाषाओं के लोकगीतों में भी विद्यमान हैं—यह बात अलग है कि उनमें ऐसे लोकगीतों की संख्या अपेक्षाकृत कम है।

निरर्थक गीत—बच्चे बहुत-से ऐसे गीत गाते हैं, जिनका बड़ों के लिए कोई अर्थ नहीं होता। इन गीतों में पहली पंक्ति किसी एक भाव को व्यक्त करती है तो दूसरी किसी अन्य भाव को। लेकिन कुल मिलाकर ये गीत बच्चों पर अपना निश्चित

---

children by adults

—Theresa C Brakeby *Standard Dictionary of Folklore, Mythology & Legend* Vol I, Page 219

१ 'हिन्दी साहित्य कोश', पृष्ठ ६८६।

2 Children's game and round songs are found wherever there is folk song They often contain fragments of songs of grownups, and reflections of grown up activities, connected with mimetic play

—George Herzog *Standard Dictionary of Folklore, Mythology & Legend* Vol. II, Page 1034

३ 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास', सोलहवां भाग, पृष्ठ ७२, प्रस्तावना खण्ड।

प्रभाव डालने मे भी समर्थ होते हैं। इसका कारण यह है कि ये गीत बाल-मन द्वारा लय तथा गीत के साथ स्थापित तादात्म्य की प्रथम अभिव्यक्ति होते हैं। इनकी विभिन्न पंक्तियों का एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध न होने तथा उनका अर्थ भी क्रम-बद्ध न होते हुए भी, अपने आप मे पूरी होती हैं, क्योंकि उस एक पंक्ति के माध्यम मे ही बाल-मन का वह सारा चित्र उभर आता है। उदाहरण के लिए—

अटकन चटकन दही चटोकन,
फूल फूल फुलवारी मे
बाबा जी की क्यारी मे।
बाबा गए दिल्ली, लाए सात कटोरी,
एक कटोरी फूटी, नेवले की टाग टूटी ॥

इसमे लय है, गति है। बच्चे इसे आनन्द मे डूबकर गाते है। लेकिन देखने से लगता है कि पूरे गीत का कोई अर्थ नही है, कोई क्रम-बद्धता नही है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। बाबाजी की क्यारी मे फूलो का फूलना, बच्चो का उन्हे तोडना तथा नष्ट करना, बाबाजी का बच्चो पर क्रोध करना, बच्चो के मन मे बाबा के प्रति विरोध का जन्म लेना, बाबाजी का दिल्ली जाना और वहा से सात कटोरिया लाना, उसमे मे एक कटोरी मे रखी किसी चीज को नेवले द्वारा खाने का प्रयत्न करना, कटोरी का गिर कर टूटना और इस पर नेवले को डडे से मारना, मार के कारण नेवले की टाग टूटना—उसे दण्ड मिलना—आदि घटनाए पूरी एक कथा की अभिव्यक्ति हैं। इन्हे बडे लोग भले ही 'निरर्थक गीत' या 'नानसेन्स राइम्स' कहे, पर बच्चो के लिए ये निश्चय ही अर्थपूर्ण गीत होते हैं।

त्योहारो के गीत—ये गीत अधिकाशत त्योहारो मे गाए जाते है। बालको द्वारा तो होली दिवाली जैसे प्रमुख पर्वो पर ही गाने की परम्परा है, लेकिन बालिकाए हरियाली तीज, रक्षा-बन्धन, बम्बुलिया, आदि जैसे पर्वो पर अनेक गीत गाती है। इन गीतो का सामयिक महत्त्व ही होता है।

लोरिया—बच्चों को सुलाने के लिये गाये जाने वाले गीत 'लोरी' कहलाते हैं। *विश्व भर मे बच्चो को सुलाने के लिए किसी न किसी प्रकार की लय, गुनगुना*-हाट माताए करती है। इस गुनगुनाहट को कुछ शब्दो से भर दिया जाता है। इसीलिए लोरियो के आकार छोटे होते हैं। जो शब्द प्रयुक्त होते है वे बच्चो की समझ मे नही आते पर उनमे माता की शुभकामनाए छिपी रहती हैं। लेकिन कुछ लोरियो मे एक जैसे ही शब्द होते हैं—जिनका कोई अर्थ नही होता, जैसे—"लु ··लु · लू···लू···" या "आ ··आ ··आ ··" या "वो ·वो ··वो ·।" इन लोरियो मे वास्तव मे लय और गुनगुनाहट ही प्रमुख होती है। भारतीय लोकसाहित्य की लोरियो मे आरभ मे बच्चे की प्रशसा, फिर उसके भविष्य के उज्ज्वल होने की कामना तथा अन्त मे नीद का आह्वान होता है। कई लोरिया ऐसी भी मिलती है जिनमे देवी देवताओ को प्रसन्न किया जाता है। वास्तव मे लोरियो का बच्चो पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है। लोरिया गाते समय बच्चो का ध्यान उसकी

लय तथा गुनगुनाहट और न समझ में आने वाले शब्दों की ओर लग जाता है। मा की गोद में रहकर या उसे अपने पालने के पास देखकर बच्चो को सान्निध्य-सुख मिलता है, वे अकेलापन नही महसूस करते, उन्हे भय नही लगता। इस तरह लोरिया जहा बच्चो के मनोरजन के लिए उपयोगी हैं, वही वे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी बच्चों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

पहेलिया—लोकसाहित्य मे पहेलियो का बहुत महत्त्व माना गया है। "लोक-साहित्य एक ऐसी विद्या या बुद्धि या सामान्य ज्ञान या लोगों का मातृ ज्ञान है, जो माता पिता या बूढे बाबा-दादी द्वारा अपने बेटो-नातियो को दिया जाता है। इस लोक ज्ञान को सरलता से प्रदान करने के लिए 'छोटे-छोटे पैकेटो' मे बन्द कर दिया जाता है और वही 'पहेलिया' कहलाती हैं।"[1] पहेलियो के बारे मे बच्चों का पक्ष स्पष्ट करते हुए मॉरिस ब्लूमफील्ड का कथन है, "पुराने जमाने से ही, दुनिया की तमाम वस्तुओ के साथ समन्वय स्थापित करने के लिए आदिम-मस्तिष्क अभ्यास करता रहा है और उसी के फलस्वरूप इन पहेलियो का जन्म हुआ है। दुनिया की तमाम वस्तुओ की अनुरूपता, अनुकूलता, कमिया, असगतिया बच्चों तथा आदिम बुद्धि को आकर्षित करती रही हैं। इसीलिए बच्चे पहेलिया पसन्द करते हैं, इसीलिए जगली तथा आदिम मानव काल से ये चली आ रही हैं और सभी भाषाओ का लोकसाहित्य इनसे भरापूरा है। ये अपने आप मे एक रहस्य है और साथ-साथ बाल-बुद्धि के लिए सार्थक भी है।"[2]

---

1 Folklore is the lore or learning or common sense or mother wit of the people as passed down from parent or grand-parent to child or grandchild, and that folk knowledge must be packaged and capsuled for easier transmission down through the generations

—Charles Francis Potter *Standard Dictionary of Folklore* Vol II Page 939

2 This feeling of children for riddles was explained by Maurice Bloomfield in a paper on Brahmmical riddles which he read in St Louis in 1904 at the International Congress of Arts and Sciences "From olden times, as an early exercise of the primitive mind in its adjustment to the world about it, comes the riddle .. All harmonies and fitness, all discrepancies and inconsistencies attract the notice of children and childlike man Hence children love riddles, hence savages and primitive people put them All folklore is full of them They are the mystery and at the same time the rationalism of the juvenile mind"

Ibid Page 939

भारतीय लोकसाहित्य मे प्रचलित पहेलिया जलवायु, परम्परा और रीति-रिवाजों के कारण भले ही एक-दूसरे से कुछ अलग हो, किन्तु उनकी आत्मा एक-सी है। उनका उद्देश्य एक समान है। उनके विषय—बच्चों को विविध वस्तुओ के रूप-रग, आकार प्रकार तथा गुणों की जानकारी देने, अनेक गूढ बातों को सरल ढग से समझाने तथा बाल-बुद्धि को पैनी बनाने वाले होते हैं।

आज बालसाहित्य मे विद्यमान सभी प्रमुख विधाओं का मूल स्रोत यह बाल-लोकसाहित्य ही रहा है। इसी बाल-लोकसाहित्य ने, वर्तमान बालसाहित्य की रचना तथा उसका स्वरूप निर्मित करने की प्रेरणा दी है। 'छपाई युग' आरभ होने पर जब बच्चों के लिए पुस्तकें लिखने का काम आरभ हुआ तो उसमे अधिकाश वही लिखा गया जो बाल लोकसाहित्य की निधि था। ग्रिम-बन्धुओ ने जो कथा-सग्रह किया था, वह भी बच्चो द्वारा इसीलिए पसन्द किया गया तथा अपना लिया गया, कि वह उनके ही बाल-लोकसाहित्य की निधि था, वरना उन कथाओ के सग्रह के समय ग्रिम-बन्धुओं का तो उद्देश्य भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना था और उन्होने कभी कल्पना भी न की थी कि उनका यह कथा-सग्रह बच्चो द्वारा स्वीकार होकर उन्हे अमर बना देगा।[1] आज 'ग्रिम-बन्धुओ की परी-कथाए' विश्व-बालसाहित्य की अनमोल निधि हैं।

छपाई की सुविधाओ का सबसे अधिक लाभ यह हुआ है कि एक देश का लोक-साहित्य अनेक देशो को कम से कम समय मे जा सकता है। यात्रा की दूरी मे कमी होने के साथ-साथ एक यह भी लाभ है कि वह लोकसाहित्य अपने मूल रूप में ही पहुचता है। इस प्रकार विभिन्न सस्कृतियों का आदान-प्रदान आज सुगम हो जाने से बच्चों को न केवल अपने देश की अपितु विश्व के अनेक देशों की भाषा, सस्कृति तथा साहित्य से परिचय प्राप्त होता है और इस प्रकार वे अपने बाल-लोकसाहित्य के ही माध्यम से, आरभ से ही अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओ मे रहकर, उसी स्तर की विचारधारा लेकर विकास की ओर अग्रसर होते हैं।

---

1 It is certain that they were not seeking to confer a benefit on children's literature, although this they have unwillingly done They were concerned not in the fairy tales as stories but in the light those old tales could throw on the customs and belief of early times and, through comparison of variants of the same tale, with the migrations of the Aryan family It is not, however, because of their interest to students, but because of their inherent qualities as literature that these traditional stories hold so important a place in the reading of children

—Lillian H. Smith : *'A Critical Approach to Children's [illegible]re' P[illegible]*

ससार की सभी भाषाओ का बालसाहित्य, अपने यहा के लोकसाहित्य का ऋणी है, जिसने उसकी न केवल नींव सुदृढ की अपितु उसके विकास मे भी सहायक बना। और बालसाहित्य अपने उन बच्चो तथा अनुसन्धानकर्ताओ के लिए भी ऋणी है, जिन्होने अपनी स्मरण शक्ति द्वारा वे कथाए गीत आदि सुरक्षित रखे, जो आज हमे लोकसाहित्य के रूप मे प्राप्त हुए है।[१]

भारतीय भाषाओ मे प्राप्त बाल लोकसाहित्य का विस्तृत विवेचन आगे प्रस्तुत किया गया है। इस विवेचन से उपर्युक्त स्थापना की पुष्टि, भारतीय बाल साहित्य के सन्दर्भ मे निश्चय ही हो सकेगी।

(ब) भारतीय भाषाओं के बालसाहित्य का प्रारंभिक रूप

आज की भारतीय भाषाए मूलत वे है जो प्राचीन सस्कृत, प्राकृत तथा द्रविड भाषा से निकली हैं। सस्कृत तथा प्राकृत से निकली हुई भाषाए आज भी उत्तरी तथा मध्यभारत मे प्रचलित हैं तथा द्रविड भाषा से निकली हुई भाषाए दक्षिण भारत मे बोली जा रही है। सस्कृत तथा प्राकृत से निकली हुई भाषाए असमी, बगला, गुजराती, कश्मीरी, हिन्दी, मराठी, उडिया तथा पजाबी है। द्रविड भाषा से तमिल, कन्नड, तेलुगू और मलयालम भाषाए निकली।[२] इन भाषाओ का आरभिक साहित्य वास्तव मे मौखिक ही था और उसकी सुरक्षा लोक-मानस द्वारा हो रही थी। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के शब्दो मे, "भारतीय भाषाओ का प्रारभिक साहित्य या तो गीतात्मक था या वर्णनात्मक। गीतात्मक साहित्य प्रेम अथवा उसकी तरह की अन्य अनुभूतियो, धार्मिक भावनाओ तथा व्यावहारिकता से ही मुख्यत सम्बन्धित था। वर्णनात्मक साहित्य मे उपदेशात्मक धर्मकथाए, पारपरिक कथाए, सस्कृत महाकाव्यो तथा पुराणो की कथाए आदि ही थी। बाद म मुस्लिम

1 It is the abiding memory of many children and the research of a few devoted scholars, which have preserved for our time, those humble tales which we call folklore

—Meigs, Cornelia *'A Critical History of Children's Literature'* Page 4

2 "The modern Indian Languages fall into two distinct groups, those descended from Sanskrit and Prakrits and current in North India and the Deccan, and the languages forming an independent Dravidian group and current in South India Tamil, Kannada, Telugu and Malayalam are the Dravidian or South Indian Languages Assamese, Bengali, Gujrati, Kashmiri, Hindi, Marathi, Oriya, Punjabi are descended from Sanskrit through the Prakrit or Apbhramsha dialects of Sanskrit"

—*Prof V K Golak Literatures in Modern Indian Languages* Page 9

प्रभाव के कारण इसमे फारसी तथा अरबी की भी कथाए आगई थी।' [1] इन सभी भाषाओ मे बच्चो के लिए उस समय पृथक् साहित्य नही था। लेकिन उनमे बच्चा का मन बहलाने के लिए लोकगीत, लोरिया आदि अवश्य थे। उस प्रदेश की जलवायु, रहन-सहन तथा परपरा की जानकारी देने वाली कथाए भी थी। बच्चे इन्हे सुनते थे और अपने ज्ञान का विकास करने के साथ-साथ, मनोरजन भी प्राप्त करते थे। इस मौखिक बालसाहित्य मे इतनी प्रभावक शक्ति थी कि कई सौ वर्ष बीत जाने के बाद आज भी वह उपलब्ध है। आज उसे भले ही लिपिबद्ध करके आने वाले युगो के लिए सुरक्षित कर दिया जाय, लेकिन उसकी उस मौलिक शक्ति को भी महत्त्वपूर्ण मानना होगा, जिसने उसे इतने समय तक जीवित रखा।

(१) असमिया—

असमिया ब्रह्मपुत्र की घाटी के छ जिलो मे ही प्रधानत बोली जाती है। असमिया भाषा की उत्पत्ति और इसकी वर्णमाला और लिपि के विकास मे आर्य-भाषा का ही योगदान रहा है। लेकिन फिर भी अपने आसपास की दूसरी भाषाओ के प्रभाव से यह अपने को अलग नही कर सकी।

असम का प्राचीन नाम 'कामरूप' था। कामरूप को आज भी तन्त्र मन्त्र का देश मानते हैं। पुराने जमाने मे भी इसे जादू और तन्त्र मन्त्र का घर मानते थ। असम की महिलाओ के बारे मे अनेक दन्तकथाए प्रचलित हैं, जो यह सिद्ध करती है कि वे जादू जानती है और उसके बल पर आदमी को भेड या बकरी बनाकर रख लेती है। [2] जो कुछ भी हो, असमी की लोक-कहानियो तथा लोक-गीतो म

1 The early literatures in the modern Indian Languages were either lyrical or narrative The lyrical writings dealt, naturally enough, with love and other similar sentiments or with religious devotion, subjectively, and the narratives treated objectively mythological and traditional tales and themes from the Sanskrit epics and Puranas, from local cults and also from Persian and Arabic legends under Muslim inspiration

—Dr Suniti Kumar Chatterjee *Literatures in Modern Indian Languages* Page 40

2 Kamrupa is still believed to be the home of spells and charms, of magic and witchcraft—'Tantra Mantrar Des' and stories are circulated all over India attributing to Assamese women the supernatural power of converting a man into a lamb

— Dr Surya Kumar Bhuyan
Literature in Modern Indian Languages Page 53

इस वातावरण की छाप अवश्य मिलती है। इसलिए असमी जीवन तथा वहा के लोगो के जादू और मत्रो की कथाए देश के अन्य भागो के बच्चो के लिए निश्चय ही आकर्षण रही है।

असमी मे बच्चो के लिए पृथक् रूप से आरम्भ मे कोई साहित्य नही लिखा गया। पुस्तको की छपाई शुरू हो जाने के बाद भी इस दिशा मे ध्यान नही दिया गया। इस तरह आरभ मे असमी का बालसाहित्य उन कहानियो, गीतो तथा लोरियो के रूप मे मौखिक ही रहा, जिसे बच्चे अपने बडो से सुनते थे, फिर स्वय बडे होकर अपने बच्चो को सुनाते थे। दूसरे शब्दो मे, असमी का आरभिक बाल-साहित्य लोकसाहित्य के साथ साथ अदृश्य रूप से चलता रहा। लेकिन आज, जबकि उस बाल-साहित्य का अधिकाश भाग लिपिबद्ध हो चुका है और हो रहा है, उसे देखने से पता लगता है कि उसमे बालसाहित्य के अनेक मौलिक गुण थे।

इन कथाओ मे आसाम के जादू, वहा के नागा जीवन तथा पूर्वजो से सम्बन्धित विश्वासो की झलक मिलती है। इसी तरह के लोक विश्वास और लोक-मान्यताए असमी के आरभिक बालसाहित्य मे थी और वे बच्चो के मन पर अपना प्रभाव डालती थी। आज भी ऐसी अनेक मान्यताए व विश्वास वहा के जीवन मे व्याप्त हैं। ये परपराए और विश्वास तथा उनसे सम्बन्धित कहानिया असमी बाल-साहित्य के प्रारभिक रूप का स्पष्ट परिचय देती हैं। अनेक कहानिया ऐसी है जो 'पचतत्र' तथा 'जातक कथा' से प्रभावित या परिवर्धित भी हैं। लेकिन इस परि-वर्द्धन मे असम की पूरी छाप आ गई है और वे वही की कहानिया बन गई हैं।

(२) उड़िया—

"प्राचीन उडिया साहित्य मे लोरिया और शिशु-गीत दसवी शताब्दी तक की पुस्तको मे मिलते है। इनमे से कई तो सभवत उडिया भाषा के आरभिक रूप मे जन्मे होगे। भाषान्तर तथा युग-परिवर्तन के कारण आज भले ही वे अपने वास्तविक रूप मे नही हैं,"[१] लेकिन उनसे इतना सिद्ध है कि वे आरभ मे मौखिक रहे होगे और बाद मे साहित्य का अग बने। उडिया की कुल आबादी की एक तिहाई जनता आदिवासी है। इनका अभी तक कोई लिखित साहित्य नही है और इनमे से कुछ आज भी पत्ते पहनते हैं, फल-कन्द-मूल आदि खाते है तथा अपनी पुरानी परम्पराओ तथा विश्वासो के आधार पर ही जीवन बिताते है। इनके पास आज भी अपने परम्परागत गीत तथा गाथाए हैं और वे ही इनका मनोरजन करती हैं।[२]

---

1. Prof Binod Chandra Naik, Sundargarh College, Sundargarh From his article, '*Children's Literature in Oriya.*'

2 ......has a population of 15 millions, one third of which are aborgines i e Santal, Bhuyam, Koya, Kandha, Paraja, Gadhaba, Juanga, Saura, Gonda, Damba, etc. Some of

उडिया लोक-साहित्य पर अध्ययन कार्य अभी चल रहा है। श्री गोपालचन्द्र प्रहराज ने लोक-कथाओ की खोज करने मे सबसे अधिक उल्लेखनीय कार्य किया है। उन्होंने लोककथाओ मे दो भाग किए हैं—एक तो वे जो प्रौढो के लिए उपयोगी हैं और दूसरी वे जो बच्चो के लिए है।[1] श्री प्रहराज ने उडिया लोकगीतो पर भी काम किया है और उनके विभिन्न रूपो मे एक भाग खेल कूद के गीत, शिशु-गीत, गीत-कथा आदि का भी रहा है।[2] ये दोनो विभाजन प्राचीन उडिया भाषा मे, लोक मानस मे प्रचलित बालसाहित्य का स्वरूप स्पष्ट करने मे सहायक हुए हैं। अब तक प्रकाशित उडिया लोक-कथासाहित्य का अध्ययन करने से पता लगता है कि उसमे मनोरजन तथा शिक्षाप्रद तत्त्व तो हैं ही, साथ ही बच्चो के लिए खेल खेल मे दुहराने के लिए गीत अथवा कुछ वाक्य ऐसे भी मिलते हैं, जो उसकी मनोवैज्ञानिक आधारभूमि की पुष्टि करते हैं।

उडिया भाषा मे अनेक ऐसी कथाए व गीत-कथाए है, जिनमे बच्चो की रुचि और मनोरजन की सामग्री है। लिखित बालसाहित्य से पूर्व विद्यमान इस मौलिक बालसाहित्य मे जीवन के अनेक अनुभव तथा कथानक समाहित है। बनिये का विदेशो मे व्यापार करने जाना, तत्कालीन सती प्रथा आदि जैसी प्राचीन परम्पराओ का भी परिचय इन कहानियो से मिलता है। उडिया लोकसाहित्य के अध्ययन-अनुसधान का काम अभी चल रहा है और आशा है कि भविष्य मे और भी अधिक महत्त्वपूर्ण कृतिया सामने आएगी जिनसे कई उपयोगी निष्कर्ष निकलेंगे।

(३) कन्नड—

कन्नड का लोकसाहित्य, कन्नड भाषा से भी पुराना है। लेकिन उस युग की रचनाओं का प्रामाणिक रूप नही मिलता है।[3] फिर भी इतना तो निश्चित ही

these tribes are still to backward that they put on leaves, live upon forest prints and roots, have hunting as their chief livelihood and have queer customs and strange superstition's These people have no written literature They have only folk songs and folk tales —Kunj Behari Das

1. *Studies in Indian Folk Culture* . Editors Sankar Sen Gupta & K D Upadhyaya From the article, '*A Glimpse in to the Oriya Folk Literature*' By Kunj Behari Das Page 137
2. *Ibid*, Page 139
3. And this, we have to remember, has no reference to folk poetry which, after all, is in truth the earliest poetry in any language. There must have been such poetry among the people for, a later, poet, asserting his superiority, asked if his work was a dunduchi or beedivare or bearana kathe —Masti Venkatesa Iyengar *Literature in Modern Indian Languages* Page 83

है कि जनजीवन के 'मनोरंजन और अनुभवों' के आदान-प्रदान के लिए लोकसाहित्य-प्रणयन की प्रक्रिया चलती ही रही। आज जो कन्नड लोकसाहित्य उपलब्ध है, उसका मूल्यांकन करने पर सिद्ध होता है कि उसकी जड़ें निश्चय ही अतीत के गर्भ में हैं और युगों से वह अपने वर्ग विशेष का मनोरंजन तथा ज्ञानवर्धन कर रहा है। बच्चों के लिए जो गीत तथा कथाएं वहां प्रसिद्ध हैं, उनमें यह छाप स्पष्ट दिखती है। कन्नड लोकसाहित्य का इतना व्यापक प्रभाव आज भी है कि इसने कई वर्तमान प्रसिद्ध लेखकों को प्रभावित किया है जिसका विस्तृत विवेचन हम आगे प्रस्तुत करेंगे। लेकिन इस लोकसाहित्य की खोज से यह अवश्य ही पता लगा कि कन्नड संस्कृति कितनी धनी है।[1]

कन्नड लोकसाहित्य में प्रचलित शिशु गीतों तथा लोरियों पर वहां के जीवन, धर्म तथा सांस्कृतिक परम्पराओं की पूरी छाप है। उनमें बाल सुलभ प्रवृत्ति का भी समावेश है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत लोरी है—

या अलवे एले रंगा।
बेकादुनिन्गीवे नालवेम्मे करेदा मोरेहालु सक्करे।
नी केले दाग कोलुवे।

इस लोरी में मां बच्चे को सुलाती है और उसे रंगा अर्थात् कृष्ण का प्रतिरूप मान कर समझाती है कि तुम क्यों रोते हो? तुम तो जो मांगोगे वही दूंगी। चार भैंसों के निकाले हुए फेनसहित दूध में शक्कर डालकर तुमको दूंगी। इसमें 'बालक' की कल्पना को कृष्ण के माध्यम से व्यक्त करना, कृष्ण की बाल लीलाओं का प्रभाव ही है। कन्नड प्रदेश में कृष्ण भक्ति के प्रभाव को व्यक्त करने वाली एक अन्य लोरी में मां बालक को झूले में झुलाती है और सुलाने का प्रयत्न करती हुई कहती है—

जो जो कृष्णा परमानन्दा।
आलदेलेय मेले मलगिरुव शिशु वे
यार कन्दइयनो यार माणिक्यवो
जो जो कृष्णा ।
गुणनिधिए निन्ननु यन्ति कुण्डिद्दरे
मनेयकेलसवनो माडोवरारइ
जो जो कृष्णा परमानन्दा।

---

1 The revival of folk poetry, in which Bendre and Madhur Chenna played a pioneering role, was in itself an inspiration for balladic lyrics and songs The old inscriptions and herostones yielded up our history Folk tales and proverbs were discovered to be the repositories of our culture when they were collected and published

V K Gokak *Kannada Literature* From '*Contemporary Indian Literature*', Sahitya Akademi, Delhi Page 105

इस लोरी मे 'जो' शब्द बच्चो की ही भाषा का शब्द है जिसे वे आरभ मे बोलते है। मा कहती है कि "हे कृष्ण, हे परमानन्द, तुम इस समय उसी तरह सो रहे हो जैसे महाप्रलय के समय बरगद के पत्ते पर सोते हो। तुम किसके लाल हो, मेरे शिशु ! तुम किसके माणिक हो ? तुम तो गुणनिधि हो। तुमको अगर गोद मे लेकर रहूगी तो घर का काम काज कौन करेगा ? इसलिए तुम सो जाओ।" इस अतिम वाक्य मे मा द्वारा बालक से अपनी विवशता का कथन और उसे मनाने के लिए आरभ मे की गई प्रशसा, बाल-सुलभ प्रवृत्तियो तथा वात्सल्य-भावना के अनुरूप है।

कन्नड भाषा की लोककथाओ मे वहा के जीवन तथा सस्कृति का स्वरूप द्रष्टव्य है। कन्नड लोककथाओं मे विजयनगर के महाराज श्री कृष्णदेव राय के दरबार के विदूषक तेनालिरामन् का मुख्य स्थान है। उसकी स्थिति वही है जो उत्तर भारत मे बीरबल की है।

तेनालिरामन् की अनेक कहानिया कन्नड के बालको का, सैकडा साल से मनोरजन कर रही हैं। कन्नड साहित्य, बच्चो के लिए प्रस्तुत इस रोचक भौतिक साहित्य के लिए धनी है। इन कहानियो मे भरपूर मनोरजन के साथ-साथ बच्चो के लिए चतुराई की बातें भी है, जो उनकी बुद्धि को पैनी तथा समस्याओ को हल करने योग्य बनाती है।

(४) कश्मीरी—

कश्मीरी भाषा अपनी लोककथाओ तथा लोकगीतो के लिए धनी है। अनेक कथाए तो वही जन्मी हैं और वे आज भी अपने विशुद्ध रूप मे हैं। बच्चो का कश्मीरी लोग ऐसी अनेक कथाए सुनाते थे और आज भी सुनाते हैं जिनसे वहा के जीवन, प्रकृति तथा सस्कृति का परिचय मिलता है। वहा की लोककथाओ मे वर्णित 'हुमा' चिडिया बच्चो के लिए आकर्षण की पात्र रही है। इसी तरह लोक विश्वासों मे भी 'हुमा' बहुत भाग्यशाली, शुभ तथा विशेष गुणो वाली मानी गई है। कश्मीर मे उल्लू को जादू सिखाने वाला माना गया है। तोते को चालाक पक्षी माना गया है। इस तरह ये पक्षी बच्चो मे, इन कथाओ के माध्यम से, आरभ से ही अपना एक पृथक् रूप निश्चित कर लेते हैं।

प्रादेशिक लोक-कथाओ के अतिरिक्त कश्मीर के बच्चो के लिए, विदेशी लोककथाए भी प्रचलित है। अली बाबा चालीस चोर, हातिमताई, आदि फारसी कहानियो के अतिरिक्त चीनी तथा अन्य भाषाओ की भी कथाए मिलती है। ये कहानिया विदेशी आक्रमणो के परिणामस्वरूप आई। किन्तु इन से कश्मीरी का बालसाहित्य धनी ही हुआ, क्योकि इस बहाने बच्चो को विदेशो के बारे मे भी जानने को मिला।

(५) गुजराती—

गुजराती का बालसाहित्य बहुत समृद्ध है। इसका मूल कारण यही है कि उसकी आधारभूमि स्वस्थ लोकपरक बालसाहित्य द्वारा तैयार की गई है। वहा अनेक ऐसे ऐतिहासिक कथानक लोकमानस मे प्रचलित हैं, जो बच्चो को कहानिया के रूप मे सुनाए जाते हैं और उनके जीवन को परिष्कृत करने का प्रयास करते हैं। अनेक ऐसी लोककथाए प्रचलित है जो बच्चो को मनोरजन देने के साथ साथ गुजरात के इतिहास तथा वहा के जीवन का परिचय प्रस्तुत करती हैं। इन्ही कथाओ ने गुजराती बालसाहित्य को वह शक्ति दी, जिससे वह आगे बढ सका।

(६) तमिल—

दक्षिण भारत की भाषाओ मे तमिल सबसे प्राचीन भाषा है। स्वाभाविक ही है कि इसमे बच्चो के लिए भी कहानिया तथा गीत प्रचुर माना मे हैं, चाहे वे आरभिक युग मे मौखिक रहे हो। आज के लोकसाहित्य की अनेक रचनाए, तमिल भाषा के आरभिक बालसाहित्य के स्वरूप को स्पष्ट करती हैं। तमिलनाड मे कहानियो द्वारा बच्चो को अनेक नैतिक मूल्यो से परिचित कराने की परम्परा-सी रही है। यही कारण था कि रामायण, महाभारत, भागवत, पचतत्र, ईसप कथाए तथा 'अलिफ लैला' की कहानिया, अपने लोकपरक-स्वरूप मे आज भी प्रचलित हैं। कन्नड की ही भाति तमिल मे भी बाल-कहानियो का सबसे रोचक पात्र 'तेनालिरामन्' है। तमिल मे अनेक ऐसी कहानिया सैकडो वर्षों से प्रचलित हैं, जिनमे तेनालिरामन् की बुद्धिमत्ता का परिचय मिलता है साथ ही उसे पढकर बच्चे प्रसन्न होते है।

तमिलनाड मे प्रसिद्ध लोककथाए अधिकाशत उपदेशात्मक और जीवन के अनुभवो से परिपूर्ण हैं।

(७) तेलुगू—

तेलुगू के पौराणिक साहित्य की अपेक्षा तेलुगू लोकगीत आध्र की सस्कृति का स्वरूप अधिक स्पष्ट ढग से प्रस्तुत करने मे समर्थ हैं। इसका कारण यही है कि वहा की राष्ट्रीय कविता तथा लोगो मे कोई अन्तर नही है। वास्तव मे इन लोकगीतो ने शक्ति तथा उमग की भावना तेलुगू जनता से ही ली है। इसीलिए इनमे धार्मिक आन्दोलन, वीरतापूर्ण कार्य, सन्त पुरुषो की कहानिया, रीतिरिवाज तथा परम्पराओ, विश्वास तथा मान्यताओं, मनोरजन, प्यार और विरक्ति, सौंदर्य तथा धन, दुख तथा विषाद प्रतिध्वनित होते हैं।[१]

---

1 Telugu Folksongs can represent better, the culture of Andhras, than the Telugu classical literature, because there is no gulf between this national poetry and the people As a

बच्चों के लिए परम्परागत लोकगीत उतने ही कोमल हैं, जितने बच्चों के मस्तिष्क होते हैं। वे उतने ही आनन्द देने वाले हैं, जितने बच्चा के चेहरे सुखद होते हैं। इन लोकगीतों को दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है—एक तो बडो द्वारा बच्चो के लिए बनाए गए गीत हैं। और दूसरे बच्चो द्वारा स्वय बनाए गए तथा परम्परागत रूप से चल रहे गीत हैं। पहले प्रकार के गीतों के भी दो भाग हैं—'लाली पटातू' अर्थात् बच्चों को दुलराने के गीत और 'जोला पटालू' अर्थात् लोरिया। इन गीतो को गाते समय माताए अपने बच्चो को राम या कृष्ण या शकर का प्रतिरूप मान लेता हैं और फिर गीत गाती हैं।[२]

लालनुचु पाडरम्मा ई बिड्ड लक्ष्मीविलासुडम्मा
पादमनु चक्रमम्मा ई बिड्ड वेदातवेद्युडम्मा
वेणु नादवुतोनू ई बिड्ड वेदमुलू पाडुनम्मा।

यह लोरी बालक को विष्णु भगवान समझकर गायी गई है। उसके पैरो मे चक्र हैं जो कि उसके अलौकिक होने के लक्षण हैं। वह अपनी बासुरी पर वेदो की ऋचाए गाएगा।

इन गीतो मे सगीत का पुट होता है और इसलिए ये बाल मन को लुभाने की क्षमता रखते हैं। इन गीतो का अर्थ बच्चे पूरी तरह सभवत नही ही समझ पाते, लेकिन इन्हे गाते समय इनकी लयात्मकता उनके मन को डुबा लेती है और वे सुखद नीद के झूले मे झूलने लगते हैं।

दूसरे प्रकार के गीत, जिन्हे बच्चा ने खेल-खेल के निर्मित किया है, बहुत रोचक हैं। इनम से अधिकाश गीत विभिन्न खेलो जैसे 'चम्मचक्क,' 'विक्ति,' 'गुडुगुडुगुचम्' आदि से सम्बन्धित हैं।

तेलगाना मे एक विशेष पर्व मनाया जाता है जिसे 'बाड्डेम्म पाटलु' कहते है। इस अवसर पर बच्चो के गीत विशेष महत्त्व के होते है।

इस प्रकार तेलुगू भाषा के लोकसाहित्य मे अनेक ऐसे बाल-गीत हैं जो विभिन्न स्थितियो की अभिव्यक्ति के लिए लिखे गए हैं। ये गीत बच्चो की आयु के अनुसार बदलते जाते हैं। वास्तव मे आरम्भ मे जो गीत सिखाए जाते है, उनमे वे ध्वनिया होती हैं जिन्हे बच्चे बोलते हैं। फिर जैसे-जैसे वे बडे होकर गीत याद

---

matter of fact these folk songs have drawn vigour and rejuvenation from the life of the Telugu people, and as such they echo the religious movements, heroic deeds, stories of saintly persons, customs and manners, traditions and beliefs, entertainments, love and separation, beauty and wealth, sorrow and grief, in short all the facts of national life of Andhras in simple and sweet notes

B Rama Raju *Studies in Indian Folk Culture* Pages 54 55

2 *Ibid*, Page 57.

करके गाने लगते है, उन्हे उसी तरह के गीत सिखाए जाते है।

तेलगू मे बच्चो के लिए अनेक कथाए भी प्राचीन काल से प्रचलित रही हैं। इनमे 'चीटी की कहानी,' 'मक्खी की कहानी,' 'मछली की कहानी,' 'चूहे की कहानी' आदि बच्चा का मन खूब बहलाती हैं। वास्तव मे ये कहानिया हास्य और कौतूहल से पूर्ण होने के कारण ही इतनी लोकप्रिय हैं। इनसे बच्चो का मनोरजन होने के साथ साथ उनकी कल्पना तथा स्मरण शक्ति का भी विकास होता है।[१]

(८) पजाबी—

पजाबी लोकसाहित्य मे भी बच्चो के मनोरजन तथा ज्ञानवर्धन के लिए अनेक लोकगीत तथा लोककथाए है। लोकगीतो मे जहा लोरिया तथा बच्चो का मन बहलाने वाले गीत है, वही खेल-कूद तथा मनोरजन के गीत, पहेलिया आदि है। इन गीतो मे पजाब का जीवन, वहा की मान्यताए तथा बच्चों के प्रति बडो की भावनाए द्रष्टव्य हैं।

लोरी लक्कडें तेरी मा सदक्कडे ऊ ' ऊ ''ऊ।
उड्ड वे कावा तैंनू चूरी पावा, आ निक्किआ, तैंनू खुआवा ऊ'' ऊ'''ऊ।
लोर मलोरी दुद्द कटोरी, पी लैं निक्किआ, लोका तों चोरी ऊ'' ऊ ''
निक्के दी वहुटी मैं ढूढ के लभ्भी, पैरी पौंचीआ वाहवा फब्बी ऊ ' ऊ '
लोरी देनी हा चढके छज्जे, निक्के दी कचहिरी गज्जे, ऊ ' ऊ ऊ ''
लोरी लाला, घर भरिआ वाला, काके दा आखा मैं मूल न टाला ऊ'''ऊ।[२]

अर्थात् ऐ मेरे बेटे, तुम्हारी मा तुम पर बलिहारी है। तू अब सो जा। ऐ कौवे, यदि तू उड जाए तो मैं तुम्हे घी की रोटी खिलाऊगी। ऐ मेरे बेटे, इस छोटी सी कटोरी मे दूध पी ले, लेकिन किसी के सामने मत पीना वरना तुझे नजर लग जाएगी। मैं छत के ऊपर चढकर तुम्हे लोरी सुनाती हू और सुन ! एक दिन तू बडा होकर न्यायाधीश बनेगा। ऐ बेटे, घर सारी चीजो से भरा हुआ है। तू माग क्या मागता है ? तुम्हारे लिए किसी चीज की कमी नही है।

खेल कूद के गीत पजाबी के आरम्भिक बालसाहित्य का रूप स्पष्ट करने मे बहुत सहायक तथा प्रेरक हुए हैं। इनसे पजाबी बच्चो के खेलो का भी परिचय मिलता है। प्रस्तुत गीत इसी प्रकार है—

चीचो चीच कचोलीआ घुमियारा दा घर किथे जे ?
ईचकना पर मीचकना, नीली घोडी चढ यारो।

---

1 Kavi Rao From his unpublished article '*Literature for Children in Telugu*,' compiled in the book '*Literature for Children in India*'

२ श्री देवेन्द्र सत्यार्थी 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास', सोलहवा भाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ ५३१ प्रथम सस्करण।

भडा भडारिया कितना कु भार, इक्क मुट्ठी चुक्क लै दूजी तू तिआर
लुक छिप जाना, मकई दा दाना, राजे दी बेटी आई जे।[१]

पजाबी लोककथाओं के बारे मे श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का मत है कि "इनमे जिज्ञासा मानो रगमच से पर्दा उठाकर सारी जीवन लीला देख लेना चाहती है। जन्म मरण का समूचा रहस्य जानने की प्रवृत्ति लोककथा की घुट्टी मे मिली रहती है। सियार और भेडिए, बैल और कौवे तथा न जाने कौन कौन-से पशु-पक्षी लोककथा के परिवार के सदस्य दीखते हैं। गावो मे लोककथा को चिरकाल से प्रतिष्ठा का पद प्राप्त है।"[२] इन लोककथाओ का लाभ उठाने मे तथा इनमे इसे लेने मे बच्चे भी पीछे नही रहे। बच्चों के लिए इनमे कौतूहल और मनोरजन का भडार रहा है। पजाबी मे ऐसी अनेक कथाए हैं जो गीतो के माध्यम से क्रमबद्ध कथानक लेकर चलती हैं।

(६) बगला—

बगला भाषा का बालसाहित्य बहुत समृद्ध है। उसमे प्रचलित बच्चो के पारपरिक गीतो के बारे मे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है—"बगला भाषा में शिशुओं को बहलाने के लिए स्त्री-गीतों के जो बोल प्रचलित है कुछ समय से मैं उनके सग्रह मे जुटा हुआ था। हमारी भाषा और समाज के इतिहास-निर्णय की दृष्टि से इन गीतो का विशेष मूल्य हो सकता है। किन्तु इनमे जो एक सहज स्वाभाविक काव्य रस है, वही मेरे निकट अधिक आदरणीय बोध हुआ है ..... शिशु गीतो और लोरियो मे मुझे रस आता है। उन्हें बाल्यकाल की स्मृति से विलग करके देखना मेरे लिए असम्भव है और कितना साहित्य के चिरस्थायी आदर्श पर अवलम्बित है, इसका निर्णय करने की उपयुक्त शक्ति वर्तमान लेखक मे नही है। 'पानी बरसा टापुर टापुर नदी मे आई बाढ।' यह गीत बाल्यकाल मे मेरे निकट मोहमत्र के सदृश था और उस मोह को मैं अभी तक भूल नही पाया। मन की वही मुग्ध अवस्था स्मरण करके देखने से मैं बूझ ही नही सकता कि इन गीतों का माधुर्य और उपयोग क्या है? इन गीतो मे एक चिरत्व है। किस का किस समय कौन रचयिता था, इस दृष्टि से परिचय मात्र नही तथा किस सम्वत् की किस तारीख को किसकी रचना हुई थी, यह प्रश्न ही किसी के मन मे नही उठता। इसी स्वाभाविक चिरत्व के कारण ये आज रचित होने पर भी पुरातन हैं और सहस्र वर्ष पूर्व रचित होने पर भी नूतन।"[३]

---

१ श्री देवेंद्र सत्यार्थी, 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास', सोलहवा भाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ ५३२।

२ वही, पृष्ठ ५२१।

३. गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर 'शिशु गीतो की आदिम सुकुमारता', श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के निबन्ध से। 'राष्ट्रवाणी,' जनवरी १९५८, पृष्ठ ७।

इस सन्दर्भ मे श्री देवेन्द्र सत्यार्थी की यह टिप्पणी भी विचारणीय है— "शिशु-गीत की आदिम सुकुमारता की टोह में रवीन्द्रनाथ की दृष्टि हमारा पथ-प्रदर्शन कर सकती है। इसी दृष्टि से हम अपने देश के शिशु-साहित्य का राष्ट्रीय मूल्य आंक सकते हैं। प्रत्येक भाषा, प्रत्येक जनपद शिशु-साहित्य से मालामाल है। पर इसके संग्रह और अध्ययन की ओर हम अधिक ध्यान नही दे पाए। यही वह आदिम साहित्य है जिसे हम युग-युग से मा के दूध के साथ पीते आए हैं। इस पर देश की आत्मा की छाप है। इसमे हमारी मिट्टी के अंकुर विहसते हैं।"[१]

बंगला लोककथाओ मे भी प्राचीन धार्मिक मान्यताए, परपराए तथा रहन-सहन और विश्वासो की सुन्दर झलक मिलती है। धार्मिक और नीतिकथाओ के माध्यम से बच्चो का मन बहलाने के साथ-साथ उन्हे जीवन-अनुभव प्रदान करने का काम सैकडों वर्षों से हो रहा है। अनेक लोक कथाए ऐसी हैं जो मौखिक रूप से पीढी को विरासत रूप मे मिलती रही हैं। ये सभी बंगला-बालसाहित्य के आरंभिक रूप का प्रतिपादन करने के साथ-साथ उसकी समृद्धि की भी द्योतक हैं।

(१०) मराठी—

मराठी बालसाहित्य का भी बालरूप बाल-लोकगीतों मे ही मिलता है। ये गीत हैं—'शिशु गीत,' 'खेल के गीत,' 'झूला के गीत'। मराठी बच्चो के लोकगीतो मे लयात्मकता का प्राधान्य है। शिशु-गीतो मे कुछ तो ऐसे हैं जिनका कोई अर्थ नहीं है, लेकिन उनकी लयात्मक्ता के कारण ही उनका महत्त्व होता है। कुछ शिशु-गीतो मे बच्चो को शिक्षा देने का भी भाव मिलता है। जैसे—

नको करू बाल मातेची हेल्णा
नयनाचा दिवा तलहाताचा पाल्णा।

अर्थात् अपनी माता के प्रति उपेक्षा का व्यवहार मत करो। उसी ने तुम्हे रात-रात जागकर और अपनी आखों का दिया जलाकर पाला है और अपनी बाहों मे झूला झुलाया है।

बाप जी चन्दन घासलीया वास्त
आईचा सुवास आपोआप
माउली असावी रानीच्या पाखरास
चोची ने त्यास चारा भरविते

अर्थात् पिता चन्दन जैसे अपने शरीर को घिस कर अपने बच्चे को पालता है। और उसे अपनी मा की सगत मिलती है। छोटे-छोटे वन के पक्षियों को उन की मा उनको दाना खिलाती है वैसे ही माता-पिता अपने बच्चे को पालते हैं।

महाराष्ट्र मे लड़किया गुड्डे-गुड़ियो का खेल खेलते समय अनेक गीत गाती

---

१. गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर . 'शिशु गीतो की आदिम सुकुमारता', श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के निबंध से, 'राष्ट्रवाणी', जनवरी १९५८, पृष्ठ ७।

हैं। इनमे नाटकीयता भी होती है। कुछ लडकिया दूल्हे की ओर से आती है और कुछ लडकी वाली वन जाती हैं। इस तरह फिर विवाह होता है। गुड्डे-गुडियो के खेल के समय गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है—

हडा हडा पाणी
सीपी सीपी सोणी
राजा बोलावितो
कन्या घडविलो
राजाला मूल झालें
नाव काय ठेवू बाई
नाव काय ठेवू
नाव ठेवा गोपाल
शेरभर साखरेचा चोपाल
विहीणी वाई विहीणी वाई न्हायाला चला,
आम्ही नाही येत आम्ही नाही येत
आल गोटा निल गोटा विहिणी वाईचा ठणकाचा मोटा

मराठी बाल-लोक गीतो की भाति मराठी-लोक कथाए भी बच्चो का मन बहलाती रही हैं।

(११) मलयालम—

मलयालम भापा का लोकसाहित्य, वहा की वहुरूपी सस्कृति, परम्पराओ और धार्मिक मान्यताओं से पूर्णत प्रभावित है। मलयालम के बालसाहित्य का आरभिक रूप भी इसी प्रभाव मे रचा जाना अस्वाभाविक नही है। लेकिन आरभ मे वहा शिशु गीत तथा लोरिया ही रची गईं। लोककथाओ के माध्यम से मलयालम-सस्कृति, वच्चो तक पहुचाने का प्रयास अवश्य हुआ है। जाति तथा धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने वाली कथाए भी वहुत प्रचलित हैं, जो वच्चो को आरभ से ही कट्टर-धर्मानुयायी वनाने का प्रयास करती रही है।

इस सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि लगभग सभी भारतीय भापाओ के बालसाहित्य का आरभिक रूप, उस भापा के लोकसाहित्य मे निहित था। आज वह लोकसाहित्य भले ही अपने मूल रूप मे न हो, लेकिन जो भी रचनाए उपलब्ध है, उनसे इस कथन की पुष्टि निश्चित ही हो जाती है। यहा यह भी स्पष्ट कर देना उचित ही होगा कि यह समस्त वाल-लोकसाहित्य वडो द्वारा ही लिखा गया था, लेकिन इसके पारपरिक विकास का कार्य उन बच्चों द्वारा ही हुआ, जिन्होने उसे सुना और बडे होने पर अपनी भावी सन्तानो को सुनाते रहे। इन सभी भापाओ के वालसाहित्य की प्रगति तथा विकास के सम्बन्ध मे आगे विस्तार से विचार किया जायगा। यहा इतना उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा कि प्रगति और विकास की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देने का कार्य भी इसी बाल-लोकसाहित्य

ने दिया। हिन्दी बालसाहित्य के आरंभिक रूप पर हम अलग से विचार प्रस्तुत कर रहे है।

(ख) हिन्दी बालसाहित्य का प्रारंभिक रूप

अन्य भारतीय भाषाओं की ही भांति हिन्दी भाषा का भी बालसाहित्य, लोकसाहित्य के अन्तर्गत ही अपने प्रारंभिक रूप मे मिलता है। यो उस समय संस्कृत की अनेक पुस्तकें—जैसे 'पचतत्र,' 'सिंहासन द्वात्रिशिका' और 'वैताल पच-विंशतिका' प्रसिद्ध थीं, किन्तु ये पुस्तकें प्रबुद्धवर्ग तक ही सीमित थी। सामान्य लोकजीवन मे, अनुभव और ज्ञान तथा मनोरंजन की अभिव्यक्ति के लिए लोक-गीत एव लोककथाए ही प्रचलित थी। हिन्दी की सभी बोलियो में इस तरह का साहित्य उपलब्ध है, जो युगो से बच्चो को नीति, धर्म और संस्कृति की शिक्षा देने के साथ उनका मनोरंजन कर रहा है। यह बाल लोकसाहित्य भले ही शुद्ध एवं परिष्कृत रूप मे न रहा हो, जैसा कि आज उसे देखने से लगता है, किन्तु उसमें बच्चों के जीवन को प्रशस्त तथा सुखी बनाने की कामना अन्तर्निहित थी, इतना तो निश्चित ही स्वीकार करना होगा। आज उसे 'खड़ी बोली' के सौन्दर्य के सामने भले ही वह साहित्यिक सम्मान न मिले, परन्तु उसने हिन्दी बालसाहित्य को जीवित रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य तो किया ही है। इस बाल-लोकसाहित्य की रचना मे बच्चो की रुचि तथा उसके मनोविज्ञान का भी सदैव ध्यान रखा गया है। आगे हम विभिन्न बोलियों मे विद्यमान बाल-लोकसाहित्य मे इस तथ्य को स्पष्ट रूप से देख सकते है।

(१) अवधी—

अवधी भाषा के लोकसाहित्य मे अनेक कथाए और गीत ऐसे हैं जो बच्चों का मनोरंजन करने के साथ-साथ उन्हे अनुभव-ज्ञान भी देते थे। ये कथाएं और गीत समय तथा वातावरण के अनुकूल परिवर्तित एव परिवर्द्धित भी होते रहे हैं। बडे लोग समय-समय पर इन्हे बदलकर इसलिए सुनाते थे कि बच्चे बड़े होने पर उस सामाजिक वातावरण के साथ तादात्म्य स्थापित कर लें।

अवधी भाषा मे प्रचलित लोककथाओं मे से बच्चो के लिए निम्नलिखित वर्ग की कथाएं स्वीकार की जा सकती हैं—

१ सृष्टि की कथाए
२ देवताओ, राक्षसो और भूतों की कथाएं
३. चमत्कार की कथाएं
४. साहस की कथाए
५. ठगी और धोखे की कथाए
६. पशु-पक्षियो एव पेड़-पौधो की कथाए

७ हाजिर जवाबी और चालाकी की कथाए ।[1]

१. सृष्टि की कथाए—इनमे अधिकाशत धार्मिक कथाए आती है, जो विभिन्न अवतारों से सम्बन्धित होती है—जैसे वामनावतार, वाराह अवतार, नृसिह अवतार, कच्छप अवतार आदि।

२ देवताओ, राक्षसो और भूतो की कथाए—इनमे वास्तव मे लोक विश्वासो को अभिव्यक्त करने वाली कथाए आती हैं। घर-घर के देवता, देवी आदि की मान्यताओ सम्बन्धी कहानिया, भूत, चुडैलो आदि से सम्बन्धित अन्धविश्वास की कहानिया बहुत प्रचलित हैं किन्तु जैसे-जैसे इनकी सत्यता पर सन्देह होता जा रहा है, वैसे-वैसे प्रमाणो के आधार पर ये लोकजीवन से दूर होती जा रही हैं।

३ चमत्कार की कथाए—इनमे जादू टोने से सम्बन्धित कहानिया ही आती हैं। लेकिन इस विज्ञान युग मे इनका भी महत्त्व कम होता जा रहा है। भूतो-राक्षसो, चमत्कार, जादू आदि की कथाए इस बात का अवश्य ही प्रमाण प्रस्तुत करती हैं कि किसी समय निश्चय ही लोकजीवन मे इनका महत्त्व था। लेकिन ये बच्चो के लिए बहुत हानिकारक थी, क्योकि ये उनके मन मे भय का सचार करती थीं। इस तथ्य को जानते हुए भी लोग उन्हे सुनाते थे और बच्चो के मन मे कौतूहल उत्पन्न करते थे।

४ साहस की कथाए—शौर्य और पराक्रम से सम्बन्धित कथाए इसी वर्ग मे आती हैं। ये कथाए निश्चय ही बच्चो के मन मे साहस और वीरता का सचार करने मे सहायक होती थी।

५ ठगी और धोखे की कथाए—इस प्रकार की अधिकाश कथाए अनुभव के आधर पर निर्मित होती थी। ठगी और धोखे की क्रियाओ से सावधान रहने के लिए बडे बूढे ऐसी कथाए बडे रोचक ढग से सुनाते थे।

६ पशु-पक्षियो एव पेड-पौधों की कथाए—इस वर्ग मे अधिकाशत वे कथाए आती हैं जो या तो तोता-मैना जैसे पक्षियो से सम्बन्धित होती हैं या फिर जिनमें पक्षियो को ही पात्र बनाकर कथा कही जाती है। पेड-पौधो की कथाओं मे धार्मिक विश्वासो से सम्बन्धित कथाए ही अधिकाश हैं।

७ हाजिर जवाबी या चालाकी से सम्बन्धित कथाए—ये कथाए अधिकाशत वे है जो 'बीरबल के चुटकुलो' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त निजी अनुभव ज्ञान पर आधारित चतुर व्यक्तियो की किन्ही घटनाओ विशेष को लेकर कही गई कहानिया आती है।

अवधी के लोक-बालगीतो के सम्बन्ध मे डा० सत्यव्रत अवस्थी का विचार है, "बच्चो से सम्बन्धित गीतो के अन्तर्गत वे गीत आते हैं जिन्हे बालको के मनोरजन के लिए गाया जाता है अथवा जिन्हे बालक स्वय गाते है। पहले प्रकार के गीतो

---

1 वर्गीकरण डा० सत्यव्रत अवस्थी के आधार पर—द्रष्टव्य 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास,' पृष्ठ १८५,—सोलहवा भाग।

को 'लोरी' अथवा 'पालने के गीत' कहा जाता है। लोरिया बच्चो को खिलाने और सुलाते समय तथा मुह धोते समय प्रसन्न रखने के लिए गाई जाती हैं। लोरियो के कुछ गीत ऐसे भी उपलब्ध होते हैं जिनका कुछ अर्थ नही होता, क्योकि ये किसी विशेष प्रयोजन से नही गाए जाते। इनका एकमात्र उद्देश्य बालक को प्रसन्न रखना होता है।[१]

अवधी की एक लोरी इस प्रकार है—

चन्दामामा धाइ आवा
घुपाइ आवा
टाटी व्याग देत आवा
घी का लोदा लेत आवा
भैया के मुह मे डारिदे
घुटूक से !

"गीत की अन्तिम टेक 'घुटूक से' सुनते ही शिशु दूध पीने लगता है। मा का दूध बच्चे के गले मे उतरता है, और मा की भाषा भी दूध के साथ बच्चे को उपलब्ध होन लगती है। घूट घूट पीने को घुटकना कहते हैं। गले की नली है 'घुटकी' जिससे होकर आहार पेट मे पहुचता है।··· चन्दामामा आओ, दौडकर आओ, प्रकाश फैलाओ। बास की सपच्चियो से बनी टट्टी द्वार का 'ब्योडा' बन्द करके आओ। घी का लोदा (पिण्ड) लेते हुए आओ। भैया के मुह मे डाल दो 'घुटूक' से।"[२]

डा० सत्येन्द्र अवस्थी ने लोरी गीतो के एक अन्य प्रकार का भी उल्लेख किया है जिनमे, "कभी-कभी बालक की जानि पर भी व्यग्य किया जाता है।"[३] उन्होंने एक गीत इसी प्रकार का उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया है :

ले ले री माई श्याम का कनिया
मतले हैं लाल गोद नहिं आवें।
पियहिं न दूध रहे न मोरी कनिया,
बिमलि बिमलि पगु धरें धरनि मा,
झूलें न पलना आवें न मोरी कनिया।
हाथेन पाएन चूरा सोहे,
गरे सोहे कद करन सोहे फेनिया।
नील के अगुलिया तन मा सोहे,
सिर मा तो सोहे टोप बैजनिया

---

१. 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास,' पृष्ठ २२४, सोलहवा भाग।
२ देवेन्द्र सत्यार्थी—'शिशु गीतो की आदिम सुकुमारता,' शीर्षक निबन्ध, 'राष्ट्रवाणी', जनवरी १६५८, पृष्ठ २।
३. 'हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास' · सोलहवा भाग, पृष्ठ २२५।

कौन सवतिया के नजर लगी है,
रोय रोय ललन गवाई सारी रतिया ॥[1]

इस गीत का भावार्थ यह है कि मा रोते हुए बालक के लिए कहती है कि वह इस तरह मचल गया है कि गोद मे ही नही आता। न तो दूध ही पीता है और न मेरी गोदी मे ही रहना पसन्द है। जिद करके अपने पैर भूमि पर पटक रहा है। मैं झूला झुलाना चाहती हू तो वह भी पसन्द नही है और मेरी गोद मे भी नही आ रहा है। मेरा लाल हाथो मे, पैरो मे चूडे पहने है। गले मे कद और कानो मे फेनिया की शोभा निराली है। नील की झगुलिया बहुत ही सुन्दर है। सिर मे बैंजनी रग का टोपा लगा है। न जाने किस सौत की नजर लगी है कि मेरा लाल रो-रोकर रात बिता रहा है।

अवधी मे खेल-कूद के गीत भी प्रचलित है। ये अनेक हैं। एक गीत इस प्रकार है—

अक्कड़ बक्कड बबे बौ,
अस्सी नब्बे पूरे सौ।
बाग भूलें वगभुलिया भूलें
सावन मास कोलइदा फूलें।
फूल - फूल फुलवाई को,
बाबा जी की वारी को
हमका दीन्हेनि कच्ची
अपना लीन्हेनि पक्की
पट्ट घोडा पानी पी जार्चा है।[2]

इस प्रकार अवधी लोकसाहित्य मे बच्चो के लिए प्रचुर माना मे कथाए तथा गीत आज भी मिलते हैं। ये कथाए तथा गीत अवधी भाषा की समृद्धि के परिचायक होने के साथ-साथ, बच्चो का मन बहलाने तथा उनका ज्ञानवर्धन करने मे भी समर्थ सिद्ध हुए हैं।

(२) कनउजी—

कनउजी भाषा के लोकसाहित्य मे बच्चो के लिए पर्याप्त मात्रा मे रचनाएं उपलब्ध है। कनउजी मे प्रचलित बाल-कथाओ को निम्न वर्गों मे बाटा जा सकता है:

१. उपदेशात्मक कहानिया
२. पचतन्त्र शैली की कहानिया

---

१. 'हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास' : सोलहवा भाग, पृष्ठ २२५।
२. वही।

३ विविध[1]

१ उपदेशात्मक कहानियां—इनमे शैक्षणिक कहानियां ही प्रमुख हैं जो बच्चो को कर्त्तव्यपालन, सदाचार, सत्य तथा न्याय की बातो की प्रेरणा देती हैं।

२ पचतत्र शैली की कहानियाँ—इनमे पचतत्र की सरल नीति कथाए, जिनके पात्र पशु पक्षी होते हैं, सम्मिलित हैं। वास्तव मे इस शैली के माध्यम से बच्चो को नीति परक ज्ञान देने का उद्देश्य होता है।

३ विविध—जीवन के विभिन्न रूपो, अनुभवो तथा जीवन-यापन की कला से सम्बन्धित रोचक कहानिया इस वर्ग के अन्तर्गत आती हैं।

इन कहानियो के कथानक धार्मिक, ऐतिहासिक तथा स्थानीय विषयो मे ही सम्बन्धित होते हैं। इनमे, अन्य हिन्दी प्रदेशा मे प्रचलित कहानियो से विशेष अतर नही है। केवल भाषा का ही अन्तर मिलता है।

कनउजी के बच्चों के लिए गीत निश्चय ही सुन्दर और विविधतापूर्ण है। श्री सतराम अनिल न बच्चो के खेल-गीतो के सम्बन्ध मे लिखा है—"प्रत्येक खेल के लिये अलग-अलग गीत होता है। एक खेल का नाम 'घपरी घपरा' है। इस खेल मे सम्मिलित होने वाले सभी बालक अपनी-अपनी हथेलियों को एक-दूसरे की हथेलियो के ऊपर रखते है। जिसकी हथेली ऊपर होती है, वह अपनी दूसरी हथेली से अन्य हथेलियो को थपथपाकर कहता है—

घपरी के घपरा,
फोरि खाए खपरा।
मिया बोलाए,
चमकत आए।
पकर जितरा के काने कान।

इतना कहते ही दो दो बालक आपस मे एक-दूसरे के कान पकडकर खीचते हैं और सिर हिलाते हुए गाते हैं—

चेऊ मेऊ चेऊ मेऊ।
चेऊ मेऊ चेऊ मेऊ।
हुर्र विलइया।"[2]

इसी प्रकार कनउजी मे लोरिया तथा बालिकाओ के गीत भी हैं। इन गीतो की "शैली मे एक विशेष बात यह है कि ये सवादात्मक होते हैं। इन गीतो मे माता और पुत्री के सवाद द्वारा अनेक विषया को प्रस्तुत किया जाता है। कभी पुत्री पूछती है—'हे माता, भाई के विवाह म क्या मिला ? भाभी कैसी है और उसके

१ श्री सतराम अनिल के वर्गीकरण के आधार पर। द्रष्टव्य 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास,' सोलहवा भाग, पृष्ठ ३६७।

२ वही, पृष्ठ ४१२-४१३।

गुण-अवगुण क्या हैं ?' माता उत्तर देती है।"[१]

हरो दुपट्टा लील को सुअना, रगो अरगनी टागि।
बाधें तो बाधें रानी के रामरतन सुअना, बनि ससुरिया जाय।
उनके ससुर को लगर बिटेना, सुअना पकरो दुपट्टा की छूट।
छोडो-छोडा लगर बिटेना, सुअना जो मागे सो देय।
माग तो मागे ताल कसिरुआ, औ गुलरी को फूल सुअना।
ताल कसिरुआ सरि गए सुअना, गूलर फले आधी रात।

वास्तव मे इस तरह के गीतों के मध्यम से क्षेत्र-विशेष की रीतियो तथा प्रथाओ और कतिपय मान्यताओं से बच्चो को परिचित कराने का उद्देश्य होता है।

(३) छत्तीसगढी—

छत्तीसगढी मे उपलब्ध लोक-बालसाहित्य प्रचुर मात्रा मे है। किन्तु छत्तीसगढी की कथाओं के बारे मे श्री दयाशंकर शुक्ल का यह कथन विचारणीय है—'अधिकाश छोटी-छोटी कथाए सार्वदेशिक श्रेणी की है, क्योंकि उनमे पाए जाने वाले कथा तत्त्व तथा मूलभाव सामान्यत सारे भारत और ससार की अन्य भाषाओं मे भी मिलते हैं। कहानी कहने वाले व्यक्ति यदा-कदा स्थानीय और सामयिक रग मिलाकर इन्हे रोचक बनाने का यत्न अवश्य करते हैं।'''छत्तीसगढी लोककहानिया एक ओर सीधे सादे घरेलू जीवन से और दूसरी ओर जादू टोन, देवी-देवताओ आदि की काल्पनिक स्थितियो मे सम्बन्धित है। प्रकृति के साथ जीवन का तादात्म्य छत्तीसगढी लोककथाओ की विशेषता है। ' कुछ कथाओं मे छत्तीसगढी आदिवासियो की भूत प्रेत-जादू टोना विषयक मान्यताओं का परिचय मिलता है। वहा उनके देवी-देवताओ के भी दर्शन होते है। कथाओं मे स्थान-स्थान पर लोक विश्वास और लोक-सस्कृति की झलक पाई जाती है।"[२] श्री दयाशकर शुक्ल का यह कथन छत्तीसगढी लोकसाहित्य की बालकथाओं पर भी लागू होता है। वहा के जन-जीवन मे व्याप्त अन्धविश्वास और भूत प्रेत तथा जादू-टोना मे सम्बन्धित कथाए, बच्चो के लिए विशेष उपयोगी नही मानी जा सकती।

छत्तीसगढी बच्चो के खेलकूद के समय गाए जाने वाले गीतों को श्री दयाशकर शुक्ल ने विस्तार से लिखा है तथा उनकी विशिष्टता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।[३] एक खेल है—'डाडी पोहा'। इस खेल मे पूरा एक दल रहता है। मैदान मे एक गोल घेरा खीचा जाता है। दल मे से कोई लडका घेरे के बाहर खडा रह जाता है और शेष सब घेरे के अन्दर आ जाते हैं। घेरे के बाहर खडा लडका गीतात्मक ध्वनि से कहता है—

---

१ श्री सतराम अनिल के वर्गीकरण के आधार पर। द्रष्टव्य 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास', सोलहवा भाग, पृष्ठ १४४।

२ 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास', सोलहवा भाग, पृष्ठ २८०।

३ वही, पृष्ठ ३०७।

कुकरूस कू !
घेरे के सब लडके—काकर कुकरा ?
बाहरवाला लडका—राजा दसरथ के ।
घेरे के सब लडके—का चारा ?
—कनकी कोडहा
—का खेल ?
—डाडी पोहा ।
—कौन चोर ?
—रामू .... ।

घेरे के बाहर खडा लडका किसी भी लडके का नाम लेता है। नाम लेते ही सब लडके घेरे के बाहर हो जाते हैं। केवल वही लडका रह जाता है, जिसका नाम लिया जाता है। फिर घेरे के बाहर गए लडके घेरे मे आकर उस लडके को चिढाते हैं और वह छूने का प्रयत्न करता है। छू जाने पर वह लडका भी बाकी लडकों को छूता है। इस तरह जब तक सब लडके नही छू जाते, खेल चलता रहता है।

छत्तीसगढ मुख्यत आदिवासी क्षेत्र है। वहा 'बाबू' होना बहुत बडी बात मानी जाती है। इसलिए बच्चो को लोरियो मे बच्चो की उन्नति की कामना से उन्हे 'बाबू' कहते है। प्रस्तुत लोरी मे ऐसा ही भाव है—

निंदिया तोला आवे रे, निंदिया तोला आवे रे।
सुति जावे सुति जावे, बाबू सुति जावे रे।
झनि रोवे झनि रोवेल बाबू झनि रोवे रे।
तोर दाई गइ है बाबू, मउहा बिने बर रे।
तोर दादा गै है बाबू, खेत कोडारे रे।
कोन तोला मारिन बाबू, कौन तोला पीटिन रे।
कौन तोला अगुरी क बाबू, छइहा देखाइन रे।
चदामामा आवनी, दूध भात खावनी।
बाबू के मुह मे गप के, नोनी के मुह मे गप के।[१]

(४) निमाडी—

निमाडी मे भी बच्चो के गीत तथा कथाए बडी ही रोचक है। गीतों मे दो प्रकार हैं—एक वे जिन्हे माताए बच्चों के लिए गाती है और दूसरे खेलकूद के गीत हैं, जिन्हे बच्चे स्वय गाते हैं। प्रथम कोटि के गीतों मे अधिकाशत लोरिया ही होती हैं। एक लोरी इस प्रकार है—

हात रे कुतरा हाकी दा।
मारा नाना रडतो राखीदा।

१. द्रष्टव्य, 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास,' सोलहवा भाग, पृष्ठ ३०७।

नाना जा भाई ना कपला गाय।
कोण घुवण कोण निण्ठवा जाय।
काको धुव ण मामो मिण्टवा जाय।
जितो दहि दूद मारो नानो खाय।
आओ न पोरा पोरा रमवा ना।
नानो मारो वहो जमवा ना।
जमीच उठीन नानो बाडी मा जाय,
वाड़ी ना वनफल तोड़ीन खाय।[१]

अर्थात् हट रे कुत्ते ! मेरे रोते हुए छोटे बच्चे को चुप कर दे। मेरे बच्चे की एक कपिला गाय है। उसे कौन दुहेगा और कौन जगल चराने जायगा। उसे तो मेरे बच्चे का काका दुहेगा और मामा जंगल ले जाएगा। उसका जितना दूध-दही होगा वह मेरा बच्चा खाएगा। अरे लड़के-लड़कियो, तुम सब खेलने जाओ, हमारा बच्चा जमकर खेलने बैठा है। वह ज़मीन से उठकर बागीचे मे जाता है और वहा फल तोड़कर खाता है।

दूसरे प्रकार के गीतो के बारे मे डा० कृष्णलाल हस का मत है—"निमाडी मे कुछ ऐसे गीत मिले हैं जिन्हें लड़के-लडकिया खेलते समय गाकर अपने खेल का आनन्द बढ़ाते हैं। ये गीत किसी सार्थक भाव के द्योतक नही है। उनमे तुकबन्दी मात्र है। एक गीत में लटपट पगड़ी बाधने, मिया की दाल पकाते समय दाढी जलने और बीबी के ताने तोड़ने की बात कहकर हास्य का रंग भर दिया गया है—

सल की सटपट, पागडी बाधू लटपट।
डोगा को तीर, सल्लो बोले कोण रे।
जूपरी पा जूपरी, मिया पकावा दाळ।
मिया की दाढी जली गई बीबी तोडा तान।
सल्लो बोले कोण रे।[२]

निमाड़ी में प्रचलित बाल-कथाओ को इन वर्गों मे बाटा जा सकता है—

१. पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानिया।
२. परियो की कहानिया।
३. जादू की कहानिया।
४. वीरताविपयक कहानिया।
५. साधु-फकीरो की कहानिया।

---

१. निमाडी और उसका साहित्य—डा० कृष्णलाल हस। हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, पृष्ठ ४४२।
२. वही, पृष्ठ ३३८ और ४४३-४४४।

६ ऐतिहासिक कहानिया ।[1]

१ **पशु पक्षी सम्बन्धी कहानियां**—इन कहानियों के बारे मे डा० कृष्णलाल हस का मत है, "इस वर्ग की कहानियो को पचतत्रीय कहानिया कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। यद्यपि लोक भाषाओ मे प्रचलित पशु-पक्षी से सम्बन्धित सभी कहानिया पचतन्त्र से अनूदित नहीं है, उनमे अधिकाशत अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है, तथापि उनमे पचतत्रीय कहानियो की ही प्रवृत्ति देखते है।" निमाडी मे प्राप्त इस वर्ग की कहानियो मे सर्प, सियार केवडा शेर, हिरन, गाय, भैस, बन्दर, चीता, घोडा, ऊट, हाथी आदि पशु कौआ, चील, तोता आदि पक्षिया का उल्लेख है।'[2]

२ **परियो की कहानिया**—इन कहानियो मे परियो तथा जादू से सम्बन्धित घटनाए ही प्रमुख होती हैं। कल्पना का आधिक्य होता है और अनेक असम्भव, सम्भव होकर कथा मे उभरते हैं।

३ **जादू की कहानिया**—निमाडी की इन कहानियो मे जादू से होने वाली विचित्र घटनाओ का तो उल्लेख है ही, पर साथ ही उनमे सामाजिक जीवन के कुछ अनुभव भी पिरो दिए गए है, जिससे ये कहानिया मनोरजन के साथ शिक्षाप्रद भी बन गई हैं।[3]

४ **वीरताविषयक कहानिया**—इनमे व्यक्ति-विशेष के शौर्य, साहस और बल से सम्बन्धित कहानिया आती हैं। ये कहानिया बच्चो मे वीरता और साहस का सचार करने के साथ उन्हे प्रेरणा भी देती हैं। निमाड मे ऐसे अनेक कथानक प्रचलित हैं।

५ **साधु-फकीरो की कहानिया**—निमाड मे व्याप्त साधु-फकीरो के प्रति सम्मान और विश्वास की भावना की झलक इन कहानियो मे मिलती है। इन्ही सम्मान और विश्वास के पोषण के लिए अनेक कहानिया भी प्रचलित है। ये कहानिया वास्तव मे बच्चो के मन मे धार्मिक विश्वासो के प्रति आस्था जगाने के उद्देश्य से सुनाई जाती हैं।

६ **ऐतिहासिक कहानिया**—इतिहास के पात्रो से सम्बन्धित कथाए ही इस वर्ग मे आती हैं। किन्तु लोक-मानस मे घुलमिल जाने के कारण इन कहानियो का इतिहास तत्त्व धूमिल पड जाता है।

निमाडी मे बाल लोकसाहित्य जहा बच्चो को मनोरजन देता है वही उनके सस्कारो को भी परिष्कृत बनाता रहा है।

---

१. डा० कृष्णलाल हस के वर्गीकरण के आधार पर। द्रष्टव्य . 'निमाडी और उसका साहित्य', पृष्ठ ३४१।

२. वही, पृष्ठ ३४४-३४५।

३. वही, पृष्ठ ३४१।

(५) व्रज

व्रज लोकसाहित्य मे बच्चो को कहानिया सुनाने की परम्परा बहुत प्राचीन है। वहा बाल-क्रीडाओ को भी बहुत महत्त्व मिला है। डा० सत्येन्द्र के शब्दो मे, "कहानिया कहने का एक अवसर वह होता है जब कोई बड़ा-बूढा अथवा बडी-बूढी दादी-नानी बच्चो के मनोरजन, जिज्ञासा-तृप्ति, ज्ञानवर्धन और मन बहलाने के लिए अथवा खाली समय को काटने के लिए कहानिया सुनाती है। ऐसी कहानियो को बहुधा 'नानी की कहानी' कहा जाता है।"[1]

व्रज-प्रदेश मे प्रचलित बाल-लोकसाहित्य को इन वर्गों मे बाटा जा सकता है—

१. चमत्कारो की कहानी
२. कौशल की कहानी
३. जान-जोखिम की कहानी
४. पशु-पक्षी की कहानी
५. बुझौवल की कहानी[2]

१. चमत्कारो की कहानी—इस वर्ग मे चमत्कारी कार्यो से सम्बन्धित कहानिया आती हैं। नटो के चमत्कारी खेल-तमाशो से सम्बन्धित कहानिया, साधु-सन्तो की योगमाया से सम्बन्धित कहानिया इसी वर्ग के अन्तर्गत मानी गई है।

२. कौशल की कहानी—चतुराई, गुण-कौशल से सम्बन्धित कहानिया इस वर्ग के अन्तर्गत हैं। बीरबल की कहानिया या इसी तरह की अन्य कथाए व्रज प्रदेश मे प्रचलित हैं।

३. जान-जोखिम की कहानी—वीरता, साहस तथा प्राणोत्सर्ग से सम्बन्धित कहानिया इस वर्ग के अन्तर्गत आती हैं।

४. पशु-पक्षी की कहानी—पचतत्र की शैली पर नीति-कथाए तथा तोता-मैना शैली की मनोरजक कथाए इस श्रेणी मे आती हैं।

५. बुझौवल की कहानी—बहुत-सी कहानियो मे कोई एक ऐसी पहेली होती है जो सुलझने पर एक कथा का रूप ले लेती है। इस तरह की कहानिया इस वर्ग के अन्तर्गत स्वीकार की गई हैं।

व्रज-लोकगीतो मे बच्चो के लिए खेलकूद के गीत ही प्रमुख हैं। व्रज मे बच्चो के मुख्य खेल—कबड्डी, कोडा-जमालशाही और चील-झपट्टा हैं। कुछ शिशु खेल भी हैं जैसे आटे-बाटे, अटकन-चटकन, घपरी-घपरा आदि। इन सभी से सम्बन्धित लोकगीत व्रज मे बहुत प्रसिद्ध हैं। ये गीत आकार मे तो बहुत छोटे हैं और इनका अर्थ कुछ नही निकलता। लेकिन इनकी सरल भाषा तथा लयात्मकता के

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, सोलहवा भाग, पृष्ठ ३५३।
२. डा० सत्येन्द्र के वर्गीकरण के आधार पर। द्रष्टव्य हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, पृष्ठ ३५३।

कारण बच्चे इन्हे आसानी से कण्ठस्थ कर लेते हैं।

अटकन　बटकन,
दही　चटक्कन।
बाबा लाए सात　कटोरी,
एक　कटोरी　फूटी
मामा की बहू　रूठी।
काए　बात　पै　रूठी,
दूध　दही　पै　रूठी।
दूध　दही　तो　बहुतेरौ
वाको म्हौं खायबे कू टेढौ।
चीटी लेगो कै चीटा।

इस खेल मे बच्चे अपनी हथेलियो को अगूठे तथा उगलियो के सहारे जमीन पर टेक कर रख लेते है। खेल खिलाने वाला बालक उपर्युक्त गीत गा-गाकर सभी के हाथ छूता जाता है। अन्त मे वह सबसे कहता है—चीटी चाहिए या चीटा। वह जिसे भी मागता है उसी जैसी चिकोटी उसके हाथ मे काटी जाती है। इस प्रकार खेल चलता रहता है।

(६) बुदेली

बुदेली साहित्य मे बच्चो के लिए बाल-लोककथाओं का भडार है। ये लोक-कथाए बच्चो का मनोरजन करने के साथ साथ उन्हे नीति एव उपदेश की बातें भी बताती हैं।

बच्चो के खेल-गीत भी बुदेली मे प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। बालिकाए खेल-खेल मे 'मामुलिया' और 'सुअटा' या 'नोरता' के गीत गाती है। 'मामुलिया' सध्या समय खेला जाता है जिसमे गोल चौक के बीच मे बबूल की काटेदार डाल लगाई जाती है। फिर हर काटे मे एक-एक फूल लगाकर उसकी पूजा होती है और उसे पास के नदी या तालाब मे सिरा दिया जाता है। लडकिया गाती हैं—

चीकनी मामुलिया के चीकने पतौआ, बरा तरें लागी अथैया।
कें बारी भौजी बरा तरें लागी अथैया।
मीठी कचरिया के मीठे जो बीजा, मीठे ससुर जी के बोल।
करई कचरिया के करए जो बीजा, करए सास जू के बोल।[१]

इसी प्रकार 'सुअटा' या नोरता' मे दीवार पर मिट्टी से थोपकर सुअटा की मूर्ति बनाई जाती है, उसके दायें बायें चन्दा-सूरज बनाए जाते हैं। फिर उसकी पूजा करती हैं और गाती हैं :

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, सोलहवा भाग, पृष्ठ ३४४।

हिमाचल जू की कुंवरि लडामती नारे सुअटा,
गौरा बेटी मेरा तो अनइयो नौ दिन नारे सुअटा।
दसमे दिन करियो सिंगार।

बालको के गीत पृथक् होते हैं। यहा उनके दो खेल-गीत प्रस्तुत हैं :

बाबूलाल बाबूलाल तेल की मिठाई।
दतिया की गैल मे कुतिया नचाई।
कुतिया मर गई, कर लई लुगाई।
हल्कू-टल्कू तीन तगा, मताई मलगू बाप पदा।

× × ×

अल्ल मे गई, दल्ल मे गई,
दल्ल मे मे लाकड ल्याई।
लाकड मैंने डुक्को दीनी,
डुक्को मोय कोचो दीनी।
कोचो मैंने कुम्हरे दीनी,
कुम्हरा मोय मटकी दीनी।
मटकी मैंने अहीरे दीनी।
अहीर मोय भैंस दीनी,
भैंस मैंने राजे दीनी।
राजा मोय रानी दीनी।
रानी मैंने बसोरे दीनी।
बसोर मोय ढुलकी दीनी,
बाज मोरी ढुलकी टामक टू।
रानी के बदले आई तू।

इस प्रकार बुंदेली मे बच्चो के लिए प्रचुर मात्रा मे लोक कहानिया व गीत उपलब्ध हैं।

(७) मालवी

मालवी लोक कथाओ के सम्बन्ध मे डा० श्याम परमार का मत है, "मालवी लोककथाए मैदानी हैं। पहाडी कथाओ की तुलना मे उनमे भूत और प्रेतो तथा परियो के प्रति विश्वास का प्रभाव कम है। मध्यवर्ती भारत के नाथ साधुओ और सिद्धो के प्रभाव को व्यक्त करने वाली कथाए उल्लेखनीय है। मुख्य रूप से कृषि-जीवन के प्रभावो से मालवी कथाए भरी हैं। आदिवासियो के विश्वासो की झलक यद्यपि उनमे मिल जाती है, तथापि उनकी नैतिक मान्यताओ, नीति और अभिप्रायो मे मध्यकालीन प्रभावो की झलक है।[१]

---

१ हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, सोलहवा भाग, पृष्ठ ४६०।

इस परिप्रेक्ष्य मे यदि हम मालवी बाल-लोककथाओ को देखें तो उन्हे निम्न वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

१ पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाए
२. ऐतिहासिक कथाए
३ चतुराई विषयक कथाए
४ चमत्कार प्रधान कथाए
५ क्रम-सबद्ध लोककथाए।[1]

१ **पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाए**—इन कथाओ के पात्र तथा विषय पशु पक्षियो से ही सम्बन्धित होते है। इन कथाओं के माध्यम से बच्चो को उपदेशात्मक बात बताने का प्रयास होता है। 'पचतत्र' और 'हितोपदेश' की कहानियो का इन पर बहुत प्रभाव है।

२ **ऐतिहासिक कथाए**—इनके अन्तर्गत मालवा के ऐतिहासिक पात्रो—विक्रमादित्य, राजा भोज आदि की कहानिया आती हैं। इन राजाओं के साहस, शौर्य और दानवीरता की अनेक कहानिया मालवा मे प्रचलित है।

३ **चतुराई विषयक कथाए**—इनमे कुशाग्र बुद्धि और चतुराई का परिचय देने वाले कथानको को ही सम्मिलित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए 'राजा भोज और बुढिया' शीर्षक कहानी मालवा म बहुत प्रचलित है।

४ **चमत्कार प्रधान कथाए**—साधु सन्तो की योगमाया तथा बेताल आदि से सम्बन्धित कथाए इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। महाकाल का प्रदेश होने के कारण यहा तन्त्र मन्त्र आदि पर भी बहुत विश्वास किया जाता था। यहा की कहानियों पर भी इस विश्वास का प्रभाव पडा है।

५ **क्रम-सबद्ध लोककथाए**—इस मे अनेक छोटी छोटी घटनाए क्रम से गुथी हुई रहती हैं और हर घटना अगली घटना को जन्म देती है। इस प्रकार पूरी कहानी अपनी चरम सीमा तक पहुचती है और फिर नियति की ओर तेजी से बढती है। भारतीय लोकसाहित्य म ही नही अपितु रूसी लोकसाहित्य[2] मे भी ऐसी कथाए प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हैं।

मालवी म प्रचलित बाल लोकगीत दो भागो मे बाटे जा सकते हैं—बालको के खेल-गीत और बालिकाओ के खेल-गीत। बालकों के खेल-गीत अनेक हैं, किन्तु 'छलो', 'ढेढर माता,' 'मामुल्या-मामुल्या' उल्लेखनीय है। इसी प्रकार बालिकाओं

---

१ वर्गीकरण डा० श्याम परमार के विवरण के आधार पर। द्रष्टव्य हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, सोलहवा भाग, पृष्ठ ४६०।

२ द्रष्टव्य रूसी लोककथाए, मूल लेखक ए० पोमेरान्त्सेवा, हिन्दी अनुवाद. मदनलाल 'मधु', ओमप्रकाश सगल। प्रगति प्रकाशन, मास्को।

के गीतों मे 'साभी,' 'घड़ल्या' 'अवल्या-छ्वल्या,' 'हरया गोपा,' 'फुलपाती' आदि प्रमुख है।[१]

(८) भोजपुरी

भोजपुरी मे बच्चो के लिए पर्याप्त मात्रा मे साहित्य है। यह साहित्य परम्परागत रूप मे विद्यमान है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दो मे, "भोजपुरी मे लोककथाओ का अनन्त भडार भरा पडा है। बूढी दादिया बच्चो को सुलाते समय सुन्दर कहानिया सुनाती हैं। गाव के बूढे चौपाल मे बैठकर मनोरजक कथाए कहते हैं।"[२] इन कथाओ को बच्चो के लिए उनके विषयानुसार निम्न वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है :

१. उपदेश कथाए
२. मनोरजक कथाए
३ सामाजिक कथाए
४. पौराणिक कथाए।[३]

१. उपदेश कथाए—'पचतत्र' एव 'हितोपदेश' शैली की कहानिया तथा इनकी कहानियो से प्रभावित कथाए इसी वर्ग के अन्तर्गत आती है।

२. मनोरंजक कथाएं—डा० कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दो मे, "कुछ कथाओ का उद्देश्य केवल मनोरजन होता है। ऐसी कथाओ को बालकगण बडे चाव से सुनते है। 'ढेला और पत्ती' की कहानी ऐसी ही है। बालको की कथाए अधिकाश इसी कोटि मे आती हैं। उपर्युक्त कहानी का अन्त इस प्रकार से हुआ—

ढेला गइले भिहिलाई।
पतई गइले उडियाई।
अवरू कथा गइले ओराई।[४]

३. सामाजिक कथाएं—ये कथाए बच्चो को सामाजिक जीवन की रीति-नीति, परम्परा तथा नियमो से अवगत कराती है। 'राजा के न्याय,' 'सामाजिक कुरीतियो' से सम्बन्धित कथाए इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं।

४. पौराणिक कथाएं—इनमे धार्मिक तथा पुराणो की कहानिया आती है। 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'प्रह्लाद,' 'नल-दमयन्ती' आदि कथाए इसी कोटि मे आती है।

भोजपुरी के बाल-लोकगीतो को तीन भागो मे बाटा जा सकता है :

१. लोरिया
२. खेल-गीत
३. अभिनय-गीत

---

१. द्रष्टव्य हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, सोलहवा भाग, पृष्ठ ४७८-४७९।
२. वही, पृष्ठ ९०।
३. डा० कृष्णदेव उपाध्याय के वर्गीकरण के आधार पर। वही, पृष्ठ ९०।
४. द्रष्टव्य : हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, सोलहवा भाग, पृष्ठ ९१।

१. **लोरियां**—बच्चो को सुलाते समय भोजपुरी भाषा मे माताए जो लोरिया गाती हैं, उनमे से एक प्रसिद्ध लोरी यहा प्रस्तुत है। इसमे तथा अवधी की लोरी मे अन्तर स्पष्ट ही है—

> चाना मामा चाना मामा
> आरे आवा पारे आवा।
> नदिया किनारे आवा।
> सोना के कटोरवा मे,
> दूध भात खाए आवा।
> मोरा बबुआ के मुहवा में
> दूबवा घुटूक।[१]

२. **खेल-गीत**—यों तो ऐसे बहुत-से खेल है, जिन्हे खेलते समय बच्चे गीत दुहराते हैं, लेकिन सबसे लोकप्रिय खेल कबड्डी ही है। जो बालक दूसरी पार्टी मे जाता है वह गाता है—

> ए कबडिया रेता, भगत मोर बेटा।
> भगताइन मोर जोडी, खेलबि हम होरी।।[२]

और इस तरह सास टूटने तक वह इसे दुहराता रहता है।

३ **अभिनय गीत**—खेल-खेल मे अभिनय सिखाने वाले गीत भोजपुरी मे काफी हैं। बच्चे एक-दूसरे की मुट्ठी पर अपनी मुट्ठी रखते जाते है और फिर एक बालक अपने हाथ को तलवार मानकर उन मुट्ठियो को काटने का अभिनय करते हुए निम्न गीत गाता है—

> तार काटो तरकुल काटो, काटो रे बनखाजा।
> हाथी पर के घुघुआ, चमकि चले राजा।
> राजा के रजइया, बाबू के दोपाट्टा।
> हीचि मारो घीचि मारो, मूसर अइसन बेट्टा।[३]

(६) राजस्थानी

राजस्थान मे 'वातों' (लोककथाओ) का महत्त्व बडो और बच्चो के लिए समान रूप से रहा है। श्री नारायणसिंह भाटी के शब्दो मे, "वातो मे नीतिज्ञो ने नीति ग्रहण की। प्रेमियो ने प्रेम का आदर्श इन्ही को सुनाकर कायम रखा और धर्म के लिए मर मिटने वालों को इनसे निरतर धर्म की प्रेरणा मिलती रही।···

१. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, सोलहवा भाग (भोजपुरी), पृष्ठ १४६।
२ वही, पृष्ठ १४८।
३. वही, पृष्ठ १४६।

बातो मे हुकारी का बहुत महत्त्व है। बात सुनने वाले से कही जाती है और यदि वह हुकारी न दे तो बात कहने वाला ऊब जाता है। इसीलिए बात कहने वाला प्रारभ मे ही सुनने वालो को सचेत करता है—'बात मे हुकारो फौज मे नगारो।' फिर कथा को आगे बढाता है। कथा और उसमे भी कथा बनती चली जाती है। स्थान-स्थान पर रूप, श्रृगार, प्रकृति, युद्ध, राजमहल आदि के सागोपाग वर्णनो की झडी लग जाती है जिससे सुनने वाले मुग्ध हो जाते हैं। अधेरी रात मे भी उनके सामने एक चित्र-सा प्रस्तुत हो जाता है।"[1]

राजस्थानी कथाओ की यह विशेषता कल्पनाशील बाल-श्रोताओ के लिए सदैव आकर्षण की वस्तु रही है। अनेक ऐसी कथाए है जो उनमे कौतूहल जगाती है, काल्पनिक चित्रो का निर्माण करती हैं।

निष्कर्ष—हिन्दी की प्रमुख बोलियो मे विद्यमान बाल-लोकसाहित्य के विवरण का अध्ययन करने से, हिन्दी बालसाहित्य के प्रारभिक रूप के सम्बन्ध मे निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते है—

(१) बच्चो के ज्ञानवर्धन तथा मनोरजन के लिए पृथक् साहित्य की आवश्यकता प्राचीन समय से ही समझी जाती है।

(२) बच्चो के मनोविज्ञान के अनुकूल कथा-रचना होती थी। इन कथाओ के माध्यम से उनमे साहस, दया, दान, धर्मपरायणता जैसी भावनाओ का सचार किया जाता था।

(३) अधिकाश कथाए बडो के स्वय के अनुभवो के ही आधार पर तैयार की गई थी। बच्चो के स्वतत्र अस्तित्व को विशेष महत्त्व नही मिला था—जिससे कि बच्चे स्वय उन कथाओ मे पात्र बन कर आते। जिन राजकुमार राजकुमारियो की चर्चा भी थी वे युवा होते थे।

(४) प्राय हिन्दी की बोलियो मे ही नही, बल्कि देश की सभी भाषाओ के विषयो तथा उनके प्रस्तुतीकरण मे समानता मिलती है। उपर्युक्त समग्र विवेचन मे प्रस्तुत वर्गीकरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाती है। यह वर्गीकरण वास्तव मे बालरुचि तथा मनोवृत्ति के अनुकूल लोक-कहानियो का ही किया गया है।

(५) बच्चो को जीवन के प्रति जागरूक तथा योग्य बनाने के लिए इन कहानियो मे उपदेशो की भरमार थी।

(६) लगभग यही स्थिति लोकगीतो की भी थी। इनके वर्गीकरण का आधार भी बालमनोविज्ञान ही है।

इस तरह हिन्दी बालसाहित्य का प्रारभिक रूप, लोक-मानस की निधि होने के कारण, जहा वह बच्चो की एक बहुत बडी आवश्यकता को पूरी करने के लिए प्रयत्नशील था, वही उसमे कुछ ऐसी कमिया थी जो उसे युगानुरूप नही बना

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास सोलहवा भाग (भोजपुरी), पृष्ठ ४२८।

सकती थी। इस कारण वह अपने परम्परागत रूप मे ही रह गया। बदलते हुए युग, समाज और जीवन का प्रभाव उसे उस सीमा तक नही प्रभावित कर सका, कि उसके स्वरूप तथा कथ्य मे परिवर्तन हो जाए। सभवत इसकी आवश्यकता भी उस समय नही समझी गई। लेकिन भाषा के विकास के साथ-साथ विदेशी प्रभाव ने इस दिशा मे परिवर्तन की प्रेरणा दी। बाल विकास की जिम्मेदारी जब माता-पिता महसूस करने लगे तो यह आवश्यक समझा जाने लगा कि परम्परागत जानकारी ही बच्चो के लिए पर्याप्त नही है। वे तो ऐसा भी साहित्य तथा ज्ञान चाहते हैं जो उन्हे युग-बोध करा सके।

चौथा अध्याय

हिन्दी बालसाहित्य का विकास-क्रम तथा युग-विभाजन

हिन्दी बालसाहित्य की पृष्ठभूमि तैयार करने मे सस्कृत के बालसाहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हिन्दी मे विशुद्ध बालसाहित्य रचना का सूत्रपात, बालसाहित्य मे क्रान्तिकारी परिवर्तन, बालसाहित्य की समृद्धि तथा विकास, साहित्य जगत् मे बालसाहित्य की स्वतत्र विधा की स्वीकृति ही ऐसे तथ्य है जो हिन्दी बालसाहित्य के स्वतत्र विकास-क्रम तथा युग-विभाजन के अध्ययन का आधार कहे जा सकते हैं।''''''आज बालसाहित्य के नये प्रतिमान बच्चो के स्वाभाविक विकास, उनकी रुचि और मनोवृत्ति को महत्त्व देते हुए अपने अस्तित्व का निर्माण करना चाहते हैं।

हिन्दी बालसाहित्य की पृष्ठभूमि तैयार करने मे सस्कृत के बालसाहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सस्कृत-बालसाहित्य की पुस्तको मे 'पचतत्र' और 'हितोपदेश' तथा कुछ सीमा तक 'जातक कथाओ' का भी प्रमुख स्थान था। 'पचतत्र' तो विश्व की अनेक भाषाओ के बालसाहित्य को प्रभावित करने वाली पुस्तक सिद्ध हुई है। इसके साथ ही भारतीय-लोकसाहित्य ने भी अपनी रचनाओ के माध्यम से बालसाहित्य को समृद्ध बनाया। हिन्दी की प्राय सभी प्रमुख बोलियो मे पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध बालसाहित्य इस कथन की पुष्टि करता है।

हिन्दी मे बालसाहित्य का आरम्भिक रूप महाकवि सूरदास के 'बाल लीला गीतो' मे भी देखने का प्रयास किया गया है। यह भ्रम केवल इसलिए होता है कि सूरदास ने अपने बाललीला गीतो मे बाल-स्वभाव के जिस मनोवैज्ञानिक रूप को प्रस्तुत किया है, वैसा आज तक कोई कवि नही कर सका। किन्तु यदि इस तथ्य

को स्वीकार भी कर लें तो इतना तो स्पष्ट है कि उन बाल-लीलागीतो मे बाल-स्वभाव का चित्रण बडो के लिए था, जिससे वात्सल्य रस की उत्पत्ति होती है, न कि बालको का मनोरंजन होता है। अत. "सूरदास के कृष्ण की बचपन की क्रीडाओं और उन्हे देख देखकर माता यशोदा तथा दूसरो के मन की भावनाओं और चेष्टाओं का चित्रण करने वाले पदो को बाल गीत की सज्ञा नही दी जा सकती। बच्चे ऐसे वर्णनो को पढकर थोडा बहुत प्रसन्न भले ही हो लें पर वह उन्हे अपने लिए लिखित, अपने मन के गीत समझकर प्रसन्न नही हो सकते। और न बार-बार गाना दुहराना पसन्द करते हैं। बालगीत उन गीतो को कहते हैं जिनमे बच्चा के मन की आन्तरिक अनुभूतियो और कल्पनाओ को उन्ही की भाषा मे व्यक्त किया गया हो। बच्चे अपने बालगीतो में, स्वय अपने जन्म पर होने वाली प्रसन्नता और हर्पोल्लास या अपने रूपसौन्दर्य और चेष्टाओ का रोचक वर्णन पढकर उतने प्रसन्न नही हो सकते, जितना उनमे स्वय अपनी भावनाओं और कल्पनाओं का चित्रण देखकर। माता की ममता या बडो के स्नेह, लाड दुलार भरे वर्णनो से उन्हे प्रसन्नता अवश्य होती है पर उनके मन के असली गीत तो वही होते हैं जिनमे उनके अपने उद्गार—हर्ष, क्रोध, प्रसन्नता और कल्पनाओ की अभिव्यक्ति की गई हो। इस दृष्टि से विचार करने पर सूरदास एक सफल बाल-गीतकार नही ठहरते। उन्होने अपनी रचनाओ मे बडो की ममता, स्नेह, सद्-भावनाओं और बाल स्वभाव का अच्छा चित्रण किया है। पर उनकी अभिव्यक्ति की शैली ऐसी नही है, जिससे कि उनके पदो को बच्चे अपने गीत कहकर अपना सकें।"[१]

इस प्रकार सूर के बाल लीलागीतो से हिन्दी बालसाहित्य का आरम्भ मानना समीचीन नही प्रतीत होता। वास्तव मे बालसाहित्य रचना की जो परम्परा लोक-साहित्य मे सज्ञाहीन होकर ही विकसित होती रही थी, वही उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे स्वतन्त्र रूप से प्रकट हुई, जबकि बच्चो के लिए लिखित साहित्य का महत्त्व समझा जाने लगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे खडी बोली गद्य के लिए जो सघर्ष हुआ, उसमे से 'हिन्दी बालसाहित्य' ने भी अपना निश्चित रूप तथा आकार बनाना आरभ कर दिया था। उस समय 'भाखा' की समस्या बहुत गम्भीर थी। "अंग्रेज यद्यपि विदेशी थे पर उन्हे यह स्पष्ट लक्षित हो गया था कि जिसे उर्दू कहते हैं वह न तो देश की स्वाभाविक भाषा है, न उसका साहित्य देश का साहित्य है, जिसमें जनता के भाव और विचार रक्षित हो। इसलिए जब उन्हे देश की भाषा सीखने की आवश्यकता हुई और वे गद्य की खोज मे पडे तब दोनो प्रकार की पुस्तको की आवश्यकता हुई। उर्दू की भी और हिन्दी (शुद्ध खडी बोली) की भी।"[२] इस-

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ३७६।

२ बालगीत साहित्य निरंकारदेव सेवक, पृष्ठ १२४, १२५, १२८।

लिए अंग्रेजो ने ऐसी पुस्तकें लिखाने का प्रयास किया। फोर्ट विलियम कालेज के प्रोफेसर गिलक्राइस्ट ने इस काम को अपने निर्देशन मे कराया। उस समय चार प्रमुख लेखको—मुन्शी सदासुखलाल, सैयद इशाअल्लाखा, लल्लूलाल और सदल मिश्र ने इस काम को आगे बढाने का व्रत लिया। लल्लूलाल ने ब्रजभाषा मे लिखी कहानियो को उर्दू-हिन्दी गद्य मे लिखा। इन्होने 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पचीसी', 'शकुतला नाटक', 'माधोनल' आदि पुस्तकें लिखी। इनके अतिरिक्त सन् १८१२ मे इन्होने 'राजनीति' के नाम से 'हितोपदेश' की कहानियो को भी गद्य मे लिखा। वास्तव मे इस समय जो भी पुस्तकें लिखाई जा रही थी, उनके दो उद्देश्य थे—एक यह कि 'भाखा' की समस्या सुलझाई जा सके और दूसरा यह कि वे पुस्तकें स्कूलो मे भी पढाई जाय, जिससे 'भाखा' का भविष्य निर्मित हो सके और वह अधिक लोकप्रिय हो सके। इस रहस्य का सबसे अधिक लाभ उठाया ईसाई मिशनरियो ने। उन्होने साधारण जनता तथा भावी पीढी मे अपने धर्म को फैलाने का यह सशक्त माध्यम भली प्रकार समझ लिया था। परिणाम यह हुआ कि अनेक नगरो मे बच्चो की शिक्षा के लिए ईसाईयो के छोटे-छोटे स्कूल खुलने लगे और कुछ पुस्तकें भी निकली। इन पुस्तको की भाषा सरल और आसानी से समझ मे आने वाली होती थी। जिन स्थानो पर अंग्रेजी पढाने के लिए स्कूल और कालेज खुल चुके थे, वहा भी अंग्रेज़ी के साथ हिन्दी पढाई जाने लगी थी।

लेकिन पुस्तकों की समस्या अभी पूरी तरह नही सुलझी थी। सन् १८३३ मे आगरा मे ईसाई मिशनरियो के पादरियो ने मिलकर एक 'स्कूल बुक सोसायटी' की स्थापना की। इसकी सबसे पहली पुस्तक 'कथासार' प्रकाशित हुई। लेखक थे मार्शमैन और यह इगलैंड का प्राचीन इतिहास थी। हिन्दी अनुवाद प० रतन-लाल का था, जिसके बारे मे भूमिका मे लिखा गया था कि यदि वह अनुवाद पसन्द आया तो पुस्तक का दूसरा भाग भी प्रकाशित किया जायगा।

'स्कूल बुक सोसायटी' आगरा ने बाद मे पडित ओंकार भट्ट कृत 'भूगोल सार' (सन १८४०) तथा पडित बद्रीलाल शर्मा कृत 'रसायन प्रकाशन' (सन १८४४) प्रकाशित की। इसी तरह की एक और 'स्कूल बुक सोसायटी' कलकत्ता मे स्थापित हुई थी, जहा से कई रीडरें तथा वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित हुई थी।

इस तरह धीरेधीरे खडी बोली हिन्दी का प्रभाव तथा महत्व बढता गया। सरकार की शिक्षा नीति मे भी परिवर्तन हुआ और जगह-जगह खडी बोली के प्रचार के लिए पाठशालाए खुलने लगी। इस कार्य मे राजा शिवप्रसादसिंह सितारेहिन्द का महत्त्वपूर्ण योगदान था। किन्तु दूसरी ओर खडी बोली का विरोध भी बढ रहा था। सर सैयद अहमद ने इसके विरोध मे अपनी आवाज इतनी बुलन्द की कि सन १८४८ मे सरकार ने आदेश निकाला, "ऐसी भाषा का जानना सब विद्यार्थियो के लिए आवश्यक ठहराना जो मुल्क की सरकारी और दफ्तरी जबान नही है, हमारी राय मे ठीक नहीं है। इसके सिवाय मुसलमान विद्यार्थी,

जिनकी सख्या देहली कालेज मे बडी है, इसे अच्छी नज़र से नही देखेंगे।"[1]

हिन्दी-उर्दू का यह सघर्ष भारतेन्दु के समय तक चलता रहा। सन् १८६८ मे उत्तर-प्रदेश के शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष थी एम० एस० हैवेल ने तो यहा तक कह दिया था, "यह अधिक अच्छा होता यदि हिन्दू बच्चों को उर्दू सिखाई जाती न कि एक ऐसी बोली मे विचार प्रकट करने का अभ्यास कराया जाता जिसे कि अन्त मे एक दिन उर्दू के सामने सिर झुकाना पडेगा।"[2]

लेकिन इस तरह के विरोधों का अधिक प्रभाव नही हुआ। हिन्दी का पक्ष लेकर आगे बढने वाले लोगो ने साहस नही छोडा और भारतेन्दु के आविर्भाव के समय तक इसे चलाते रहे। यहा यह विचारणीय बात है कि इस समय तक विद्यार्थियो के लिए जो कुछ लिखा गया था, उसका उद्देश्य 'भाखा' की समस्या को सुलझाना और विद्यार्थियो म उसकी जड मजबूत करना ही था। लेकिन चूकि उस अधिकाश साहित्य के निमित्त बच्चे ही थे, इसलिए हिन्दी मे बाल-साहित्य का सूत्रपात यही से माना जायगा। भले ही वे पुस्तकें बालसाहित्य की सभी आवश्यकताओ और गुणा को पूरा करने मे समर्थ न रही हो, लेकिन वे वह नींव अवश्य बन गईं, जिस पर बाद मे हिन्दी बालसाहित्य का वर्तमान भवन निर्मित हुआ।

दूसरी ओर बीसवी शताब्दी के आरभ मे ही विदेशी बालसाहित्य मे क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगे थे। इस परिवर्तन ने भारतीय लेखको का भी ध्यान खीचा। लोगो ने सोचा कि स्कूली साहित्य के अलावा कुछ ऐसी भी पुस्तके क्यो न लिखी जाए जो अधिक रोचक, मनोरजक तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव डालने वाली हो। ऐसी पुस्तको को बच्चे खूब पढेंगे भी। इसलिए स्वतन्त्र रूप से बालसाहित्य रचना के विचार के जन्म लेते ही इस दिशा मे अनेक लेखक आगे आए।

बीसवी शताब्दी के प्रारभिक समय तक भारतेन्दु का प्रभाव काफी फैल चुका था। उन्होने १ जून १८७४ से 'बाला-बोधिनी' पत्रिका का प्रकाशन भी आरभ किया था। इसमे लडकियो की शिक्षा तथा उनके सुधार के लिए रचनाए छापते थे। अत. हिन्दी बालसाहित्य का स्वतत्र रूप से विकास इसी तिथि से स्वीकार किया जा सकता है।

हिन्दी बालसाहित्य के क्रमिक विकास तथा इतिहास के अध्ययन की सरलता के लिए, उसे विभिन्न युगो मे विभाजित कर लेना अधिक समीचीन होगा। किन्तु युग विभाजन के पूर्व यहा यह स्पष्ट कर लेना भी उचित होगा कि हिन्दी साहित्य के विकास के बारे मे विभिन्न विद्वानो ने, विभिन्न मत प्रकट किए हैं और अपने अनुसन्धान-अध्ययन द्वारा युग विभाजन प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार प० रामचन्द्र शुक्ल तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'आदिकाल'

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ३९७।
२. वही।

या 'सामन्त काल' माना है उसी तरह बालसाहित्य मे भी एक 'आदिकाल' निश्चित किया जा सकता है। लेकिन पूरे अर्थों मे उसे हिन्दी बालसाहित्य का आदिकाल नही माना जा सकता। जिन बातो की चर्चा उसमे होगी, उन्हे हम इस अध्याय के आरम्भ मे कह चुके हैं। अत हिन्दी बालसाहित्य का युग विभाजन निम्नाकित तथ्यो पर आधारित होगा—

१. हिन्दी मे विशुद्ध बालसाहित्य रचना का सूत्रपात।
२. बालसाहित्य मे क्रान्तिकारी परिवर्तन।
३. बालसाहित्य की समृद्धि तथा विकास।
४. साहित्य-जगत मे बालसाहित्य की स्वतन्त्र विधा की स्वीकृति।

उपर्युक्त आधार पर जब हम बालसाहित्य के विकास-क्रम तथा इतिहास का अवलोकन करते है तो पाते हैं कि हिन्दी साहित्य के विकास-युग मे कुछ ऐसे भी वर्ष हैं, जबकि उसके समानान्तर बालसाहित्य का भी विकास होता रहा है। भारतेन्दु युग मे, सन १८७४ मे 'बाला बोधिनी' पत्रिका का प्रकाशन एक ऐसी ऐतिहासिक घटना है—जो यह प्रमाणित करती है कि बाल-वर्ग के लिए भी पृथक् साहित्य (स्कूली किताबो के अलावा ज्ञान देने वाला) लिखा जाना आवश्यक समझा गया था। भारतेन्दु ने स्वय ही नही, तत्कालीन अन्य लेखको को भी बालसाहित्य लिखने की प्रेरणा दी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि विकास की यह परम्परा द्विवेदी युग मे आकर फली-फूली। सन १९१४ मे 'शिशु' का प्रकाशन इलाहाबाद से शुरू हुआ। उसमे बच्चो के लिए विशेषरूप से चुनकर रचनाए प्रकाशित किए जाने का कार्य, बालसाहित्य के लिए एक नई दिशा बन गया। इसी प्रेरणा से १९१५ मे 'विद्यार्थी' तथा १९१७ में इण्डियन प्रेस से 'बालसखा' बालमासिको का प्रकाशन आरम्भ हुआ।

प्रथम महायुद्ध के बाद विदेशी साहित्य का प्रभाव भी काफी पड़ने लगा था। बालसाहित्य की अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों ने भारतीय बालपाठको को आकर्षित किया और इसका परिणाम यह हुआ कि न केवल विदेशी श्रेष्ठ बालसाहित्य का अनुवाद हुआ बल्कि उसका अनुकरण करके मौलिक बालसाहित्य रचना की भी प्रेरणा मिली।

स्वतन्त्रता के पश्चात बालसाहित्य की आवश्यकता को बहुत गम्भीरता से सोचा गया। बालसाहित्य की माग एकदम बढ गई, किन्तु उस मात्रा मे बालसाहित्य लिखा नही गया था। अतः बालसाहित्य के नाम पर घटिया किस्म की पुस्तको का लेखन-प्रकाशन खूब हुआ।

इस समस्या की ओर सन् १९५७ मे विशेष रूप से ध्यान दिया गया और अखिल भारतीय बाल पुस्तक सप्ताह मे कई निर्णय लिए गए। अनेक प्रकाशनो ने बालसाहित्य प्रकाशन का व्रत लिया और स्वस्थ तथा उपयोगी बालसाहित्य का प्रणयन आरभ हुआ। अब तक के इन दस वर्षों मे हुई प्रगति का मूल्याकन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी मे मनोवैज्ञानिक तथा श्रेष्ठ बालसाहित्य का प्रकाशन

होने लगा है।

इस प्रकार हिन्दी बालसाहित्य के पूरे विकास-क्रम को स्वतन्त्र-रूप से स्वीकार करते हुए, निम्नाकित युगो मे विभाजित किया है—

१ पूर्व भारतेन्दु युग	•	सन् १८४५ से १८७३ तक
२ भारतेन्दु युग	:	सन् १८७४ से १९०० ,,
३ द्विवेदी युग		सन् १९०१ से १९३० ,,
४ आधुनिक युग		सन् १९३१ से १९४६ ,,
५ स्वातन्त्र्योत्तर युग		सन् १९४७ से १९५७ ,,
६ वर्तमान युग		सन् १९५७ से १९६७ ,

इस युग विभाजन पर निम्नाकित आधारो पर विस्तार से विचार प्रस्तुत हैं—

(क) ऐतिहासिक विवेचन
(ख) प्रमुख प्रवृत्तिया
(ग) प्रमुख लेखक तथा रचनाए

पूर्व भारतेन्दु युग (सन् १८४५ से १८७३ तक)

इस युग मे खडी बोली गद्य का आरभ हो चुका था और लल्लूलाल, सदल मिश्र जैसे अनेक लेखक अपनी रचनाओ द्वारा कार्य को आगे बढाने का प्रयत्न कर रहे थे। इन लोगो ने फोर्ट विलियम कालेज मे मौलिक पुस्तकें तो नही किन्तु अनुवाद अवश्य किए। ये अनुवाद भी बहुत साधारण कोटि के थे, फिर भी भाषा को स्वरूप देने का प्रयास तो प्रशसनीय रहा ही है।

(क) ऐतिहासिक विवेचन

हिन्दी गद्य की वास्तविक प्रगति राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने की। वह सन् १८४५ ई० मे सरकारी नौकरी मे शिक्षा-विभाग के इन्सपेक्टर के रूप मे आए थे। उन्हे हिन्दी भाषा तथा उसके विकास मे विशेष रुचि थी। अत उन्होंने इस दिशा मे बहुत ही लगन और निष्ठा से काम किया। उनके इस प्रयास से प्रभावित होकर ही तत्कालीन अन्य लेखक—मुन्शी सदासुखलाल नियाज, लल्लूलाल, सदल मिश्र आदि ने भी पुस्तकें लिखी। इस तरह हिन्दी गद्य साहित्य को एक निश्चित रूप देने का प्रयास होने लगा।

(ख) प्रमुख प्रवृत्तिया

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द से पूर्व जो पुस्तकें लिखी गईं, उन पर उर्दू का प्रभाव बहुत था। उस समय प्रयास यह किया जा रहा था कि कुछ प्रसिद्ध पुस्तकों का अनुवाद खडी बोली मे प्रस्तुत किया जाय। एक ओर ईसाई मिशनरियों का जोर था और दूसरी ओर उर्दू मिश्रित 'भाखा' लिखने वाले थे। ईसाई मिशनरियों ने तो हिन्दू-जनता को, कथा पुराण सुनाने-कहने की भाषा को ही अपना लिया

था। उधर अदालती भाषा उर्दू होने के कारण लोगों मे उर्दू पढने की ही प्रवृत्ति अधिक थी। उर्दू वालो ने खडी बोली का विरोध भी किया और उसे 'भाखा' शब्द उन्होंने ही दिया।

लेकिन राजा शिवप्रसाद के प्रयासों से हिन्दी को अपनी जड मजबूत बनाने मे सहायता मिली। शिक्षा विभाग मे आने के पहले भी वह हिन्दी की सेवा कर रहे थे और उन्होने 'बनारस अखबार' निकाला था। जब वह शिक्षा विभाग मे आ गए तो उन्होने हिन्दी को एक नई दिशा दी। वह परम्परागत प्रवृत्ति को छोडकर वह सब कुछ लिखने की ओर प्रवृत्त हुए, जो सही अर्थों मे हिन्दी के विकास मे सहायक सिद्ध हुआ। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी और तत्कालीन शिक्षा-पद्धति मे हिन्दी को निश्चित स्थान दिलाया।

(ग) प्रमुख लेखक तथा रचनाए

इस युग के लेखकों मे मुख्यत चार लेखको के नाम लिए जाते है—मुशी सदासुखलाल नियाज, इशाअल्ला खा, लल्लूलाल और सदल मिश्र। इनमे से प्रथम दो ने तो बालसाहित्य लिखा ही नही। शेष दो के नाम अवश्य उल्लेखनीय है। लेकिन उस समय इन दोनों से भी आगे बढकर लिखने वाले थे राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द। अत हम सर्वप्रथम लल्लूलाल, फिर सदल मिश्र और अन्त मे राजा साहब की रचनाओ तथा उनकी लेखन-प्रवृत्तियो पर विस्तार से विचार करेंगे।

१ लल्लूलाल—लल्लूलाल जी सन् १८०० ईस्वी मे फोर्ट विलियम कालेज मे हिन्दी ग्रन्थों की रचना के लिए नियुक्त हुए थे। उन दिनो डाक्टर गिलक्राइस्ट स्कूल मे पढाने के लिए हिन्दी मे पुस्तकें चाहते थे। अत उन्होंने लल्लूलाल का उपयोग किया। लल्लूलाल उर्दू, हिन्दी और ब्रज भाषा तीनो के समान अधिकारी थे। इसलिए उन्हे कोई कठिनाई नही हुई। उन्होंने सुन्दर दास कृत ब्रजभाषा खडी बोली की पुस्तक 'सिंहासन बत्तीसी' (सन् १७९९), शिवदास कृत सस्कृत की मूल पुस्तक 'बेताल पचविंशतिका' (सन् १७९९) का अनुवाद किया। ये कहानिया बाल-पाठकों के मनोरजनार्थ ही अनूदित हुई थी। लेकिन लल्लूलाल ने अपनी ऐसी कोई मौलिक कृति नही लिखी, जो बालसाहित्य के अन्तर्गत आ सके।

२. सदल मिश्र—ये भी लल्लूलाल के साथ फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता म थे। गिलक्राइस्ट महोदय की इच्छानुसार सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' का अनुवाद किया था। सदल मिश्र ने इसे बहुत ही सरल भाषा मे अनूदित किया था। इसकी वर्णन शैली मनोरजक और काव्यात्मक है। 'नासिकेतोपाख्यान' से एक उद्धरण इस प्रकार है—

"इस प्रकार से नासिकेत मुनि, यम की पुरी सहित नरक का वर्णन कर फिर जौन-जौन कर्म किए से जो भोग होता है, सो सब ऋषियो को सुनाने लगे। गौ, ब्राह्मण, माता-पिता, मित्र, बालक, स्त्री, स्वामी, वृद्ध, गुरु—इनका जो वध करते हैं वो झूठी साक्षी भरते हैं झूठ ही कर्म मे दिन-रात लगे रहने

है। ...''

सदल मिश्र की यह कृति मूलत बालसाहित्य तो नहीं है, किन्तु बालको को धर्मशास्त्र पढाने तथा नैतिक ज्ञान देने के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हुई।

३ राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द—भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी बालसाहित्य का सूत्रपात करने वालो मे राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द प्रमुख थे। वह सरकारी स्कूलो के इन्सपेक्टर थे। उनके मन मे हिन्दी के समर्थन तथा उत्थान का सकल्प पहले से ही था। इसलिए उन्होने अनेक पुस्तकें लिखी। ये सभी पुस्तकें केवल बडो के लिए ही नही लिखी गई थी। अनेक ऐसी पुस्तके भी लिखी गई थीं जो बच्चो की आवश्यकता पूर्ति करती थी। शिक्षा विभाग से सम्बद्ध होने के कारण राजा साहब ने बच्चो के लिए पृथक् साहित्य का महत्त्व समझा था। लेकिन चूकि उस समय भाषा का निश्चित रूप नही बन पाया था, इसलिए पुस्तको का कम होना भी स्वाभाविक ही था। राजा साहब ने इस दिशा मे कुछ उल्लेखनीय कार्य करने का निश्चय किया। उन्होने अन्य लेखको से बच्चो के लिए पुस्तक लिखवाने के साथ-साथ स्वय भी पुस्तकें लिखी। लेकिन उस समय मूल-समस्या स्कूलो मे पढाने के लिए पुस्तको की थी। इसलिए बच्चो के लिए उस समय लिखी गई पुस्तकें दुहरे उद्देश्य की पूर्ति करने वाली थीं। उनमे भाषा को सिखाने के साथ-साथ बाल-पाठको का मनोरजन करने का भी प्रयास किया गया था।

राजा साहब ने वास्तव मे दो तरह की पुस्तकें लिखी। एक तो वे थी जिन्हे विशुद्ध पाठ्य पुस्तको की कोटि मे रखा जा सकता है। इनमे 'मानवधर्म सार', 'भूगोलहस्तामलक,' 'छोटा भूगोलहस्तामलक,' 'स्वयबोध उर्दू,' 'वर्णमाला', 'इतिहास तिमिरनाशक' (भाग १, २, ३), 'हिन्दी व्याकरण,' 'अग्रेज़ी अक्षरो को सीखने का उपाय,' 'कबीर टीका' आदि हैं। दूसरी वे पुस्तकें थी जो बच्चो के मनोरजन के लिए भी लिखी गई थी। इनमे 'आलसियो को कोडा,' 'राजा भोज का सपना,' 'बालबोध,' 'बच्चो का इनाम,' 'लडको की कहानी' आदि हैं।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द की इन समस्त कृतियो के सम्बन्ध मे डा० रामचन्द्र तिवारी का मत है— 'इन कृतियो मे से अधिकाश विद्यार्थियो को दृष्टि मे रखकर लिखी गई हैं। विषय की दृष्टि से विविधतापूर्ण होते भी ये रचनाए महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकतीं।'[१] लेकिन डा० रामचन्द्र तिवारी के इस मत से सहमत नही हुआ जा सकता। कारण यह है कि यह तो स्पष्ट है कि उपर्युक्त पुस्तकें बाल-पाठको या विद्यार्थियो के लिए ही मूलत लिखी गई थी। ऐसी दशा मे प्रौढ साहित्य की दृष्टि से उनका मूल्याकन करना तथा उनके साहित्यिक महत्त्व को नकारना समीचीन नही प्रतीत होता। इस बात को भी नहीं अस्वीकारा जा सकता है कि यह गद्य निर्माण का युग था और उसका भविष्य तभी उज्ज्वल बन सकता था जबकि भावी-पीढी यानी भविष्य के प्रौढसाहित्य के निर्माता अथवा पाठक उस

१ हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृष्ठ ४५६।

भाषा से आरभ से ही परिचित हो जाए। ऐसी दशा मे जहा तक हिन्दी साहित्य तथा खडी बोली के विकास की बात है, राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद का यह प्रयास बहुत महत्त्वपूर्ण और उपयोगी रहा है। यदि वे विकास के मूल को सुधारने का प्रयत्न न करते तो सभवत द्विवेदी युग मे खडी बोली का प्रचार-प्रसार उतनी गति से न हुआ होता, जितना कि हुआ है।

बालसाहित्य की दृष्टि से भी राजा साहब का यह कार्य प्रशसनीय है। उस समय समस्त बालसाहित्य या तो सस्कृत मे था या लोकबोलियो मे मौखिक रूप से था। पुस्तको के रूप मे उर्दू और अग्रेजी का ही बालसाहित्य उपलब्ध था। हिन्दी मे बालसाहित्य का सूत्रपात करने का श्रेय तो राजा शिवप्रसाद को ही है। आज की भाषा के स्तर से उनकी पुस्तको की तुलना करना असगत ही होगा। किन्तु यदि उन पुस्तको पर ही स्वतन्त्र रूप से विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि राजा साहब के लेखन मे एक निश्चित दृष्टि अवश्य थी। उन्होने अपनी भाषा-नीति को इन शब्दो मे स्पष्ट किया था—"हम लोगो को जहा तक बन पडे चुनने मे उन शब्दो को लेना चाहिए कि जो आमफहम और खास पसन्द हो अर्थात् जिनको जियादा आदमी समझ सकते हैं और जो यहा के पढे-लिखे आलिम फाजिल, पडित, विद्वान की बोलचाल मे छोडे नही गए है और जहा तक बन पडे हम लोगो को हर्गिज गैरमुल्क के शब्द काम मे न लाने चाहिए और न सस्कृत की टकसाल कायम करके नए नए ऊपरी शब्दो के सिक्के जारी करने चाहिए, जब तक कि हम लोगो को उनके जारी करने की जरूरत साबित न हो जाय अर्थात् यह कि उस अर्थ का कोई शब्द हमारी जबान मे नही है या जो है, अच्छा नही है, या कविताई की जरूरत या इल्मी जरूरत या कोई और खास जरूरत साबित हो जाय।"[1]

राजा साहब की इस भाषा-नीति की आलोचना करते हुए प० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, "भाषा-सम्बन्धी जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन राजा साहब ने किया है उसके अनुकूल उनकी यह भाषा कहा तक है, पाठक आप समझ सकते हैं। 'आम फहम', 'खास पसन्द,' 'इल्मी जरूरत' जनता के बीच प्रचलित शब्द कदापि नहीं हैं। फारसी के 'आलिम फाजिल' चाहे ऐसे शब्द बोलते हो पर सस्कृत हिन्दी के 'पडित विद्वान' तो ऐसे शब्दो से कोसो दूर हैं।"[2] शुक्ल जी का यह आक्षेप बहुत सही नही है। वास्तव मे 'आम फहम', 'खास पसन्द', 'इल्मी जरूरत' जैसे शब्द भले ही सस्कृत विद्वानो को स्वीकार्य न रहे हो किन्तु तत्कालीन बोलचाल की भाषा मे य शब्द थे और आज हिन्दी का इतना विकास हो जाने के बाद भी हैं। उस समय तो सरकारी काम-काज और अधिकाश पढे-लिखे लोगो की भाषा तो उर्दू ही थी। अत राजा साहब पर यह आक्षेप एकपक्षीय लगता है कि 'ये शब्द जनता के बीच प्रचलित नही है।' जहा तक इन शब्दो का प्रयोग उनकी भाषा-नीति

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ४०३।
२ वही।

से सम्बन्धित है, वह भी उचित ही है। वास्तव में ये शब्द उन्ही पढ़े-लिखे लोगो को अपनी नीति समझाने के उद्देश्य से प्रयुक्त हुए हैं, जिनकी भाषा फारसी या उर्दू थी। यदि ऐसा न होता तो 'या' का प्रयोग करके उन शब्दो को सरल करके लिखने की आवश्यकता न होती। उदाहरण के लिए 'आमफहम और खासपसन्द' के लिए 'जिनको जियादा समझ सकते हैं' तथा 'पढ़े-लिखे' लिखने के बाद 'आलिम फाजिल' शब्द का प्रयोग तथा 'कविताई (विद्वत्ता) की जरूरत' के बाद या 'इलमी जरूरत' लिखना न्यायसगत ही है।

इस भाषा-नीति के सम्बन्ध में यहा यह उल्लेखनीय है कि यह भले ही प्रौढ-साहित्य के लिए, सस्कृत के प्रभाव के कारण स्वीकार्य न हुई हो (जैसा कि राजा साहब ने सकेत भी किया है कि न सस्कृत की टकसाल कायम करके नए-नए ऊपरी शब्दो के सिक्के जारी करने चाहिए), किन्तु बालसाहित्य की दृष्टि से यह अवश्य ही ठीक थी। इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि बच्चे वही भाषा सीखते हैं जो उनके माता पिता द्वारा तथा उनके आसपास बोली जाती है। ऐसी दशा मे पुस्तकें लिखने मे सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग असगत नही था। उसमे एक लाभ यही था कि बच्चे उन पुस्तको को आसानी से समझ सकते और उनको पढने मे रुचि लेते। इसलिए राजा साहब ने, शिक्षा विभाग के इन्सपेक्टर होने के कारण जिस भाषा-सिद्धान्त को बनाया था, उसके पीछे एक यह उद्देश्य भी भी अवश्य ही रहा होगा। यदि राजा साहब की स्वय की भाषा का अवलोकन करें तो उपर्युक्त विवेचन और अधिक स्पष्ट हो जाता है कि वह जिस भाषा को प्रचारित करना चाहते थे वह क्या थी और अपने भाषा सिद्धान्त मे जिन उर्दू शब्दो का प्रयोग किया है, उनके प्रयोग का क्या आशय था? 'राजा भोज का सपना' पुस्तक का निम्न अश द्रष्टव्य है :

"वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी महाराज भोज का नाम न सुना हो। उसकी महिमा और कीर्ति तो सारे जगत मे व्याप रही है। बड़े-बड़े महिपाल उसका नाम सुनते ही काप उठते और बड़े-बड़े भूपति उसके पाव पर अपना सिर नवाते। सेना उसकी समुद्र के तरगो का नमूना और खजाना उसका सोना-चादी और रत्नो की खान से भी दूना। उसके दान ने राजा कर्ण को लोगो के जी से भुलाया और उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया।"

इस गद्याश से स्पष्ट है कि राजा साहब बच्चो की मनोवृत्ति समझने और उनके अनुकूल भाषा लिखने मे सिद्धहस्त थे। केवल उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि बच्चो के मन मे राजा भोज के प्रति कौतूहल जगाने के लिए ही उसकी महिमा, प्रभुता तथा वैभव सम्पन्नता का इतना विशद वर्णन किया गया है। सभवत राजा साहब के इन्ही प्रयासो के कारण, तत्कालीन सस्कृत भाषी हिन्दी विद्वानो ने उन पर 'अग्रेजो का भक्त' होने का लाछन लगाया था। लेकिन यदि बच्चो की दृष्टि से देखे, जिनके लिए उन्होने वास्तव मे पुस्तकें लिखी थी और भाषा निर्मित की थी, तो स्पष्ट हो जाता है कि उनका प्रयास निश्चय ही प्रशसनीय था और उनकी

पुस्तको तथा भाषा पर इस दृष्टि से विचार किये बिना लाछन लगाना, एकागी होगा। यहा यह भी उल्लेख करना उचित ही होगा कि तत्कालीन शिक्षा-नीति तथा भाषा-नीति मे सुधार करने का श्रेय राजा साहब को ही है। डा० रामचन्द्र तिवारी के शब्दो मे, "उन्होने जो कुछ किया, उसका महत्त्व और मूल्य कम नही है। मैकाले की शिक्षा योजना के प्रभावस्वरूप उस समय ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी कि हिन्दी का अस्तित्व ही खतरे मे पड गया था। सरकारी दफ्तरो की भाषा तो 'उर्दू' हो गयी थी, सर्वसाधारण की शिक्षा के लिए स्थापित किये जाने वाले मदरसो मे भी हिन्दी शिक्षा की व्यवस्था का विरोध हो रहा था। ऐसी परिस्थिति मे शिक्षा-विभाग मे हिन्दी को स्थान दिलाना और उसकी रक्षा करना, उसमे विभिन्न विषयो पर पाठ्यक्रमानुकूल छात्रोपयोगी पुस्तकें लिखना, नागरी लिपि का समर्थन करना और अपने को हिन्दी हितैषी कहना ही अपने-आप मे बहुत बडी बात थी।"[1] यह सत्य है कि यदि हिन्दी को उस समय शिक्षा विभाग मे स्थान न मिलता और वह स्कूलो मे स्थान न पाती तो उसकी विकास गति मे अवश्य ही कुछ अन्तर पड जाता। ऐसी दशा मे हिन्दी साहित्य राजा साहब का भले ही ऋणी न हो,[2] हिन्दी बाल साहित्य अवश्य ही उनका ऋणी है।

भारतेन्दु युग (सन् १८७४ से १९०० तक)

भारतेन्दु के पूर्व हिन्दी की विकास-गति उर्दू के कारण बहुत धीमी पड गई थी। यद्यपि राजा शिवप्रसादसिंह सितारेहिन्द और राजा लक्ष्मणसिंह ने अपने प्रयासो द्वारा इस विकास को गति प्रदान कर उसे प्रवाहित करते रहने का महत्त्वपूर्ण काम अवश्य किया, किन्तु वे हिन्दी को अक्षुण्ण रूप मे प्रवाहित करने मे समर्थ नही हुए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आविर्भाव से यह अक्षुण्णता भी प्राप्त हुई और हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विभिन्न रूपो तथा विधाओ को विकास गति मिली।

(क) ऐतिहासिक विवेचन

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का समय हिन्दी साहित्य के इतिहास मे सन् १८५० से १९०० ई० तक माना जाता है। "प्राचीन से नवीन के इस सक्रमण-काल मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारतवासियो की नवोदित आकाक्षाओ और राष्ट्रीयता के प्रतीक थे, वे भारतीय नवोत्थान के एक अग्रदूत थे। मध्ययुगीन पौराणिक वाता-

---

१ द्रष्टव्य हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृष्ठ ४५६, ज्ञानमडल लि०, वाराणसी।

२. "राजा शिवप्रसाद 'आम फहम' और 'खास-पसन्द' भाषा का उपदेश ही देते रहे, उधर हिन्दी भाषा अपना रूप आप स्थिर कर चली।" प० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४१०।

वरण से जीवन और साहित्य को बाहर निकालकर उन्हें आधुनिक रूप प्रदान करने की उन्होंने सतत चेष्टा की। भाषा, भाव, साहित्यिक रूप आदि की दृष्टि से उन्होंने गद्य और काव्य, दोनों क्षेत्रों में हिन्दी भाषियों का नेतृत्व किया। साहित्य के नये-नये मार्ग खुले। नाटक, उपन्यास, निबन्ध, समालोचना, समीक्षा, जीवनी, साहित्यिक इतिहास आदि का तथा खड़ी बोली कविता का बचपनकाल यही है। गद्य भी पुष्ट होकर अपना स्वरूप स्थिर करने लगा। अनेक नवीन साहित्यिक विषयों के अतिरिक्त ज्ञान-विज्ञान तथा उपयोगी साहित्य की रचना इसी काल में हुई। हिन्दी साहित्य, जो अब तक वास्तविक जीवन से अलग पुराने रास्ते पर पड़ा हुआ था, बहुत जल्दी विज्ञान, इतिहास, भूगोल, धर्म, पुराण, जीवनी, उपन्यास, नाटक, अर्थशास्त्र, यात्रा, गणित, राजनीति, आदि नये-नये गम्भीर विषयों की ओर अधिक तीव्र गति से प्रवृत्त हुआ।"[१]

भारतेन्दु युग के आरंभ में बालसाहित्य अधिकांश उन्हीं स्कूली पुस्तकों के रूप में था, जिन्हें हिन्दी पढ़ाने के उद्देश्य में लिखा गया था। बहुत कम ऐसी पुस्तकें थीं जो बच्चों के विशुद्ध मनोरंजन की दृष्टि से लिखी गई थीं। इन पुस्तकों ने लोकप्रियता भी अधिक प्राप्त नहीं की थी। इसके दो कारण थे—एक तो उर्दू साहित्य की बाल-पुस्तकों का प्रभाव अधिक था और दूसरा हिन्दी की पुस्तकों की भाषा परिमार्जित नहीं थी। किन्तु इतना अवश्य हुआ कि नई शिक्षा-प्रणाली के प्रभाव से नई पीढ़ी की विचारधारा बदल चली थी। उनके मन में देशहित, समाजहित की भावना ने जन्म ले लिया था। हिन्दी, देश की भाषा होने के कारण, अपनाई जाने लगी थी। जो कुछ भी बड़ों के लिए लिखा जाता, उसमें से भी बच्चे अपनी रुचि, मनोरंजन और ज्ञानवर्धन के लिए निकाल लेते थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य की सभी विधाओं को समृद्ध तथा परिष्कृत बनाने का व्रत लिया था। उन्होंने जहां एक ओर तत्कालीन शासकीय हिन्दी विरोधी नीति का विरोध किया वहीं सामाजिक चेतना लाने में भी पीछे नहीं रहे। उन्होंने इसी सामाजिक चेतना का एक महत्वपूर्ण पहलू बालक-बालिकाओं में नवजागरण माना था और इसी उद्देश्य से 'बाला-बोधिनी' पत्रिका का प्रकाशन १ जून १८७४ से आरंभ किया था। यद्यपि यह पत्रिका अधिक समय तक नहीं निकली, तथापि इसने हिन्दी में बालसाहित्य रचना को जन्म दिया। यहीं से विशुद्ध हिन्दी बालसाहित्य का विकास आरंभ होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अनेक ऐसी रचनाएं लिखीं जिन्होंने तद्युगीन बाल तथा किशोर पीढ़ी को प्रभावित किया और उसके मन पर अपने उद्देश्यों की अमिट छाप छोड़ी। इसके साथ ही भारतेन्दु ने तत्कालीन लेखकों को भी ऐसी रचनाएं लिखने की प्रेरणा दी।

भारतेन्दु युग में बालसाहित्य की कुछ प्रमुख विधाओं का ही उपयोग किया गया और रचनाएं लिखी गईं। नाटकों में स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपना महत्व-

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृष्ठ ५४४।

पूर्ण योगदान दे रहे थे। 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'भारत दुर्दशा' और 'अन्धेर नगरी' नाटकों ने तत्कालीन बाल-दर्शकों को भी प्रभावित तथा आनन्दित किया। निबन्धों मे प० राधाकृष्णदास, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त आदि ने विभिन्न शैलियो मे, विभिन्न विषयो पर निबन्ध लिखे। कविताओं मे देशहित, सामाजिक एव धार्मिक चेतना तथा स्वतन्त्रता के स्वर ही प्रमुख हुए थे। लेकिन इसके साथ बाल रुचि के अनुकूल भी कविताए लिखी गई थी। प० प्रतापनारायण मिश्र की प्रार्थना 'शरणागत पाल कृपाल प्रभो, हमको एक आस तुम्हारी है' काफी समय तक लोकप्रिय हुई। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और स्वय भारतेन्दु ने भी बच्चो के लिए मनोरजक कविताए लिखी।

(ख) प्रमुख प्रवृत्तिया

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का आविर्भाव इतिहास के ऐसे सन्धिकाल मे हुआ था, जबकि नई और पुरानी मान्यताओं को लेकर काफी सघर्ष आरम्भ हो चुका था। ऐसी दशा मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का ध्यान, नई और पुरानी—दोना परम्पराओ की ओर गया। वह नए का ग्रहण करना चाहते थे और पुराने को छोडना भी नही चाहते थे। स्वाभाविक था कि ऐसी स्थिति मे उन्हे समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाना पडा। उस समय देश मध्ययुगीन पौराणिक जीवन मे लिप्त था। अग्रेजों और मुगलो की गुलामी ने उसे निष्क्रिय बना दिया था। किन्तु दूसरी ओर नई शिक्षा प्रणाली तथा विज्ञान की प्रगति के कारण नई चेतना की लहर भी फैल रही थी। ऐसी दशा मे यह आवश्यक था कि वह शान्ति और सुख की सास लेने के लिए ऐसे वातावरण का निर्माण करे जिस पर किसी तरह का बन्धन न हो।

हिन्दी बालसाहित्य इस समय अपनी आरभिक अवस्था मे था। इसकी स्थिति उस दुधमुहे बच्चे जैसी थी, जिसके मुह मे कुछ भी लगाए तो वह चूसने लगता है और उसी से रस लेने का प्रयास करता है। उस समय की राजनीतिक और सामाजिक स्थितियो का प्रभाव बालसाहित्य पर भी पडना बहुत स्वाभाविक था। अत इस ओर ध्यान नही दिया गया कि किस प्रकार की भाषा-शैली मे क्या साहित्य उन्हे दिया जा रहा है। जहा तक अन्य परम्पराओ तथा नीतियों का सम्बन्ध है, उनमे भी विशेष परिवर्तन नही हुआ। पुरानी नीति तथा धार्मिक कथाए, राजा-रानी, भूतों-राक्षसों की कहानिया ही बच्चो का मन बहलाती थी।

भारतेन्दु ने तत्कालीन भारतीय समाज की प्रवृत्तियो पर करारा व्यग्य किया और भावी पीढी को उससे बचाने का सदेश दिया। 'भारत दुर्दशा' नाटक मे आलसी का यह कथन कितना करारा व्यग्य है, साथ ही इसमे भावी पीढी (बालको) के लिए मनोरजन के साथ-साथ कर्मठ बनने का सदेश भी है—

"हहा ! एक पोस्ती ने कहा, 'पोस्ती ने पी पोस्त नौ दिन चले अढाई कोस।' दूसरे ने जवाब दिया, अबे वह पोस्ती न होगा, डाक का हरकारा होगा। पोस्ती ने जब पोस्त पी तो या कूडी के उस पार या इस पार ठीक है। एक बारी मे हमारे

दो चेले लेटे थे और उसी राह मे एक सवार जाता था। पहले ने पुकारा 'भाई सवार सवार, यह पका आम टपक कर मेरी छाती पर पडा है, जरा मेरे मुह मे तो डाल।' सवार ने कहा 'अजी तुम बडे आलसी हो। तुम्हारी छाती पर आम पडा है, सिर्फ हाथ से उठाकर मुह मे डालने मे यह आलस है।' दूसरा बोला, 'ठीक है साहब, यह बडा ही आलसी है। रात भर कुत्ता मेरा मुह चाटा किया और यह पास ही पडा था, पर इसने न हाका।' सच है किस जिन्दगी के वास्ते तकलीफ उठाना, मजे मे हालमस्त पडे रहना। सुख केवल हम मे है। आलसी पडे कुए म वही चैन है।"

यहा यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु ने जिस साहित्य का सृजन किया तथा जिसके लिए अपने सहयोगियो को प्रेरणा दी, उसके बीज उनके मन मे बाल्यावस्था मे ही अकुरित हो गए थे। उन्हाने बचपन से ही उन अभावा और कमियो को महसूस करना आरम्भ कर दिया था, जोकि साहित्य जगत मे व्याप्त थी। सम्भवत इसी का परिणाम था कि वे बाद मे साहित्य रचना की उन मूल प्रवृत्तियो को अधिक सूक्ष्मता से पकड सके, जिनकी तब बहुत आवश्यकता थी। यह साहित्य रचना उन्होने भाषा की समृद्धि और बडो के जागरण के लिए ही नही की थी, बल्कि उसका उद्देश्य यह भी था कि उसे पढकर बालक तथा किशोर भी भविष्य के लिए तैयार हो। 'भारत दुर्दशा' मे उन्होने इसलिए कहा था—"यह कोई नही कहता कि सब लोग मिलकर एकत्रित हो विद्या की उन्नति करो, कला सीखो, जिससे वास्तविक कुछ उन्नति हो। क्रमश सब कुछ हो जायगा।"[१] इस विद्या की उन्नति और 'क्रमश' के पीछे उस बाल तथा किशोर पीढी को ही उन्नतिशील बनाने की ओर सकेत है, जिसे भारत को आजाद बनाने का व्रत लेना था। वास्तव मे ऐसा ही हुआ भी। उस समय जिन बालको ने 'सत्य हरिश्चन्द्र' तथा 'भारत दुर्दशा' नाटक देखे या पढे थे, उनकी भावनाओ मे बहुत परिवर्तन हुआ। स्वातन्त्र्य सग्राम के अनेक सेनानी इसी युग मे पैदा हुए और उन्होंने उस वातावरण से प्रेरित होकर ही बडे होने पर भारत की आजादी का बीडा उठाया था।

भारतेन्दु युग मे बच्चो को उपदेशात्मक तथा धार्मिक कथाओ से युक्त साहित्य भी पर्याप्त मात्रा मे दिया गया। उसका एक कारण तो यह था कि मुस्लिम-सस्कृति तथा उर्दू-फारसी की कथाओ 'अलिफ लैला', 'चहार दरवेश' आदि का प्रभाव काफी फैल चुका था और अग्रेजो के आने के बाद विदेशी सस्कृति भी अपनी जडें मजबूत करने मे लगी हुई थी। भारतीय जनता अपने बच्चो को इस विदेशी प्रभाव से बचाना चाहती थी। इसलिए पुराणो, उपनिषदो तथा प्राचीन कथा ग्रन्थो की कहानिया सुनाकर बच्चो के सस्कारो को परिष्कृत करने के उद्देश्य से ही साहित्य रचना हो रही थी। बच्चा के लिए ऐसे स्कूल थे जहा मौलवी साहब

---

[१] 'भारत दुर्दशा', भारतेन्दु ग्रथावली, पृष्ठ ४८८।

पढाते थे और ऐसे भी थे जहा पण्डितजी पढाते थे। भारतेन्दु युग मे हिन्दी के बढते प्रभाव तथा भारतीय सस्कृति और परम्परा के मोह के वशीभूत होकर लोग हिन्दी स्कूलों मे अधिकाधिक बच्चे पढने के लिए भेजते थे। यहा वही पुरानी कहानिया, धार्मिक उपदेश और नीतिया उन्हे सिखाई जाती थी। इनसे यह लाभ तो अवश्य हुआ कि बच्चे विदेशी प्रभाव से काफी दूर रहे और उनके सस्कार भारतीय परम्पराओं के अनुकूल ही पडे, हालाकि आगे चलकर उन्हे तद्‌युगीन वातावरण से सघर्ष भी काफी करना पडा। किन्तु इतना तो निश्चित स्वीकार किया जा सकता है कि इस युग मे लिखे गये साहित्य ने बच्चो पर स्वस्थ प्रभाव डाला और उन्हें निश्चित ही भविष्य के योग्य बनाने मे सहायता दी।

(ग) प्रमुख लेखक तथा रचनाए

"'भारतेन्दु युग' मे अनेक लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्रभावित थे। उन्होंने तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियो को ही नही स्वीकार किया बल्कि साहित्य की विविध विधाओ को समृद्ध भी बनाया, जिनमें बालसाहित्य भी एक थी। इससे भा बडा काम उन्होने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और उसे वे शिक्षित जनता के साहचर्य मे लाए। नई शिक्षा के प्रभाव से लोगो की विचार-धारा बदल चली थी। बीच-बीच मे कुछ शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकें अवश्य निकल जाती थी पर देशकाल के अनुकूल साहित्य-निर्माण का कोई विस्तृत प्रयत्न तब तक नही हुआ था। भारतेन्दु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोडकर हमारे जीवन के साथ फिर से लगा दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद पड रहा था, उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नए-नए विषयो की ओर प्रवृत्त करनवाले हरिश्चन्द्र ही हुए।"[1]

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—जैसाकि हम पहले ही लिख चुके हैं कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बालसाहित्य की आवश्यकता समझते हुए, उसकी पूर्ति के लिए 'बाला-बोधिनी' पत्रिका का प्रकाशन आरभ किया था। इस पत्रिका मे बालिकाओं के ज्ञान-वर्धन तथा मनोरजन के लिए रचनाए प्रकाशित होती थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने स्वय भी अनेक रचनाओ द्वारा बालसाहित्य को समृद्ध बनाने का प्रयास किया। बच्चों के लिए विशेष रूप से लिखा गया नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र' (सन् १८७५) उनकी बालसाहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचना है। उन्होंने इस नाटक के उपक्रम मे स्वय भी लिखा है, "मेरे मित्र बाबू बालेश्वर प्रसाद बी० ए० ने मुझसे कहा कि आप कोई ऐसा नाटक भी लिखें जो लडकों के पढने-पढाने के योग्य हो। क्योकि शृगार रस के आपने जो नाटक लिखे हैं वे बडे लोगों के पढने के हैं, लडको को उनसे कोई लाभ नही। उन्ही के इच्छानुसार मैंने सत्य हरिश्चन्द्र नामक रूपक

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ४१२-१३।

हरिश्चन्द्र : (अत्यन्त घबराकर) अरे, अरे विधाता ! तुझे यही करना था। (आप ही आप) हा ! पहिले महारानी बनाकर अब दैव ने इसे दासी बनाया। यह भी देखना बदा था। हमारी इस दुर्गति से आज कुलगुरु भगवान सूर्य का भी मुख मलीन हो रहा है। (रोते हुए प्रगट रानी से) प्रिये, सर्वभाव से उपाध्याय को प्रसन्न रखना और सेवा करना।

शैव्या : (रोकर) नाथ ! जो आज्ञा।

वटुक : उपाध्याय जी गए। अब चलो जल्दी करो।

हरिश्चन्द्र : (आंखों में आंसू भरकर) देवी ! (फिर रुककर अत्यन्त सोच से आप ही आप) हाय ! अब मैं देवी क्यों कहता हूं, अब तो विधाता ने इसे दासी बनाया। (धैर्य से) देवी, उपाध्याय की आराधना भली भांति करना और उन सब शिष्यों से भी सुहृद भाव रखना, ब्राह्मण की स्त्री की प्रीतिपूर्वक सेवा करना, बालक का यथासंभव पालन करना और अपने धर्म और प्राण की रक्षा करना। विशेष हम क्या समझावें, जो-जो दैव दिखावे उसे धीरज से देखना। (आंसू बहते हैं)

शैव्या : जो आज्ञा। (राजा के पैरों पर गिरकर रोती है)

हरिश्चन्द्र : (धैर्यपूर्वक) प्रिये, देर मत करो, वटुक घबड़ा रहे हैं। (शैव्या उठकर रोती और राजा की ओर देखती हुई धीरे-धीरे जाती है)

बालक : (राजा से) पिता, मां कआं जाती एं ?

हरिश्चन्द्र : (धैर्य से आंसू रोककर) जहां हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया है।

बालक : (वटुक से) अले मा को मत ले जा। (मां का आंचल पकड़ के खींचता है)

वटुक : (बालक को ढकेलकर) चल-चल, देर होती है।
(बालक ढकेलने से गिरकर रोता हुआ उठकर अत्यन्त क्रोध और करुणा से माता-पिता की ओर देखता है)

हरिश्चन्द्र : ब्राह्मण देवता ! बालकों के अपराध से रुष्ट नहीं होना चाहिए। (बालक को उठाकर धूर पोंछकर मुंह चूमता हुआ) पुत्र, मुझ चांडाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्यों देखता है ? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिए। जाओ, माता के संग, मुझ भाग्यहीन के साथ रहकर क्या करोगे ? (रानी से) प्रिये, धैर्य धरो, अपने और जाति स्मरण करो। अब जाओ देर होती है। (रानी और बालक रोते हुए वटुक के साथ जाते हैं)[1]

उपर्युक्त उद्धरण में भाषागत दोषों की ओर ध्यान नहीं देना होगा, क्योंकि जिस

१। भारतेन्दु ग्रन्थावली, 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक से, पृष्ठ २८६।

समय इस नाटक की रचना हुई उस समय खडी बोली अपने निर्माण-काल म थी। फिर भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उपर्युक्त अश मे बालसुलभ मनोवृत्ति का सुन्दर चित्रण किया है। मा का ले जाने से रोकना और फिर उसका आचल पकडकर खींचना, यह सिद्ध करता है कि भारतेन्दु ने बाल मनोवृत्ति तथा क्रियाओ को सूक्ष्मता से देखा था। रोते हुए बालक का क्रोध और करुणा की मिश्रित दृष्टि से देखना, उनके बाल मनोविज्ञान के सक्ष्म अध्ययन का परिचायक है। हरिश्चन्द्र द्वारा बालक को उठाकर उसकी धूल झाडना और प्यार से चूम लेना, वात्सल्य का सुन्दर दृश्य है।

भारतेन्दु कृत 'अन्धेर नगरी' नाटक भी बच्चो के लिए बहुत रोचक और प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ। इसकी रचना भारतेन्दु ने सन् १८८१ मे की थी। यह इतना प्रसिद्ध हुआ कि 'अन्धेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा' एक कहावत ही बन गई। नाटक मे छ अक है। पहले अक मे एक महन्त अपने दो शिष्यो, नारायणदास और गोवरधनदास से, दूसरो को भिक्षा मागने के सम्बन्ध मे अधिक लोभ न करने का उपदेश देते हैं। दूसरे अक मे बाजार के विभिन्न व्यापारियो के दृश्य हैं जिनकी माल बेचने की आवाजो मे व्यग्य की तीव्रता है। शिष्य बाजार मे हर चीज टके सेर पाता है और नगरी और राजा का नाम (अन्धेर नगरी चौपट राजा) ज्ञातकर और मिठाई लेकर महन्त के पास वापस आता है। गोवरधनदास मे नगरी का हाल मालूम कर वह ऐसी नगरी मे रहना उचित न समझ तीसरे अक मे वहा से चलने के लिए अपने शिष्य से कहता है। किन्तु गोवरधनदास लोभ के वशीभूत हो वही रह जाता है और महन्त तथा नारायणदास चले जाते हैं। चौथे अक मे पीनक मे बैठा राजा एक फरियादी की बकरी मर जाने पर कल्लू बनिया, कारीगर, चूनेवाले, भिश्ती, कसाई और गडरिया को छोडकर अन्त मे कोतवाल को ही फासी का दण्ड देता है, क्योंकि उसकी सवारी निकालने से ही बकरी दबकर मर गई थी। पाचवें अक मे कोतवाल की गर्दन पतली होने के कारण गोवरधनदास पकडा जाता है जिससे उसकी मोटी गर्दन फदे मे फसाई जा सके। अब गोवरधनदास को गुरु की बात याद आती है। किन्तु छठे अक मे जैसे ही गोवरधनदास को फासी पर चढाया जाता है कि गुरुजी और नारायणदास आ जाते है। गुरुजी गोवरधनदास के कान मे कुछ कहते हैं और उसके बाद दोनो मे फासी पर चढने के लिए होड लग जाती है। इसी समय राजा, मत्री और कोतवाल आते है। गुरुजी के यह कहने पर कि इस समय जो मरेगा वह सीधा वैकुण्ठ को जायगा, मत्री, कोतवाल और राजा मे फासी पर चढने के लिए झगडा होने लगता है। किन्तु राजा के रहते भला और कौन फासी पर चढ सकता था। इसलिए राजा फासी पर चढ जाता है। इस तरह मूर्ख राजा का अन्त हो जाता है। इस नाटक का सार यह है कि जिस राज्य मे विवेक अविवेक का भेद न किया जाय, वहा की प्रजा सुखी नही रह सकती।

'अन्धेर नगरी' नाटक मे बच्चो को नकल करने तथा

भरपूर सामग्री है। नाटक के आरम्भ मे विभिन्न प्रकार की चीजें बेचने वाले जहा तत्कालीन वाराणसी नगर का दृश्य उपस्थित करते है, वही बच्चो के लिए खेल मेल म दुहराने के लिए सामग्री भी देते हैं—

मुगल हमारा ऐसा मुल्क जिसमे अंग्रेज का भी दात खट्टा हो गया। नाहक को रुपया खराब किया बेवकूफ ने। हिन्दुस्तान का आदमी लक-लक। हमारे यहा का आदमी बुबक बुबक। लो सब मेवा टके सेर।[1]

यहा मुगल से तात्पर्य अफगानिस्तान के खान से है। इसी प्रकार चूरन बेचने वाले का लटका भी रोचक है—

चूरन अमल बेद का भारी। जिसको खाते कृष्ण मुरारी।
मेरा पाचक है पचलोना। जिसको खाते श्याम सलोना।
चूरन बना मसालेदार। जिसमें खट्टे की बहार।
मेरा चूरन जो कोई खाय। मुझको छोड़ कही ना जाय।[2]

'अन्धेर नगरी' का परिचय देते हुए नाटक मे कहा गया है—

गोबरधन सब भाजी टके सेर! वाह वाह ··· बडा आनन्द है। यहा सभी चीज टके सेर! (हलवाई के पास जाकर) क्या भाई हल-वाई, मिठाई कितने सेर है?

हलवाई बाबाजी, लडुआ, हलुआ, जलेबी, गुलाबजामुन, खाना सब टके सेर।

गोबरधन वाह! वाह! बडा आनन्द है। क्या बच्चा, मुझसे मसखरी तो नही करता? सचमुच सब टके सेर?

हलवाई हा बाबाजी, सचमुच सब टके सेर। इस नगरी की चाल ही यही है। यहा सब चीज टके सेर बिकती है?

गोबरधन क्यो बच्चा? इस नगरी का नाम क्या है?

हलवाई अंधेर नगरी।

गोबरधन और राजा का नाम क्या है?

हलवाई चौपट राजा।

गोबरधन वाह! वाह!! अन्धेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजा, टके सेर खाजा।[3]

पूरा नाटक हास्य से भरपूर और बाल दर्शकों को गुदगुदाने वाला है। इसके कथानक बहुत सरल हैं। राजा के दरबार मे प्रस्तुत 'बकरी का मुकद्दमा' बहुत ही मजेदार बन पडा है। मूर्ख राजा का न्याय जहा बच्चा को सीख देना है, वहा उनका मनोरजन भी करता है। कुल मिलाकर नाटक बहुत प्रभावोत्पादक बन पडा है।

---

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली, 'अन्धेर नगरी' नाटक से, पृष्ठ ६६२।
२ वही, पृष्ठ वही।
३ वही, पृष्ठ ६६३–६६४।

भारतेन्दु की अन्य बालोपयोगी गद्य रचनाओं में 'कश्मीर कुसुम' एवं 'बादशाह दर्पण' उल्लेखनीय है। इन रचनाओं से बाल-पाठकों को भारतीय इतिहास की जानकारी मिली। भारतेन्दु की अनेक काव्य-रचनाएं आज भी कई कक्षाओं में पढ़ाई जाती हैं। वे रचनाएं बालसाहित्य तो नहीं हैं, लेकिन उनसे बच्चों का ज्ञान-वर्धन तो होता ही है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हिन्दी बालसाहित्य के जन्मदाता के रूप में भले ही न स्वीकार किए जाएं, किन्तु इन्हें उसका प्रथम प्रेरक मानना अत्यन्त समीचीन होगा। उनकी प्रेरणा से तत्कालीन अन्य लेखकों ने भी बालसाहित्य रचना की।

२ बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'— भारतेन्दु की प्रेरणा से बालसाहित्य रचना की ओर प्रवृत्त होने वाले लेखकों में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का प्रमुख स्थान है। इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का शुभारम्भ कवि रूप में किया था। ब्रजभाषा में कवित्त सवैया लिखने वाली परम्परागत पद्धति इन्हें बहुत प्रिय थी। यही कारण था कि इन्होंने बालोपयोगी कविताएं भी कवित्त-सवैया-शैली में ही लिखीं। 'प्रेमघन' जी भारतेन्दु मण्डल के प्रतिष्ठित कवियों में से थे। इनकी बालोपयोगी रचनाएं बालसाहित्य की श्रीवृद्धि में निश्चय ही सहायक हुई। वर्षा ऋतु का वर्णन कितना सरल और स्वाभाविक है। बच्चों को बरसते पानी में खेलना बहुत अच्छा लगता है। वर्षा ऋतु के कीट-पतंगे, पक्षी, खेलकूद, झूले आदि सभी बच्चों को आकर्षित करते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में 'प्रेमघन' जी ने यही अभिव्यक्ति की है—

> झिल्लीगन को सोर रोर चातक चहुं ओरन।
> सुनि सखीन सग सबै नवेली झूलन-झूलन॥
> गावत झूलन सावन कजरी राग मलारहिं।
> या वह बालकपन के क्रीडा कौतुक हम सब।
> करत रहे जहं सो थल हूं नहिं सूझि परत अब॥[1]

इसी तरह एक कविता में तत्कालीन एक पाठशाला का वर्णन है। यह कविता वास्तव में बच्चों के मन में हिन्दी प्रेम जागृत करने के उद्देश्य से लिखी गई थी, इसीलिए इसमें उर्दू स्कूल के मौलवी साहब की हंसी उड़ाई गई है—

> यही ठौर पर हुतो हाय वह मकतबखाना।
> पढ़न फारसी विद्या शिशुगन हेतु ठिकाना॥
> पढ़त रहे बचपन में हम जहं निज भाइन संग।
> अजहुं आय सुधि जाकी पुनि मन रंगत सोइ रंग॥
> रहे मौलवी साहब जहं के अतिशय सज्जन।
> बूढ़े मत्तर बत्सर के पै ताऊ पुष्ट तन॥

---

१ 'प्रेमघन समुच्चय', हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृष्ठ ४०।

उनके इसी गुण ने उन्हे कठिन मे कठिन विषयो पर भी बच्चो के लिए लिखने में समर्थ बनाया। उनके निबन्ध बडो को ही नहीं, छोटों को भी रस देते थे। उनके 'मनोयोग' निबन्ध का प्रस्तुत उद्धरण इस कथ्य की पुष्टि करता है—

"शरीर के द्वारा जितने काम किए जाते हैं, उन सबमें मन का लगाव अवश्य रहता है। जिनमे मन प्रसन्न रहता है, वही उत्तमता के साथ होते हैं और जो उनकी इच्छा के अनुकूल नही होते वह वास्तव मे चाहे अच्छे कार्य भी हो किन्तु भले प्रकार पूर्ण रीति से सपादित नही होते। न उनका कर्ता ही यथोचित आनन्द लाभ करता है। इसी से लोगो ने कहा है कि मन शरीर रूपी नगर का राजा है और स्वभाव उसका चचल है। यदि स्वच्छद रहे तो बहुधा कुत्सित मार्ग मे धावमान रहता है। यदि रोका न जाय तो कुछ काल मे आलस्य और अकृत्य का व्यसन उत्पन्न करके जीवन को व्यर्थ अनर्थपूर्ण कर देता है।"[१]

मिश्र जी ने अपने जीवन-काल में, लगभग ५० पुस्तकें लिखी थीं। इनमे से अनेक पुस्तको ने बाल-पाठको को भी प्रभावित किया। 'मिश्र जी के नाटक यद्यपि नाट्य-कला तथा मच की दृष्टि से बहुत सफल नही सिद्ध हुए, फिर भी उस समय जिस अभावपूर्ति का कार्य उन नाटको ने किया वह भी कम महत्त्व की बात नही है। 'हठी हमीर' नाटक रणथम्भौर पर अलाउद्दीन की चढाई की कथा को लेकर लिखा गया था। इसमे तत्कालीन ऐतिहासिक स्थितियो का सुन्दर दिग्दर्शन है और बाल-पाठको को भारतीय इतिहास की गौरवमयी परम्परा का परिचय मिलता है।

मिश्र जी ने अपने समकालीन लेखक बकिमचन्द्र चटर्जी के बंगला बाल-उपन्यासो के अनुवाद भी किए थे। इनमे से 'राजसिंह', 'इन्दिरा' और 'राधारानी' उल्लेखनीय हैं।

४. लाला श्रीनिवासदास—भारतेन्दु के समकालीन लेखकों मे लाला श्रीनिवास दास का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके तीन नाटक विशेष रूप से साहित्य-जगत मे चर्चित हुए हैं—'प्रह्लाद चरित', 'तप्ता संवरण' तथा 'रणधीर और प्रेममोहिनी'। 'प्रह्लाद चरित' नाटक के अतिरिक्त शेष दो नाटक बालोपयोगी नही हैं। 'प्रह्लाद-चरित' की प्रशसा किसी ने नही की। रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन से कुछ नाट्यालोचकों[२] ने सहमति व्यक्त की है—"उसके सवाद आदि रोचक नही हैं। भाषा भी अच्छी नही है।"[३] लेकिन विचारणीय यह है कि प्रह्लाद की कथा, जितनी अधिक बालकों के लिए कौतूहलमयी और प्रभावोत्पादक है, उतनी किसी अन्य वर्ग के लिए नही। ऐसी दशा मे 'प्रह्लाद चरित' नाटक को यदि हम बच्चो की दृष्टि से देखें तो वह अधिक उपयोगी प्रतीत होती है। प्रह्लाद की कथा को मंच पर प्रस्तुत

---

१. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४२७।

२. द्रष्टव्य : श्री शिवप्रसादसिंह, 'हिन्दी साहित्य कोश', पृष्ठ ५७४, भाग २।
द्रष्टव्य : डा० सोमनाथ गुप्त, 'हिन्दी नाटक साहित्य', पृष्ठ २१४।

३. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४३३।

मे अग्रणी थे। "उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन मे एक हजार के लगभग निबन्ध लिखे होगे पर उनमे से सौ के लगभग महत्त्वपूर्ण निबन्ध है। भारतेन्दु युगीन अन्य साहित्यकारो की भाति उन्होने राजनीतिक, सामाजिक एव साहित्यिक सभी विषयों पर कलम चलायी है। राजनीतिक निबन्धों मे जहा अत्यन्त प्रखर आक्रोश व्यजित है तो साहित्यिक निबन्धों मे भावना का ललित विलास। अपने सामाजिक निबन्धो मे भट्ट जी ने समाज मे प्रचलित बुराइयों के प्रति ध्यान आकर्षित किया है एव नये समाज का आदर्श उपस्थित करना चाहा है।"[1] भट्ट जी की भाषा मुहावरेदार और रोचक थी। 'आख', 'कान', 'नाक' आदि जैसे विषयो पर लिखे गये निबधो मे मुहावरो का विविध-रूपी प्रयोग द्रष्टव्य है। बाल-पाठकों के लिए ये निबध रोचक तथा ज्ञानवर्धक सिद्ध हुए। इसी तरह अन्य भावनात्मक विषयो के निबध जैसे 'मा का वात्सल्य' आदि बच्चो मे जहा नए सस्कार डालते हैं, वही उनमे नैतिक एव सामाजिक चेतना का भी सचार करते हैं।

तत्कालीन अन्य लेखको से प्रभावित होकर भट्ट जी ने नाटक भी लिखे थे। नाटककार के रूप मे भट्ट जी को बहुत सफलता तो नही मिली लेकिन उनके कुछ नाटक इसलिए विशेप-रूप से उल्लेखनीय हैं कि उन्होंने बाल-पाठको को आकर्षित किया। इनमें "शिशुपाल वध,' 'नल दमयन्ती', 'शिक्षा दान' आदि प्रमुख हैं। कुछ बंगला नाटको के अनुवाद भी उन्होने किए थे, किन्तु वे बालोपयोगी नही सिद्ध हुए।

६. **राधाकृष्णदास**—राधाकृष्णदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे। इन्होंने कवि, नाटककार और उपन्यास लेखक के रूप मे ख्याति प्राप्त की थी। राधाकृष्णदास का ऐतिहासिक नाटक 'महाराणा प्रताप' बाल-पाठको मे विशेप रूप से लोकप्रिय हुआ था। यह नाट्यकला की दृष्टि से अच्छा है। इसके सवाद तथा भाषा मे सरलता और शक्ति है। राजपूती आन-बान तथा अपनी शान के लिए मर मिटने वाले इस ऐतिहासिक चरित्र का नाटक बच्चो के लिए प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ है। नाटक मे यो तो अनेक दृश्य ऐसे है जो अनावश्यक तथा दुरूह हैं, फिर भी उन्हे निकालकर यदि मच पर नाटक प्रस्तुत किया जाय तो वह प्रभावशाली सिद्ध होगा। ऐतिहासिक होने के कारण यह नाटक अनेक स्कूलो तथा सस्थाओ द्वारा मच पर प्रस्तुत किया जा चुका है। कथावस्तु, विकास एव चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह नाटक राधाकृष्णदास की उत्कृष्ट रचना माना गया है।

७ **काशीनाथ खत्री**—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो मे, "ये मातृभाषा के सच्चे सेवक थे। नीति, कर्तव्य-पालन, स्वदेशहित ऐसे विषयो पर ही पुस्तकें और लेख लिखने की ओर इनकी रुचि थी।"[2] बच्चों के लिए नीतिपरक रचनाए लिखने मे ये सिद्धहस्त थे। इनके 'तीन ऐतिहासिक रूपक' बच्चो के लिए विशेप रूप से उपयोगी सिद्ध हुए। 'तीन ऐतिहासिक रूपक' छोटे-छोटे रूपको का सग्रह है।

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृष्ठ ३५४।

२. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४३६।

पहला, 'सिंधुदेश की राजकुमारियाँ' है—जिसमें मुसलमानों की सिंध पर चढ़ाई और उस समय की तीन राजकुमारियों के वीरता भरे बलिदान की कथा वर्णित है। दूसरा रूपक 'गुन्नोर की रानी' है। इसमें फतहखाँ नामक एक मुगल सरदार द्वारा भोपाल की रानी कमलावती पर किए गए आक्रमण तथा रानी के बलिदान की कथा है। और तीसरा 'लवजी का स्वप्न' रघुवंश की एक कथा के आधार पर है।

काशीनाथ खत्री ने चार्ल्स लैंब कृत शेक्सपियर के नाटकों के कथानकों का भी हिन्दी में अनुवाद किया था, जो बाल-पाठकों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हुए।

८ फ्रेडरिक पिन्काट—फ्रेडरिक पिन्काट उन लेखकों में से थे, जिन्होंने भारत से बाहर रहकर हिन्दी की सेवा की। वह बचपन से ही संस्कृत भाषा में रुचि लेने लगे थे और उन्होंने भारतीय साहित्य का अध्ययन भी किया था। जब भारतेन्दु के समय खड़ी बोली का ज़ोर बढ़ा तो उसके प्रचार, प्रसार तथा परिष्कार के उद्देश्य से उन्होंने बच्चों के लिए दो पुस्तकें लिखी थीं—एक थी 'बालदीपक' और दूसरी 'विक्टोरिया चरित'। 'बालदीपक' चार भागों में थी और उन दिनों बिहार के स्कूलों में पढ़ाई जाती थी। इसमें अधिकांशतः नीतिपरक और शिक्षा-सम्बन्धी बातें ही थीं। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने एक उदाहरण अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में प्रस्तुत किया है :

"हे लड़को ! तुमको चाहिए कि अपनी पोथी को बहुत सभालकर रखो। मैली न होने पावे, बिगड़े नहीं और जब उसे खोलो, चौकसाई से खोलो कि उसका पन्ना अंगुली के तले दबकर फट न जावे।"[१]

पिन्काट साहब की दूसरी पुस्तक 'विक्टोरिया चरित' जीवनी थी और उसे बच्चों के मन में सम्राज्ञी विक्टोरिया के प्रति सम्मान की भावना जगाने के उद्देश्य से लिखा गया था।

द्विवेदी युग (सन् १९०१ से १९३०)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद हिन्दी के विकास आन्दोलन को चलाने वाले महावीरप्रसाद द्विवेदी थे। सन् १९०३ में उन्होंने इंडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन-भार संभाला था और तब से ही वह हिन्दी भाषा के प्रचार, प्रसार तथा परिष्कार में लग गए थे। द्विवेदी जी की ही प्रेरणा से हिन्दी में बच्चों का साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जाने लगा था। इसलिए यह युग बाल-साहित्य के विकास के लिए भी महत्त्वपूर्ण रहा है।

(क) ऐतिहासिक विवेचन :

"जिस समय द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' का सम्पादन-भार स्वीकार किया उस

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ४४१।

समय हिन्दी प्रचार के साथ-साथ व्याकरण के नियमो की अवहेलना, स्थानीय प्रयोगो की बहुलता, अनुपयुक्त उर्दू तथा अंग्रेजी शब्दो का प्रचार, मनमाने ढंग से गढे गए नवीन शब्द, आर्य समाज आन्दोलन, बगला से किये गये अनुवादों और नवोत्थानकालीन भावना के कारण हिन्दी की निजी शैली मे न खप सकने वाले शब्दो का प्रयोग आदि कारणो से हिन्दी गद्य एक अराजकतापूर्ण परिस्थिति से गुजर रहा था।" इस सबका प्रभाव उन पुस्तको पर भी पड रहा था जो स्कूलो मे पढाने तथा बच्चों के मनोरजन के लिए लिखी जा रही थी। द्विवेदी जी ने व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफाई पर विशेष बल दिया। उन्होने भाषा को स्थिरता प्रदान की और भाषा का आदर्श स्थापित किया। उनकी प्रेरणा से अनेक धार्मिक ग्रन्थो के बाल-सस्करण—जैसे 'बालभागवत', 'बाल रामायण', 'बाल महाभारत' आदि इडियन प्रेस से प्रकाशित हुए।

द्विवेदी युग मे बालसाहित्य लेखन-प्रकाशन के प्रति लोगों मे चेतना आ गई थी। जहा एक ओर बडो के लिए 'सरस्वती' जैसी पत्रिका का प्रकाशन हो रहा था, वही बच्चो के लिए भी मासिक-पत्र प्रकाशित हुए। द्विवेदी युग मे बच्चों के लिए सबसे पहला मासिक 'बाल-हितकर' था। इसका प्रकाशन लखनऊ से हुआ था, किन्तु इसकी आयु अधिक नही थी। इसके बाद सन् १६०६ मे 'छात्र हितैषी' नामक एक पत्र अलीगढ से निकला। इसके सचालक-सपादक बाबू शिवचरण लाल थे। इस पत्र की भी अल्पायु मे ही मृत्यु हो गई। इसी समय प० किशोरी लाल गोस्वामी के सम्पादकत्व मे 'बाल प्रभाकर' निकला था। इसके प्रकाशक वी० एम० एण्ड सन्स, बनारस थे। यह पत्र कुछ दिनो तक निकलता रहा। चार साल की आयु तक जीवित रहने वाला एक मासिक बाल-पत्र 'मानीटर' सन् १६१२ मे नरसिंहपुर से निकला। सन् १६१६ मे यह बंद हो गया।

इस तरह कई छोटे-छोटे मासिक बच्चों के लिए प्रकाशित हुए, किन्तु उनकी बिक्री न होने के कारण वे चल नही पाए। उन्होने हिन्दी के बाल-पत्रो के इतिहास-क्रम को ही आगे बढाया। जहा तक बालसाहित्य रचना की बात थी, उसमे भी इन पत्रो का कोई विशेष योगदान नही रहा, क्योकि सभी की आयु बहुत कम थी।

इन्ही दिनों अनेक बाल-पाठ्य-पुस्तकें भी ऐसी लिखी गईं जो मूलतः बाल-साहित्य ही थीं, किन्तु वे स्कूलो मे पढाई जाती थी। इस तरह की पाठ्य-पुस्तकें लिखने मे पंडित विनायक राव 'कविनायक', सुखराम चौबे 'गुणाकर', कामता-प्रसाद गुरु, लज्जाशकर झा आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान था। इन पाठ्य-पुस्तकों मे कहानिया, निबध, कविताए, पहेलियां-बुझौवल आदि होती थी।

सन १६१४ से बालसाहित्य की दिशा मे बहुत गति से उन्नति हुई। इस उन्नति का बहुत कुछ श्रेय है बाल-मासिक 'विद्यार्थी' को। यह उस समय तक निकले बाल-मासिको मे सर्वश्रेष्ठ था। इसने बालसाहित्य की बहुत सेवा की। तत्कालीन अनेक लेखक-कवि जैसे—मैथिलीशरण गुप्त, कामताप्रसाद गुरु, माखनलाल चतुर्वेदी, डा० महेन्द्रनाथ गर्ग, चन्द्रमौलि शुक्ल, रामदास गौड़, राम-

नरेश त्रिपाठी, छविनाथ पाण्डेय आदि की रचनाए 'विद्यार्थी' मे प्रकाशित होती थी। चन्द्रमौलि शुक्ल, रामदास गौड तथा डा० महेन्द्रनाथ गर्ग बच्चो के लिए सरल विषयो पर वैज्ञानिक लेख लिखते थे। माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से अपनी राष्ट्रीय कविताओ के लिए विख्यात थे। मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी भी बच्चो के लिए सरस और उपयोगी कविताए लिखते थे।

सन १९१४ मे ही बच्चो के लिए आगर (मालवा) से 'बाल मनोरजन' का प्रकाशन हुआ था। इसके प्रकाशक सपादक गणेशदत्त शर्मा वैदिक इन्द्र थे। उन्होने इसमे बच्चों के लिए भरपूर मनोरजक सामग्री दी थी। लेकिन यह एक साल से अधिक नही चल सका।

सन १९१५ मे प० सुदर्शनाचार्य की पत्नी गोपालदेवी ने 'शिशु कार्यालय' प्रयाग से 'शिशु' का प्रकाशन आरम्भ किया। इसमे बच्चो के लिए छोटी-छोटी कहानिया, कविताए, चुटकुले और पहेलिया आदि प्रकाशित होती थी। यह काफी दिनो तक निकलता रहा। बीच मे बन्द हो गया था, फिर निकलना शुरू हुआ, किन्तु सन १९५० मे अन्तिम रूप से बन्द हो गया।

बाल-साहित्य रचना मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ 'बालसखा' के प्रकाशन से। द्विवेदी जी की प्रेरणा तथा उस समय बच्चो के लिए एक बालमासिक की आवश्यकता को महसूस करते हुए इडियन प्रेस के मालिकों ने सन १९१७ के जनवरी महीने से इसका प्रकाशन आरम्भ किया, तब से अब तक यह निरन्तर प्रकाशित हो रहा है। द्विवेदी जी की प्रेरणा के फलस्वरूप 'बालसखा' को तद्‌युगीन सभी श्रेष्ठ लेखको की रचनाए प्राप्त होती थी। 'बालसखा' के प्रथम अक के प्रकाशन के समय निवेदन के रूप मे कहा गया था, "उन्नत भाषाओ मे बालसाहित्य को एक विशेष स्थान प्राप्त है। यह अटल नियम है कि बालक-बालिकाओ को प्रारम्भ मे जैसी शिक्षा दी जाती है आगे चलकर वे वैसे ही होते है। जो आज किशोर हैं वही कल प्रौढ हो जाएगे। और उनके तन के साथ उनके मन की भली-बुरी भावनाओ की भी उन्नति या अवनति अवश्य होगी। आजकल बहुत से नवयुवक यदि अपनी मातृभाषा या अपने धर्म से घृणा करते है तो यह उन्ही कुसस्कारो का परिणाम है जिनसे उन्हे बचाने की उनकी किशोरावस्था मे कुछ भी कोशिश नही की गई थी। इसमे उन नवयुवको का उतना दोष नही, इसके लिए उत्तरदाता वही हैं जिन्होने अपने बाल-बच्चो को जानबूझकर अथवा अपनी उदासीनता के कारण विपथगामी हो जाने दिया या बना दिया। एक बार जड पकड लेने पर कुसस्कारो से सहज ही छुटकारा नही मिल सकता। अतएव इस बात का प्रयत्न करना कि कुसस्कारो की जड ही न जमने पावे बडा भारी परोपकार है। क्योकि इससे जाति या देश का बहुत कुछ कल्याण होना निश्चित है। इन्ही बातो का विचार करके उन्नत जातियो के लोग अपने देश के बच्चो का सुधार करना आवश्यक समझते हैं। उनमे सत्य, तेज, ओज, स्फूर्ति, उत्साह प्रफुल्लता, जाति-प्रेम, आत्मगौरव आदि

सद्भावो को उन्नत करके तथा कुसंस्कारों की जड काटकर उनको अच्छे मार्ग पर चलाना वे अपना प्रधान कर्त्तव्य समझते हैं। यही कारण है कि उनके यहा बालसाहित्य को गौरव की दृष्टि से देखा जाता है और उसको सर्वांग-सुन्दर बनाने के लिए पूरा प्रयत्न किया जाता है। नये-नये ढग की शिक्षा-प्रणालिया निकाली जाती है और बालको के थोडे-से मानसिक श्रम से ही उनका ज्ञान भडार विपुल रूप से भर जाय इस बात का प्रयत्न किया जाता है।

"लेकिन हमारे देश मे यह बात नही है। शिक्षा की कमी के कारण बहुत-सी जरूरी बातें भी यहा उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाती हैं। यह इसी का परिणाम है कि चेहरो पर मे जीवन-सूचक हसी और मुस्कराहट तो काफूर हो गयी है। उदासी और मुर्दानगी ही दिखाई देती है। यह शोक की बात है—ऐसा नही होना चाहिए।

" 'बालसखा' के निकाले जाने का उद्देश्य है—बालक-बालिकाओ मे रुचि आना, उनमे उच्च भावनाओ का भरना और उनमे से दुर्गुणो को निकालकर बाहर करना, उनका जीवन सुखमय बनाना और उनमे हर तरह का सुधार करना। अनुभवी लोगो का कहना है कि बालक-बालिकाओ के लिए लेख लिखने में जितनी कठिनाई पडती है उतनी बडी उम्र वालों के लिए लिखने मे नही पड़ती। पत्र के प्रत्येक लेख को बालकों के उपयुक्त बना लेना हसी-खेल नही है। जिन्हे इस विषय मे सफलता हुई हो वे अवश्य प्रशसा के पात्र हैं। यहा पथ-प्रदर्शन के लिए कहा और किसे टटोलें। अत. यही सब दिक्कतें 'बालसखा' के लेखको पर भी पडेगी, परन्तु 'बालसखा' को बालोपयोगी बनाने में अपनी ओर से हम कोई बात उठा न रखेंगे। बाल्यावस्था की ओर ध्यान रखकर भी इसके लिए भाषा और विषय रखे जाने की चेष्टा की जाएगी।"

इसके सबसे पहले सम्पादक प० बदरीनाथ भट्ट थे। 'बालसखा' मे प्रकाशित रचनाए आरम्भ मे शिक्षाप्रद ही अधिक थी। किन्तु उनकी भाषा पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था। इसका कारण महावीरप्रसाद द्विवेदी का अकुश था, जो उन्होंने अपने लेखको की भाषा पर लगा रखा था।

सन् १९१६ मे रामलोचनशरण ने बिहार मे हिन्दी को प्रतिष्ठित तथा प्रसारित करने के उद्देश्य से 'पुस्तक भण्डार' नामक सस्था पटना में खोली। उन दिनो रामलोचन जी गया मे हिन्दी के अध्यापक थे। उन्होने महसूस किया था कि हिन्दी मे बच्चो के लिए पुस्तकें बहुत कम है। इसलिए उन्होंने बच्चों के लिए मासिक 'बालक' के साथ-साथ अनेक बालोपयोगी पुस्तको का भी प्रकाशन आरभ किया। 'बालक' ने बच्चो के लिए हर तरह की रोचक एव पठनीय सामग्री प्रस्तुत की।

इन बाल-पत्रो के अतिरिक्त और भी कई बाल-मासिक निकले, लेकिन वे अधिक महत्त्व के नही सिद्ध हुए और न उनसे हिन्दी बालसाहित्य को विशेष योगदान ही मिला। लेकिन जो बाल-मासिक बालसाहित्य की निरन्तर अभिवृद्धि करते रहे उनमे 'विद्यार्थी', 'बालसखा' और 'बालक' ही प्रमुख रहे। 'विद्यार्थी'

कुछ समय के पश्चात् बन्द हो गया था, लेकिन 'बालसखा' और 'बालक' आज भी बच्चो तथा बालसाहित्य के विकास मे लगे हुए हैं।

(ख) प्रमुख-प्रवृत्तिया

इन बाल-पत्रो के प्रकाशन के फलस्वरूप हिन्दी जगत के अनेक लेखक, बच्चो के लिए साहित्य लिखने की ओर प्रवृत्त हुए। इसका एक कारण तो इन पत्रो के माध्यम से बाल-पाठको की माग थी और दूसरा कारण था—अग्रेजी की बच्चो की पुस्तको का प्रभाव। विदेशी भाषा की बालसाहित्य की पुस्तकें उन दिनो भारत मे आने लगी थी। इन पुस्तको ने बालसाहित्य लेखको के मन मे दो तरह की प्रतिक्रियाए उत्पन्न की। एक तो विदेशी भाषा का बहिष्कार और हिन्दी को मान्यता दिलाने के प्रयास के रूप मे व्यक्त हुई और दूसरी थी—उन बाल पुस्तको के माध्यम से बच्चो पर पडने वाले पाश्चात्य सस्कृति के प्रभाव के प्रति घृणित दृष्टि। इन प्रतिक्रियाओं के वशीभूत होकर ही इन लेखको ने बालसाहित्य लिखा। इस समय लिखे गए बालसाहित्य के कई उद्देश्य थे। वे क्रम से इस प्रकार रखे जा सकते हैं

१. बच्चो का मनोरजन।
२ भारतीय सस्कृति और परम्परा के अनुरूप बच्चों का विकास।
३ बच्चो का ज्ञानवर्धन तथा उन्हे भारतीय साहित्य से परिचित कराना।
४ पौराणिक तथा धार्मिक कथाए सुनाकर देश के धर्म तथा नीतियो की रक्षा।
५. बालसाहित्य की अभिवृद्धि।

इन उद्देश्यो के आधार पर द्विवेदी युग मे, प्रचुर मात्रा मे बालसाहित्य लिखा गया। बच्चो के मनोरजन के लिए शेखचिल्ली, ठग, परियो की कहानिया लिखी गईं।[1] भारतीय सस्कृति तथा परम्परा के अनुरूप बच्चो का विकास करने के लिए मानव विकास, सभ्यता का विकास तथा भारत के प्राचीन और अर्वाचीन ऐतिहासिक पात्रों से सम्बन्धित पुस्तको तथा निबन्धो का प्रकाशन हुआ।[2] भारतीय साहित्य से बच्चो को परिचित कराने के उद्देश्य मे सस्कृत से हिन्दी मे कई पुस्तको के बालोपयोगी अनुवाद प्रकाशित हुए। इनमे मुख्यत कालिदास कृत 'अभिज्ञान

---

१ शेखचिल्ली की कहानिया (ग्यारह मनोरजक कहानियो का सग्रह)। मूल्य डेढ रुपये। प्रकाशक—इडियन प्रेस, इलाहाबाद।
मनोरजक कहानिया। प्रकाशक—वही। मूल्य छ आने।
बाघ और भालू की कहानी। प्रकाशक—वही। मूल्य दस आने।

२ विचित्र जीवजन्तु। प्रकाशक—इडियन प्रेस, प्रयाग।
ध्रुव यात्रा। प्रकाशक—वही। मिस और हब्श का परिचय। प्रकाशक—वही। ओंकार प्रेस, इलाहाबाद की चवन्नी सीरीज़ के अन्तर्गत महापुरुषो की जीवनिया।

शाकुंतल', 'जातक कथाए', 'वैताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी' आदि ही प्रमुख थी।[1] पौराणिक तथा धार्मिक कथाओ से बच्चो का परिचय कराने के लिए नीतिपरक तथा धार्मिक कहानियो की पुस्तकें प्रकाशित हुई।[2] इस तरह हिन्दी बालसाहित्य की अभिवृद्धि के लिए प्रयास आरभ हुए। लेकिन कठिनाई यही थी कि बच्चो की पुस्तको के प्रकाशको की सख्या बहुत कम थी। इसलिए जिस मात्रा मे बालसाहित्य की आवश्यकता थी, उतना वह प्रकाशित नही हो सका। प्रकाशन-व्यवसाय मे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितिया तथा छपाई की असुविधाए भी बाधक हुई। फिर भी इस युग मे, लेखकों के मन म बालसाहित्य रचना की एक लगन थी, इसलिए बच्चो के लिए विशुद्ध रूप से साहित्य-रचना हुई। यह बात अलग है कि विदेशी बालसाहित्य की तुलना मे, हिन्दी का वह बालसाहित्य उतना महत्त्वपूर्ण तथा उच्चस्तरीय न सिद्ध हुआ हो।

(ग) प्रमुख लेखक तथा रचनाए

द्विवेदी युग मे गद्य तथा पद्य, दोनों का समुचित विकास हुआ। महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'सरस्वती' के माध्यम से कई लेखको की भाषा तथा रचनाए परिमार्जित हुईं। 'सरस्वती' मे लिखने वाले प्राय सभी लेखक इसीलिए 'द्विवेदी मण्डल' के लेखक कहलाते हैं। लेकिन कुछ ऐसे भी लेखक इस युग मे हुए हैं जिन्होने स्वतन्त्र रूप से अपनी प्रतिभा का विकास किया और साहित्य जगत मे प्रतिष्ठित हुए। इस तरह के लेखक 'द्विवेदी मण्डल' के बाहर के लेखक, कहे गए। जहा तक बालसाहित्य रचना का प्रश्न है, दोनो वर्गों के लेखको ने समान रूप से रचनाए लिखी और बालसाहित्य के विकास मे उनका निश्चित योगदान रहा है। हम यहा पर दोनो प्रकार के लेखको का बिना किसी विभेद के परिचय तथा मूल्याकन प्रस्तुत करेंगे।

१ **महावीरप्रसाद द्विवेदी**—द्विवेदी जी के लिए हिन्दी बालसाहित्य इसलिए सदैव ऋणी रहेगा कि उन्होने उसके स्वतत्र लेखन-प्रकाशन के लिए प्रेरणा प्रदान की। भाषा और शैली के परिष्कार द्वारा, बालसाहित्य की रचनाओ मे भी सुधार हुआ ही था, किन्तु 'बालसखा' का प्रकाशन तथा तद्युगीन लेखकों को बालसाहित्य लिखने की ओर प्रेरित करना, द्विवेदी जी की महान् देन इसलिए भी मानी जाएगी, क्योंकि द्विवेदी युग मे ही वास्तव मे हिन्दी बालसाहित्य प्रचुर मात्रा मे लिखा गया। यों स्वयं द्विवेदी जी ने बालसाहित्य बहुत कम लिखा है। उन्होंने स्कूलो के लिए छ रीडरें सम्पादित की थी। फिर भी उनकी अनेक ऐसी फुटकर रचनाए है जो बच्चो के लिए ही लिखी गई थी। इन रचनाओं मे मुख्यत पौरा-

---

१. 'मुद्राराक्षस'। सस्कृत के नाटक का अनुवाद। प्रकाशक—इडियन प्रेस।

२ 'बालगीत,' 'बाल मनुस्मृति,' 'बाल हितोपदेश', 'बालनीतिमाला' आदि। प्रकाशक—इडियन प्रेस, इलाहाबाद।

णिक कहानियां ही हैं। इन कहानियों के पीछे द्विवेदी जी का शिक्षाप्रद उद्देश्य ही रहा है। लेकिन इनकी भाषा शैली से स्पष्ट है कि उन्हे लिखते समय वे इस बात के प्रति पूर्ण सजग थे कि उसके पाठक बच्चे हैं। उदाहरण के लिए 'पाण्डवो का विवाह' शीर्षक कहानी का यह अश—

"कुन्ती के साथ पाण्डव लोग रास्ते मे रमणीक सरोवर के पास ठहरते हुए, दक्षिण पाचाल देश की तरफ चलने लगे। रास्ते में उनको बहुत-से ब्राह्मण मिले, जो स्वयवर देखने के लिए जा रहे थे। ब्राह्मण लोग यह न जानकर कि पाण्डव कहा जा रहे हैं और उनको भी अपनी ही तरह ब्राह्मण समझकर कहने लगे, 'तुम लोग हमारे साथ पाचाल चलो, वहा एक महा अद्भुत उत्सव होने वाला है। राजा द्रुपद ने यज्ञ की वेदी से एक कन्या पाई थी। उसी कमलनयनी का स्वयवर रचा जाएगा। हम उसी का अनुपम रूप और उसी के स्वयवर का ठाट-बाट देखने जाते हैं। वहा अनेक देशो से कितने ही बडे-बडे योद्धा और अस्त्र-विद्या मे निपुण राजे और राजकुमार आवेंगे। मगल पाठ करने वाले सूत, पुराण जानने वाले मागध, स्तुति करने वाले वन्दीगण, नट, नाचने वाले और अनेक देशो के योद्धा लोग वहा आकर अपने-अपने करतब दिखायेंगे।'"[१]

कथा के इस प्रथमाश मे ही राजा द्रुपद के यज्ञ के महत्त्व तथा वैभव का जो वर्णन किया गया है, वह बरबस ही बालपाठकों को पूरी कहानी पढने के लिए आकर्षित करता है। सरल भाषा मे पौराणिक आख्यानो को प्रस्तुत करने की प्रेरणा द्विवेदी जी ने ही दी थी। लेकिन जैसा कि हम अन्यत्र सकेत कर चुके हैं, इस युग के बालसाहित्य मे उपदेशात्मकता की भावना अधिक थी। इसीलिए उपर्युक्त कहानी के अन्त मे भी एक स्वतन्त्र वाक्य इस प्रकार लिखा गया है, "तब सबने लडाई का विचार छोड दिया और अपने-अपने घर की राह ली।"[२]

२ बालमुकुन्द गुप्त—गुप्त जी भारतेन्दु और द्विवेदी युग के सन्धिकाल मे थे। हिन्दी गद्य शैली को व्यावहारिक, चुस्त, चुटीली, ओजस्वी तथा प्रवाहमयी बनाने का श्रेय आपको ही है। भाषा पर इतना अधिकार ही उन्हें अनेक पुस्तको के रचयिता के रूप मे प्रस्तुत करने मे सफल हुआ। बच्चो के लिए आपने मुख्य रूप मे दो पुस्तकें लिखी थी—'खेल-तमाशा' और 'खिलौना'। बच्चो के लिए कुछ स्फुट कविताए भी लिखी थी जो उनकी पुस्तक 'स्फुट कविता' मे सग्रहीत हैं। एक कविता मे उजडे हुए वैभव का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

कहा गये वह गाव मनोहर परम सुहाने।
सबके प्यारे परम शान्तिदायक मनमाने॥
कपट, द्वेष, क्रूरता, पाप अरु मद से निर्मल।
सीधे सादे लोग बसे जिनमे नहिं छल बल॥

---

१ रश्मि माला, भाग ३, पृष्ठ ४।
२ वही, पृष्ठ ११।

एक साथ बालिका और बालक जहं मिलकर ।
खेला करते और घर जाते साझ पडे पर ।।
पाप भरे व्यवहार पाप मिश्रित चतुराई ।
जिनके सपने मे भी पास कभी नहि आई ।।
एक भाव से जाति छतीसो मिलकर रहती ।
एक दूसरे का सुख दुख मिल जुलकर सहती ।।
दिन दिन होती जिनकी सच्ची प्रीति सवाई ।
एक चिन्ह भी उसका नही देता दिखलाई ।।

३ मैथिलीशरण गुप्त—गुप्त जी ने महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से अनेक बालोपयोगी कविताए लिखी थी। 'बालसखा' के प्रथम अक (जनवरी १९१७) मे उनकी एक लम्बी कविता 'गोदी भरे लाल' प्रकाशित हुई थी, जिसका शेषाश फरवरी १९१७ की 'बालसखा' में छपा था। कविता की कुछ पक्तिया इस प्रकार हैं

स्वागत सखे ! आओ सखे ! हम तुम परस्पर बाल हैं।
निज मातृभूमि स्वदेश के गोदी भरे हम लाल हैं।
भावी सुकवि हैं, दार्शनिक है और वैज्ञानिक हमी ।
शिक्षक, चिकित्सक, धीर नाविक वीर वैमानिक हमी ।
मानी हमी दानी हमी कुल खानि के खानिक हमीं ।
ससार के प्रत्येक घर के दीप या मानिक हमी ।
जीवन हमारा नित नया है जगमगाते भाल है ।
निज मातृभूमि स्वदेश के गोदी भरे हम लाल हैं ।[1]

गुप्त जी की अनेक बालोपयोगी कविताओ मे अंग्रेजी की बाल-कविताओं जैसी सरलता भी परिलक्षित होती है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी की निम्न पक्तिया मे उनकी 'ओले की आत्मकथा' कविता की तुलना करें—

I had two pigeons bright and gay,
They flew from me the other day
What was the reason they did go,
I can not tell for I do not know

× × ×

एक सफेद बडा सा ओला, था मानो हीरे का गोला।
हरी घास पर पडा हुआ था, वही पास मे खडा हुआ था।
मैंने पूछा क्या है भाई, तब उसने या कथा सुनाई।
जो मैं अपना हाल बताऊ, कहने मे भी लज्जा पाऊ।
पर मैं तुम्हे सुनाऊगा सब, कुछ भी नही छिपाऊगा अब।
जो मेरा इतिहास सुनेंगे, वे उससे कुछ सार चुनेंगे।

---

१ बालसखा, जनवरी १९१७, वर्ष १, अक १।

यद्यपि न मैं अब रहा कहीं का, वासी हू मैं किन्तु यहीं का।
सूरत मेरी बदल गई है, दीख रही वह तुम्हें नई है।
मुझ मे आर्द्र भाव था इतना, जल मे हो सकता है जितना।
मैं मोती जैसा निर्मल था, तरल किन्तु अत्यन्त सरल था।

गुप्त जी बालोपयोगी कविताए लिखने तो बहुत कम थे, किन्तु उन्होंने जो कुछ भी लिखा, उसके लिए विषय मूलत भारतीय सस्कृति और परम्परा से ही चुनते थे। वह बच्चों मे विशुद्ध भारतीयता के सस्कार लाना चाहते थे। लेकिन इसके साथ ही बच्चों की रुचि, प्रवृत्ति तथा भावनाओ का भी निर्वाह करते रहे। उनके अनेक गीतों म मनोरजन तथा शिक्षा का सुन्दर समावेश हुआ है। निम्न गीत मे जहा सरकस का रोचक वर्णन है, वहीं भारतीय परतनता की झलक प्रस्तुत की है, जो तत्कालीन बालकों के मन मे स्वतत्रता की चिनगारी फूकने का काम करती थी। कविता इस प्रकार है

होकर कौतूहल के वस मे, गया एक दिन मैं सरकस मे।
भय विस्मय के खेल अनोखे, देखे वहु व्यायाम अनोखे।
एक बडा सा वन्दर आया, उसने झटपट लैम्प जलाया।
डट कुर्सी पर पुस्तक खोली, आ तव तक मैना या बोली।
'हाजिर है हुजूर का घोडा', चौक उठाया उसने कोडा।
आया तव तक एक बछेरा, चढ वन्दर ने उसको फेरा।
टट्टू ने भी किया सपाटा, टट्टी फादी, चक्कर काटा।
× × ×
एक मनुष्य अन्त मे आया, पकडे हुए सिह को लाया।
मनुज सिह की देख लडाई, की मैंने इस भाति वडाई।
जिससे साहसी जन डरता है, नर नाहर को वश करता है।
मेरा एक मित्र तब बोला, 'भाई तू भी है बस भोला।
यह सिही का जना हुआ है, किन्तु स्यार यह बना हुआ है।
यह पिजडे मे वन्द रहा है, नहीं कभी स्वच्छन्द रहा है।
छोटे से यह पकडा आया, मार मार कर गया सिखाया।
अपने को भी भूल गया है, आती इस पर मुझे दया है।'

इस कविता के माध्यम से तत्कालीन पराधीन भारतीय जनो की ओर सकेत किया गया है तथा 'आती इस पर मुझे दया है' लिखकर उनकी भावनाओ को झकझोरने का प्रयास है। एक अन्य कविता 'नर हो न निराश करो मन को'—बच्चों मे पुरुषार्थ और सघर्ष की भावना का सचार करने के साथ उन्हे स्वावलम्बी बनने की भी प्रेरणा देती है।

इस प्रकार मैथिलीशरण गुप्त का बालसाहित्य स्वल्प होते हुए भी बहुत सार्थक तथा प्रेरक सिद्ध हुआ।

४. प० अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध'—'हरिऔध' जी ने जहा 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे' तथा क्लिष्ट हिन्दी की कविताए लिखी, वही बच्चो के लिए बडी सरल-सुबोध शैली मे अनेक रचनाए लिखी। उन दिनो बच्चो के पत्रो—बालसखा, शिशु, बालविनोद, खिलौना आदि सभी मे उनकी बालोपयोगी कविताए प्रकाशित होती थी।

हरिऔध जी के बाल-कविता सग्रहो के नाम हैं—'बाल विभव', 'बाल-विलास', 'फूल-पत्ते', 'पद्य प्रसून,' 'चन्द्र-खिलौना,' तथा 'खेल-तमाशा'। इन सभी मे सरल बाल भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। कविताओं के विषय भी उन्होने बालरुचि के अनुकूल चुने थे।

'देखो लडको बन्दर आया, एक मदारी उसको लाया।
उसका है कुछ ढग निराला, कानो मे पहने है बाला।
फटे पुराने रग विरगे, कपडे हैं उसके बेढग।
मुह डरावना आखें छोटी, लम्बी दुम थोडी सी मोटी।
भौह कभी है वह मटकाता, आखों को है कभी नचाता।
ऐसा कभी किलकिलाता है, मानो अभी काट खाता है।
दातो को है कभी दिखाता, कूद फाद है कभी मचाता।
कभी घुडकता है मुह बाकर, सब लोगो को बहुत डराकर।
कभी छडी लेकर है चलता, है वह यो ही कभी मचलता।
है सलाम को हाथ उठाता, पेट लेटकर है दिखलाता।
ठुमक-ठुमक कभी नाचता, कभी-कभी है टके जाचता।

चन्दा मामा' से बच्चो को बहुत प्रेम होता है। 'हरिऔध' जी ने चन्दा मामा को लेकर सभवत सर्वाधिक बालगीत लिखे हैं। एक गीत इस प्रकार है—

मेरे पास चाद तू आ जा,
आकर अपना खाना खा जा,
मुझको अपना हिरन दिखा जा,
मीठी मीठी बात सुना जा।

५. प० कामताप्रसाद गुरु—प० कामताप्रसाद गुरु का जन्म सन् १८७५ ई० मे सागर मे हुआ था। गुरु जी की पढाई लिखाई सागर मे हुई। सन् १८९२ मे उन्होने एण्ट्रेंस पास किया। घर की कठिनाइयो के कारण वे आगे न पढ सके। अन्तत वे अध्यापन कार्य करने लगे। ३५ वर्ष बाद नार्मल स्कूल, जबलपुर के प्रधानाध्यापक पद से अवकाश ग्रहण किया। हिन्दी साहित्य मे वह अपनी व्याकरण की पुस्तक के लिए प्रसिद्ध हैं।

गुरुजी को बच्चे बहुत प्यारे थे। बच्चो के समझने लायक अनेक सुन्दर कविताए तथा निबन्ध उन्होने सरल भाषा म लिखे। 'बालसखा' के प्रथमाक (जनवरी

१९१७) के लेखकों मे वह भी थे। फरवरी १९१७ के 'बालसखा' मे उन्होंने एक लेखमाला 'डाकघर' शीर्षक से लिखी थी, जिसमे कहानी शैली मे डाकघर की व्यवस्था तथा कार्य प्रणाली बच्चो को समझाई गई थी।

सरल और रोचक बालोपयोगी कविताए लिखने मे तो वह सिद्धहस्त थे। एक बन्दर को किसी सभा मे सभापति बनना था। वह उस सभा मे बदरिया को भी ले जाना चाहता है। बदरिया पूछती है—

वहा काम क्या करना होगा,
पहले यह बतलावें,
अथवा आप अकेले जावें,
साथ न मुझको ले जावें।
मुझे लाज लगती है कैसे,
बैठूगी पुरुषो के बीच।
मुह मेरा खुल जावेगा या,
देगा कोई घूघट खीच।

इस पर बन्दर उत्तर देता है—

अजी चलो तुम, परदा मरदा
नही आजकल चलता है।
बडी बडी कुलवधुओ को भी
इसमे बडी विकलता है।
जो चाहो तो चिक के भीतर
आसन करना ग्रहण वही।
किन्तु सभापति की पत्नी को,
पूछ दबाना उचित नही।

गुरुजी की 'हमारी छडी' कविता बहुत प्रसिद्ध है। इसमे गेयता के साथ अभिनेयता भी है। इसे गाते हुए, इसमे वर्णित छडी के विविध खेलों का प्रदर्शन बच्चे खूब करते हैं। कविता की कुछ पक्तिया इस प्रकार हैं

यह सुन्दर छडी हमारी, है हमे बहुत ही प्यारी।
यह खेल समय हर्षाती, मन मे है साहस लाती।
तन मे अति जोर जगाती, उपयोगी है यह भारी।
हम घोडी इसे बनाते, कम घेरे मे दौडाते।
कुछ ऐब न इसमे पाते, है इसकी तेज सवारी।
यह सुन्दर छडी हमारी, है हमे बहुत ही प्यारी।

गुरजी की अन्य प्रसिद्ध कविताओ मे 'चिट्ठीयामा', 'रेलगाड़ी', 'तरवर',

'बगीचा' आदि है। गुरुजी ने बच्चो को नैतिक ज्ञान देने के लिए भी एक पुस्तक लिखी थी। उनकी अनेक बालोपयोगी रचनाएँ समय-समय पर 'बालसखा' मे प्रकाशित हुई थी। सन १६१६ मे तो एक वर्ष तक वह 'बालसखा' का सम्पादन भी करते रहे। उनके कुछ बालोपयोगी नीति के दोहे यहा प्रस्तुत है—

गुण गौरव का मूल है, नही उच्चतम देश,
काग बैठ मठ शिखर पर, होता नही खगेश। १।
जो शरीर की हाथ सम, दृग की पलक समान,
रक्षा करता बिहे बिन, है वह मित्र सुजान। २।
कपट, मांगना, निठुरता, चित्त चपलता, रोष,
अजय, असत्य, अविज्ञता, आठ मित्र के दोष। ३।
जो विपत्ति मे मित्र है, वह है मित्र पुनीत,
वृद्धि समय तो दुष्ट भी बन जाता है मीत। ४।
घर मे पूजित मूर्ख है, ग्राम मध्य ग्रामेश।
राजा अपने देश मे, पडित देश-विदेश। ५।

—बालसखा, वार्षिकाक, १६४६, पृ० ३६

६ रामजीलाल शर्मा—आपको बालसाहित्य के प्रति विशेप अनुराग था। यह अनुराग उस समय बढा जब वह इडियन प्रेस मे नौकर हो गये थे और 'बालसखा' पुस्तकमाला का सन १६०५ मे सपादन-भार सभाला था। उनका यह अनुराग अपनी पूर्णता को उस समय पहुँचा जब उन्होने नौकरी छोडकर अपना निजी 'हिन्दी प्रेस' इलाहाबाद मे ही स्थापित किया। सन १६१४ मे आपने 'विद्यार्थी' का प्रकाशन आरभ किया। फिर सन १६२७ मे उन्होने 'खिलौना' मासिक आरभ किया। प० वनमाली प्रसाद शुक्ल ने 'खिलौना' पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा था—"आप हिन्दी बालसाहित्य के केवल जन्मदाता ही नही, उसके वृद्धिकर्ता भी हैं। हिन्दी भाषा-भाषी असख्य बालको के हृदय पर आपका प्रभाव भी पडा है, वह बालको की अत्यन्त प्रिय वस्तु होगी।" 'खिलौना' उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र प० रघुनन्दन शर्मा सन १६६० तक निकालते रहे। प० रामजीलाल शर्मा की अनेक बालोपयोगी पुस्तकें भी हैं। इनकी कुल सख्या तो लगभग पचास होगी, किन्तु 'बाल रामायण', 'बाल भागवत', 'टके सेर मुक्ति', 'टके सेर लक्ष्मी' और 'बाल चरितमाला' विशेप उल्लेखनीय हैं। शर्मा जी मुख्य रूप से गद्य ही लिखते थे।

७ मन्नन द्विवेदी गजपुरी—'बालसखा' मे आरभ मे पहली रचना 'ईश विनय' हुआ करती थी। इसके प्रथमाक मे मन्नन द्विवेदी की ही प्रार्थना दी गई है। उनकी अनेक प्रार्थना-कविताओ मे से यह बहुत प्रसिद्ध है—

विनती सुन लो हे भगवान, हम सब बालक हैं नादान।
विद्या बुद्धि नही कुछ पास, हमे बना लो अपना दास।

बुरे काम से हमें बचाना, खूब पढ़ाना, खूब लिखाना।
हमें सहारा देते रहना, खबर हमारी लेते रहना।
तुमको शीश नवाते हम, विद्या पढ़ने आते हम।

द्विवेदी जी ने अन्य विषयों पर भी कई कविताएँ लिखी जो 'खिलौना' तथा 'बालसखा' में प्रकाशित होती रही। उनकी 'मातृभूमि' कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

जन्म दिया माता सा जिसने,
किया सदा लालन पालन।
जिसकी मिट्टी जल आदिक से,
विरचित है हम सबका तन।
जिसके त्रिविध पवन के झोंके,
चहुँ दिशि निशि दिन चलते हैं।
शोभित सुमनों के सुखकारक,
सुभग बीजना झलते हैं।
× × ×
ऐसी मातृभूमि अपनी है,
स्वर्गलोक से भी प्यारी।
जिसकी रक्षा हित तन मन धन
मेरा सर्वस बलिहारी।

८. पं० सुखराम चौबे 'गुणाकर'—गुणाकर जी ने बच्चों के लिए कई पाठ्य-पुस्तकें लिखी। इनके अतिरिक्त वह 'बालसखा' तथा 'खिलौना' में बच्चों के लिए बहुत-सी छोटी-छोटी उपदेशात्मक कविताएं तथा चुटकुले-पहेलियां आदि भी लिखते थे। 'बालसखा' के प्रथमांक के लेखकों में से 'गुणाकरजी' भी एक थे। उनकी यह कविता उसमें प्रकाशित हुई थी—

गधा एक था मोटा ताजा, बन बैठा वह वन का राजा।
कहीं सिंह का चमड़ा पाया, चट वैसा ही रूप बनाया।
सबको खूब डराता वन में, फिरता आप निडर हो मन में।
एक रोज जो जी में आई, लगा गरजने धूम मचाई।
सबके आगे ज्यों ही बोला, भेद गधेपन का सब खोला।
फिर तो झट सबने आ पकड़ा, खूब मार छीना वह चमड़ा।
देता गधा न धोखा भाई, तो उसकी होती न ठुकाई।
(बनावटी सिंह)—बालसखा, जनवरी १९१७, वर्ष १, अंक १

गुणाकर जी की कविताओं से बच्चों को शिक्षा अवश्य मिलती थी। उन्होंने 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' की अनेक कहानियों को पद्यबद्ध किया था। उनकी 'दो

बिल्लिया और बन्दर' (बालसखा, जून १९१७ में प्रकाशित) कविता भी बहुत लोकप्रिय हुई थी।

९ सुखदेवप्रसाद चौबे—चौबे जी ने बच्चो के लिए गद्य-पद्य दोनों ही प्रचुर मात्रा मे लिखे। सन् १९२१ से २५ तक आपकी रचनाए 'बालसखा' मे नियमित रूप से प्रकाशित हुई हैं। आपकी अनेक प्रार्थनाएं 'बालसखा' के प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित हुई। वह जहा बच्चो का मनोरजन करने के लिए रोचक पद्यात्मक कहानियों की रचना करते थे वही उनमे स्वदेश के प्रति अनुराग और भक्ति भी जगाते थे। उनकी दो कविताए उदाहरण के लिए प्रस्तुत है

ज्ञानी और मूर्ख

भोदू नाई नरहरि चौबे के नित बाल बनाता था।
बनवाई मे पडित जी से दो पैसे वह पाता था॥
बाल बनाते समय एक दिन, महाराज को लगा छुरा।
कहा न कुछ उसने भोदू से, यदपि हृदय मे लगा बुरा॥
दो की जगह आज द्विजवर ने पैसे दिये उसे दस बीस।
अति प्रसन्न हो नाई जी, तब घर को चले नवा कर शीश॥
चलते समय राह मे उसने, अपने मन यों किया विचार।
छुरा मारने से ही मुझको, पैसे मिले अधिक इस बार॥
दिवस दूसरे पेटी लेकर, चले बनाने जब वे बाल।
करते हुआ खोज नाई की, मिले उन्हे तब घप्पे लाल॥
बाल बनाते समय लोभवश, भोदू चले वही फिर चाल।
ऐसे गहरा छुरा चलाया, ली उधेड घप्पे की खाल॥
लगा रुधिर बहने घप्पे का, क्रोध वेग क्यों सके सम्हाल।
झपट उठा भोदू को उसने, पटक दिया भू पर तत्काल॥
टूट पडा फिर उसके ऊपर, सिंह गाय पर हो जैसे।
खूब जमा जूते कस कसकर, छीन लिये पेटी पैसे॥

—बालसखा, मार्च १९३१

स्वदेश

ससार भर मे ऊचा, प्यारा मुकुट हमारा,
मानो पडा गगन है, उसका लिए सहारा।
यह है प्रमाण इसका, थे हम बडे जगत मे,
होवे न अब भले ही, अवतार सब लिए है।
भगवान ने यहा ही अवतार सब लिए हैं,
सुनता हो भले ही वह आज दुख हमारा।

× × ×

बस अब विनय हमारी तुमसे प्रभो यही है,
उन्नति के मार्ग मे यह भारत बढे हमारा।

चौबे जी ने बच्चों के लिए गद्य भी लिखा। कहानियो मे 'मगर और स्यार' (बालसखा, सितम्बर १६२३), 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' (बालसखा, जनवरी, १६२३) उल्लेखनीय हैं। अन्य विषयो पर भी निबन्ध उन्होंने बहुत लिखे। जैसे 'मकडी (बालसखा, अगस्त, १६२१), 'अमेरिका के धन कुबेर राकफेलर' (बालसखा, दिसम्बर, १६२१) आदि।

१० **रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे**—बच्चों के लिए कहानिया तथा निबन्ध लिखकर, बालसाहित्य को समृद्ध बनाने में सर्वटे जी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सन् १६१७ से १६३३ तक बच्चों की लगभग सभी पत्रिकाओं—'बालसखा', 'कुमार', 'वानर' तथा 'शिशु' मे आपकी रचनाए प्रकाशित होती रही हैं। 'बालसखा' के प्रथमाक के लेखको मे सर्वटे जी भी थे, जिनमे आपकी ऐतिहासिक कहानी 'जहानआरा' प्रकाशित हुई थी। आपकी अन्य ऐतिहासिक कहानियो मे 'बालक की वीरता' (जनवरी १६२१), 'बालवीर पायकी' (बालसखा, मार्च १६२१) भी उल्लेखनीय हैं। मनोरजक कहानियों मे 'राक्षस से लडने वाला लडका' (बालसखा, जुलाई १६३२) तथा 'बिच्छू का विवाह' (बालसखा, जून १६३३) बहुत रोचक हैं। आपने बालको के लिए कई उपयोगी लेख भी लिखे। इनमे कुछ महत्त्वपूर्ण लेख थे—'समाचार पत्र' (बालसखा, दिसम्बर १६२१), 'मिट्टी का तेल' (बालसखा, जनवरी १६२२), तथा 'तुर्क राज्य की सैर' (बालसखा, जून १६३३)।

११ प० **रामनरेश त्रिपाठी**—त्रिपाठी जी ने अपनी अनेक बालोपयोगी कविताओं तथा कहानियो द्वारा बालसाहित्य के भण्डार को भरा। आपने बच्चो के लिए सन् १६३१ मे 'वानर' नामक मासिक पत्र भी निकाला था। बच्चो के लिए आपकी अनेक रोचक कहानिया 'वानर' तथा 'बालसखा' मे प्रकाशित हुई थी। कुछ कहानिया हैं—'गवैया गधा' (बालसखा, अक्तूबर, १६२१), 'रईस' (बालसखा, अक्टूबर, १६३६), 'बिल्ली के बावा' (बालसखा, जनवरी, १६४३)।

प० रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं मे बाल अनुभूति का सुन्दर दिग्दर्शन मिलता है। सूर्योदय के समय प्राची की लालिमा देखकर बाल मन म उठने वाली जिज्ञासा को कितने सहज रूप मे प्रस्तुत किया है—

> पूर्व दिशा क्यो लाल हो गई,
> लगी वहा पर है आग ?
> देखो तो तारे चमकीले,
> दिखते नही, गये क्यो भाग ?
> अधकार का पता नही,
> छाया है सब ओर प्रकाश।
> लगे देख पडने वन बस्ती,
> हरी भूमि नीला आकाश।
>
> —बालसखा, सितम्बर, १६२६

त्रिपाठी जी की 'बालकथा कहानी' के १७ भाग प्रकाशित हुए थे। उनकी पद्य की पुस्तकें हैं—'गुपचुप,' 'मोहन माला', 'बताओ तो जानें', 'बानर संगीत,' 'हनू की हिम्मत' आदि। चन्दा मामा के माध्यम से बाल मन की कल्पना को बिलकुल नये ढग से प्रस्तुत करने का प्रयास उल्लेखनीय है

चन्दा मामा गये कचेहरी घर मे रहा न कोई,
मामी निशा अकेली घर मे कब तक रहती सोई।
चली घूमने साथ न लेकर कोई सगी सहेली,
देखी उसने सजी सजाई सुन्दर एक हवेली।
आगे सुन्दर पीछे सुन्दर, सुन्दर दायें बायें,
नीचे [सुन्दर ऊपर सुन्दर सुन्दर सभी दिशायें।
देख हवेली की सुन्दरता फूली नहीं समाई,
आओ नाचे उसके जी मे यह तरग उठ आई।

× × ×

वह थी ऐसी मस्त हो रही आगे क्या गति होती,
टूट न जाता हार कहीं जो बिखर न जाते मोती।
टूट गया नौलखा हार, जब मामी रानी रोती,
वहीं खडी रह गई छोडकर यों ही बिखरे मोती।

× × ×

चन्दा मामा बहुत भले हैं बोले क्यों है रोती,
दीया लेकर घर से निकले चले बीनने मोती।

बच्चो मे राष्ट्रीय भावना का सचार करने के लिए भी त्रिपाठी जी ने अनेक गीत लिखे थे—

मन मोहिनी प्रकृति की जो गोद मे बसा है,
सुख स्वर्ग-सा जहा है वह देश कौन-सा है।
जिसका चरण निरन्तर रत्नेश धो रहा है,
जिसका मुकुट हिमालय, वह देश कौन सा है।

त्रिपाठी जी ने बच्चो मे नैतिक भावनाओ का सचार करने के लिए 'पचतन्त्र' की कई कहानियो का पद्य रूपान्तर भी प्रस्तुत किया।

इस प्रकार उन्होने प्रचुर मात्रा मे श्रेष्ठ बालसाहित्य की रचना की जो आज भी बाल-पाठकों को प्रेरणा देता है।

१२. डा० विद्याभूषण 'विभु'—'विभु' जी ने बच्चो के लिए लगभग ३० वर्ष तक साहित्य रचना की। उनके बारे मे श्री निरकार देव सेवक का मत है, "हिन्दी मे यदि किसी कवि के बालगीत अगरेजी बालगीतो के मुकाबले मे रक्खे जा सकते है तो वे 'विभु' जी के है।"

'विभु' जी ने बच्चों के लिए पर्याप्त मात्रा मे तथा उत्कृष्ट साहित्य लिखा। वह 'शिशु' के सम्पादक भी कुछ दिनों तक रहे। उनकी बालोपयोगी पुस्तकों के

नाम हैं—'मेरी कहानी', (६ भाग), 'खेल खिलौने', 'लाल खिलौना', 'खेलो भैया', 'गुड़िया', 'चदा', 'बबुआ', 'फुलबगिया मे', 'गोबर गनेस', 'इपोर सख', 'लाल बुझक्कड,' 'शेख चिल्ली', 'चार साथी', 'पाच पखुरिया', 'राष्ट्रीय राग,' 'चुनमुन', 'जादूगर' आदि।

'विभु' जी को बच्चे बहुत प्यारे थे। वह उनके स्वभाव से बहुत अच्छी तरह परिचित थे। वह जानते थे कि किन विषयों पर किस प्रकार की कविताए बच्चे पसन्द करते है। उन्होने बच्चों के लिए खेल-खेल मे अक्षर-ज्ञान कराने वाली कविताओं से लेकर उन्हे शिक्षा देने तथा उनका ज्ञान और उत्साह बढाने वाली सभी प्रकार का कविताए लिखी। कविताएं लिखते समय वह बच्चो की ध्वनियो का विशेष ध्यान रखते थे। बच्चों को जो ध्वनिया अच्छी लगती है, प्राय उन्ही का प्रयोग वह कविताओं मे भी करते थे। प्रस्तुत कविता इस कथन का सुन्दर उदाहरण है—

मिस्टर डबलू ऐसे भोले सब कुछ बतला देते,
पहले से ही सगी साथी बात पूछ सब लेते।
'भरा हुआ गोदाम' तोंद को ठोक एक यह बोला,
'जमा किया है नया माल क्या इसमें गोला-गोला।'
कान लगा टुडी से कोई 'हलो ! हलो' कहता है,
मानो टेलीफोन पेट मे डबलू के रहता है।
'टन घटी की' 'हलो! हलो! हा जी हा जडे साये,'
चू-चू-चू चूजो की अन्दर सुन डबलू घबराये।
'ट ट' 'हल्लो माल-टाल क्या मिस्टर आज छिपाया,
पेट बोलता है—कुकड्, कू ! मुर्ग मुल्लम खाया।'

'विभु' जी की कविताए इतनी सरल और मनोरजक है कि बच्चे उन्हे सुगमता मे याद कर लेते हैं।

१३ गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'—'गिरीश' जी ने हिन्दी साहित्य जगत मे तो ख्याति प्राप्त की ही थी, 'बालसखा' के सम्पादक के रूप मे उन्होंने बालसाहित्य को सजाया-सवारा तथा अपनी अनेक काव्य-कृतियो द्वारा उसका भण्डार भरा। बालको की रुचि तथा उनकी भावनाओं को गिरीश जी ने कुशलता मे देखा-परखा था। एक बालक के मन की बात निम्न कविता मे कितनी सहजता मे प्रस्तुत की है—

क्या कहती है मा दादा के इतना बडा कभी हूगा,
जो हो अपने को उन जैसा कभी न होने मैं दूंगा।
नही खेलते कभी खिलौने, कलम चलाते रहते हैं।
क्या रखा है इन खेलों मे हंसी उड़ा के कहते है।
और बता तो मेरी अम्मा मुझे गोद लेगी कैसे,
सच कहता हू मैं न बनूगा दादा है मेरे जैसे।

—बालसखा, जुलाई १९२९।

बच्चो मे राष्ट्रीयता की भावना जगाने के उद्देश्य से लिखी गई उनकी प्रस्तुत कविता भी द्रष्टव्य है—

यही हिमालय-सा पहाड है, यही गग की धारा है,
जमुना लहराती है सुन्दर भारत कितना प्यारा है।
फल फूलो से भरी भूमि है, खेतो मे हरियाली है,
आमो की डालो पर बैठी गाती कोकिल काली है।
बच्चो, मा ने पाल पोसकर तुमको बडा बनाया है,
लेकिन यह मत भूलो तुमने अन्न कहा का खाया है।
तुमने पानी पिया कहा का खेले मिट्टी मे किसकी,
चले हवा मे किसकी बोलो, बच्चो प्यारे भारत की।

१४. ठाकुर श्रीनाथसिंह—श्रीनाथसिंह बालसाहित्य को द्विवेदी युग मे सजाने-सवारने वाले तथा उसके प्रवर्त्तको मे से हैं। अपने जीवन काल मे आपने 'बालसखा', 'शिशु', 'दीदी', और 'बालबोध'—बाल-पत्रिकाओ का सपादन किया। इस अवधि मे उन्होने न केवल श्रेष्ठ बालसाहित्य का सम्पादन किया बल्कि स्वय भी अनेक ऐसी रचनाए लिखी जो बहुत लोकप्रिय हुई। आपकी बालोपयोगी पुस्तको के नाम हैं—'दस कथाए', 'पिपहरी', 'खेलघर', 'बालकवितावली' आदि। 'दस कथाए' मे अपने देश के पुराने और नये महापुरुषो और धर्मात्माओ के जीवन की मुख्य कथाओ का सार है। इसका प्रकाशन १९२९ मे हुआ था।

आपने 'बालसखा' मे बाल मनोवृत्ति के अनुकूल अनगिनत रचनाए लिखी। गीत-कथाए, गेय गीत तथा शिशु गीत आदि सभी के विविध प्रयोग आपने किये। 'बाललीला' शीर्षक कविता द्रष्टव्य है—

है बस हिलती-डुलती पुतली,
अभी बोलती बोली तुतली।
पर ये दोनो आखें प्यारी,
सदा मागती दुनिया सारी।
इनकी अजब अजीब कहानी,
चाहे पत्थर हो या पानी।
रखते जग मे सबसे नाता,
कोई माता कोई भ्राता।
—शिशु, फरवरी १९२५

छोटे बच्चो के लिए भी श्रीनाथसिंह ने खूब लिखा। 'बालसखा' मे 'छोटे बच्चो के लिए' स्तम्भ के अन्तर्गत अनेक शिशु गीत प्रकाशित हुए थे। एक गीत इस प्रकार है .

हुआ सवेरा मुर्गा बोला,
घर से चला टहलने भोला।
मिला राह मे उसको भालू,
लगा मागने रोटी आलू।
आलू बिकने गया हाट मे,
भालू सोने लगा खाट मे।
टूटी खाट गिर पडा भालू,
अब न चाहिए रोटी आलू।

—बालसखा, मई १६३४

छोटे बच्चो के लिए ही आपका एक अत्यन्त प्रेरक गीत है 'सीखो'। इसमे बच्चो के जिज्ञासा जगत की वस्तुओ से ही उनके गुणो को सीखने की बात कही गई है। सरल भाषा मे इतनी सरल बात कहने का प्रयास निश्चय ही उल्लेखनीय है।

फूलो से नित हसना सीखो, भौरो से नित गाना।
फल से लदी डालियो से, नित सीखो शीश झुकाना।
सीख हवा के झोको से लो, कोमल भाव बहाना।
दूध तथा पानी से सीखो मिलना और मिलाना।
सूरज की किरणो से सीखो, जगना और जगाना।
लता और पेडो से सीखो, सबको गले लगाना।
वर्षा की बूदो से सीखो, सबका हृदय जुडाना।
मेहदी से सीखो पिसकर भी, अपना रग चढाना।
दीपक से सीखो, जितना हो सके अधेरा हरना।
पृथ्वी से सीखो, प्राणी की सच्ची सेवा करना।
जलधारा से सीखो, आगे, जीवन पथ मे बढना।
और धुए से सीखो बच्चो, ऊचे ही पर चढना।
सत्पुरुषो के जीवन से सीखो चरित्र निज गढना।
अपने गुरु से सीखो बच्चो उत्तम विद्या पढना।

इस प्रकार ठाकुर साहब ने बच्चो के लिए प्रचुर मात्रा मे लिखा। द्विवेदी युग से लेकर स्वातत्र्योत्तर युग तक बालसाहित्य की सेवा करने वाले लेखको मे आपका प्रमुख स्थान है। आपके बालसाहित्य में बच्चो के लिए न केवल मनोरजन और सीख की बातें थी बल्कि उसमे युग का स्वर बदलते हुए समाज तथा वातावरण का प्रभाव भी परिलक्षित हुआ। 'बालसखा' के सम्पादक के रूप मे जहा बच्चो के लिए रोचक एव मनोरजक सामग्री का सम्पादन चयन किया वही अनेक लेखको का निर्माण तथा बाल-पाठको की रुचि एव विचारधारा का भी युगानुरूप निर्माण किया। इसीलिए ठाकुर साहब हिन्दी बालसाहित्य के उन प्रवर्त्तको मे से हैं जिन्होंने

उसके शैशवकाल से लेकर किशोरावस्था तक सजाया-सवारा है। इधर कुछ ही वर्षों से, अवस्था और स्वास्थ्य के वशीभूत होकर उन्होने बालसाहित्य कम लिखा है। लेकिन लगभग चालीस वर्षों तक उन्होने जिस बालसाहित्य की रचना की है वह अक्षय निधि है। बालसाहित्य जगत आपकी इन सेवाओ के लिए सदैव ऋणी रहेगा।

१५ प० सुदर्शनाचार्य—'शिशु' के सम्पादक-प्रकाशक के रूप मे आपने बालसाहित्य की अनेक वर्षों तक सेवा की। 'शिशु' के प्रकाशन से हिन्दी बालसाहित्य के इतिहास मे एक नया पृष्ठ जुडा था। आपने उसके माध्यम से अनेक लेखकों-कवियो को बालसाहित्य लिखने के लिए प्रेरित किया।

सुदर्शनाचार्य जी बच्चो का मन खूब पहचानते थे, इसलिए उन्होने 'शिशु' मे वैसी ही रचनाए प्रकाशित की थी। वह स्वय भी बच्चों के लिए सरल तथा रोचक कहानिया लिखने मे सिद्धहस्त थे। उनकी अनेक पुस्तक प्रकाशित हुई हैं, इनमे कुछ है—'डल्लू और मल्लू', 'विज्ञान वाटिका', 'अनूठी कहानिया', 'नानी की कहानिया', 'बच्चू का ब्याह', आदि।

१६ सुदर्शन—सुदर्शन जी ने हिन्दी कथासाहित्य मे तो बहुत ख्याति प्राप्त की थी, किन्तु वह कभी-कभी बच्चो के लिए भी कहानिया लिखते थे। उनकी कुछ कहानिया 'बालसखा' मे ही प्रकाशित हुई थी—'सौ साल की उम्र' (जनवरी, १९२७), 'स्वामिभक्त मोती' (जनवरी, १९२९), 'कर भला होगा भला' (जनवरी, १९३०)। इन सभी मे बच्चो के लिए जहा कौतूहलपूर्ण कथानक था, वही इनसे उन्हे कोई न कोई सीख भी मिलती थी। सुदर्शन जी की बालकथा साहित्य रचना मे रुचि निश्चय ही उल्लेखनीय है।

१७ गोपालशरणसिंह—आप द्विवेदी युग के प्रमुख कवियो मे से थे। बच्चों के लिये आपने कई फुटकर कविताए लिखी जो समय-समय पर 'बालसखा' मे प्रकाशित हुई थी। इन कविताओ मे आपका मूल स्वर राष्ट्रीयता तथा भारतीय सस्कृति की अर्चना तथा रक्षा ही था—

> क्या तुमने कर लिया पूर्ण पडित हो करके,
> अगर किया सतोष पेट अपना ही भरके।
> उदर पूर्ति तो निरे निरक्षर भी कर लेते,
> किसी तरह निज उदर कीट कृमि भी भर लेते।
> की मातृभूमि की जो कही तुमने सेवा कुछ नही,
> तो पढन लिखने का हुआ कष्ट तुम्हारा व्यर्थ ही।
> —बालसखा, मई १९३०, पृष्ठ २१२

लेकिन ठाकुर साहब बच्चो की रुचि तथा उनकी मनोवृत्ति को भी खूब समझते थे। बच्चो की मानने-मनाने की आदत तथा कल्पना की उडान पर भी उन्होंने कई सुन्दर कविताए लिखी। बालक की सहज कल्पना का सुन्दर दिग्दर्शन इस

कविता मे मिलता है—

सुन्दर सजीला चटकीला वायुयान एक,
भैया, हरे कागज का ग्राज मैं बनाऊगा।
चढ के उसी पे सैर नभ की करूगा खूब,
बादल के साथ साथ उसको उडाऊगा।
मन्द-मन्द चाल से चलाऊ उसे मैं वहा,
चहक-चहक चिडियो के सग गाऊगा।
चन्द्र का खिलौना मृगछौना वह छीन लूगा,
भैया को गगन की तरैया तोड लाऊगा।
—बालसखा, जनवरी, १९२६

एक बालक की मनोकामना निम्न कविता मे दर्शनीय है—

मैया हमे होता तब कितना अपार हर्ष,
होते हम बालक जो व्रत के अहीर के।
जाकर विपिन मे चराते धेनुओं को नित्य,
खाते मनमाने पकवान हम क्षीर के।
चढके कदम्ब पर मुरली बजाते मृदु,
मजु दृश्य देखते कलिन्दजा के तीर के।
गाते और नाचते मचाते रग रग खूब,
साथ-साथ खेलते सदैव बलबीर के।
—बालसखा, जनवरी, १९२६

इस कविता मे बालमन की यह कामना श्रीकृष्ण का वर्णन सुनकर उपजी है। गोपालशरणसिंह जी ने अपनी बालोपयोगी कविताओ मे भी छन्द, भाषा आदि वही पुरानी शैली के रखे। 'अपार हर्ष', 'व्रत', 'विपन', 'धेनुओं', 'क्षीर', 'मृदु', 'मजु' 'कलिन्दजा' आदि बहुत क्लिष्ट शब्द हैं जिन्हे छोटे ही क्या बडी उम्र के बच्चे भी नही समझ सकते। फिर भी उन्होने बालसाहित्य की समृद्धि के लिए जो कुछ भी लिखा वह उल्लेखनीय तो है ही।

१७. देवीदत्त शुक्ल—शुक्ल जी 'बालसखा' के सपादको मे से थे। बच्चो के लिए न केवल रचनाए सम्पादित करने मे ही उनकी रुचि रही, बल्कि उन्होंने स्वय भी बालसहित्य लिखा। 'बालसखा' का सपादन (१९२६-३०) मे छोड देने के बाद भी वह नियमित रूप से बच्चों के लिए उसमे लिखते रहे। बच्चो की मौज तथा उनका स्वच्छन्द जीवन उन्हे बहुत प्रिय था—

अच्छा होता यदि मैं होती उडने वाली तितली,
उड उड फूलो का रस लेती होती मैं भी तितली।

पर माता कहती है तितली कभी-कभी फस जाती है,
पडकर जाले मे अपने वह जल्दी प्राण गवाती है ।

आगे कविता मे इसी प्रकार चुहिया तथा चिडिया बनने की कामना अभिव्यक्त हुई है और अन्त मे लिखा—

अच्छा होता यदि मैं होती, शीलवान कन्या ऐसी,
चित्त लगाकर मैं सब करती, आज्ञा होती जैसी ।
पर मा कहती मेरी बेटी करो प्रयत्न लगाकर ध्यान,
तेरा घर मे सबसे बढकर होगा खासा तेरा मान ।
—'बालसखा', जनवरी, १६२६

बच्चो मे एक-दूसरे की वस्तु के प्रति आकर्षित होने तथा उसे प्राप्त करने के लिए अपनी वस्तु का लालच देने और मनाने की प्रवृत्ति होती है। इसी को आधार बनाकर 'गुडिया' शीर्षक कविता मे कवि ने बाल-प्रवृत्ति का सुन्दर चित्र खीचा है—

लल्ला मेरा गुड्डा ले ले,
मेरी गुडिया मुझको दे दे ।
नोच खोच तू डालेगा चट,
नही उसे बस दे दे झटपट ।
लल्ला भैया मेरा राजा,
बजा बैठकर अरगन बाजा ।
दे दे मेरी गुडिया रानी,
प्यासी उसे पिलाऊ पानी ।
—बालसखा, अप्रैल १६२६

बच्चो की कलात्मक अभिरुचि तथा एक कुशल चित्रकार जैसा स्वाग करके चित्र बनाने की बात बडे ही सुन्दर ढग से प्रस्तुत पक्तियो मे अभिव्यक्त हुई है—

मैं खीचूगा चित्र तुम्हारा, म्याऊ देना मुझे सहारा,
बैठी रहना तुम चुपचाप, जिससे लू मैं तुमको नाप ।
यहा वहा मत उछलो कूदो, इसको मन मे तुम बस धरलो,
नही बिगड जायेगा चित्र, अगर करोगे गडबड मित्र ।
—बालसखा, सितम्बर १६३०

इस प्रकार शुक्ल जी ने बच्चो के मन की बात उन्ही की भाषा मे कहने का प्रयत्न किया। खेद है, अब वे बहुत वृद्ध तथा अन्धे हो गये हैं, अन्यथा उनसे बालसाहित्य को अनेक उत्कृष्ट रचनाए प्राप्त होती ।

१६ शालग्राम वर्मा—वर्मा जी ने सन १६१७ से बालसाहित्य की समृद्धि मे अपना योगदान दिया और लगभग १६४२ ४३ तक लिखते रहे। आरभ मे आपने

बच्चो के लिए अनेक रोचक तथा मनोरंजक कहानिया लिखी जो 'बालसखा' मे समय समय पर प्रकाशित होती रही। आपने गीत-कथाए भी प्रचुर मात्रा मे लिखी। इन सभी के पीछे उन्होंने बालपन की रुचि तथा दृष्टि का विशेष ध्यान रखा। किन्तु सीधे शिक्षा देने वाली नीति आपने नही अपनाई। रचना स्वय अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालकर बच्चो के मन को लुभाती थी—

चूहेमल को बैठे-बैठे पैदा हुआ विचार अजीब,
सरकस से बढकर क्या होगी, द्रव्य कमाने की तरकीब।
इस विचार के मन मे आते लगा सोचने वह तत्काल,
सरकस का धधा यदि कर लू तो हो जाऊ मालामाल।
दिखा तमाशा रुपये रोलू, बेचू सोडावाटर चाय,
पूरी पान मिठाई की दुकानें रक्खू खूब सजाय।
ख्याली घोडे दौडाने का चूहेमल को हुआ जुकाम,
खरहे जी से कर सलाह तब शुरू किया अपना झट काम।

—बालसखा, जनवरी, १६२१, पृष्ठ ८

वर्मा जी की अन्य कहानियो मे 'डिकविटिंगटन' (बालसखा, जुलाई, १६२१), तथा 'सुहराब रुस्तम' (बालसखा, फरवरी, १६३२) विशेष उल्लेखनीय हैं।

२० डा० रामकुमार वर्मा—डा० रामकुमार वर्मा ने सन १६२८ से १६३२ के बीच बालसाहित्य रचना की। इस बीच आपने बच्चो के लिए तत्कालीन पत्रिकाओ 'चमचम', 'शिशु', तथा 'बालसखा' मे कई रचनाए लिखी। आपकी एक पुस्तक 'शिशु शिक्षा' के नाम से सन १६३२ मे प्रकाशित हुई थी। इसमे पाच भागो मे बच्चो के लिए सरस और गेय कविताए सकलित थी। पुस्तक के विभागो के शीर्षक ये थे—विनय, स्वदेश सगीत, उचित उपदेश, विविध विषय, कुछ कहानिया। पुस्तक की 'तारे' शीर्षक कविता मे बच्चो की जिज्ञासा बडी सुन्दरता से प्रस्तुत की गई है—

किसने ये मोती बिखराये,
इतने फूल कहा से आये।
चमक रहे हैं कितने तारे,
चन्दा के हैं लाल दुलारे।
हस-हस कर वे क्या कहते हैं,
हम तुमसे ऊपर रहते हैं।
पर हमको यह जग ही भाता,
क्योकि यहा पर हैं पितु माता।

बच्चो की आदत होती है कि जब वे विचित्र आकार-प्रकार के शरीर वाले व्यक्ति को देखते हैं तो उन्हे चिढाने मे उन्हे बहुत मजा आता है। ऐसे पात्र उनके मनोरजन

का भी साधन होते हैं। एक ऐसी भावभूमि पर लिखी प्रस्तुत कविता द्रष्टव्य है—

पडित जी हैं भागे जाते, कितनी लम्बी दौड लगाते।
फूल रही है उनकी छाती, चोटी पीछे उडती जाती।
जाते है अपनी ससुराल, निज कन्धे पर कपडा डाल।
जूता अपने हाथ उठाये, डरते कहीं न वह घिस जाए।

× × ×

बाबा मत दौडो तुम इतना, माल उडाओगे तुम कितना।
यह सुन हम पर तुम न बिगडना, गुस्से मे तुम गिर मत पडना।
—शिशु, नवम्बर, १६२८

बच्चों को हसाने गुदगुदाने के उद्देश्य से भी आपने कुछ कविताए लिखी थी। 'गधे की कहानी' का एक अश कितना रोचक है—

किसने कहा 'गधा' मुझको मैं, यह न कभी सुन सकता हू।
यह न समझ बैठे कोई भी मैं तो यू ही बकता हू।
किसका क्या घटता है जो मैं रहता हू मुह लटकाये,
क्यो कोई मुझ से बोले कुछ क्यो मेरे सम्मुख आये।
मैं तो अपने ही विचार मे रहता हू बिलकुल ही चूर,
मामूली दुनिया की चिन्ताए रखता हू हरदम दूर।
—बालसखा, मई, १६२६

इस प्रकार डाक्टर साहब ने थोडा ही बालसाहित्य लिखा, किन्तु वह बहुत उपयोगी और रोचक सिद्ध हुआ। अच्छा होता, यदि वह और भी कुछ लिखते, जिससे बालसाहित्य समृद्धिशाली बनता।

२१ रघुनन्दन प्रसाद त्रिपाठी—आपने 'रघु' उपनाम से 'शिशु', 'खिलौना' तथा 'बालसखा' मे अनेक बालोपयोगी कविताए लिखी। आपकी कविताए मुख्यत छोटे बच्चों के लिए ही होती थी। उनके विषय तथा उनकी भाषा—दोनो ही छोटी आयु के बालको के अनुरूप होती थी। लेकिन विषय-वस्तु को आप बडे सजीव और रोचक ढग से प्रस्तुत करते थे—

जलेबी वाला देखो आया,
मीठी मीठी चीजें लाया।
गरमागरम जलेबी ले लो।
पेडा बरफी ताजी ले लो।
पैसा जल्दी लेकर आओ,
ताजी ताजी चीजें खाओ।
पीछे से एक कुत्ता आया,
सोहन देख उसे घबराया।

काट लिया कुत्ते ने पीछे,
सारी गिरी मिठाई नीचे।
—खिलौना, अक्टूबर १६२८

छोटे बच्चे जिस तरह उछल-कूद कर खेलते और स्वर करते है उसी के अनुरूप एक रोचक गीत द्रष्टव्य है—

डम डमाडम डम।
खेलें कूदें हम। ढोल बजाते हम।
डम डमाडम डम। झम झमाझम झम।
नाचें कूदें हम।
ढम ढमाढम ढम।
—शिशु, मई १६२६

इन शिशु गीतो के अतिरिक्त आपने अनेक बाल गीत तथा गीत-कथाए बडी आयु के बच्चो के लिए भी लिखे, जो 'बालसखा' मे समय-समय पर प्रकाशित भी हुए थे।

२२ शम्भूदयाल सक्सेना—सक्सेना जी ने बच्चो के लिए प्रचुर मात्रा मे कहानिया, निबन्ध तथा कविताए लिखी। आपकी प्रकाशित बालोपयोगी पुस्तको मे हैं—'पालना', 'मधुलोरी', 'लोरी' और 'प्रभाती', 'फूलो का गीत', 'चन्द्रलोरी', 'आ री निंदिया', 'रेशम का झूला', 'शिशु लोरी,' 'नाचो गाओ', 'दुपहरिया के फूल', 'बाल कवितावली' आदि। आपकी कविताओ के विषय मुख्यतया वे रहे है जिन्हें बच्चे बहुत साधारण महत्त्व देते है—

'सडक' शीर्षक कविता का एक अश यहा प्रस्तुत है—

कोई कही गया था जिस दिन,
जन्म लिया था मैंने उस दिन।
अब भी जहा कहीं जो जाता,
मुझको अपना साथी पाता।
बाजारो मे जाती हू मैं।
दरवाजो तक आती हू मैं।
नगरो मे घर घर मेरा है,
निर्जन वन मेरा डेरा है।
सभी पहाडो पर चढ आई,
सभी घाटियो से कढ आई।
ऊचे नीचे साफ कटीले,
छाने सब स्थल ककरीले।
—बालसखा, मई १६२६

इस युग मे कुछ अन्य लेखको ने भी बालसाहित्य लिखा लेकिन उनकी एकन्दा

रचनाए ही उपलब्ध हैं। उन्होने आगे सभवत कभी बालसाहित्य लिखने मे रुचि नही ली। 'बालसखा' मे भी वृन्दावनलाल वर्मा की एक कहानी प्रकाशित हुई थी 'रेल की दिल्लगी', जिसका एक अश यहा प्रस्तुत है—

"जब गाडी ग्वालियर पहुची, माखनमल्ल जी चोरो की तरह सबकी नजरें बचाने लगे। उन्हे यह जान पडा कि दुनिया भर उन्हें और उनकी गठरी को ही घूर घूर कर देख रही है। शोभाराम ने कहा, 'इतना बोझ खुद क्यो सिर पर लादे चलते हो। किसी कुली को दे दो।'

माखन क्यो बोझ बोझ चिल्ला रहे हो। चुप भी रहो। कोई सुन लेगा तो अभी पकड लेगा।

शोभाराम अजी पकड लेगा तो कौन फासी पर चढा देगा। थोडे से पैसे ज्यादा ले लेगा। और क्या ?

माखनमल्ल भय और क्रोध से कापने लगे और जल्दी जल्दी फाटक पर टिकट देकर स्टेशन से बाहर हो गये।"

—बालसखा, अगस्त, १६१७

श्री चन्द्रमौलि शुक्ल की तीन बाल-कहानिया 'बालसखा' मे प्रकाशित हुई थी। इनके शीर्षक थे—'जादू का किला' (मार्च १६२३), 'जीवजन्तुओ का घर' (बालसखा, जुलाई १६२३), 'समुद्र के किनारे की सैर' (सितम्बर १६२३)। ये वास्तव मे वैज्ञानिक कहानिया थी। किन्तु ये इतनी थोडी थी कि न तो अपना महत्त्व ही स्थापित कर सकी और न किसी परम्परा को ही जन्म दे सकी। इसलिए यह प्रयास भी फुटकल ही रहा।

श्री गुलाबराय ने भी एक कविता बच्चो के लिए लिखी थी। कविता सुन्दर और बालरुचि के अनुकूल है, किन्तु सभवत आगे उन्होने बच्चो के लिए नही लिखा। वह कविता 'शिशु' के अगस्त १६२६ के अक मे 'मधुमक्खी' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी—

मधुमक्खी है सबको भाती,
मेहनत करना सदा सिखाती।
सिर्फ घास पत्ती है खाती,
फूलो से मधु भर-भर लाती।
जोड जोड रखती मधु थाती,
सार ग्रहण करना सिखलाती।
सबसे मिलजुल छता बनाती,
आजादी के गीत सुनाती।
बिना काम के पास न आती,
पकडो तो जल्दी उड जाती।
बिना सताए नही सताती,
निज रक्षा की रीति बताती।

श्री रामानुज लाल श्रीवास्तव का एक नाटक 'दयालु लडका' बालसखा के मार्च,१६३० के अक मे प्रकाशित हुआ था। श्रीवास्तव जी ने बच्चो के लिए पृथक् साहित्य न लिखकर पाठ्य पुस्तको के रूप मे अधिक लिखा। किन्तु वह स्कूलो मे पढाये जाने के निमित्त होते हुए बालसाहित्य की दृष्टि से भी उत्कृष्ट था। इस प्रकार द्विवेदी युग मे प्राय छोटे-बडे सभी साहित्यकारो ने बालसाहित्य की रचना की। इस रचना के पीछे उनकी बालरुचि तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि उल्लेखनीय है। लेकिन प्राय सभी कवियो तथा कहानीकारो का मूल स्वर उपदेशात्मक ही था। मैथिलीशरण गुप्त, 'गुणाकर' जी, कामताप्रसाद गुरु, श्रीनाथसिंह की रचनाओ का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। साथ ही विद्याभूषण 'विभु', 'सुदर्शन', देवीदत्त शुक्ल, रामकुमार वर्मा, रघुनदन प्रसाद त्रिपाठी 'रघु', स्वर्णसहोदर, रामनरेश त्रिपाठी आदि की रचनाए न केवल बालमनोविज्ञान से पुष्ट थी बल्कि वे बच्चो का मनोरजन तथा ज्ञानवर्धन भी करती थी। इस युग के समस्त बालसाहित्य का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बच्चो के लिए विशिष्ट तथा पृथक् साहित्य का महत्त्व समझा जाने लगा था। इस युग के रचनाकारो ने भी बालसाहित्य रचना की जिस परम्परा की नीव डाली वह भी बहुत सही और सशक्त थी। इसी का फल यह हुआ कि आगे चलकर बालसाहित्य की धारा अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित हो चली। इस प्रवाह की गति का विस्तृत विवेचन आगे प्रस्तुत किया गया है।

(४) आधुनिक युग (सन १६३१ से १६४६)

यह वह समय था, जब देश मे स्वदेशी आन्दोलन जोर पकड चुका था। भारतीय स्वतत्रता के लिए भारतवासी हर कीमत चुकाने को तैयार थे। काग्रेस के असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप विद्यार्थियो मे भी देश की आजादी के लिए मर मिटने की आग भडक उठी थी। इस वातावरण के निर्माण मे उस समय के लेखको, कवियो तथा विचारको का भी पूरा योग था। दूसरी ओर द्वितीय महायुद्ध छिडने के बाद युद्ध की विभीषिका ने तथा सन '४२ की क्राति ने भी भारतीय साहित्य को बहुत प्रभावित किया। बालसाहित्य भी इस प्रभाव से बच नही सकता था और इस कारण इस अवधि मे लिखा गया बालसाहित्य भी राष्ट्रीय जागरण तथा भारतीय स्वतत्रता की रक्षा की भावना से ओतप्रोत रहा।

(क) ऐतिहासिक विवेचन

इस समय तक बालसाहित्य अपना स्वरूप निश्चित करने मे सफल हो जाने के कारण प्रचुर मात्रा मे लिखा जाने लगा था। कविवर सोहनलाल द्विवेदी ने बच्चो के लिए अनेक राष्ट्रीय तथा सरल कविताए लिखी थी। बच्चो की रुचि-शुचि को सवारने वाली ऐसी कविताओ के सग्रहो के नाम हैं—'बासुरी', 'शिशु

भारती', 'विपपान', 'झरना', तथा 'विगुल'। इनका प्रकाशन १६४५ मे हुआ था। बच्चों मे साहस की भावना जगाने के लिए इडियन प्रेस, प्रयाग से 'जान-जोखिम की कहानिया' (१६४५), 'देशान्वेपण की सरल कथाये' तथा 'मेरे देन की कथा' (१६४५) प्रकाशित हुई थी। मनोरजक कहानी पुस्तको मे 'बालगोपाल तथा अन्य कहानिया,' 'लाल बौना', और 'शैतान का खेल' इडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुई थी। इनके अतिरिक्त सन १६४६ मे राजेन्द्रसिंह गौड की 'म्याऊ-म्याऊ की पूछ,' प० भगवानदास अवस्थी कृत 'लैमनजूस की चोरी', 'सोने-शहद की मक्खी', 'वडे शेर का सामना' तथा 'गप्प की लकडदादी' भी उल्लेखनीय है।

बच्चो को प्रेरणा देने तथा अनुकरण करने हेतु अनेक जीवनिया भी इसी समय प्रकाशित हुई। 'तुर्की के वीर', 'मिस्टर चर्चिल', 'स्टालिन', 'वाल्मीकि' तथा 'अमर जीवन' पुस्तक मे ससार के सुप्रसिद्ध कवीन्द्र-रवीन्द्र, अल्फ्रेड नोवेल, जगदीश वसु आदि के जीवन चरित्र का सार-सक्षेप, आदि प्रकाशन वड़े उपयोगी सिद्ध हुए। इन चरित्रो ने न केवल पाठको को प्रभावित किया वल्कि भारत के तद्युगीन वातावरण मे आजादी तथा राष्ट्रीयता का स्वर भी घोषित किया।

इस अवधि मे बच्चों के लिए वैज्ञानिक साहित्य भी लिखा जाने लगा। विज्ञान के विभिन्न आविष्कारो तथा उनके अन्वेषको की कहानियो के अतिरिक्त जीव-जन्तुओ, भूगर्भ विज्ञान तथा नक्षत्र विज्ञान-सम्बन्धी रोचक बाल-साहित्य भी प्रणीत होने लगा था। बच्चो मे वैज्ञानिक सूझ-बूझ का सचार करने के उद्देश्य से मासिक पत्रिकाओ मे वैज्ञानिक खेल, वैज्ञानिक खिलौने बनाने की विधि तथा गणित के मनोरजक प्रश्न भी प्रकाशित होने लगे थे। इस विषय पर लिखने वाले प्रमुख लेखक थे—डा० गोरखप्रसाद, चन्द्रमौलि शुक्ल, सिद्धहस्त आदि।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् भारतीय जीवन तथा विचारधारा मे बहुत परिवर्तन हुआ था। साहित्य तथा सस्कृति के मानदण्डो मे भी परिवर्तन होने लगा और भारतीय राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए सर्वत्र प्रवल उत्तेजना परिलक्षित होने लगी थी। बालसाहित्य की भी उन्नति तथा उसके प्रसार की ओर लोगो का ध्यान गया था। इनमे सबसे अधिक योजनाबद्ध ढग से काम करने वाले थे प० सोहनलाल द्विवेदी। आपने 'शिशु भारती' के प्रकाशन की एक योजना बनाई थी। इसकी घोषणा मे कहा गया था—"हमने 'शिशु भारती' नाम से बालको के प्रतिनिधि कवियो का काव्य-सग्रह प्रकाशित करने का निश्चय किया है। बालसाहित्य की ओर समृद्ध साहित्यकारो की उपेक्षा देखकर यह कार्य हमने आपके सहयोग के विश्वास पर ही अपने ऊपर लिया है। 'शिशु भारती' को हम बहुत सुन्दर आकार-प्रकार मे और सचित्र छापेंगे और चाहेगे कि बालको के लिए लिखी हुई सभी अच्छी रचनाए आ जाए। बालसाहित्य के सभी प्रतिनिधि कवियो ने इसमे सहर्ष सहयोग देने का वचन दिया है। हम चाहते है कि आप स्वयं बालको के लिए

लिखी हुई अपनी १५-२० रचनाएं भेजने की या भिजवाने की कृपा करें।"[1]

इस योजना के लिए सुझाव रूप में जबलपुर के श्री कुमारहृदय (रामेश्वर गुरु) ने एक सूची भेजी थी। इसमे बालसाहित्य के प्रमुख कवियों के नाम थे। वे इस प्रकार है—सर्वश्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, कामताप्रसाद गुरु, श्रीधर पाठक, मन्नन द्विवेदी गजपुरी, रामनरेश त्रिपाठी, विद्याभूषण 'विभु', स्वर्ण सहोदर, श्रीनाथसिंह, उर्मिला गुप्त, देवीप्रसाद विक्रम, गौरीशंकर लहरी, सुदर्शनाचार्य, सुभद्रा कुमारी चौहान, देवीदत्त शुक्ल, रामकुमार वर्मा, शम्भूदयाल सक्सेना, विद्याभास्कर शुक्ल, देवीदयाल चतुर्वेदी, नरेन्द्र मालवीय, श्रीधर कुलश्रेष्ठ, शिक्षार्थी, श्रीराम वाजपेयी, आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव, बुद्धिभद्र दीक्षित, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, शकुन्तला सिरोठिया, कृष्ण स्वरूप शर्मा, गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश, रामलोचन कटक, ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल, मणिराम गुप्त, मनोरजन प्रसाद, विद्यावागीश गुप्त, हरिदयाल चतुर्वेदी।[2]

सन् '४० के आसपास जबलपुर के श्री नर्मदाप्रसाद मिश्र ने 'मित्र बन्धु कार्यालय' से अनेक बालोपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की। इनमे कुछ के लेखक वह स्वयं थे तथा अन्य लेखकों के नाम हैं—"स्वर्ण सहोदर, गणेशराम मिश्र, अमृतलाल दुबे, कन्हैयालाल शर्मा, आत्माराम देवकर, कालूराम वाजपेयी आदि। दिल्ली के 'जीवन साहित्य' ने इन पुस्तको की समीक्षा करते हुए लिखा था, "ये सब पुस्तकें छोटे-छोटे बच्चो के लिए, जिन्हे अक्षरों और मात्राओं का ही ज्ञान हो पाया हो, रोचक और उपयोगी हैं। इनमे अच्छी बात यह है कि लेखक ने इस अवस्था के बालकों की रुचि का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। लेखक ने छोटे बालकों के मस्तिष्क का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है और वह उनकी रुचि से भली भाति परिचित है। ऐसे बच्चे प्राय. इसी तरह के आदमियों और जानवरों की रंगीन तस्वीरें अधिक पसन्द करते हैं। जानवरों के नाम भी टीपू, रीछू, गज्जू, लुक्की, भानू ही उन्हे अधिक भाते हैं। हर एक पोथी मे ६-७ अलग-अलग कहानिया होते हुए भी वे एक सिलसिले मे है। इसलिए एक कहानी पढ़कर उसके आगे पीछे की कहानिया पढ़ने को आप ही आप जी चाहता है। रंगीन छपाई, चित्रों का बाहुल्य और छपाई-सफाई की बाहरी सजधज के अलावा भीतरी आकर्षण भी होने से बालसाहित्य मे इससे अधिक वृद्धि हुई है।"

इसी समय कुछ अन्य फुटकर प्रयास भी हुए। ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तो नही सिद्ध हुए किन्तु हिन्दी बालसाहित्य की अभिवृद्धि तथा उसके विकास में ऐतिहासिक महत्त्व के अवश्य सिद्ध हुए, इसलिए इनका भी उल्लेख आवश्यक है।

वर्धा कामर्स कालेज के कुछ उत्साही छात्रों द्वारा बालसाहित्य के उन्नयन के लिए किये गये प्रयास की सूचना 'बालसखा' मे प्रकाशित हुई थी। यह प्रयास

---

१. बालसखा, जून १९४६।
२. वहीं, जुलाई, १९४६।

छोटा होते हुए भी उपयोगी अवश्य था। पूरी सूचना इस प्रकार थी—"वर्धा मे कामर्स कालेज के कुछ विद्यार्थियो ने 'शिक्षार्थी साहित्य प्रकाशन सस्था' स्थापित की है। इसका उद्देश्य है हिन्दी के कुमारो द्वारा लिखित पुस्तको का प्रकाशन, इस सस्था को अखिल भारतीय हिन्दी कुमार साहित्य सम्मेलन का सहयोग भी प्राप्त होगा। इस प्रयत्न से हिन्दी के कुमारो को साहित्य रचना मे बहुत प्रोत्साहन मिलेगा। प्रकाशनार्थ केवल वे ही पुस्तकें स्वीकार की जायेंगी जिनके द्वारा विद्यार्थियो मे चरित्र-निर्माण, नैतिकता, समाज तथा मानव मात्र की सेवा की भावना जाग्रत हो।"[1]

बच्चो की पुस्तको के सम्बन्ध मे जन मानस को जानकारी उपलब्ध कराने तथा उसके समृद्धिशाली होने की सूचना देने के उद्देश्य से बनाई गई एक सूची के लिए श्री परिपूर्णानन्द वर्मा ने पुरस्कार देने की घोषणा की थी—"श्री परिपूर्णानन्द वर्मा, कानपुर ने हिन्दी साहित्य को सम्मेलन बालोपयोगी ५०० पुस्तकों की सर्वश्रेष्ठ सूची तैयार करने वाले सज्जन को पुरस्कार के लिए १०१ रुपये का दान किया है। १५ जून १९४५ तक सूची आजानी चाहिए।"[2]

इस सूचना पर 'बालसखा' सम्पादक श्री लल्लीप्रसाद पाण्डेय की टिप्पणी थी, "ऐसी सूची की बहुत आवश्यकता है, पर यह काम बहुत कठिन है। हम दाता को धन्यवाद देते हैं जिससे सूची का मार्ग सहज हो गया।'[3]

हिन्दी बालसाहित्य के मूल्याकन तथा समीक्षा के सिद्धान्तो की विस्तृत विवेचना, अन्य भारतीय भाषाओ के साथ तुलनात्मक अध्ययन तथा हिन्दी बालसाहित्य की भावी समृद्धि के सम्बन्ध म सर्वोत्तम निबन्ध लिखवाने की एक घोषणा की गई थी—" 'हिन्दी बालसाहित्य का आलोचनात्मक और तुलनात्मक सिंहावलोकन तथा उसकी भावी समृद्धि के सुझाव' पर उत्तम निबन्ध लिखने वाले को कानपुर के श्री मनोहरलाल जैन १०० रुपये का पुरस्कार देंगे। निबन्ध लगभग ४००० शब्दो का हो। उसमे हिन्दी बालसाहित्य की तुलना अंग्रेजी बालसाहित्य से की जाय। बालको की तीन मुख्य अवस्थाओ—शैशव, बाल्य और किशोरो के अनुकूल साहित्य पर पूर्ण और विशद विवेचन हो। निबन्ध हिन्दी मे हो तो उसका अंग्रेजी भाषान्तर भी साथ रहे जिससे अन्य भाषाओ के बालसाहित्य पर आमन्त्रित निबन्धो का तुलनात्मक अध्ययन हो सके। निबन्ध १५ अक्टूबर १९४५ तक श्रीकृष्ण विनायक फड़के, मन्त्री, शैशव तथा गृहशिक्षा विभाग, अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन, कानपुर के पते से पहुच जाय।"[4]

इस प्रकार सन् '३० के बाद से पन्द्रह वर्षों म बालसाहित्य रचना की ओर

---

१ बालसखा, अक्टूबर १९४५—पृष्ठ ३२०।

२ बालसखा, जून १९४५, पृष्ठ १९२।

३. बालसखा, जून १९४५, पृष्ठ १९२।

४. बालसखा, अक्टूबर १९४५, पृष्ठ ३२०।

अनेक लेखक-कवि प्रवृत्त हुए तथा उसका साहित्य-जगत मे स्वतन्त्र अस्तित्व निरूपित करने के प्रयास होने लगे। यह बालसाहित्य के विकास में एक क्रान्तिकारी कदम था। इस क्रान्ति को विस्तार देने का कार्य तत्कालीन बालमासिकों ने किया। 'खिलौना' के प्रकाशन से अनेक उदीयमान लेखकों को बालसाहित्य प्रकाशित कराने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इन मे बलभद्रप्रसाद गुप्त 'रसिक', जगदीश प्रसाद दीक्षित 'जगन', शेख नईमुद्दीन, गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र', भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि के नाम उल्लेखनीय है। सन् १६३३ मे 'बालविनोद' प्रकाशित हुआ। इस मे भी आरसीप्रसाद सिंह, ज्वालाप्रसाद बी०ए०, जोतिन प्रसादजी, मनोरंजनसहाय गुमला, मूलचन्द श्रीवास्तव, मदनमोहन व्यास, अनन्तराम शिक्षक आदि नियमित रूप से लिखते थे। इसी समय कालाकांकर से कुंवर सुरेशसिंह ने 'कुमार' का प्रकाशन किया था। इसने अनेक ख्यातिप्राप्त साहित्यिकों को बालसाहित्य लिखने की ओर प्ररित किया। इनमे कविवर सुमित्रानन्दन पन्त, नरेन्द्र शर्मा, हरिऔध, सोहनलाल द्विवेदी आदि की रचनाएं प्रकाशित हुई। कला प्रेस, प्रयाग से 'चमचम' का प्रकाशन भी बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इसका नाम, रूप-आकार तथा सामग्री आदि सभी बालकों के अनुरूप होने के कारण, बच्चो ने इसे बहुत पसन्द किया था। हिन्दी प्रेस, प्रयाग से श्री रामनरेश त्रिपाठी ने 'वानर' निकाला था। यह अधिक समय तक तो नही चला, किन्तु जब तक प्रकाशित हुआ इसमे श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशित होती रही। श्री राजेश्वर गुरु, कुमार हृदय, स्वर्ण सहोदर, सोहनलाल द्विवेदी, सुदर्शन, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस के नियमित लेखक थे।

इस प्रकार कम आयु होते हुए भी अनेक बाल-पत्रिकाओ ने बालसाहित्य की धारा को प्रवाहित करने म अपना योगदान दिया। यह योगदान केवल प्रवाह को गति देने तक ही सीमित न था बल्कि बाल-रुचि के अनुकूल सामग्री का प्रस्तुतीकरण, विभिन्न विधाओं का परिष्कार तथा बालसाहित्य रचना के लिए अधिकाधिक लेखकों को प्रेरित करना भी था।

(ख) प्रमुख प्रवृत्तिया

यह जागरण का युग था। भारतीयता के पुजारी लेखक अपनी रचनाओ के माध्यम से बच्चो मे भी राष्ट्रीयता का सचार करने के लिए प्रयत्नशील थे—

बदल गया है बहुत जमाना,
बदलो अपना साज सहेली।
अब जो बैठोगी पर्दे मे,
तुम्हें लगेगी लाज सहेली।
भारत का सेवा करना है,
माता की पीडा हरना है।

तुम्हें देश के हित मरना है,
नही किसी से कुछ डरना है।
जग में नहीं किसी स कम हो,
कर दो साबित आज सहेली।
—'श्रीश'[१]

भारतीय सस्कृति और परम्परा की रक्षा के लिए बच्चो मे उत्साह जगाने के उद्देश्य से सपादकीय टिप्पणिया तथा स्वतत्र लेख भी प्रकाशित होते थे—"हमारे पूर्वजो ने सत्य और एकता का सच्चा मार्ग बताने के लिए होलिकोत्सव इत्यादि अनेक त्योहार स्थापित किये है। परन्तु हम आज उसके विपरीत देखते हैं। जहा सत्यता और एकता की प्रधानता थी, वहा असत्यता तथा भिन्नता ने अपनी अज्ञानता फैला रखी है। होली के अश्लील आडम्बरो से बचकर सुविचारो का सदुपयोग करो, जिससे हिन्दू जाति गौरवान्वित होकर जग मे कीर्तिशालिनी हो।'[२] यह टिप्पणी भारतीय गौरव और कीर्ति की रक्षा क लिए प्रेरणा के रूप मे एक सुन्दर उदाहरण है। एक अन्य टिप्पणी भारतीय स्वतत्रता के लिए लिखी गई थी—'क्या तुम भी अमर बनना चाहते हो ? तो गुलामी से जकडी भारत माता की बेडिया काटन के लिए वही करो, जो उन वीरो ने किया।'[३]

इस समय गाधी जी का प्रभाव बहुत था। "जय बोलो महात्मा गाधी की"—हर बच्चा पुकारता था। उनके सन्देश, उपदेश और आदेश छोटे-बडे सभी ने किसी न किसी रूप म ग्रहण किये थे। राष्ट्रीय भावनाओ के कवि सोहनलाल द्विवेदी ने अनक कविताओ क माध्यम से बच्चो मे गाधीवादी विचारधारा के मूल तथ्यो—सत्य, अहिसा का मत्र फका। इन गीतो मे जहा बाल मन की सरलता और बापू के प्रति जिज्ञासा के भाव प्रकट हुए है, वही बापू के सरल, प्रभावशील और अनुकरणीय व्यक्तित्व पर भी प्रभाव पडा—

सिर पर धर खादी का टुकडा,
कस कर कमर लगोटी।
बापू कहा चल पडे बोलो,
लिये लकुटिया छोटी।
एक ओर तो बा चलती है,
कौन दूसरी ओर ?
अच्छा मैं पहचान गया,
यह भैया नन्दकिशोर।

---

१ बालसखा, अगस्त १६३०।
२ सपादकीय से—'बालविनोद', मार्च १६३७, पृष्ठ १६८।
३. सपादकीय से—'बालविनोद', जून १६३७, पृष्ठ २८६।

बापू के पोपले मुंह को देखकर बच्चों की सरल बातों की झलक द्रष्टव्य है—

सभी लोग तुम तक आते हैं तुम न कहीं क्यों जाते ?
बापू इसका भेद बताओ तुम भेद छिपाते।
बापू तुमको सभी मानते दुनिया शीश झुकाती,
पर मुंह पुपला देख तुम्हारा मुझे हंसी आ जाती।

गांधी जी ने सन् '४३ के फरवरी महीने मे २१ दिन का उपवास, देश मे हुई हिंसात्मक कार्रवाइयों के विरोध मे किया था। उपवास समाप्त होने पर बच्चों के 'बालसखा' के सम्पादक श्री श्रीनाथसिंह ने इस सन्दर्भ मे एक कविता लिखी थी और बाल-पाठकों को गांधी जी के सिद्धान्तों तथा उनके महत्त्वों का परिचय दिया था—

इक्कीस दिनों का ठाना था, उपवास महात्मा ने भारी।
वे बच जायें, वे बच जायें, यह कहती थी दुनिया सारी।
है सत्य अहिंसा व्रत उनका, जग को देते संदेश यही।
पर इधर युद्ध की ज्वाला से दुनिया सारी जा रही दही।
इसलिए बुद्ध-सा ईसा सा वे तपे कि जग को मिले ज्ञान।
परमेश्वर को है धन्यवाद गांधी जी की बच गई जान।[1]

इस अवधि मे दूसरे महायुद्ध की विभीषिका से सारा संसार व्याकुल हो उठा था। दूसरे महायुद्ध मे न केवल सैनिक बल्कि नागरिक और विशेषकर बच्चे त्रसित हुए। लेकिन बच्चों ने भी उसम साहस का परिचय दिया। जहा एक ओर उनका यह साहस प्रशंसनीय था, वही बेकसूर बच्चों पर बम वर्षा अमानुषिक कृत्य था और उसकी सर्वत्र निन्दा हो रही थी। बच्चों के प्रति इस अत्याचार के बारे मे 'लड़ाई और बच्चे' शीर्षक से एक निबन्ध श्रीनाथसिंह ने लिखा था। इसमे जहा बच्चों के शौर्य तथा धैर्य की प्रशंसा थी, वही युद्ध प्रेमी देशों तथा लोगों की निन्दा भी की गई थी। उसमे लिखा था, "बालसखा के पाठकों को मालूम होगा कि योरुप म बड़े जोरों की लडाई हो रही है। इस बार की लडाई मे छोटे छोटे बच्चों की भी जान खतरे मे रहती है। इसका नतीजा यह हो रहा है कि जहा फौज के सिपाही मरते हैं वही औरतों और बच्चों को भी बम और गोले का निशाना बनना पडा है। लेकिन 'बालसखा' के पाठकों को यह जानकर खुशी होगी कि योरुप के लडके बडी बहादुरी से इस मुसीबत का सामना कर रहे हैं। पहले पहल जब जर्मनी ने पोलैण्ड पर हमला किया था तो वहा के बच्चों को इसका शिकार होना पडा था। आज योरुप के जो बच्चे लडाई के शिकार हो रहे हैं कल वही बड़े होंगे और योरुप की राजनीति म ये उसी तरह हिस्सा लेंगे जैसे आजकल वहा के बडे-बडे

१. 'बालसखा', मार्च, १९४३।

लोग लेते है। हमे विश्वास है कि वे उस गलती को सुधारेंगे जोकि आजकल के बड़े लोगो से हुई है, यानी लड़ाई के वक्त मे बेकसूर बच्चों पर हमला करना। हमारा ख्याल है कि तब लड़ाई चाहे जितनी भयानक हो, लेकिन बेकसूर बच्चो पर इस तरह हमला करने की किसी को हिम्मत न होगी।"[१]

युद्ध की इस विभीषिका को आज २७ वर्ष बाद भी वियतनाम के बच्चे उसी तरह देख रहे है। विदेशो मे विशेषकर योरुपीय और अमरीकी देशो की युद्ध नीतियो मे कोई अन्तर नही आया। ये और बात है कि शक्तियो के दबाव से, वे एक दूसरे से टकराने से बचना चाहते है और तृतीय महायुद्ध की आशाए समाप्त कर देते है। लेकिन भारत पर द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका की जो प्रतिक्रिया हुई, वह २०-२५ वर्ष बाद स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। उस समय के बच्चे जब आज बड़े हुए तो उन्हे युद्ध से नफरत हुई और वे शान्तिप्रिय बन गये। भारत की शान्ति नीति की सफलता का एक बहुत बड़ा अप्रत्यक्ष कारण यह भी था। किन्तु इसका यह अर्थ भी न था कि हम अपनी स्वतत्रता की रक्षा के लिए हथियार न उठाते। लेकिन जिन शान्तिमय तरीको से हमने आजादी ली, उस तरह शायद ही दुनिया का कोई देश आजाद हुआ हो।

पिछडा हुआ है। बालक ऐसा शब्द है जिसमे सोलह वर्ष का भी व्यक्ति आता है और चार वर्ष का बच्चा भी। किन्तु इन दोनो अवस्थाओ की रुचि मे भारी अन्तर है। सोलह वर्ष के बालक के लिए जो ग्रन्थ उपयोगी हो सकते हैं, वे छोटे बच्चो के लिए नही। बडे बालको के योग्य कुछ उपयोगी पुस्तकें हैं, किन्तु शिशुओ के योग्य पुस्तको की बहुत कमी है। अवस्था के रुचि-वैचित्र्य के कारण ही बाल-साहित्य के वर्गीकरण की बहुत आवश्यकता है।

"अभी तक जो बालसाहित्य हिन्दी मे बना है, वह किसी निर्दिष्ट और शास्त्रीय पद्धति के आधार पर नही है। बालसाहित्य की रूपरेखा और भावी प्रगति पर गम्भीर विचार करने के लिए बालसाहित्य के प्रकाशको, लेखको, सम्पादको, मनोवैज्ञानिको, शिक्षा विशेषज्ञो और अनुभवी शिक्षको के सम्मेलन की आवश्यकता है। इन लोगो के विचार विनिमय से बालसाहित्य को लाभ होगा। 'स्वतन्त्र बालसाहित्य सम्मेलन' द्वारा हिन्दी बालसाहित्य के भावी विकास के मूल तत्त्वो का निर्माण हो सकता है तथा विशेषज्ञो की एक समिति द्वारा वर्गीकरण की समस्या हल की जा सकती है। इसलिए मैं बच्चो के हितैषियो एव साहित्य के प्रेमियो के समक्ष स्वतन्त्र रूप से एक अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य के सम्मेलन की योजना रखता हू।

१ बालको की अवस्था के अनुसार पुस्तको का टाइप, आकार, कहानी, कविता अथवा पाठ की लम्बाई तथा पुस्तक की पृष्ठ सख्या निश्चित करना।
२ अवस्था के अनुसार भाषा तथा विषय मे परिवर्तन।
३. शिशु-गीत, लोरियो विशेषतया वहा के बालजीवन साहित्य का प्रकाशन।
४ अभिनय करने योग्य कविताए, सवाद, प्रहसन अथवा नाटक का प्रकाशन।
५ जानवरो तथा परियो की कहानिया कैसी हो तथा भूत, पिशाच, दानवो आदि की कहानियो का क्या स्थान हो, इस पर विचार।
६ देश प्रेम की कवितायें तथा साहस एव पौरुष की कहानियो का प्रकाशन।
७ रेडियो, हवाई जहाज, मोटर आदि वैज्ञानिक साहित्य का प्रकाशन।
८ देश देशान्तर सम्बन्धी भौगोलिक साहित्य, बाल शिक्षा सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन।
९. पौराणिक तथा ऐतिहासिक कहानियो का सरल भाषा मे बच्चो के लिए प्रकाशन।
१०. बालकोपयोगी ज्ञानकोष का निर्माण।
११ स्वास्थ्य, व्यायाम, खेलकूद सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन।
१२ अन्य देशो तथा भारतीय भाषाओ के सुप्रसिद्ध बालोपयोगी साहित्य का हिन्दी मे अनुवाद।
१३. बालकोपयोगी मासिक पत्र और पत्रिकाए तथा उनमे सशोधन पर विचार।
१४ भारतवर्ष तथा ससार के प्रसिद्ध महापुरुषो की जीवनिया का प्रकाशन।

१५ बाल मनोविज्ञान तथा छोटे बच्चों की निरर्थक एवं मनोविनोद की तुक-बन्दियों का संग्रह।"[१]

लेकिन यह योजना बहुत सफल नहीं हुई। यह बालसाहित्य के विकास को अग्रसर अवश्य कर सकी और इससे लेखकों की प्रवृत्तियों में भी अन्तर आया।

(ग) प्रमुख लेखक तथा रचनाएं

इस अवधि में दो तरह के लेखक वर्ग थे। एक तो वे जो द्विवेदी युग से बालसाहित्य की सेवा करते रहे हैं किन्तु उनका कार्यकाल इस अवधि तक होने के कारण, उनका उल्लेख यहां विस्तार से नहीं हुआ। दूसरे वे हैं जिन्होंने इसी अवधि में स्वतन्त्र रूप में बालसाहित्य रचना की। आगे ऐसे सभी रचनाकारों की बालसाहित्य के लिए की गई सेवाओं तथा रचनाओं का विवेचन प्रस्तुत है।

१ पं० लल्लीप्रसाद पाण्डेय—पाण्डेय जी सन् १९१७ में इंडियन प्रेस में 'बालसखा' के तत्कालीन सम्पादक पं० बदरीनाथ भट्ट के सहायक के रूप में नियुक्त हुए थे। तभी से आपके मन में बालसाहित्य के प्रति अभिरुचि जाग्रत हुई थी। आपने समय-समय पर बच्चों के लिए अनेक मनोरंजक कहानियां यात्रा वृत्तान्त तथा कविताएं लिखीं—जो बालसखा में प्रकाशित हुईं। कहानियों में 'चूहे की चतुराई' (बालसखा, जनवरी १९३२), 'ध्रुव का भ्रातृ प्रेम' (बालसखा, फरवरी १९३४), 'डोम की बरात' (बालसखा, जनवरी १९४०) और 'मौज है' (बालसखा, फरवरी १९४१) तथा यात्रा-वृत्तान्तों में 'पुरी यात्रा' (बालसखा, मई १९३९) विशेष उल्लेखनीय हैं। बच्चों के लिए आप बहुत मनोरंजक और गुदगुदाने वाली कविताएं लिखते थे। 'वानर जी' कविता इस संदर्भ में द्रष्टव्य है—

> आंखों पर चश्मा है सुन्दर, सिर पर गांधी टोपी है,
> और गले में पड़ा दुपट्टा, निकली बाहर चोटी है।
> टेबिल लगा बैठ कुर्सी पर, लिखते हैं, वानर जी लेख,
> करते हैं कविता का कौशल, रहती जिसमें मीन न मेख।
> तुकबन्दी प्रति मास सुनाते, लिखते लेख विचार-विचार,
> कथा कहानी और पहेली करते नई नई तैयार।
> रंग-बिरंग चित्र दिखाते, करते, हंसी ठठोली हैं,
> लड़के-लड़की सभी किलकते सुनकर बन्दर बोली है।[२]

सन् १९४० में 'बालसखा' का सम्पादन संभालने के बाद से अब तक के समय में आपने बालसाहित्य की अपूर्व सेवा की है। एक सफल सम्पादक के

---

१. 'बालसखा', मई, १९४५।
२ 'बालसखा', अगस्त, १९३२।

रूप मे आपने अनेक लेखको का निर्माण किया, उनकी रचनाए 'बालसखा' मे प्रकाशित कर न केवल उन्हे बालसाहित्य जगत् मे प्रतिष्ठित किया बल्कि उनके द्वारा प्रणीत बालसाहित्य से, साहित्य की इस उपेक्षित दिशा को समृद्धिशाली बनाया। इसीलिए पाण्डेय जी केवल बालसाहित्य के सफल लेखक-सम्पादक नही हैं बल्कि वह अपने आप मे एक संस्था है।

द्विवेदी युग के आरम्भिक वर्षो से लेकर अब तक निरन्तर बालसाहित्य की सेवा करने वाले पाण्डेय जी, बालसाहित्य के निर्माताओ मे से है। इसके लिए बालसाहित्य जगत् सदैव ऋणी रहेगा।

२ माखनलाल चतुर्वेदी—चतुर्वेदी जी हिन्दी साहित्य जगत मे 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से विख्यात रहे हैं। आपने तत्कालीन बाल पत्रो म अनेक राष्ट्रीय कविताए तथा निबन्ध लिखे। 'विद्यार्थी' के तो आप नियमित लेखक थे। आपकी रचनाए बच्चो मे राष्ट्रीय भावना का सचार करती थी। आपकी 'भारतीय विद्यार्थी' कविता का एक अश इस प्रकार है

समय जगाता है, हम सबको झटपट जग जाना ही होगा,
देश विश्व सिद्धान्त कार्य मे निर्भय लग जाना ही होगा।
दृढ करके मस्तिष्क मनस्वी बनकर वीर कहाना होगा,
पूर्ण ज्ञान सर्वेश चरण पर जीवन पुष्प चढाना होगा।
यह स्वार्थी ससार एक दिन बने हमी से जब परमार्थी,
तब हम कही कहा सकते है, सच्चे भारतीय विद्यार्थी।

चतुर्वेदी जी का मूल स्वर भारतीयता तथा उसकी स्वतन्त्रता के लिए बलिदान होना ही था। उनकी प्राय सभी बालोपयोगी रचनाओ म यही स्वर मुखरित हुआ है।

३. आरसीप्रसादसिंह—आपने बडो के लिए जहा 'कलापी,' 'पाचजन्य,' 'आधी के पत्ते' आदि कविता सग्रह लिखे वही बच्चो के लिए 'चन्दा मामा,' 'चिनो म लोरिया' आदि पुस्तकें भी लिखी। 'बालक' और 'बाल विनोद' म आपकी रचनाए नियमित रूप से और प्रचुर मात्रा म प्रकाशित हुई। आपने बच्चो की प्रवृत्तियो तथा उनकी आदतो का बडी सूक्ष्मता से अध्ययन कर कविताए लिखी। उनके मन के भावो को, उन्ही की भाषा मे व्यक्त करने मे आपको विशेष सफलता मिली। लकडी के डडे का घोडा बनाकर खेलने वाले बालक के मन की बात सुनिये

मेरा घोडा बडा उडाका,
सीधा सादा तिरछा बाका,
उडे पीठ पर राष्ट्र पताका,
मै सवार भी मिला बला का,
चल रे घोडे टिक टिक टिक।

पर्वत नदी झील के ऊपर,
चांद और सूरज को छूकर।
खोल परों को अपने सुन्दर,
उड़ ऐ मेरे चेतक फर फर।
चल रे घोड़े टिक टिक टिक।[1]

सावन के सुहाने मौसम में बालमन की उमंग और घुमक्कड़ बनने की चाह का कितना सरल और सुन्दर चित्रण है—

सावन आया, मनहर सावन,
मनहर सावन, सरस सुहावन।
आम खूब इस बाग फले हैं,
लड़के सब उस ओर चले हैं।
कुछ कागज की नाव बहाते,
कोई गाते ही निकले हैं।
उछल कूदकर प्राण लुभावन,
सावन आया, सरस सुहावन।
इन्द्रधनुष की छटा कहीं पर,
कहीं निर्झरी का झर-झर स्वर।
'पिया' पपीहा कहीं पुकारे,
कहीं नदी का हर हर हर हर।
दुर्लभ सा सर्वत्र जलावन,
सावन आया, सरस सुहावन।[2]

बालमन की जिज्ञासा, मनोरंजन और रुचि को प्रकट करने वाली ऐसी ही अनेक कविताओं द्वारा आपने बालसाहित्य का भंडार भरा है। लेकिन खेद है कि इधर बहुत कम रचनाएं आप लिख रहे हैं। सन् १६३६-४० की अवधि में कवि का स्वर बाल-सुलभ-मनोवृत्ति और प्रकृति के विभिन्न अंगों से बाल बुद्धि का तादात्म्य ही था। किन्तु आधुनिक युग में यह स्वर बदल गया। आपकी 'सैर सपाटा' कविता इस कथन का प्रमाण है—

कलकत्ते से दमदम आए, बाबूजी के हमदम आए।
हम वर्षा में झम झम आए, बर्फी पेड़े चमचम खाए।
खाते पीते पहुंचे पटना, पूछो मत पटना की घटना।
मोटर के टायर का फटना, तांगे का बेलाग उलटना।

---

१ बालविनोद, वर्ष ४, अंक १, जून १६३६, पृष्ठ १०७।
२ बालविनोद, जून १६३६, पृष्ठ १०१।

पटना से हम पहुचे राची, राची मे मन मीरा नाची।
सबने अपनी किस्मत जाची, देश-देश की पोथी बाची।
राची से हम आये टाटा, सौ सौ मन का लोहा काटा।
मिला नही जब चावल आटा, भूल गए हम सैर सपाटा।[1]

४ सोहनलाल द्विवेदी—द्विवेदी जी बालसाहित्य के 'महावीरप्रसाद द्विवेदी' है। आपने बालसाहित्य को उसी तरह सजाया सवारा है जिस प्रकार उन द्विवेदी ने हिन्दी के खडी बोली साहित्य को बनाया था। अपनी अनेक रचनाओ, बालसाहित्य के लेखको तथा प्रकाशको को प्रोत्साहन तथा उन्हे साहित्य-जगत् मे प्रतिष्ठा दिलाने के पुनीत आन्दोलन द्वारा आपने जो कुछ किया है, उससे बालसाहित्य धन्य हुआ है।

द्विवेदी जी बच्चो के लिए पिछले लगभग चालीस वर्षों से लिख रहे हैं। आपने बडो के लिए भी उच्च कोटि का काव्य लिखा है और ख्याति प्राप्त की है। लेकिन बच्चो के लिए भी उसी लगन और निष्ठा से, बालमन की सरल अनुभूति को सरल भाषा मे अभिव्यक्त करने का कार्य भी आप करते ही रहे।

द्विवेदी जी ने बालसाहित्य रचना केवल 'अभाव पूर्ति' के लिए नही की बल्कि उसे युगानुरूप बनाकर नई दिशा, नया रूप और नया भाव देने का भी प्रयास किया। इसीलिए आपने अनेक प्रयोग भी किए। विविध विषयो जैसे राष्ट्रीयता, ग्राम जीवन, नीति आदि के अतिरिक्त मनोरजक और कथात्मक कविताए भी आपने लिखी है। बालमन की सहज कल्पना का एक चित्र यहा प्रस्तुत है

प्यारे प्यारे तारो चमको, नीचे चमको ऊपर चमको।
नभ पर चमको, भू पर चमको, नदी और लहरो मे चमको।
तुम लहरो लहरो मे चमको, दूर करो दुनिया के तम को।
चमको चमक लिए तुम ऐसे, हीरे जैसे मोती जैसे।
चमको ऐसे नील गगन मे, जैसे फूल खिले हो वन मे।
अपनी चमक लुटाओ हमको, प्यारे प्यारे तारो चमको।

बच्चो के मनोरजन के लिए गीत-कथाए भी आपने बहुत लिखी है। उनमे सरल-सीधी कथा होते हुए भी कोई न कोई प्रयोग या नवीन विचार अवश्य ही समाहित होता है। क्रमसवर्द्ध कथाओ म बच्चे बहुत रुचि लेते है। ऐसी कथाए भी एक जजीर की तरह होती हैं जिसम एक के बाद एक घटना निकलती और जुडती चलती है। 'एक बिलैया' कविता आपके इसी प्रयोग को सार्थक करती है

मैंने एक बिलैया पाली, आधी भूरी आधी काली।
उसकी है कुछ अजब कहानी, जिसको सुन होती हैरानी।

---

१ पराग, जनवरी १९६५, पृष्ठ ३५।

ज्यो उसने अपना मुह खोला, निकले दो सोने के गोला।
गोलो मे हो गई लडाई, जिसमे निकली जोया बाई।
जोया ने आ गाना गाया, गाना गाया नाच दिखाया।
हुआ नाच से कलुवा पैदा, कलुवा तुरत बन गया मैदा।
मैदा की बन गई जलेबी, जिसे खा गया आकर देबी।
देबी ने आ खोला मेला, जहा मिला मिट्टी का ढेला।
ढेले ने कुछ की शैतानी, आधी आयी आया पानी।
पानी ने आ नदी बहायी, नदी बहायी नाव चलायी।
चढा नाव पर मैं औ काशी हो आया दिल्ली औ झासी।
ऐसी ही है और कहानी, जिसको सुन होगी हैरानी।[1]

समाज मे नये विचार, नये आदर्श, नई मर्यादाओ की स्थापना के लिए द्विवेदी जी ने अनेक बालगीत लिखे हैं। ये गीत बच्चो के मन को भाते ही नही, बल्कि उन्हें प्रेरणा भी देते हैं

बडी जाति मे होने से ही,
बडा न कोई हो पाता।
जब तक नही बडे गुण लाता,
नही बडे गुण अपनाता।

एक अन्य गीत जो इसी भाव का उद्बोधक है

देखो नही हाथ की रेखा, पलटो मत पत्रा पोथी।
मीन मेष कुछ कर न सकेगा, ये सारी बातें थोथी।
× × ×
नही भाग्य का मुख देखो तुम, अपने बनो विधाता आप।
चलो बढो अपने पावो से, लो सारी दुनिया को नाप।

आपने बच्चो के मन मे साहस, आत्मविश्वास और प्रतिज्ञा पालन की राष्ट्रीय भावना को जागृत करने वाले अनेक बालगीतो की रचना की है। ये गीत सामूहिक भी है और एकल भी। महापुरुषो के पदचिह्नो पर चलने की प्रतिज्ञा दिलाने वाले गीत भी इसी वर्ग के अन्तर्गत लिखे गये है। प्रस्तुत बालगीत मे नन्हे बच्चो का सीना तानकर चलना, अपने झण्डे की शान मे गीत गाना और मन मे दृढ सकल्प कितने सुन्दर रूप मे अभिव्यक्त हुआ है

हम नन्हे-नन्हे बच्चे हैं, नादान उमर के कच्चे हैं।
पर अपनी धुन के सच्चे हैं।
जननी की जय-जय गाएगे, भारत की ध्वजा उडाएगे।

---

१. शिशु जून, १९२९।

अपना पथ कभी न छोड़ेंगे, अपना प्रण कभी न तोड़ेंगे।
हिम्मत से नाता जोड़ेंगे, हम हिमगिरि पर चढ़ जायेंगे।
भारत की ध्वजा उड़ाएंगे।

बच्चो को युगानुरूप बनाने तथा समसामयिक वातावरण से परिचित कराने के उद्देश्य से भी द्विवेदी जी ने अनेक बालगीत लिखे। इनमे जहा युद्ध के प्रति घृणा थी, वही भारतीय राष्ट्रीयता तथा उसकी स्वतत्रता के लिए मर मिटने की भावना और गाधी जी की अहिंसा की लडाई को स्वीकार करके, स्वदेश के प्रति अपना सब कुछ समर्पित करने का सन्देश था। 'खद्दर' के लिए आपने लिखा था

खद्दर सबमे आला कपडा,
आला बडा निराला कपडा।
उजला कपडा, काला कपडा,
सस्ता सुघर सभाना कपडा।
सुन्दरता का जाला कपडा,
शाला और दुशाला कपडा।
× × ×
भारत का रखवाला कपडा,
खद्दर सबमे आला कपडा।
है दुश्मन पर पाला कपडा,
अपने घर पर ताला कपडा।
गाधी का गुणवाला कपडा,
खद्दर सबमे आला कपडा।[1]

बच्चो मे नैतिक भावो का समावेश करना सबसे कठिन काम है। बालसाहित्य रचना मे कभी कभी यह प्रयास उसमे शुष्कता उत्पन्न कर देता है। लेकिन द्विवेदी जी ने अपने गीतो म, जहा कही भी आवश्यकता हुई है, इस भाव को बडी कुशलता से समाविष्ट किया है। प्रस्तुत गीत इसी प्रकार है

खेलोगे तुम अगर फूल से तो सुगन्ध फैलाओगे।
खेलोगे तुम अगर धूल से तो गन्दे बन जाओगे।
× × ×
जैसे भी रग रगना चाहो, घोलो ले वैसा ही रग,
अगर बडे तुम बनना चाहो, तो तुम रहो बडा के सग।[2]

इस विवेचन के अन्तर्गत प्रस्तुत कविताए, द्विवेदी जी के बालगीत साहित्य की

---

१ बालसखा, अक्टबर १९४०।
२. बालविनोद, जून १९३७, पृष्ठ ३०८।

मूल भावना को स्पष्ट करने वाली ही हैं। इन्हे केवल उदाहरण स्वरूप ही मानना चाहिए, क्योंकि द्विवेदी जी ने बच्चो के लिए अपार बालसाहित्य लिखा है। उसमें से कुछ ही अभी तक 'शिशु भारती,' 'बालभारती,' 'दूध बतासा,' 'बासुरी,' 'बिगुल,' 'बच्चों के बापू,' 'हँसो हँसाओ' आदि बालोपयोगी सग्रहो के रूप मे प्रकाशित हुए हैं। अनेक बालगीत 'बालसखा,' 'शिशु,' 'कुमार,' 'बालविनोद' आदि मासिक पत्रिकाओ मे नियमित रूप से प्रकाशित हुए हैं और आज भी वे उसी गति से 'बालसखा' (जिसके वह सपादक भी है), 'नदन,' 'पराग' आदि मे लिख रहे है। द्विवेदी जी ने इस प्रकार बालसाहित्य को न केवल समृद्धिशाली बनाया बल्कि उसका दिशा निर्देशन भी किया तथा उसमे कई नई विचारधाराओं को भी प्रश्रय दिया। यही कारण है कि आज वह हिन्दी बालसाहित्यकारो मे शीर्ष स्थान पर है और उसके प्रवर्त्तको मे भी सर्वश्रेष्ठ हैं।

५. भगवतीप्रसाद वाजपेयी—वाजपेयी जी के सम्बन्ध मे भी अमृतलाल नागर ने लिखा है, "आवश्यकतावश घर की गाय, भैंस, बकरिया चरायी, खलिहानो मे दाय और उडनई का काम किया, पैसो की थैली लादकर गाव की साहूकारी की, उसके बाद गाव के प्राइमरी स्कूल की अध्यापकी की, शहर की लाइब्रेरी मे पन्द्रह रुपये मासिक पर लाइब्रेरियन रहे, किताबो का गट्ठर कन्धे पर लादकर बेचा, बीबी के गहने बेचकर दूकानदार बने, चोरी हो गयी, बैंक की खजाचीगीरी के अप्रेन्टिस हुए, कम्पाउण्डर बने, प्रूफ रीडर बने, सहकारी सम्पादक हुए, फिर सम्पादक बने···!" वाजपेयीजी ने कहानीकार के रूप में हिन्दी साहित्य जगत मे काफी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। लेकिन बालसाहित्य लेखन की ओर भी आपका पूरा झुकाव था। आपकी अनेक बालोपयोगी कहानिया 'बालसखा,' 'खिलौना', 'बालविनोद' आदि मे प्रकाशित होती रही हैं। आपकी बाल-कहानियों की लगभग दस पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी है।

वाजपेयी जी की बाल-कहानियो का मूल उद्देश्य बच्चो को नैतिक आचरण सिखाना, उन्हे सद्वृत्ति की शिक्षा देना और अनेक सत्य-सिद्धान्तो का अनुसरण करने के लिए बताना था। इसलिए कई बार जहां वह बच्चो को स्वावलम्बी, साहसी व कर्मठ बनाने मे सफल हुए है, वहीं नैतिक शिक्षा देने के फेर मे कहानी को प्रभावहीन तथा बालपन के अनुकूल बनाने मे असफल भी हुए है।

आपकी शुष्क नैतिक उपदेश वाली कहानी का एक उद्धरण यहा प्रस्तुत है :

मातादीन ने अपने पिता से पूछा—यह आदमी यहा इस तरह क्यो पड़ा हुआ है ? उसके पिता ने उत्तर दिया—यह आदमी नशेबाज है। इसने शराब पी है। शराब पीने वाले आदमी को होश नही रहता। इस समय यह होश मे नही है। शराब पीना बहुत बुरा है।

मातादीन—तो, यह आदमी ऐसा बुरा नशा क्यो करता है ?

पिता—शराब पीने की उसकी आदत पड़ गई है। यह ऐसा बुरा नशा है कि जब

एक बार इसकी आदत पड जाती है तब फिर छुटाए नही छूटती।[1]

इस तरह की कहानियों के अतिरिक्त वाजपेयी जी ने मनोरजक तथा हास्य-प्रधान कहानिया भी बच्चों के लिए बहुत लिखी हैं। इनमे भी कही न कही उपदेशात्मकता आ तो गई है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से।[2] ऐसा करने का मुख्य कारण यही था कि उस समय बच्चो को नैतिक एव सदाचार के उपदेश देने की परम्परा अपने बहुत कुछ अशों मे चल रही थी और बालकहानियों के परिवेश मे विशेष अन्तर नहीं आया था। इसलिए बालकहानियो के विषय प्राय भारतीय इतिहास, धर्म या जीवन से ही चुने जाते थे—जिनसे बच्चों को कुछ सीख मिले। वाजपेयी जी ने इन विषयों को बालकहानियों के रूप मे प्रस्तुत कर बालसाहित्य के विकास मे जो योग दिया, वह निश्चय ही उल्लेखनीय है।

६. स्वर्णसहोदर—'स्वर्णसहोदर' जी का पूरा नाम सभामोहन अवधिया है। आपने जीवन भर बाल-साहित्य ही लिखा है। 'बालसखा,' 'बालविनोद,' 'खिलौना,' 'शिशु,' 'वानर' आदि मे आपकी अनेक रचनाए प्रकाशित हुई है। आप कविताओ मे 'स्वर्णसहोदर' और कहानियो मे सभामोहन अवधिया नाम लिखते थे। लेकिन बालसाहित्य जगत मे 'स्वर्णसहोदर' के बालगीत ही अधिक लोकप्रिय हुए। इन गीतो मे लयात्मकता, सरलता और बाल अनुभूति की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है—

चल रही पवन हिल रही डाल,
हिलते पौधे करते कमाल।
× × ×
चल रही पवन क्या झूम झूम !
सन सनन, झनन झन रूम झूम ॥
बह रही मजे की मधुर महक,
कागज तितली मा रहा बहक ॥[3]

नन्हे बच्चो में, छोटे होने की भावना से आए हीन विचार को हटाकर उन्हे कर्मठ और साहसी बनाने वाला निम्न गीत बहुत प्रेरक बन पडा है·

चिन्ता कुछ भी नही अगर हैं नन्हे-नन्हे हाथ तुम्हारे,
इन नन्हे हाथो से ही तुम करो काम कुछ न्यारे-न्यारे।
× × ×

---

१. नशेबाज आदमी—लेखक—भगवतीप्रसाद वाजपेयी, 'खिलौना,' अप्रैल १९३८, पृष्ठ १०२।
२. 'सारस की समझदारी', 'अच्छा लडका,' 'वीर दुर्गादास' आदि कहानियां—'खिलौना' तथा 'बालसखा' मे प्रकाशित।
३. खिलौना, सितम्बर, १९३८, पृष्ठ २५४।

हारें चीटी, झेंप बूदें, शर्मिन्दा हों नभ के तारे,
हेटी हो हीरे मोती की, तुम सबसे बढ़ जाओ प्यारे ।[1]

'स्वर्णसहोदर' जी के बालगीत मनोरंजक और बच्चों के मनोनुकूल हैं। वह उनकी बोली, भाषा और ज्ञान-सीमा का पूरा ध्यान रखकर ही गीत लिखते है। आपके बालगीतों मे बाल प्रवृत्तियों का भी सुन्दर समावेश होता है। प्रस्तुत गीत में बच्चों के नटखट स्वभाव को कितनी कुशलता से अभिव्यक्त किया गया है—

नटखट हम, हा नटखट हम,
करने निकले खटपट हम ।
आ गये लडके था गये हम,
बन्दर देख लुभा गये हम ।
बन्दर को खिजलावें हम,
बन्दर दौड़ा, भागे हम ।
नटखट हम हा नटखट हम ।
बच गए लडके बच गये हम।[2]

बच्चों मे वीरता और साहस का सचार करने के उद्देश्य से आपने कई पुस्तकें लिखी हैं—'वीर बालक बादल' और 'वीर हकीकतराय,' 'वीर शतमन्यु,' 'तलवार,' 'हम्मीर राव' आदि। इनमे ऐतिहासिक कथानकों के सहारे बच्चों की वीरता और उत्साह का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत हुआ है। ये पुस्तकें न केवल रोमाचक हैं बल्कि प्रेरक भी हैं। एक प्रस्तुत है

नृप हमीरसिंह के सुपुत्र ने किया उस समय था जो काम,
उसके सबब आज भी सादर लेते है सब उसका नाम।
लोग उसे कहते हैं 'बादल', वह था बडा साहसी वीर,
राजपूत बच्चा था, उसका स्वस्थ और था सुदृढ शरीर।
× × ×
बढता था जिस ओर वीर वह चमचम चमकाता तलवार,
उसी ओर यवनो मे उस क्षण मच जाता था हाहाकार।
भेड बकरियो के समान बस वीर मुसलमानो को काट,
बालवीर बादल ने धरती दी इकदम लाशा से पाट।[3]

'स्वर्णसहोदर' जी की 'वीर बालक बादल,' 'वीर हकीकतराय' और 'वीर शतमन्यु' को बाल प्रबन्ध-काव्य के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है। इन

१ बालविनोद, जून १९३६, पृष्ठ ५०।
२ 'नटखट के गीत,' पृष्ठ १।
३ 'वीर बालक बादल,' पृष्ठ १३, २५।

सभी की कथाए बहुत रोचक, कौतूहलमयी और प्रेरक हैं।

आपने छोटे बच्चों के लिए भी माता रहित गीत लिखे है। ये गीत 'गिनती के गीत' और 'नगन मगन' पुस्तको में सग्रहीत है। बच्चो को आरम्भ मे पढाने के लिए एक सरल गीत—

पढ पढ पढ
चट चट पढ
झट झट पढ
पट पट पढ
खट खट पढ
पढ पढ पढ।[1]

इसी तरह बच्चो को गिनती सिखाने के लिए बहुत सरल गीत लिखे हैं—

एक खिलाडी तगडा है,
एक पैर से लगडा है।
बूढा एक पुराना है,
एक आख से काना है।
एक बिलैया ऊची है,
एक कान से बूची है।[2]

इस प्रकार 'स्वर्णसहोदर' जी ने बडे-छोटे बच्चो के लिए प्रचुर मात्रा मे रचनाए लिखी और बालसाहित्य के भडार को भरा है।

७ मूलचन्द श्रीवास्तव—सन् '३६ से '३६ तक आपने प्रचुर मात्रा मे बालसाहित्य लिखा है। 'बालविनोद,' 'शिशु,' 'खिलौना,' आदि अनेक तत्कालीन बालमासिको मे आपकी रचनाए प्रकाशित होती थी। आपने बच्चो के लिए गद्य-पद्य दोनो ही लिखे। कविताओ मे जहा बच्चो के मन की बातें, उन्ही की भाषा मे सफलतापूर्वक कही, वही कहानियो द्वारा न केवल मनोरजन हुआ वल्कि वे बच्चो के लिए प्रेरक भी सिद्ध हुई। बच्चों की प्रिय वस्तुओं रेल, कुत्ता, कोयल, मोटर आदि पर आपने अनेक कविताए लिखी

आओ आओ कोयल रानी,
स्वागत है तेरा गुणखानी।
कूदो खुश हो डाली डाली,
बोलो बोली तुम मतवाली।

१. 'नगन मगन,' पृष्ठ १।
२ 'गिनती के गीत,' पृष्ठ १।

कुहू कुहू की तान निराली,
सुन सुन बच्चे देवें ताली।
× × ×
गांधी का लूगा मैं बाना,
फैला दू चरखा का ताना।
सूत बुनें फिर हम तुम खादी,
मिले आप ही यों आजादी।[1]

बच्चों में नैतिक भावों का संचार करने के उद्देश्य से भी श्रीवास्त्री जी ने अनेक कविताए लिखी थीं। इन गीतों की मूल भावना सत्य को ग्रहण करना, झूठ को त्यागना, साहस और धैर्य से अग्रसर होना ही थी

भाई आगे बढे चलो,
गुण से तन को मढे चलो।
सद्गुण जोडो,
अवगुण छोडो।
जीवन अपना गढे चलो।
झूठ त्यागकर,
सत्य ग्रहण कर।
पाठ नया तुम पढे चलो।

राष्ट्रीय भावना जागृत करने वाले गीत भी आपने प्रचुर मात्रा मे लिखे। इनमे न केवल मां भारती की वन्दना होती थी बल्कि उसे स्वतन्त्र कराने तथा उसके लिए बलिदान हो जाने का भी सकल्प रहता था—

यह भारतवर्ष हमारा,
है जग का एक सितारा।
इसने ही जन्म दिया है।
गोदी पर हमें लिया है।
पालन कर बडा किया है।।
है सुख का साज सवारा,
यह भारतवर्ष हमारा।[2]

श्रीवास्त्री जी ने बच्चों के लिए अनेक कहानिया भी लिखी। इनमे विशेष उल्लेखनीय हैं—'भक्तराज प्रह्लाद,'[3] 'बाप का बदला,'[4] 'चालाक कल्लू'[5] आदि।

---

१ बालविनोद, अप्रैल १९३७, पृष्ठ २२३-२२४।
२. बालविनोद, जून १९३७, पृष्ठ १४।
३ खिलौना, अगस्त १९३८, पृष्ठ २२२-२२३।
४. बालविनोद, अप्रैल १९३७, पृष्ठ २०२।
५. वही, पृष्ठ २२८।

ये सभी कहानिया वस्तुत शिक्षात्मक ही हैं।

८. रामेश्वर गुरु 'कुमारहृदय'—'कुमारहृदय' जी, श्री कामता प्रसाद गुरु ही के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आपको बचपन से बालसाहित्य रचना मे रुचि थी। आरभ मे आपकी अनेक रचनाए 'शिशु', तथा 'बालसखा' मे छपी। फिर जैसे-जैसे बडे हुए, आपकी रचनाओ मे काल-प्रवृत्ति तथा रुचि को ध्यान मे रखते हुए, एक विशिष्टता आ गई। आपकी रचनाए कोरी आदर्शवादी विचारधारा का प्रचार करने वाली नही थीं। उनमे बालमन की सरल कल्पना और जिज्ञासा की भी अभिव्यक्ति होती थी—

मैंने सुना दयालु आप हैं हे मेरे भगवान,
मेरी माता नही कि जो मुझको गोदी मे बैठाले।
पिता नही जो कहदे 'जा बेटी रोटी खाले।'
मेरे भाई नही जो करे मुझे जी भरकर प्यार।
छोटी बहिन न छोटा भाई जिसे गोद मे लू पुचकार
यही सोच क्यो दया न करते शिशु अनाथ पहचान।
मैंने सुना दयालु आप हैं हे मेरे भगवान ॥[1]

इस गीत में एक अनाथ बच्चे की प्रार्थना बाल-मनोवृत्ति के अनुकूल है। इस मे आध्यात्मिक विनय नही है, भक्त की पुकार नही है—बल्कि एक ऐसे बालक का अभाव है, जो उसे मन ही मन दुखी बनाता है। परिवार के सारे सबधो के प्रति एक अनाथ बालक किस तरह कल्पनाशील और लालायित है, यह इस गीत मे बहुत सुन्दर ढग से प्रकट हुआ है। 'कुमारहृदय' जी की यही विशेषता है। आप बालमन की गुत्थियो तथा समस्याओ को समझकर न केवल उन्हे उभारने मे ही कुशल है बल्कि उनके लिए समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत गीत मे बच्चो की रुचि की ही बातें कही गई हैं, किन्तु उन्हे दूसरो के माध्यम से प्रश्न बनाकर पूछा गया है। बालक अपने कल्पना जगत मे उसी तरह घूमता है और निर्णय प्राप्त करने का प्रयत्न करता है:

(१)

कौन तुम्हे अच्छा लगता है ?
नभ मे उडने वाला तोता,
टें टें करने वाला तोता।
पेडो पर जो सो जाता है,
जो चाहे सो फल खाता है।
उड उडकर जो डाली डाली,
करता बच्चो की रखवाली।

---

१. कुमार, अगस्त १९३२, पृष्ठ २०।

वन मे उडे बाग में आवे,
कुतर-कुतर कच्चे फल खावे।
पिये नदी का ठडा पानी,
करे जगलो मे मनमानी।

(२)

दूध भात जो नित खाता है,
पिंजडे मे जो सो जाता है।
राम-राम कहता है दिन भर,
पिंजडे मे रहता जीवन भर।
जो न कभी उड पाया वन मे
जो न उडेगा अब आगन मे।
जिसे न अब कुछ भी करना है,
पिंजडे मे जीना मरना है।
कौन तुम्हे अच्छा लगता है,
बदी तोता या आज़ाद ?[1]

इस गीत मे जहा मुक्त होकर प्रकृति के आगन मे विचरण करने की भावना जागती है, वही बदी और आज़ाद जीवन की समस्या को बडी कुशलता से प्रस्तुत किया है। बालमन को प्रभावित करने का इससे अच्छा माध्यम और क्या हो सकता है ?

हिन्दी बालसाहित्य मे अभिनय गीतो की बहुत कमी है। 'कुमारहृदय' जी ने इस कमी को काफी हद तक पूरा करने का प्रयत्न किया है। आपके अभिनय गीतो का एक सकलन भी प्रकाशित हुआ है। हिन्दी मे इस प्रकार के अभिनय गीत लोक-बोलियो मे तो मिलते हैं, किन्तु खडी बोली-साहित्य मे कुछ ही कवियो ने प्रयोग किए हैं और उनमे 'कुमारहृदय' जी सर्वप्रथम हैं। आधुनिक युग मे सोहनलाल द्विवेदी, निरकार देव सेवक, योगेन्द्र कुमार लल्ला, आदि ने भी अभिनय गीत लिखे हैं किन्तु 'कुमारहृदय' जी के गीतों मे अलग ही विशेषता मिलती है। आपके गीतों मे भाव, छन्द तथा सगीत के अतिरिक्त, अभिनेयता भी मिलती है, जिसके बारे मे सकेत गीत के साथ ही दिए जाते हैं—

(१) राजा (पहले कैदी से)—
क्यो तुम पडे कैद मे आकर ?
बतलाओ कारण समझाकर।
पहला कैदी (हाथ जोडकर)—
लोगों ने दी झूठ गवाही,
लाये मुझको पकड सिपाही।

---

१. खिलौना, नवम्बर १९३८, पृष्ठ ३१७।

दूसरा कैदी (गिडगिडाकर पैरो पर गिरते हुए)—
वह हाकिम था पूरा फंदी,
जिसने मुझे बनाया बंदी।[१]

(२) ब्राह्मण—(त्यौरिया बदलकर)—
कर न नीच बातें बढ-चढ कर,
ब्राह्मण का है क्रोध महान।

मेहतर (सास लेकर)—
हा! क्या मुझ से भी बढकर है,
पडत जी वह काला श्वान?

(बहुत पीछे हटकर)
लो हट गया बहुत पीछे मैं।

ब्राह्मण—(घूरता हुआ जाता है)
हो पामर तेरा अवसान।[२]

'कुमारहृदय' जी बालसाहित्य का अस्तित्व निर्माण और उसका प्रचार-प्रसार करने मे अग्रणी रहे हैं। आपने समय-समय पर इस क्षेत्र के अनेक साहित्यकारो को प्रोत्साहन दिया, साथ ही बालसाहित्य के विकास के लिए चलने वाली योजनाओं में भी सक्रिय योगदान देते रहे है।

६. डा० राजेश्वर गुरु—आप श्री कामता प्रसाद गुरु के पुत्र और 'कुमारहृदय' जी के छोटे भाई हैं। बालसाहित्य रचना-शिल्प आपको विरासत मे मिला। यही कारण था कि जब आप दस वर्ष के थे, तभी आपने एक अत्यन्त भावपूर्ण एव विचारपूर्ण कविता लिखी थी जो बालसखा मे प्रकाशित हुई थी—

कभी मत रखो किसी से द्वेष,
किसी को पहुचाओ मत क्लेश।
कभी मत करो फूट प्यारे,
फूट से मिटे राज्य सारे।
क्रोध को कभी न अपनाना,
क्रोध के पास न तुम जाना।
यही है सदाचार का नेम,
बालको रखो सभी से प्रेम।[३]

सोलह साल की अवस्था तक पहुचकर आप नियमित रूप से बालसाहित्य सृजन करने लगे थे और तत्कालीन अनेक मासिक पत्रों—'बालसखा,' 'बाल विनोद,'

---

१. अभिनय गीत, लोक चेतना प्रकाशन, जबलपुर, पृष्ठ २७।
२. वही, पृष्ठ १६।
३. बालसखा, जून १६२६।

खिलौना,' 'वानर' आदि मे आपकी रचनाए प्रकाशित होने लगी थी। सन् १९२९ मे प्रकाशित आपकी उपर्युक्त रचना, सभवत पहली प्रकाशित रचना है। इसके दस वर्ष बाद के कवि मे विचारो तथा अनुभूतियो की जो परिपक्वता आई, उसमे बालमन को समझने की जो भावना जागृत हुई, वह 'बालक का दुख' शीर्षक कविता मे द्रष्टव्य है—

कहा गये तुम मेरे भाई याद तुम्हारी आती है।
बिना तुम्हारे नही मुझे अब कोई चीज सुहाती है।
नही सुनोगे क्या तुम भाई मेरी दुख भरी आवाज,
बिना तुम्हारे रहा न जाता, मेरे सम्मुख आओ आज।
याद हमारी भी क्या भाई, तुम्हे वहा पर आती है,
और हमारी याद तुम्हारे मन मे कुछ दुलराती है।
यदि ऐसा है तो ह भाई, अब तुम आओ मेरे पास,
राह तुम्हारी खडा देखता, मुझको अधिक न करो निराश।[1]

दूर बैठे हुए भाई के लिए बालक के मन मे उठने वाली याद की कितनी सरल अभिव्यक्ति है। उसके मन मे यह भी उत्सुकता है कि पता नही मेरे भाई को भी मेरी याद आती है या नही ? बहुत आशाए लिए वह प्रतीक्षा करता है कि उसका भाई पास आ जाए। यदि दूसरे रूप मे देखें तो यह कविता एक पत्र है जो दूर गये छोटे भाई द्वारा लिखा गया है। अक्सर बच्चो को गाव छोड कर शहर के स्कूल मे पढने जाना पडता है या किन्ही अन्य विवशताओ के कारण अपना घर छोडकर दूर के किसी सम्बन्धी के पास रहकर पढना पडता है। तब बच्चो के मन में अपनी मा, बहिन, भाई आदि के लिए ऐसी ही बातें आती है। केशवप्रसाद जी पाठक का 'माता को पत्र' गीत इस गीत की तुलना मे रखा जा सकता है। गुरु जी की निम्न पक्तियो मे—

नही सुनोगे क्या तुम भाई मेरी दुख भरी आवाज,
बिना तुम्हारे रहा न जाता, मेरे सम्मुख आओ आज।

और केशवप्रसाद पाठक की इन पक्तियो मे कितना विचार-साम्य है—

बिना तुम्हारे यहा न कोई बात सुहाती,
क्या जाने क्यो तेरी सुधि है मुझको आती।

दोनो कवियो ने बाल अनुभूतियो को बहुत निकट स छुआ है। गुरु जी की अभिव्यक्ति मे जहा सरलता और भावुकता है वही पाठक जी का बालपन अपना दुख अन्दर छिपाकर ऊपर से मुस्कराता है।

---

१ बालसखा, दिसम्बर १९३९।

गुरुजी ने न केवल भारतीय भाषाओं का ही बल्कि अंग्रेजी बालसाहित्य का भी विस्तृत अध्ययन किया है तथा उसकी मूल भावना को समझने का प्रयास किया है। आपकी दृष्टि से हिन्दी मे शिशु गीतो का बहुत अभाव है। यह एक निर्विवाद सत्य भी है। इधर पराग मे कुछ अच्छे शिशु गीत प्रकाशित होने लगे हैं, किन्तु वे शिशु गीतो की कमी को न तो पूरा कर सकते हैं और न अंग्रेजी के शिशु गीतो की तुलना मे ही श्रेष्ठ ठहरते है। गुरुजी का विचार है कि शिशु गीत के भाव, विचार, पात्र, वस्तुए आदि ऐसी हो जिनका अस्तित्व बच्चों की ज्ञानसीमा के भीतर ही हो। आपने इस तरह के स्वय कई प्रयोग किए हैं। एक उदाहरण यहा प्रस्तुत है—

बिल्ली मेरी प्यारी मौसी, कौआ मेरा मामा।
बिल्ली पहने फ्राक गरारा, कौआ जी पंजामा।
काव-काव कौआजी बोलें, म्याऊ बोले बिल्ली,
कौआ जी कलकत्ता जायें, बिल्ली जाए दिल्ली।
कौआ जी रसगुल्ला खायें, बिल्ली खाए हलुआ,
गोरी गोरी बिल्ली मौसी, कौआ मामा कलुआ।

इस गीत मे फ्राक और गरारा पहने बिल्ली तथा पंजामा पहने कौआ मामा का रूप बच्चो को गुदगुदाने के लिए अतिसुन्दर है। इस रूप परिचय के बाद दोनों की बोलिया दी गई हैं। इन्हे बच्चे नकल करके खूब बोलते हैं। कौआ का कलकत्ता और बिल्ली का दिल्ली जाना गीत को लयात्मकता प्रदान करता है। रसगुल्ला और हलुआ दोनों ही बच्चों की प्रिय मिठाइया हैं तथा बच्चे इनका उच्चारण भी सरलता से कर लेते हैं। इस प्रकार गोरी बिल्ली और काले कौआ मामा के माध्यम से बच्चो के मन की बात बडी सूक्ष्मता से प्रकट हुई है।

गुरु जी की बाल कविताओं का एक सग्रह 'मुस्कान' शीर्षक से सन् १९३४ मे प्रकाशित हुआ था। इन दिनों आप बच्चो के लिए सुन्दर चित्रो से सुसज्जित शिशु गीतो की एक पुस्तक प्रकाशित करने मे सलग्न हैं।

१० प० केशवप्रसाद पाठक—प० केशवप्रसाद पाठक के सम्बन्ध मे ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान ने 'त्रिधारा' की भूमिका मे लिखा था—"आपकी कविता मे चिन्तनशीलता है। वे अनुभव करते हैं, फिर उस अनुभूति की रूपरेखा की जाच करते हैं और अन्त मे उसे काव्य परिधान पहिनाकर सौन्दर्यमयी बना देते हैं। उनके शब्द मजे हुए हैं, भाव व्यवस्थित है और विचार शृंखला क्रमबद्ध है, मानो कुशल जौहरी ने चुन-चुनकर मोतियों का हार बना दिया है, जिसका प्रत्येक दाना अपने ठीक स्थान पर जमा है।"

बच्चो के लिए भी पाठक जी ने इसी लगन और अनुराग से लिखा। आपकी अनेक रचनाए यो तो पाठ्य पुस्तको के ही रूप मे उपलब्ध हैं किन्तु उनमे बाल सुलभ प्रवृत्ति का सुन्दर दिग्दर्शन होता है। आपकी सबसे प्रसिद्ध कविता 'माता को पत्र' है। इसमे एक बालक अपनी मा को पत्र लिखता है। मा अपने मायके

गई हुई है। सभवत बालक की पढाई के कारण उसे अपने साथ नही ले गई। इधर बालक व्याकुल होता है। मा के लिए वादे और आश्वासन हिलने लगते है। बालक को उठते बैठते हर क्षण मा की याद आती है। कोई कष्ट न होते हुए भी मा का अभाव उसे दुखी बनाता है। इसी अनुभूति का बहुत ही मार्मिक और सुन्दर चित्रण पाठक जी ने किया है

पूज्यनीय माताजी के चरणो मे बहुतेरा,
करता है प्रणाम प्यारा यह बेटा तेरा।
बाबूजी हम लोग सभी है कुशल यहा पर,
आशा है अच्छे होगे सब लोग वहा पर।
नानी के घर गई अभी मा तुम परसो से,
पर ऐसा लगता न मिली होओ बरसो से।
बिना तुम्हारे यहा न कोई बात सुहाती,
क्या जाने क्यो तेरी सुधि है मुझको आती।
जब कपड़े उतार भोजन करने जाता हू,
और वहा पर नही तुझे बैठा पाता हू।
क्या जाने क्यो नही मुझे भोजन भाता है,
खाता तो हू पर न स्वाद उसमे आता है।
यह न ,समझना मुझे कष्ट देता है कोई,
या मेरी सुधि नही यहा लेता है कोई।
पर, मा मैं तो नही भूल पाता हू तुमको,
क्या जाने क्यो तेरी सुधि आती है मुझको।
मा तो तू कहती थी मैं परसो आऊगी,
तेरे लिए न जाने मैं क्या क्या लाऊगी।
अच्छा मा, मैं कहता हू तू कुछ मत लाना,
पर पहली गाडी से अब वापस आ जाना।
नानी रोके अगर, उसे यह पत्र दिखाना,
या अपने ही साथ उसे भी लेती आना।
तेरा स्वागत करने को मैं खडा रहूगा,
बाट देखता यही द्वार पर अडा रहूगा।
एक बार फिर याद दिलाता हू मा तुमको,
आ जाना तू अगर प्यार करती है मुझको।

११ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—इडियन प्रेस मे काम करने के दौरान बख्शी जी ने प्रचुर मात्रा मे बालसाहित्य की रचना की। बख्शी जी अध्यापक भी रहे हैं और इसलिए आप बच्चों की प्रवृत्तियो तथा बातो से खूब परिचित होने के कारण बहुत उपयोगी बालसाहित्य लिखने मे सफल हुए। आपकी कविताओ मे

बच्चो की सरल कल्पना का सुन्दर ढग से समावेश मिलता है। बच्चो के लिए छोटी-छोटी पद्य-कथाए आपने बहुत लिखी हैं। एक पद्य-कथा यहा प्रस्तुत है—

बुढिया चला रही थी चक्की, पूरे साठ वर्ष की पक्की।
दाने मे थी रखी मिठाई, उस पर उड कर मक्खी आई।
बुढिया बास उठा कर दौडी, बिल्ली खाने लगी पकौडी।
झपटी बुढिया घर के अन्दर, कुत्ता भागा रोटी लेकर।
बुढिया निकली तब फिर बाहर, बकरा घुसा तुरत ही भीतर।
बुढिया चली गिर गया मटका, तब तक वह बकरा भी सटका।
बुढिया बैठ गई तब थक कर, सौंप दिया बिल्ली को ही घर।[1]

बच्चो के लिए आपकी कई पुस्तकें इडियन प्रेस, प्रयाग तथा मित्रबन्धु प्रकाशन, जबलपुर से प्रकाशित हुई हैं। इनमे कहानिया तथा कविताए दोनो ही है। आपके अनेक ललित निबन्ध तो आज भी पाठ्य-पुस्तको के माध्यम से बच्चो का ज्ञान-वर्धन करते हैं।

१२. रामसिंहासन सहाय 'मधुर'—'मधुर' जी ने सन् १६२१ से लिखना आरभ किया था जबकि वे राष्ट्रीय आन्दोलन मे प्रविष्ट हुए थे। आपके अनेक राष्ट्रीय तथा उत्सव गीत तभी से बहुत प्रचलित हो गए थे और अनेक स्कूलो तथा सभाओ मे गाए जाते थे। आपके बालगीतो मे ध्वन्यात्मकता विशेष उल्लेखनीय होती है। ये गीत बच्चे बहुत सरलता से कठाग्र कर लेते हैं। ऐसे गीतो को सामूहिक रूप से गाने मे भी सरलता होती है.

उडता अबीर, उडता गुलाल,
बज रहे ढोल, बज रहा झाल।
चुनमुन का चेहरा नील-नील, मोहन का मुखडा लाल लाल।
मोहन मत झोली से निकाल, सोहन अपना चेहरा सभाल।
सगी साथी सब आज सग,
तक धीन धीन बजता मृदग।
घर-घर मे छाई है उमग, गा रहा देश भर विजय ताल,
भारत माता के नौनिहाल, ससार हथेली पर उछाल।
उडता अबीर उडता गुलाल,
बज रहे ढोल बज रहा झाल।

१३. आचार्य रामलोचन शरण—रामलोचन शरण जी ने सन् १६१६ मे 'पुस्तक भडार' सस्था की स्थापना लहरियासराय, पटना मे की थी। उन दिनो आप गया जिला स्कूल मे हिन्दी के अध्यापक थे। आपने तभी से बच्चो के लिए

---

१ बालसखा, नवम्बर १६३२।

अनेक पुस्तकें लिखने और प्रकाशित करने का काम आरंभ कर दिया था। बालसाहित्य में आपकी गहरी रुचि होने के कारण ही सन् १९२६ में उन्होंने 'बालक' का प्रकाशन आरम्भ किया। 'बालक' ने बालसाहित्य की समृद्धि में ऐतिहासिक महत्त्व का काम किया। रामलोचन जी काफी दिनों तक स्वयं ही इसका सम्पादन करते रहे और बच्चों के लिए रोचक, मनोरंजक और ज्ञानवर्धक सामग्री का संयोजन करते रहे। बच्चों के लिए बाद में उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। बालसाहित्य के प्रति की गई उनकी सेवाओं के लिए सन् १९४२ में उन्हें एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया था।

१४ प० रामदहिन मिश्र—मिश्रजी ने सन् १९१३ में, पटना में अपनी प्रकाशन संस्था 'ग्रन्थमाला कार्यालय' की स्थापना की थी। इस संस्था से बच्चों के लिए अनेक पाठ्य पुस्तकें तथा अन्य मनोरंजक साहित्य प्रकाशित हुआ। मिश्र जी की ही प्रेरणा से सन् १९३७ में बाल मासिक 'किशोर' का प्रकाशन आरम्भ हुआ जो आज तक चल रहा है। मिश्र जी ने बच्चों के लिए कहानियों की कई पुस्तकें लिखीं। उनकी 'महाभारत सुनीति-कथा' तथा 'साहस के पुतले' विशेष उल्लेखनीय हैं।

१५ रमापति शुक्ल—शुक्ल जी बाल-मनोविज्ञान के अच्छे ज्ञाता हैं। बच्चों के लिए सरल एवं गेय कविताएं लिखने में वह सिद्धहस्त हैं। आपकी बालोपयोगी कविताओं के चार संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनके नाम है—'अंगूरों का गुच्छा', 'हुआ सवेरा', 'शैशव' और 'राष्ट्र के बापू'। आपकी कविताओं में बालकल्पना की सुन्दर अभिव्यक्ति होती है। कोयल को देखकर बच्चों के मन की बातें कितने सहज ढंग से प्रकट हुई हैं :

कोयल कहो पेड़ पर बैठी, कू कू कर क्या गाती हो ?
अपनी मधुर कूक से मुझको बारम्बार लुभाती हो।
× × ×
बार-बार आ पेड़ तले मैं हो निराश फिर जाता हूं,
कोयल यत्न बहुत करता हूं, देख न तुझको पाता हूं।

शुक्ल जी ने छोटे बच्चों के लिए भी बहुत सरल और रोचक गीत लिखे हैं। इनके विषय भी कुत्ता, बिल्ली, चूहा, तोता आदि हैं। 'कुत्ते का पिल्ला' कविता की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :

यह कुत्ते का पिल्ला अम्मा,
लगता कैसा प्यारा है।
कितना चिकना तन है इसका,
कैसा सुघर सवारा है।
× × ×

मा गद्दे पर इसे सुलाना,
मैं नीचे सो जाऊगा।
इसको अपना गरम कोट मैं,
सरदी मे पहनाऊगा।

शुक्ल जी ने अग्रेजी तथा बगला के बालगीतो के अनुवाद भी किए हैं। आप बालमनोविज्ञान के विशेषज्ञ हैं और इसलिए आपका बालसाहित्य मनोविज्ञान से पुष्ट होता है।

१६ डा० पूरनचन्द श्रीवास्तव—श्रीवास्तव जी ने बच्चो के लिए अनेक स्फुट कविताए तथा ललित निबन्ध लिखे हैं। आपकी जबलपुर से प्रकाशित 'युगारभ' तथा 'प्रहरी' पत्रो के पृष्ठो मे तथा 'बालसखा' मे आपकी अनेक उपयोगी तथा रोचक कविताए तथा कहानिया प्रकाशित होती रही हैं। आपने 'आत्मकथा' शैली मे एक नया प्रयोग किया और फलस्वरूप 'वर्षा मेघ', 'तुलसी', 'भमरहा पीपल', 'सातवा मील' आदि रचनाए प्रकाशित हुईं। केन्द्र मे किसी पदार्थ को लेकर आसपास के वातावरण के चित्रण का कौशल इन कृतियो मे विशेष दर्शनीय है। विषय-वैविध्य के बीच एकसूत्रता दूसरा प्रमुख गुण है जो 'आत्मकथात्मक' शैली मे लिखी गई इन कहानियो मे परिलक्षित होता है। 'सातवा मील' मे आपने लिखा है

"जब यह सडक बनी थी तब से मैं यहा पर हू। कितने जाडे, कितनी गमिया, कितनी रातें और कितनी बरसातें मैंने यहा काट दी। इसका कुछ लेखा नही किया। मुद्दतें गुजरी। बात बहुत पुरानी हुई। कैमोर पहाड से मैं निकाला गया। तीन साल यो ही अनगढा-सा पडा रहा, फिर सडक मे लगा। सरमनिया लढिया ने मुझे टाकी से गढा। नम्बर ७ डाला, ऊपर बन्हवारा २ मील, कटनी ७ मील खोदा और बाद मे यहा भेज दिया गया।"

श्रीवास्तव जी ने बच्चो के लिए अनेक रोचक कविताए लिखी हैं। बन्दरो की मूर्खता से सम्बन्धित कविता बडी रोचक है—

विमल चादनी छिटक रही थी,
पूनो की थी रात।
करती हूप किलोल काकली,
वन मे बानर जात॥
लगी निरखने एक कुए मे,
धवल चन्द्र की छाया।
'गजब हुआ रे' बोले सब,
'पानी मे चन्द्र समाया'॥

कविता बहुत लम्बी है। कुए मे गिरे चन्द्र को निकालने के प्रयत्न मे बन्दर पानी मे डूब जाते हैं।

एक अन्य कविता मे आपने बच्चो के मन मे वनस्पति जगत के प्रति अनुराग जगाने तथा उसका महत्त्व बताने का प्रयास किया है

प्रकृति अनोखी है विचित्र इसको हम आज विचारें,
बहुत लोग पा गये सार इसको हम मन मे धारें।
× × ×
घास पात ही तो चौलाई कुलफा पालक भाजी,
आलू और चुकन्दर गोभी जिनमे हम नित राजी।
किन्तु मास अडे जो खाते उनको मुना बताते,
'निर्भर नही वनस्पति पर हम, घास नही हम खाते।'
हमे समझना यहा चाहिए—वे गलती करते है,
मास दिया करते है जो पशु वे पत्ते चरते है।
और समझ लें एक बात—ये सूती वस्त्र हमारे,
बनते हैं कपास से सुन्दर उजियारे झलकारे।
इसलिए समझ लें खूब आज पौधो पर हम हैं निर्भर,
और साथ ही याद रखें यह पौधे हैं निर्भर हम पर।

इस प्रकार श्रीवास्तव जी ने अनेक नए विषयो को लेकर बालसाहित्य रचना की है और बच्चो को उनसे परिचित कराने का [प्रयास किया है। इन रचनाओ मे विशेषता यही है कि कठिन और गूढ विषय भी बालोपयोगी बनाकर, बच्चो की ही भाषा शैली मे सफलतापूर्वक प्रस्तुत किए गए हैं।

१७ जहूर बख्श—जहूरबख्श जी ने बच्चो के लिए मनोरजक और शिक्षाप्रद कहानिया प्रचुर मात्रा मे लिखी हैं। इन कहानियो की मूल भावना—नैतिकता, साहस, बलिदान और सत्य का अनुसरण ही होती थी। आपकी चुस्त और मुहावरेदार भाषा मे लिखी कहानिया बच्चे खूब पसन्द करते है। आपकी एक रोचक कहानी—'कुत्ते की दुम' सक्षेप मे उदाहरणार्थ प्रस्तुत है .

"पुराने समय की बात है। किसी गाव मे फूस की एक झोपडी थी। जिसमे एक लकडहारा रहता था। वह अव्वल नम्बर का सुस्त और आलसी था। वह सोचता—'यदि मुझे एक भूत मिल जाता तो मैं उसी से सारे काम लेता, और स्वय चैन की बशी बजाता।'

"एक दिन वह एक जादूगर के पास पहुचा। उससे एक भूत माग लाया। शर्त यह थी कि भूत को हर क्षण काम मे लगाए रखना होगा। अगर काम न दे सके तो वह जान की आफत बन जाएगा। लकडहारा बात मान गया। उसने भूत को लिया और घर आया।

"अब लकडहारा जो भी काम कहता, भूत उसे पल भर मे पूरा कर देता। लकडहारा कठिन से कठिन काम बताता, पर भूत उसे उतनी ही शीघ्रता से कर डालता।

"इस कारण लकडहारा बहुत हैरान हो गया। उसकी अक्ल गुम होने लगी। और भूत था कि काम-काम की रट लगाये था। परेशान होकर लकडहारे ने ईश्वर से मदद के लिए विनय की। तभी उसे एक उपाय सूझा। उसने भूत के पास बैठे कुत्ते की दुम सीधी करने के लिए कहा। भूत तुरन्त उसे सीधी करने लगा, लेकिन हर बार वह टेढी ही रहती। आखिर परेशान होकर भूत ने हार मान ली। लेकिन लकडहारा नही माना और उसने भूत को काम पर लगाये ही रखा।"[1]

जहूर बख्श जी की अधिकाश बालोपयोगी पुस्तकें मित्र बन्धु प्रकाशन, जबलपुर से प्रकाशित हुई है। ये है—'कपास का जन्म', 'नाई चक्कर मे', 'वाह रे हम', 'वाह रे पाजामा,' 'हत्तेरे गधे की', 'पहेली बुझौवल', 'फूल परी', 'पानी की परी', 'बापू की कहानिया,' 'कथामाला भाग २,' 'बच्चो के बापू,' 'धन्यवाद, तुमको भगवान,' 'झोपडी का लाल,' 'कच्छू की उडान,' 'ससार कैसे बना' आदि।

१८. पं० देवीदयाल चतुर्वेदी—चतुर्वेदी जी ने 'बालसखा' सम्पादक के रूप मे तथा बच्चो के लेखक के नाते बालसाहित्य की बहुत सेवा की है। बच्चो की प्रवृत्तियो तथा रुचियो के अनुकूल साहित्य रचना करने मे आप सिद्धहस्त हैं। बच्चे स्कूल की पढाई मे किस प्रकार रोचक कथा-कहानिया सुनने मे डूब जाते हैं इसका सुन्दर चित्रण देखिये—

टन टन टन टन घटा बजता, शाला को हम जाते है,
वहा पहुच कर पडित जी को हम सब शीश झुकाते हैं।
अच्छी अच्छी बातें हमको पडित जी बतलाते है।
रोज कहानी, गीत बहुत से, वह हमको सिखलाते है।
माता पिता बडो की सेवा करना हमे सिखाते है,
गाधी वीर जवाहर का वह बचपन हमे सुनाते है।

बच्चो को खेल-खेल मे जीवन के अनेक रहस्यो, सिद्धान्तो तथा सत्यो मे परिचित कराना बहुत कठिन काम है। खेल-गीतो मे तो यह और भी कठिन है। किन्तु चतुर्वेदी जी ने कुछ प्रयोग किए हैं। इनमे जहा खेल-कूद का मनोरजन है वही बालसुलभ प्रवृत्ति के भावो का भी निदर्शन हुआ है—

खेल रहे थे रामू श्यामू घर के बाहर कर जब शोर।
तभी अचानक गरजा बादल, बरसा पानी भी घनघोर।
× × ×
बोला श्यामू—घर के बाहर, खेल खेलती बूदें ज्यो।
रामू के सग खेल रहे है, घर के भीतर हम भी त्यो।
बादल की गडगड से यह तो, घुल जाती बूदे डर कर।
नही किसी से पर हम डरते, बैठे-बैठे कुरसी पर॥'

---

१. खिलौना, सितम्बर १९३८, पृष्ठ २५१।

आपकी बालोपयोगी कविताओ के कई सग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके है। इनमे प्रमुख हैं—'मीठी तानें,' 'झिलमिल तारे,' 'मीठे गीत,' 'हवामहल,' 'सोने की वर्षा,' 'शेर का शिकारी,' 'आल्हा ऊदल' आदि।

१६ प्रेमचन्द—हिन्दी कथा-साहित्य मे प्रेमचन्द जी एक युग के रूप मे अवतरित हुए। आपने बडो के साथ साथ छोटे बच्चो के लिए कुछ कहानिया लिखी थी। ये पुस्तकें है—'कुत्ते की कहानी,' 'जगल की कहानिया,' 'रामचर्चा तथा 'दुर्गादास'। ये कहानिया न केवल कथानक की दृष्टि से बल्कि भाषा और शैली की दृष्टि से भी बच्चो के लिए उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

आपकी अनेक कहानिया ऐसी हैं जो मूलत बडो के लिए ही लिखी गई। किन्तु उनमे कुछ ऐसे तत्त्व आ गये कि वे बच्चो के लिए भी रुचिकर सिद्ध हुईं। ऐसी कहानियो को भाषा, शैली और उनमे चर्चित समस्या के कारण बालसाहित्य कहना तो कठिन है, किन्तु उनका महत्त्व अस्वीकारा भी नही जा सकता। 'बडे भाई साहब' कहानी मे जहा बाल मनोविज्ञान का सहारा लिया गया है, 'पच-परमेश्वर' मे पचायती राज से लाभ तथा उसकी महिमा प्रतिस्थापित की गई है। इनके अतिरिक्त 'मूठ,' 'मत्र,' 'पूस की रात' आदि कहानिया भी बहुत लोकप्रिय हुई हैं। तदयुगीन वातावरण और नैतिक विचारो के विकास की दृष्टि से 'नमक का दरोगा' और 'परीक्षा' कहानिया बहुत सुन्दर बन पडी हैं।

प्रेमचन्द जी ने बालसाहित्य बहुत कम लिखा, किन्तु जो कुछ भी लिखा वह न केवल रोचक है बल्कि प्रेरक भी है।

२०. विद्याभास्कर शुक्ल—शुक्ल जी इडियन प्रेस की वाराणसी शाखा मे काम करते थे। बालसाहित्य लेखन मे आपकी विशेष रुचि थी और इसलिए 'बालसखा,' 'शिशु,' 'वानर' आदि मे आप नियमित रूप से लिखते रहे हैं। आपकी कविताए 'बच्चों के मन की बातें' होती है। उनके खेल-कूद, हसी-हल्ले, गुदगुदी आदि खुलकर प्रकट हुई हैं। यही कारण था कि शुक्ल जी ने बच्चा के कवियों मे अपना निश्चित स्थान बना लिया। बालमन की कल्पना का एक नमूना प्रस्तुत कविता मे द्रष्टव्य है

क्या ही बढिया मेरा डडा,
इसको लिए कहाऊ पडा।
हाथ कमर पर रख कर जाता,
तब बूढा बाबा कहलाता।

× × ×

जब कुत्ता मुझ पर गुर्राता,
तब यह डडा मजा चखाता।
भो भो करके उसे भगाता,
मेरे पास न आने पाता।

जाने क्या क्या इसे बनाता,
यह मेरा नित मन बहलाता।[१]

२१ बाबूलाल भार्गव—आपके बारे मे 'बालविनोद' के सपादक श्री पुरुषोत्तम व्यास ने लिखा था—"आप बालसाहित्य-सरिता के अनुभवी तैराक हैं। आपने अपनी कई मनोरजक शिक्षा प्रद कृतियों से बालसाहित्य की सेवा की है। आपकी कविताए तथा लेख दोनो ही बालोपयोगी, शिक्षाप्रद और रोचक होते हैं।"[२] 'कोयल' शीर्षक कविता मे भी आपने उसकी मधुर वाणी से कुछ सीखने का ही प्रयास किया है—

बैन रसीले बोला करती, मिश्री है नित घोला करती।
सब ही के मन को हरपाती, अमृत कानो मे बरसाती ।।
कोयल जरा इधर तो आओ, प्यारा बोल मुझे दे जाओ।
सबसे बोलू बोली प्यारी, छाये जग में कीर्ति हमारी ।।[३]

बच्चो के लिए प्रकाशित आपकी पुस्तकें है—'बालकथा,' 'मजरी,' 'लोमडी रानी,' 'परियो का दरबार,' 'पौराणिक कथाए,' 'पथ प्रसून,' 'कला कुज,' 'वीर गाथाए,' 'उज्ज्वल सितारे' आदि।

२२ गौरी शकर लहरी—लहरी जी ने सन् '३६ से '५० तक प्रचुर मात्रा मे बालसाहित्य रचना की, जो उस समय के बाल-पत्रों—'बालसखा,' 'शिशु,' 'वानर,' 'कुमार' आदि मे प्रकाशित भी हुआ। बच्चो को रसीली वस्तुओ के माध्यम से कुछ सीख की बातें बताने का प्रयास निम्न कविता मे द्रष्टव्य है—

रोज जलेबी खाने वाला, रोज घूमने जाने वाला,
सदा दूध का पीने वाला, होता पक्का सीने वाला।
सदा सवेरे पढ़ने वाला, नही किसी से लडने वाला।
मीठे वचन बोलने वाला, सबका आदर करने वाला।
राजा भैया कहलाता है, सब मे आदर वह पाता है।
शिशुओ ऐसे तुम बन जाओ, राजा भैया ही कहलाओ।[४]

लहरी जी की बालोपयोगी कविताओ का सग्रह 'तितली के पख' शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है।

२३ सुमित्रानन्दन पत—पन्त जी मूलत छायावादी कवि हैं। आपकी कुवर सुरेशसिंह कालाकाकर से बडी अच्छी मित्रता है। सुरेशसिंह जी ने जब 'कुमार'

---

१ बालसखा, मई १६३४।
२ बालविनोद, जून १६३६, पृष्ठ ४०।
३. वही।
४. शिशु, सितम्बर १६२८, पृष्ठ ४७६।

बालमासिक का प्रकाशन आरंभ किया तो उनके आग्रह से पन्त जी ने बच्चो के लिए भी कुछ कविताए लिखी। ये कविताए यद्यपि भाषा और भाव की दृष्टि से कठिन थी, लेकिन इनसे कवि की दृष्टि का परिचय तो निश्चय ही मिलता है कि वह नवांकुरों के लिए साहित्य सृजन कर रहा था—'कलरव' शीर्षक कविता मे यद्यपि छायावादी भावो का प्रभाव है, भाषा भी कठिन है, किन्तु किशोर आयु के बच्चे इस सौन्दर्यमयी काव्य-कल्पना का आनन्द निश्चय ही उठा सकेंगे :

कलरव किसको नही सुहाता
कौन नही इसको अपनाता।
यह शैशव का सरल हास है,
सहसा उर से है आ जाता।
कलरव किसको नही सुहाता,
कौन नही इसको अपनाता।

× × ×

यह ऊषा का नव विकास है,
जो रज को है रजत बनाता।
कलरव किसको नही सुहाता,
कौन नही इसको अपनाता।[1]

पन्त जी की 'चींटी' शीर्षक कविता बच्चो के लिए बहुत ही रोचक तथा प्रेरक है। इसमे चींटी के प्रति बालमन में उठने वाली जिज्ञासाओं का समाधान है, उसके जीवन का वर्णन है और है एक सन्देश जो एक छोटा-सा प्राणी इस विशाल जगत को देता है :

चींटी को देखा ?
वह सरल विरल काली रेखा,
तम के तागे सी जो हिलडुल,
चलती लघु पद पल-पल मिलजुल,
वह है पिपीलिका पांति,
देखो ना, किस भांति,
काम करती वह सतत ?
कन कन करके चुनती अविरत
गाय चराती,
धूप खिलाती,
बच्चो की निगरानी करती,
लड़ती अरि से तनिक न डरती,

---

१. कुमार, अगस्त १६३२, वर्ष १, अंक २।

दल के दल सेना सवारती,
घर आगन, जनपद बुहारती।
चीटी है प्राणी सामाजिक,
वह श्रमजीवी, वह सुनागरिक।
देखा चीटी को ?
उसके जी को ?
भूरे बालो की सी कतरन,
छिपा नही उसका छोटापन।
वह समस्त पृथ्वी पर निर्भय,
विचरण करती श्रम मे तन्मय।
× × ×
दिन भर में वह मीलों चलती,
अथक कार्य से कभी न टलती।
वह भी क्या शरीर से रहती ?
वह कण अणु,
परमाणु ?

२४ प० कुजबिहारी लाल चौबे—चौबे जी ने बच्चो के लिए अनेक सरस और रोचक कविताए लिखी हैं। आपकी कविताओ मे जहा एक ओर राष्ट्रीय भावना के दर्शन होते हैं, वही मुक्त होकर विचरण करने वाली बाल कल्पना भी देखने को मिलती है। भारत मा की वन्दना प्रशस्ति मे लिखी गई आपकी कविता 'भारत महतारी' मे उस पर बलिदान होने का सकल्प बहुत प्रेरक है—

जग के सकल देश से न्यारी, जयति जयति भारत महतारी।
तूने दी जग को है शिक्षा, तुझ से जग ने पाई भिक्षा,
हुई पूर्ण तुझसे जग इच्छा, सर्वश्रेष्ठ है मातृ हमारी।
जयति जयति भारत महतारी।
× × ×
करें ईश से विनय जोड कर, भारत माता के गौरव पर,
कर दें जीवन प्राण न्योछावर, कापे इससे दुनिया सारी।
जयति जयति भारत महतारी।[1]

और यह है बालमन की कल्पना की मुक्त उडान—
यदि मैं भी चिडिया बन जाता।
तब फिर क्या था ? रोज़ मजे से मैं मनमानी मौज उडाता,
नित्य शहर में नये देखता आसमान की सैर लगाता।

---

१ बालसखा, नवम्बर १६३०, पृष्ठ ४३६-४४०।

वायुयान से भी तेजी मे कई कोस आगे बढ जाता।
रोज बगीचो मे जाकर के, मीठे मीठे फल मैं खाता।
इस डाली से उस डाली पर उड-उड करके मन बहलाता।

× × ×

सूर्योदय के पहले उठकर चें चें करके तुम्हे जगाता।
सदा आलसी लोगों को मैं, चचलता का पाठ सिखाता।

२५ रायबहादुर लज्जाशकर झा—रायबहादुर लज्जाशकर झा इस अवधि के प्रमुख व्यक्तियों तथा लेखको मे से थे। आपने बच्चो के लिए अनेक कहानिया लिखी। ये कहानिया आप जीवन के अनुभवो तथा सस्मरणो के आधार पर लिखते थे। इस तरह की कहानिया उन दिनो बहुत कम लिखी जाती थी। राजा-रानी, शेर, भालू, कुत्ता, बिल्ली आदि ही की कहानिया आमतौर पर बच्चो के लिए लिखी जाती थी। लेकिन झा साहब ने लीक से हटकर नए ढग की कहानिया लिखी। इन कहानियों का उद्देश्य यही था कि बच्चे बडे होकर अपने जीवन को सफल एव सुखी बना सकें। आपकी 'सात कहानिया' शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तुत कहानियो मे से एक इस प्रकार है—

"एक देहाती डाकघर गया। डाक मुशी से पूछने लगा—'मुशी जी! मेरे नाम की कोई चिट्ठी आई है क्या?' डाक मुशी ने सवाल किया कि तुम्हारा नाम क्या है? देहाती ने जवाब दिया कि मेरा नाम, मेरी चिट्ठी पर लिखा मिलेगा। मुशी ने कहा कि तुम्हारा नाम मुझे मालूम नही, चिट्ठी नही दे सकता। देहाती बडबडाता गाव मे गया और लोगों से शिकायत करने लगा कि देखो मुशीजी की चालबाजी। मेरा नाम मालूम नही है, ऐसा बताते हैं। सालभर मे कुछ नही तो एक दर्जन चिट्ठिया डाकिये द्वारा मेरे घर भेजी हैं।

बालको, यह बतलाओ कि कौन गलती करता है, डाक मुशी या देहाती?"[१]

आपकी ऐसी ही अन्य कुछ उल्लेखनीय कहानिया है—'लाल अशर्फीवाला,'[२] 'सात कहानिया,'[३] 'बारह मजेदार कहानिया'[४] आदि।

इस प्रकार आधुनिक युग मे (सन् '३१ से '४६) बालसाहित्य रचना के प्रति ही नवीन चेतना का सचार नही हुआ बल्कि उसके विषय-तत्त्व मे भी काफी परिवर्तन आया। यह परिवर्तन जहा एक ओर प्राचीन परम्पराओं को तोड रहा था, वही भारतीयता की रक्षा के लिए आवश्यक भी था। बालसाहित्य मे इस नवीन विचारधारा के फलस्वरूप ही स्वतत्रता के पश्चात् लिखा गया बालसाहित्य स्वतत्र विधा के रूप में विकसित होकर अपना अस्तित्व स्थिर करने के लिए प्रयत्नशील हो गया।

---

१ बालसखा, जनवरी १९३९।
२ ,, फरवरी १९४०।
३. ,, जनवरी १९४०।
४. ,, जनवरी १९४१।

(५) स्वातंत्र्योत्तर युग : (सन् १९४७ से १९५७)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जीवन के मूल्य शनैः-शनैः बदलने लगे, विकास और प्रगति की सीमाएं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुच गई। देश मे बच्चो के प्रति दायित्वो का निर्वाह करने के लिए अधिक सजगता आ गई, क्योंकि भावी भारत का भार उन्हें सभालना था। इसलिए बाल-विकास की दिशा मे सतत प्रयत्न आरंभ हुए। दूसरी ओर साहित्य की सभी विधाओ मे परिवर्तन हुए। नए स्वरो का जन्म हुआ और पाश्चात्य सस्कृति तथा साहित्य भी प्रभाव डालने लगा।

बालसाहित्य के विकास के लिए यह समय बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। नई-नई विचारधाराओ ने जन्म लिया और साहित्य के स्वर को धीरे-धीरे बदलने लगी। अब तक बच्चों के लिए जो कुछ भी लिखा गया था, वह अधिकाश प्राचीन मान्यताओ तथा सीमाओं मे बधा हुआ था। वह सरल, सुबोध और नीतिपरक तो था, पर मनोरजक कम था।

(क) ऐतिहासिक विवेचन :

अतः स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् बालसाहित्य को समृद्धिशाली बनाने की ओर लोगों का ध्यान गया। लेकिन उसकी मूल भावना और आवश्यकता को लोग भुला बैठे। परिणाम यह हुआ कि अनेक ऐसी कृतियो की भरमार हो गई, जो बालसाहित्य नही थी। जो सफल कृतिया लिखी भी गई वे इस साधारण किस्म के तथाकथित बालसाहित्य के अन्दर छिप गई। फलस्वरूप बालसाहित्य की कसौटी और मूल्याकन की ओर भी लोगो ने ध्यान दिया।

इस बीच जो श्रेष्ठ बालसाहित्य प्रकाशित हुआ, वह विषय-वस्तु की दृष्टि से अच्छा तो था किन्तु छपाई और चित्रो आदि की दृष्टि से बहुत श्रेष्ठ नही कहा जा सकता। लेकिन चूकि वह नये परिवेश और नई विचारधारा तथा सभावना को लेकर लिखा गया था, इसलिए यहा उसका विवेचन आवश्यक है।

कविताओ मे प० सोहनलाल द्विवेदी की 'दूध बतासा,' 'बाल भारती,' निरंकार देव सेवक की 'रिमझिम' तथा 'मुन्ना के गीत;' मोहनलाल गुप्त कृत 'बच्चों की सरकार,' रामवचनसिंह आनन्द की 'अगलू-मंगलू' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

कथा कहानी की पुस्तको को विशेष महत्त्व मिला। इडियन प्रेस, प्रयाग से 'कथासरित्सागर' (बाल सस्करण), 'सोने का झरना,' 'सोहराब रुस्तम,' 'फव्वारा,' 'ईसप की कहानिया' आदि प्रकाशित हुई। शिवचन्द्र नागर की 'परियो के देश मे' तथा अशोक साहित्यालंकार की 'सोन चिरैया' ने बाल-पाठको का खूब मनोरजन किया। ज्ञानमदिर, इलाहाबाद ने अपनी बाल सीरीज के अन्तर्गत ५ पुस्तको का एक सेट निकाला। इसमे ठाकुरदत्त शर्मा कृत, 'बाघ के घर घाघ,' नारायणप्रसाद अरोड़ा कृत 'अगूठे राम,' 'घमडी गिलहरी,' 'जब कुआ सूख गया,' तथा 'वन भोज' पुस्तकें थी। 'सचित्र बीरबल' (दो भाग) मे लेखिका फूलकुमारी भटनागर

ने बीरबल के मनोरजक चुटकुले दिए थे। दक्षिण के बीरबल 'तेनालिराम' की मजेदार कहानिया का सग्रह श्री ति० कृष्णस्वामी ने किया था, जो भाग्योदय प्रकाशन, जबलपुर मे प्रकाशित हुआ था। विनोद पुस्तक मदिर, आगरा से दया भानु 'अनगढ' की दो पुस्तकें प्रकाशित हुई थी। पहली थी 'जादू की चिडिया,' जिसमे जादू की चिडिया, सच्चा मित्र, मोन द्वीप की कथा शीर्षक से तीन कहानिया थी। दूसरी पुस्तक थी—'जादू की डिबिया', जिसमे सकलित कहानियों के शीर्षक थे—मूछो का ताव चालाकी का फल भक्त शेर तथा परोपकार की कहानिया। इनके अतिरिक्त कुछ स्फुट प्रकाशनो मे लज्जावती की 'सपनो की कहानिया,' बालकृष्ण एम०ए० की 'एक खाऊ, दो खाऊ ?' मैं चव्वो का, 'अडम धडम' तथा 'चुहिया राजकुमारी' उल्लेखनीय है।

मौलिक कम, किन्तु अनूदित अधिक, बाल उपन्यास भी प्रकाशित हुए। डेविड कापर फील्ड, एलिस इन दि वडरलैंड, खजाने की खोज मे, तीन तिलगे, बहादुर टाम आदि प्रमुख प्रकाशन थे।

स्वतत्रता की कहानी से बच्चों को अवगत कराने के लिए भी कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई थी। चलचित्र कार्यालय, जबलपुर मे नित्यगोपाल तिवारी की पुस्तकें 'हमारी आजादी की कहानी' और 'पाच पाडव' प्रकाशित हुई थी। इनमे पहली पुस्तक मे १८५० की कहानी, ईस्ट इडिया कम्पनी, काग्रेस का जन्म, सत्याग्रह, अहिंसा की लडाई, हिन्दू मुसलमानो का भेद आदि शीर्षको के अन्तर्गत कहानी शैली मे भारत की आजादी का विवरण प्रस्तुत किया गया था। दूसरी पुस्तक मे महात्मा गाधी को युधिष्ठिर, सरदार पटेल को भीम, जवाहरलाल नेहरू को अर्जुन, तथा डा० राजेन्द्रप्रसाद और मौलाना आजाद का नकुल-सहदेव मानकर उन पर छोटे-छोटे लेख लिखे गये थे।

'वीर बालक' पुस्तक मे लेखक रघुवीरशरण मित्र ने, गाधी युग मे बालको ने देशोद्धार के लिए जो प्रयत्न किया था उसका सुन्दर चित्र तीन अको के नाटक मे प्रस्तुत किया। उसमे बीच बीच मे प्रेरक गीत भी थे

जय शहीद की जय, जय हो, गाओ गाओ गाओ।
यह भारत मा का मन्दिर है, इस पर फूल चढाओ।
स्वतत्रता का दीप जला है उनके बलिदानो से,
आओ इनकी पूजा कर लें, पूजा के गानो से।

यह ऐसा समय था जब कि एक ओर गावो का उद्धार हो रहा था तो दूसरी ओर लोकसाहित्य का भी पुनर्मूल्याकन साहित्यिक स्तर पर किया जाने लगा था। बालसाहित्य मे बच्चों के लिए प्रसिद्ध अनेक रोचक तथा मनोरजक लोककथाए स्वीकार की जाने लगी। लेकिन कई लोगो ने इसे व्यवसाय बना लिया। एक ही लोककथा विभिन्न क्षेत्रो मे प्रचलित होने के सिद्धान्त को मनमाने ढग से स्वीकार कर लाभ उठाया गया। इस कारण यह पता लगाना कठिन होने लगा कि कौन

सी लोककथा किस मूल भाषा की है। यह भ्रम आज भी बना हुआ है, और इस दिशा में बहुत वैज्ञानिक ढंग से कार्य किए जाने की आवश्यकता है।

बच्चों के लिए प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं ने भी इस अवधि में बालसाहित्य के लेखन-प्रकाशन में पूरा योग दिया। भारत सरकार के प्रकाशन विभाग में सन् १९४८ में 'बालभारती' का प्रकाशन आरंभ हुआ। अजन्ता प्रेस, पटना से 'चुन्नू-मुन्नू' निकला। अन्य पत्रिकाएं 'बालसखा', 'शिशु', 'चन्दामामा,' 'बालक' आदि तो अपना कार्य कर ही रहे थे।

इस अवधि में पौराणिक तथा ऐतिहासिक विषयों पर भी बच्चों के लिए प्रचुर मात्रा में पुस्तक प्रकाशित हुई। इस साहित्य की आवश्यकता शायद इसलिए थी कि बच्चों में आत्मगौरव की भावना जागृत करने के लिए ऐसा साहित्य अधिक प्रभावशाली होता है। लेकिन विशेष उल्लेखनीय बात यह थी कि इस विषय के अन्तर्गत वही कथानक चुने गये जो सत्य, अहिंसा, शांति आदि का संदेश दें। इस दिशा में कई लेखकों की कृतियां बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। राजबहादुर सिंह की 'तपस्वियों की कहानियां', 'देवताओं की कहानियां', विश्वम्भर सहाय प्रेमी कृत 'रामायण के प्रसंगों की कुछ कहानियां.' रामप्रताप त्रिपाठी कृत 'ऋषियों-मुनियों की कहानियां,' विराज एम ए० का 'गाय और बाघ,' शम्भूदयाल सक्सेना लिखित 'ऋषियों की कहानियां,' 'देवताओं की कहानियां,' 'सतयुग की कहानियां,' नारायण व्यास कृत 'रामायण की विभूतियां' विशेष उल्लेखनीय है।

ऐतिहासिक विषयों को लेकर लिखी गई पुस्तकों में—गोकुलचन्द्र शर्मा कृत 'वीरता की अमर कहानियां,' नरसिंह राम शुक्ल कृत 'हमारे वीर पुरखे,' प्रभात कृत 'इतिहास के पन्ने,' 'बलिदान की कहानियां' आदि उल्लेखनीय है।

(ख) प्रमुख प्रवृत्तियां :

इस अवधि के आरंभिक दिनों में गांधी दर्शन तथा भारतीय स्वतन्त्रता की रक्षा की भावनाओं से प्रभावित होकर बालसाहित्य लिखा जाने लगा था। कविता, कहानी, नाटक—सभी विधाओं में इसी भावना का स्वर था—

आजाद देश के हम वासी,
भारत माता हमको प्यारी।
हम बच्चे हैं हम सैनिक है,
हमको स्वतन्त्रता है प्यारी।
हम अपना सब कुछ तन मन धन,
भारत के हित अर्पित करते।
हम अपना यह सारा जीवन,
माता की गोदी में धरते।[1]

१ रामचन्द्र वर्मा, बालगंगा, जुलाई, १९४८।

तीज, त्योहार आदि भी आजादी के बाद नए सदर्भ मे मनाए जाने लगे थे। बच्चो मे इस नवीनता की अनोखी उमग परिलक्षित होती थी। उसका एक चित्र—

याद मुझे है जगर-मगर वह उस दिन की दीवाली,
सुना छुट्टिया हैं दो दिन की खूब बजाई ताली।
हुई खुशी थी घर को भागा लटका अपना बस्ता,
किया नाश्ता था मा से ले, डटकर मीठा खस्ता।
पूछा मा से तब वे बोलीं, 'लल्ला गई गुलामी,
आई जुग जुग मे आजादी, मिटी बुरी बदनामी। [१]

नये सकल्प, नये काम और नये कर्तव्यों से परिचित कराने के लिए अनेक कवियों ने बालगीत लिखे थे। इनमे जहा स्वतत्रता की रक्षा के लिए बलिदान हो जाने की भावना थी, वही गाधी और नेहरू के सपनो का भारत भी निर्मित करने की आकाक्षा थी—

आई होली, आई होली,
हुआ राष्ट्र स्वाधीन हमारा।
अब न लौह कडियो की कारा,
एक सत्य सकल्प विचारा,
वैर भाव की इतिश्री होली।
× × ×
जाति पतित तुम उसे उबारो,
अपनी भूलें शीघ्र सुधारो।
मानव मानवता न बिसारो,
यही सदेशा लाई होली। [२]

कहानिया मे जहा इतिहास और पुराणा से सत्य, अहिंसा और शान्ति का सदेश देने वाले कथानक चुने जाने लगे थे, वही बच्चो की अपनी समस्याओ, स्वतत्र भारत के सामाजिक सास्कृतिक विकास के मूल तत्त्वो से सम्बन्धित कथानक भी लिखे जाने लगे थे। 'मुन्नू की स्वतनता' मे हरिशकर परसाई ने स्वतत्र भारत के एक बालक के मन की बातो का कितने सुन्दर और प्रेरक ढग से प्रस्तुत किया है—

मा तुम तो कहती हो कि हमे स्वतत्रता मिल गई। पर मैं जब आज भैया के कोट से फाउटेन पेन निकालकर फर्श पर लिखने लगा तो तुम नाराज हो गई और कलम छीन ली।

और रात को जब मैंने गरम दूध न पिया तो तुमने डाटकर कहा पी, नही

१ स्वयप्रकाश उपाध्याय, बालसखा, १६४८।
२ विद्याप्रकाश कुलश्रेष्ठ, बालसखा, मार्च, १६४८ पृष्ठ ८७।

तो एक तमाचा लगेगा।' और कटोरा मुह से लगा दिया।

जब मैं सवेरे सडक पर खेलने चला गया तो तुमने नौकर से पकड मगवाया और कहा, 'सडक पर गया तो टाग तोड दूगी।' भला यह भी कोई स्वतन्त्रता है ?

आज सवेरे जब मैंने पेंट पहनने से इन्कार कर दिया, कहा—'मैं पेंट नही पहनूगा, मैं स्वतन्त्र हू। मैं नगे ही खेलूगा' तो तुमने जबरदस्ती पेंट पहना दिया।

मैं जब भैया की तसवीरो वाली मोटी पुस्तक को ध्यान से देखने लगा तो तुमने पुस्तक छीन ली और मुझे डाटा। मैंने उसमे से एक ही तसवीर तो अपने लिए फाडी थी।

मैं जब बाबूजी की दावात की स्याही से अपनी कमीज को रग कर झडा बनाने लगा तो तुमने दो तमाचे जड दिए। क्या तुमने मेरे झडे का अपमान नही किया ? जब मैं रोने लगा तो तुमने चिल्लाकर कहा—'रोएगा तो एक तमाचा और लगाऊगी।' क्या मुझे रोने की भी स्वतन्त्रता नही है ?

ठहरो, मैं अभी जवाहरलाल जी को चिट्ठी लिखता हू कि आप कहते हैं कि स्वतन्त्रता मिल गई। किन्तु मुझे तो रत्ती भर भी स्वतन्त्रता नही मिली। आप तुरन्त अम्मा को लिख दीजिए जिससे वे मुझे स्वतन्त्रता दे दें।'[१]

छोटे बच्चो को स्वतन्त्रता का अर्थ समझाने के लिए यह कितनी सुन्दर और रोचक कहानी है। वास्तव मे स्वातन्त्र्योत्तर युग के आरभ मे ऐसे बालसाहित्य की बहुत आवश्यकता थी जो बच्चो को स्वतन्त्रता का महत्त्व, उसके लिए किए गए सघर्ष तथा बलिदान की कहानी और बच्चो के कर्तव्यो के बारे मे बताए। इस दृष्टि से बहुत कुछ साहित्य लिखा भी गया और उसका महत्त्व भी आका गया।

इसके ही साथ दूसरी ओर बालसाहित्य निर्माण तथा उसकी प्रगति-विकास के लिए भी प्रयत्न किए गए। बालसाहित्य के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराने के विचार से एक योजना बनी थी, जिसकी सूचना 'बालसखा' मे प्रकाशित हुई थी—

"ग्राम साहित्य सदन, उदयरामसर, 'आधुनिक हिन्दी मे बालसाहित्य' नामक ग्रन्थ तैयार कर रहा है। इसमे बालसाहित्य सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओ और लेखको का विवरण दिया जायगा। अत निवेदन है कि इस क्षेत्र मे कार्य करने वाले लेखक अपना परिचय फोटो भेजकर सहयोग दें तथा बालसाहित्य के पत्रकार अपने पत्रो की एक-एक प्रति भेजने की कृपा करें। पत्र की प्रारभ तिथि और पिछले सम्पादको का भी उल्लेख करें।"[२]

इसी प्रकार एक अन्य योजना जबलपुर मे बनी थी। उसका भी विवरण 'बालसखा' मे छपा था।

---

१. बालसखा, अगस्त १६४६।

२ बालसखा, जनवरी १६४६।

"बालसाहित्य के प्रसार और प्रचार के लिए जबलपुर के कुछ कर्मठ उत्साही साहित्यिकों ने 'बालसाहित्य प्रसार समिति' की स्थापना की है। समिति का मुख्य ध्येय बालसाहित्य के लेखकों को प्रोत्साहन देना और उनके सगठन को सफल बनाना है। समिति की शाखाए पटना, कानपुर, कलकत्ता, मिर्जापुर, इटारसी, पथरोटा, बिहार आदि अनेक स्थानों मे प्रारम्भ हो चुकी हैं। समिति का प्रधान कार्यालय २५३, अधेरदेव मे है। बालसाहित्य का कोई प्रेमी उसका सदस्य बन सकता है।'[1]

इन सुनियोजित प्रयासो के अतिरिक्त, बालसाहित्य रचना की एक अन्य प्रवृत्ति ने काफी बडे पैमाने पर जन्म लिया। यह प्रवृत्ति थी—हस्तलिखित पत्रिकाए तैयार करने की। अनेक स्कूलों तथा बच्चो की सस्थाओ ने हस्तलिखित पत्रिकाए निकाली थी—जिनमे उदीयमान बालसाहित्यकारो तथा बाल-लेखकों की रचनाए स्थान पाती थी। लगभग दो वर्ष तक इस प्रवृत्ति का बहुत जोर रहा। इससे एक लाभ यह अवश्य हुआ कि बच्चो के मन मे बालसाहित्य के प्रति अधिकाधिक अनुराग जागा और अनेक बाल-लेखकों के लिए अपनी प्रतिभा का मूल्याकन करने का भी अवसर मिला।

इस प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर काल के पहले दशक मे हिन्दी बालसाहित्य बडी तीव्र गति से बहुमुखी होकर विकास की दिशा मे अग्रसर हुआ। यद्यपि इस गति का लाभ उठाने और 'बहती गगा मे हाथ धोने' वाली कहावत को भी चरितार्थ करने के कुछ प्रयास हुए, किन्तु इस प्रकार की व्यवसायी प्रवृत्ति अधिक नहीं चल सकी, क्योंकि माता-पिता तथा अभिभावक के साथ-साथ बच्चे स्वय भी सजग हो गए और वे अपनी पसन्द की पुस्तकें तथा अन्य वस्तुए लेने लगे। और यह सर्वमान्य तथ्य तो है ही कि बालसाहित्य की सर्वोत्तम कसौटी बच्चे स्वय है।

(ग) प्रमुख लेखक तथा रचनाए .

स्वातन्त्र्योत्तर काल मे जहा पुराने लेखको—मोहनलाल द्विवेदी, देवीदयाल चतुर्वेदी, रामसिहासन सहाय मधुर, स्वर्णसहोदर, लल्लीप्रसाद पाण्डेय, श्रीनाथसिंह आदि ने बालसाहित्य की सेवा जारी रखी, वही अनेक नए लेखकों ने भी बालसाहित्य रचना आरम्भ की। कई ऐसे भी लेखक थे, जिन्होंने स्वतन्त्रतापूर्व काल मे कम, किन्तु स्वतन्त्र्योत्तर काल मे अधिक बालसाहित्य लिखा। इस कोटि के लेखको मे श्री नर्मदाप्रसाद खरे, निरकारदेव सेवक के नाम उल्लेखनीय है।

(१) **नर्मदाप्रसाद खरे**—खरे जी इन दिनो नई और पुरानी पीढी के सेतु माने जाते हैं। आपको बालसाहित्य के प्रति रुचि बचपन से ही है। आपकी अनेक रचनाए स्वतन्त्रतापूर्व काल मे भी प्रकाशित हुई। किन्तु स्वतन्त्रता के बाद तो आपने प्रचुर मात्रा मे बालसाहित्य लिखा। बच्चो के लिए आपने एक दर्जन से भी अधिक पुस्तकें लिखी है। इनमे प्रमुख है—'वीरो की कहानिया,' 'पूज्य चरण,'

---

१ बालसखा, जून १९५०।

'मेरी भी सुनो,' 'बालनाटकमाला,' 'नई कहानिया' आदि। आपकी सबसे पहली पुस्तक 'बासुरी' थी। यह शिशु कार्यालय, प्रयाग से प्रकाशित हुई थी। आपको 'धन्य ये बेटिया' (तीन भाग) पुस्तक पर उत्तरप्रदेश सरकार से पुरस्कार भी मिल चुका है।

खरे जी के बालसाहित्य मे प्राचीन और नवीन दोनो प्रकार की मान्यताओं तथा विचारो का सुन्दर सामजस्य होता है। यही कारण है कि आपकी रचनाए बालसाहित्य जगत् मे बहुत लोकप्रिय है। बच्चो की अनुभूति और विचारो को समझने और उसी के अनुरूप बालसाहित्य लिखने मे आप सिद्धहस्त हैं। आपकी 'तितली' शीर्षक कविता इस सन्दर्भ मे द्रष्टव्य है—

> रग बिरगे पख तुम्हारे, सबके मन को भाते है,
> कलिया देख तुम्हे खुश होती, फूल देख मुस्काते हैं।
> रग बिरगे पख तुम्हारे सबका मन ललचाते हैं,
> तितली रानी तितली रानी यह कह सभी बुलाते हैं।
> पास नही क्यो आती तितली, दूर-दूर क्यो रहती हो ?
> फूल-फूल के कानो मे जा-जाकर क्या कहती हो ?
> सुन्दर-सुन्दर प्यारी तितली, आखो को तुम भाती हो।
> इतनी बात बता दो हमको, हाथ नही क्यो आती हो ?
> इस डाली से उस डाली पर, उड-उडकर क्यो जाती हो ?
> फूल-फूल का रस लेती हो, हम से क्यो शरमाती हो ?

खरे जी ने बालसाहित्य की सेवा केवल उसे लिखकर ही नही बल्कि प्रकाशित करके भी की है।

(२) निरंकारदेव सेवक—स्वतत्रता-प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी बालसाहित्य के उन्नायको मे निरकार जी का महत्वपूर्ण योगदान है। आपने बच्चो के लिए प्रचुर मात्रा मे गीत लिखे हैं। विभिन्न विषयो तथा भावो के इन गीतो ने बाल-साहित्य को नई दिशा दी है। इन मे बाल मन की अभिव्यक्ति नई मान्यताओ तथा नई दुनिया के परिवेश मे हुई है। बाल-जगत् के सभी उपकरणो को आपने नई दृष्टि से देखा—

> नन्हे-नन्हे प्यारे-प्यारे, आसमान मे बिखरे तारे।
> चुन्नू मुन्नू टुन्नू सारे, इनको गिनते-गिनते हारे।
> चमक रहे है चम चम-चम, इनके पास पहुच जाते हम।
> तोड-तोड कर जेबो मे भर, हम उन सबको ले आते घर।

सरल बाल-बुद्धि के अनुसार देश की परिभाषा बताने वाली यह राष्ट्रीय कविता कितनी स्वाभाविक और रोचक है—

भारत देश हमारा है,
हमें प्राण से प्यारा है।
हम इस पर बलि जाएंगे,
जीवन पुष्प चढ़ाएंगे।
यह सुनकर मुन्ना बोला,
अज्ञानी बालक भोला।
देश किसे कहते हैं, मां,
हम जिसमें रहते हैं, मां ?
पर वह तो अपना घर है,
या फिर यह दुनिया भर है।

सेवक जी ने बालगीत के सभी रूपों के प्रयोग किए हैं और अपनी श्रेष्ठ रचनाओं द्वारा उसे समृद्ध बनाया है। खेलगीत, लोरिया, गीत कथाएं, प्रयाणगीत आदि के अनेक प्रयोग आपने किए हैं। छोटे बच्चों के लिए शिशु-गीत भी आपने लिखे हैं

मां, मैं पढ़ने जाऊंगा।
लौट देर में आऊंगा॥
तब मैं खाना खाऊंगा।
खा पीकर सो जाऊंगा॥
चिड़िया कहती टी टुट टुट।
मुझको भी दे दो बिस्कुट॥

हिन्दी बालसाहित्य के सम्बन्ध में आलोचनात्मक निबंध लिखने का काम सर्वप्रथम सेवक जी ने किया। आपका पहला आलोचनात्मक लेख 'वीणा', नवम्बर '५४ में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद उत्तर प्रदेश सरकार की त्रैमासिक 'शिक्षा' पत्रिका में नियमित रूप से कई लेख प्रकाशित हुए। इन लेखों के माध्यम से आपने न केवल बालसाहित्य की परिभाषा, उसके महत्त्व तथा मूल्यांकन को प्रतिपादित किया बल्कि बालसाहित्य में आलोचना का सूत्रपात कर उसे नई दिशा भी दी।

आपके इन्हीं प्रयत्नों तथा बालसाहित्य के प्रति अनुराग के फलस्वरूप ही हिन्दी में पहली आलोचनात्मक पुस्तक 'बालगीत साहित्य' प्रकाशित हुई। इसमें बच्चों के स्वभाव, उनके गीत तथा गीतों का शास्त्रीय विधान विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में बालगीत साहित्य का इतिहास, हिन्दी और अंग्रेजी तथा बंगला के बालगीतों का तुलनात्मक विवेचन, तेलुगू और गुजराती के बालगीतों का परिचय भी प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

सेवक जी बच्चो को बहुत प्यार करते हैं और इसीलिए वह उनके लिए सफलतापूर्वक बालगीत लिखते है। उन्ही के शब्दो मे, "बच्चो के बीच रहने के कारण उनके स्वभाव, कार्य और चेष्टाओ को देखने-समझने का अच्छा अवसर मिला। उनके प्रति मेरा सहानुभूति और प्रेमपूर्ण व्यवहार सदा से रहा है। छोटे-छोटे बच्चे मुझे हर समय घेरे रहते थे। उन्हे मेरे सामीप्य से एक सुख प्राप्त होता था और मुझे उनके। बच्चो के प्रति मेरे मन मे आज भी वैसी ही सहानुभूति और प्यार की भावना है। मैं, जब अवसर मिले, उनके साथ मिल-बैठ कर खेलना-कूदना चाहता हू। पर अब मेरे बाल पक जाने के कारण बच्चे उतनी प्रसन्नता से मुझे अपने खेलो मे सम्मिलित नही करते।"[१]

बच्चो के लिए लिखी आपकी पुस्तको के नाम है—'मुन्ना के गीत', 'धूप छाया', 'चाचा नेहरू के गीत', 'दूध जलेबी', 'माखन मिसरी', 'रिमझिम', 'फूलो के गीत', 'पचतनी', 'मटर के दाने', 'टेसू के गीत', 'महापुरुषो के गीत', 'हाफिज का सपना', 'शेखर के बालगीत', 'पप्पू के बालगीत', 'ईसप की गीत कथाए' (२ भाग), 'फ्रास की कहानिया', 'रूस की कहानिया', 'जर्मनी की कहानिया', 'जापान की कहानिया' आदि।

(३) रामकृष्ण शर्मा खद्दर जी—आप खद्दर पहनते हैं। बच्चे उन्हे सदैव खद्दर पहने देखकर 'खद्दर जी' ही कहने लगे। मौज मे आकर आपने भी बाल-साहित्य लिखने के लिए उपनाम 'खद्दर जी' रख लिया। बच्चो से आपको बहुत प्यार है और आपने बच्चो की शिक्षा तथा उनके कल्याण के लिए अनेक सस्थाए खोली हैं। आपने दिल्ली से सन् १६५६ मे बच्चो के लिए 'हमारे बालक' नामक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया था जो ६ साल तक निकलता रहा। छोटे-छोटे बच्चो के लिए आपने बडे रोचक और लुभावने गीत लिखे हैं—

छ साल की छोकरी,
भरकर लाई टोकरी।
टोकरी मे आम है,
नही बताती दाम है।
दिखा दिखाकर टोकरी,
हमे बुलाती छोकरी।
हमको देती आम है,
नही बताती दाम है।
नाम नही अब पूछना,
हमे आम है चूसना।

(४) विश्वदेव शर्मा—आपने बच्चों के लिए कहानिया तथा गीत—दोनो

---

१. बालगीत साहित्य, भूमिका, पृष्ठ ३-४।

लिखे हैं। आपकी कहानियो की पुस्तके हैं—'प्रतिनिधि हास्य कहानिया,' 'प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानिया' आदि। गीतो की पुस्तकें है—'फूल पत्ती,' 'धरती के गीत,' 'श्रम के स्वर,' 'बालमञ्जैतज्ञान' आदि।

(५) चिरजीत—बच्चों के लिए हास्यप्रधान गीत लिखने मे आप सिद्धहस्त हैं। आपके अनेक गीत, नाटक, कहानिया आदि बच्चों के कार्यक्रम मे आकाशवाणी से प्रसारित होते रहते है। आपकी बालसाहित्य की प्रकाशित पुस्तकें है—'नटखट के गीत,' 'बच्चो गाओ गीत', 'एक था राजा एक थी रानी'। आपका एक खेल गीत द्रष्टव्य है—

आओ खेलें गिल्ली डडा, खेले वालीबाल।
सबसे बढिया खेल कबड्डी खेल घेरा डाल।
या फिर खेले डडा घोडा, भागें सरपट चाल।
या फिर लाओ घुघरू भैया, नाचें ता थैया ता थैया।
अरे नही बलवान बने, कुश्ती और डड पेल।
आओ खेलें खेल॥

(६) इकबाल बहादुर देवसरे—आप पुराने साहित्यकार है। मुशी प्रेमचन्द के मित्रों मे से हैं तथा उनसे प्रेरणा और निर्देशन प्राप्त कर आपने साहित्य की सेवा की। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् आपने प्रचुर मात्रा मे बालसाहित्य लिखा। आपकी कविताओ मे बालरुचि और मनोविज्ञान का सुन्दर समावेश होता है। आपका एक रोचक गीत प्रस्तुत है—

हाथी झम झम झम,
घोडा छम छम छम।
कुत्ता नाचे बिल्ली नाचे, नाचें भालू बन्दर।
आज ब्याह मेरी गुडिया का नाचें सब हिलमिल कर।
चमक-दमक कर चन्दा सूरज हस हस झिलमिल तारे,
झूम झूम के बादल नाचें रग बिरगे प्यारे।
अम्मा गावें मौसी गावें, गावें मेरी बूआ।
आज ब्याह मेरी गुडिया का, बाटू लड्डू पूआ।
हाथी झम झम झम
घोडा छम छम छम।

इस युग के अन्य उल्लेखनीय लेखक हैं—रमेशचन्द्र प्रेम, द्रोणवीर कोहली, शिवमूर्ति सिंह वत्स, बालकृष्ण एम० ए०, विराज, हिमाशु श्रीवास्तव आदि। आप सभी ने बालसाहित्य की स्फुट रचनाओ द्वारा उसे सजाने-सवारने मे महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

'मुन्नू विज्ञान की दुनिया' और हामिद अली खा कृत 'बौने की खेती' उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट ने भी कुछ चित्रात्मक कहानियो की पुस्तकें प्रकाशित की है, किन्तु उनका मूल्य बहुत अधिक है और उनमे अधिकाश दूसरी भाषाओ के अनुवाद हैं।

बच्चो को हसाने गुदगुदाने के लिए भी बहुत-सी कहानी-पुस्तके प्रकाशित हुईं। दयाशकर मिश्र 'दद्दा' कृत 'लुक्को मौसी, शिवमूर्तिसिह वत्स की—'नटखट मेमना,' 'नटखट चू चू,' मनोरमा मालवीय कृत 'बीरबल का बेटा' उल्लेखनीय हैं।

परी-कथाओं में—शारदा मिश्र की 'नीलपरी और मसहरी की देवी,' हरिकृष्ण देवसरे कृत 'नए परीलोक मे, शिवमूर्तिसिह वत्स की 'सुनहली मछली' आदि कुछ नए प्रयोग हुए हैं। ये प्रयोग परी-कथाओ की परम्परागत शैली तथा रूप को बदलने वाले माने गए हैं।

वैज्ञानिक कहानिया भी इस दशक मे बहुत प्रकाशित हुई है। किन्तु कुछ पुस्तको मे तथ्यो की भरमार है तो कुछ मे कही कथा को तथ्यो के लिए तो कही तथ्य को कथा के लिए तोडा मरोडा गया है—जिसमे वैज्ञानिक कहानियो के स्वरूप तथा उनकी शैली मे अन्तर आ गया है। अधिकतर ग्रहो की काल्पनिक यात्राओ वाली पुस्तकें ही लिखी गई है। कुछ अच्छे प्रकाशन ये है—रमेश वर्मा की 'सिन्दूरी ग्रह की यात्रा,' मेलाराम वफा कृत 'चाद की यात्रा,' देवकुमार मिश्र कृत 'बीमार चना,' धर्मपाल शास्त्री कृत 'नकली चाद,' हिमाशु श्रीवास्तव की 'मछली रानी का देश,' रत्नप्रकाश शील कृत 'समुद्र मे सौ दिन' और जयप्रकाश भारती कृत 'बर्फ की गुडिया'।

नीतिपरक तथा उपदेशात्मक कथाओं की भी अनेक पुस्तके इस दशक मे प्रकाशित हुई है। भारत सरकार ने प्रकाशन विभाग ने विष्णु प्रभाकर द्वारा सपादित 'सरल पचतत्र' प्रकाशित की है। पचतत्र की ही कहानियो पर आधारित चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट की 'पचतत्र की कहानिया', कमलेश कृत 'बाल पचतत्री', शकुन्तला देवी कृत 'पचतत्र की कहानिया' भी उल्लेखनीय है। इस वर्ग की कुछ अन्य पुस्तकें हैं—धर्मपाल शास्त्री कृत 'सरल हितोपदेश,' भारत सरकार के प्रकाशन विभाग से प्रकाशित तथा श्रीमती सावित्रीदेवी वर्मा द्वारा सपादित 'जातक कथाएं' अच्छी सिद्ध हुई हैं।

इस दशक के बालसाहित्य की एक महान उपलब्धि हैं—उपन्यास। बच्चो के लिए छोटे किन्तु रोचक और प्रेरक उपन्यासो की कमी बहुत दिनो मे महसूस की जा रही थी। इस दिशा मे अब मनहर चौहान, हरिकृष्ण देवसरे, शत्रुघ्नलाल शर्मा, उमाशकर प्रभृति लेखक अग्रसर हुए है और यह विधा अब समृद्ध बन रही है। उमेश प्रकाशन, दिल्ली ने किशोर उपन्यास माला के अन्तर्गत चालीस से भी अधिक उपन्यास प्रकाशित किए हैं। अन्य उल्लेखनीय उपन्यास है—कमल शुक्ल का 'गुजाल,' मनहर चौहान का 'सुरह के पछी,' विमला शर्मा कृत 'एक था छोटा सिपाही,' गोविन्दसिंह का 'हथेली पर हिमालय,' हरिकृष्ण देवसरे कृत 'डाकू का

बेटा,' 'चन्दामामा दूर के,' 'महाबली छत्रसाल,' 'वीर हरदौल,' 'राजा भोज' और 'चन्दू चटपट'। जीवन की समस्याओं तथा यथार्थ घटनाओं पर आधारित उपन्यास हैं—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कृत 'भोला,' विमला लूथरा का 'मा की सहायता,' सत्यप्रकाश अग्रवाल कृत 'एक डर · पाँच निडर' आदि।

नाटकों की दिशा मे अभी भी अभाव है। बाल रुचि के अनुकूल, उपयोगी और सरल नाटकों की कमी पूरी होना आवश्यक है। जो नाटक लिखे भी गए है वे किसी न किसी दृष्टि से दोषपूर्ण हैं। स्थायी प्रयास के रूप में योगेन्द्र कुमार लल्ला द्वारा सम्पादित 'प्रतिनिधि बाल एकांकी' और 'राष्ट्रीय एकांकी' ही उल्लेखनीय है। स्फुट प्रयास है—'कमलेश्वर के नाटक,' कमलेश्वर का ही 'पैसों का पेड़,' अनिलकुमार कृत 'आओ बच्चो नाटक खेलें' (तीन भाग), भानु मेहता का 'वे सपनों के देश से लौट आए,' परितोष गार्गी कृत 'गार्गी के नाटक' मस्तराम कपूर उर्मिल कृत 'बच्चों के नाटक' आदि।

इस अवधि मे जीवनी साहित्य भी प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हुआ है, किन्तु उसमे किसी प्रकार की नवीनता के दर्शन नहीं होते। उमेश प्रकाशन, दिल्ली की 'जीवनोपन्यास माला' के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तकें तथा हरिकृष्ण देवसरे की 'ये कहानी वाले' ही कुछ नवीनता लेकर लिखी गई हैं, किन्तु ये प्रयास अधिक महत्त्व नही पा सके।

बच्चों के लिए इधर कई नई पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुई है। 'नन्दन,' 'पराग,' 'मिलिन्द,' 'बालजगत,' 'राजा भैया,' 'रानी बिटिया,' 'शेरसखा' मासिकों के अतिरिक्त हिन्दी मे पहली बार समाचार-साप्ताहिक 'बच्चो का अखबार' भी प्रकाशित हुआ है। इनका विस्तृत विवेचन आगे के अध्यायों मे किया गया है।

इस प्रकार वर्तमान काल मे हिन्दी बालसाहित्य प्रचुर मात्रा मे लिखा जा रहा है। इस प्रगति को देखकर भविष्य के प्रति बहुत आशावान हुआ जा सकता है।

(ख) प्रमुख प्रवृत्तियां :

आज यह स्पष्टत: महसूस किया जा रहा है कि केवल स्कूल की पढ़ाई बच्चों के बौद्धिक विकास के लिए पर्याप्त नही है। विदेशो मे प्रचलित बाल-विकास के अनेक सूत्रों को भारतीय परिवेश मे रखकर देखा गया और तब मालूम हुआ कि कोई कारण नही है कि भारतीय बच्चे भी विकसित और उन्नतिशील न बन सकें। खेल-कूद आदि के अलावा बालसाहित्य एक ऐसा महत्त्वपूर्ण पहलू सिद्ध हुआ जो बच्चों के विभिन्न सस्कारों को सजाता-संवारता है। बच्चों को अभी तक जिस ढकोसलावादी साहित्य से बहलाया जा रहा था, उससे उन्हें बाहर निकालना आवश्यक हो गया। एक ओर विज्ञान ने रहस्यों का पर्दा हटाकर उसकी वास्तविकता से परिचित करा दिया है तो दूसरी ओर सामाजिक क्रान्ति और पाश्चात्य प्रभाव ने अनेक मान्यताओं को बदलने के लिए विवश कर दिया

बच्चों के सुदृढ विकास तथा उन्हे भावी दुनिया का एक कर्मठ और योग्य नागरिक बनाने के लिए यह आवश्यक हो गया कि बच्चो को वह सब कुछ दिया जाये जो उनका मनोरजन तो करे ही, साथ-साथ उन्हे नया दिशा-दर्शन भी दे।

यह नया दिशा-दर्शन विज्ञान की उपलब्धियों से निर्मित हुआ है। यही कारण था कि इस दशक मे अधिकाश लेखक वैज्ञानिक युग का परिवेश देकर बाल-साहित्य रचना के लिए प्रवृत्त हुए हैं। यहा तक कि ८५ वर्षीय वयोवृद्ध 'बालसखा' सम्पादक प० लल्लीप्रसाद पाण्डेय ने पिछले दिनो एक भेंट मे इन पक्तियो के लेखक से कहा—"मैं 'बालसखा' के कवियों को बताना चाहता हू कि वे अपना स्वर बदले। अब सूरज के उगने मे, फूलो के खिलने मे, कोयल के कूकने मे कोई नई बात नही रही। यह बाते तो सैकडो वर्षो से लिखी जा रही हैं। आज तो आवश्यकता है वह सब कुछ लिखने की जो हमारे सामने नए रूप मे वास्तव मे आया है और जो भविष्य मे नई उपलब्धियो की आशा दे रहा है।" वास्तव में आवश्यक्ता इसी की है। यदि विदेशी बालसाहित्य की प्रवृत्तियो का अध्ययन करें तो वहा इस विचारधारा का जन्म अब से बीस साल पहले ही हो चुका है। हमारे यहा अब बच्चो को सभी कुछ नीतिपरक या शिक्षाप्रद ही नहीं होना चाहिए वलिक जीवन के सत्यो को उद्घाटित कर भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने वाला साहित्य चाहिए। अब तो बच्चों के लिए उनके स्तर के जासूसी उपन्यास भी उपयोगी माने जाने लगे हैं। विदेशों मे तो बच्चो को 'सैक्स' की जानकारी देने के भी प्रयोग हो रहे हैं और इसके लिए उपयुक्त माध्यमो की खोज तथा इस जानकारी की उपयुक्तता तथा अनुपयुक्तता पर भी अनुसधान हो रहा है।

(ग) प्रमुख लेखक तथा रचनाएं :

इस समय भी जहा पुराने लेखक बच्चो के लिए सुरुचिपूर्ण साहित्य लिख रहे हैं, वहीं नए लेखक भी अपनी रचनाओ द्वारा नई विचारधारा तथा मान्यताओं को स्थापित कर रहे हैं। पिछले दशक मे हिन्दी बालसाहित्य के कई नए रचनाकारो ने अपने को स्थापित किया है। उनका विवेचन यहा प्रस्तुत है—

१. श्री श्रीप्रसाद—श्रीप्रसाद जी बच्चो के लिए छोटी किन्तु रोचक कविताए लिखने में सिद्धहस्त है। आपकी अनेक रचनाए इन दिनो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रहती है। बच्चो की रुचियो तथा समस्याओ पर भी आपने निबन्ध लिखे हैं। आपकी एक रोचक कविता यहा प्रस्तुत है—

नही चाहता हू मैं दौलत, नही महल की इच्छा,
सोना चादी नही चाहिए कर लो क्यो न परीक्षा।
× × ×
लेकिन एक चीज मत लेना मेरी विनय यही है,
वह मा का है प्यार कहो क्या ऐसी वस्तु नही है?

२ अनिल कुमार—आपने बच्चो के लिए कविताए तथा नाटक प्रचुर मात्रा मे लिखे हैं। आपकी पुस्तक 'आओ बच्चो नाटक खलें' तीन भागो मे प्रकाशित हुई है। इसमे बच्चो के लिए अनेक सरल और अभिनेय एकाकी सग्रहीत हैं। इन नाटको के विषय ही पौराणिक, नीतिपरक, साहसिक तथा आधुनिक—सभी प्रकार के हैं। शायद लेखक ने ऐसा केवल इसलिए किया है कि बच्चे प्रत्येक युग के विचारो तथा कार्यो से परिचित हो जाए। नाटको के दृश्य, पात्र सयोजन, भाषा, सवाद—सभी बच्चो की बुद्धि तथा सीमाओ के अनुकूल हैं।

३. राष्ट्रबन्धु—बच्चो के लिए लिखने मे आपकी विशेष रुचि है। आप बालसाहित्य के विकास तथा उसके अस्तित्व निर्माण की दिशा मे भी प्रयत्नशील हैं। बच्चो के लिए आपने मुख्य रूप से कविताए ही लिखी हैं। आपकी प्रकाशित पुस्तको मे—'बाल भूषण,' 'कत्तक थैया,' 'वीणा के गीत,' 'ये महापुरुष कैसे बने' उल्लेखनीय हैं। आपकी एक रोचक कविता यहा प्रस्तुत है—

मुह धोने का सरल उपाय, काची कूची कौआ खाय।
दूध बताशा 'भूषण' खाय।
चाची की है चिट्ठी, तेरी मेरी मिट्ठी।
दोनो पीसें पिट्ठी।
जयरामजी की, पूडी खिलाओ घी की।
बातें कहो जी की।
तेली के भाई तेली के, पूरे पाच पसेरी के,
मक्खीचूस हवेली के।

४ डा० रामधारी सिंह 'दिनकर'—'दिनकर' जी ने बच्चो के लिए भी बहुत सरस और उपयोगी काव्य कृतियों की रचना की है। आपके काव्य मे बालमन की कल्पना की उडान परम्पराओ से मुक्त होती है। उसमे आधुनिक जगत् और विज्ञान का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'चन्दामामा' का स्वरूप अब बदल गया है। एक बालक उसे 'दिनकर' जी की शब्दावली मे कितने रोचक ढग से देखता है—

एक बार की बात चन्द्रमा बोला अपनी मा से,
कुर्ता एक नाप का मेरी मा मुझको सिलवा दे।
नगे तन बारहों मास मैं या ही घूमा करता,
गर्मी वर्षा जाडा हरदम बड कष्ट से सहता।
मा हसकर बोली सिर पर रख हाथ चूमकर मुखडा,
बटा खूब समझती हू मैं तेरा सारा दुखडा।
लेकिन तू तो एक नाप मे कभी नही रहता है।
पूरा कभी, कभी आधा बिलकुल न कभी दिखता है।

आहा मा फिर तो हर दिन की मेरी नाप लिवा दे,
एक नही पूरे पन्द्रह तू कुरते मुझे सिला दे।

वच्चो के लिए लिखी आपकी पुस्तको के नाम है—'धूप छाह', 'मिर्च का मजा', 'चित्तौर का साका'। आपकी प्रेरणा से अजन्ता प्रेस, पटना से वच्चो के लिए 'चुन्नू-मुन्नू' बाल मासिक का भी प्रकाशन हुआ था। पर यह पत्र अधिक दिनो तक नही चल सका।

५ चन्द्रपालसिंह यादव 'मयक'—'मयक' जी वच्चो के परिचित कवियो मे हैं। आप बालको को शिक्षा देने वाला और मनोरजक साहित्य देने के अधिक पक्ष मे है। उनका विचार है—"वाल कविताओ के लेखको के लिए यह आवश्यक है कि वे स्वय 'बच्चा वनकर' बच्चो के लिए लिखें। बच्चो की रचना का विषय इतना वोझिल न हो कि वह वच्चो के मस्तिष्क के लिए मनोरजन का तत्त्व खो बैठे।"

आपकी कविताए मनोरजक, सरल और यथार्थ के निकट होती है। 'हवा' शीर्षक कविता मे एक बालक की, जो बैठा तो कमरे म पढने क लिए है, पर मन ही मन वाहर जाकर खेलने के लिए उत्सुक है—इस अनुभूति का कितना सुन्दर वर्णन है—

हवा, कहा से आती हो तुम ?
जव भीषण गर्मी के मारे मन मे बेचैनी भर जाती,
दूर कही से आ करके तव मन को धीर बधाती हो तुम।
हवा कहा से आती हो तुम ?

मैं तो यहा बन्द कमरे मे, पुस्तक लेकर बैठा हू,
पर बागो मे, मैदानो मे खुश होकर मुस्काती हो तुम।
हवा कहा से आती हो तुम ?

हवा, अरे कितनी अच्छी हो, पढने की न तुम्हें झझट है,
वस केवल घूमा करती हो, जी भर मौज उडाती हो तुम।
हवा कहा से आती हो तुम ?

आपकी बालोपयोगी कविताओ की प्रकाशित पुस्तका के नाम हैं—'किसान गीत', 'साहसी सेठानी', 'परियो का नाच', 'सैर सपाटा' आदि।

६ रामवचनसिंह आनन्द—आनन्द जी बच्चा के लिए सुन्दर और प्रेरक कविताए लिखते है। आप वच्चो को उन्ही की रुचि के अनुकूल नई नई बातें कविता के माध्यम से वताने का प्रयत्न करते हैं। 'पढो पढो माई के लाल' मे आपने एक अक्षर पर दो सतरो की कविता लिखकर वच्चो को 'अक्षर ज्ञान' कराने का प्रयोग किया है—

आ— आम पके अमराई मे लो गिरने लगे टपक के।
लगे चूसने सारे लडके चुन चुन दौडे लपके।

ओ— औरत ने झरने के जल मे डाला अपना मटका,
'गुर-गुर' पानी दौड़ा उसमे, हुआ गुड़र गुड़ गटका।

बच्चो के लिए आपकी 'अगलू-मगलू', 'बात बात मे वर्णमाला' पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

७. विनोदचन्द्र पाण्डेय 'विनोद'—विनोद जी को बचपन मे ही कविताए लिखने मे रुचि रही है। अब वह बच्चो के प्रतिष्ठित कवियो मे है। आपकी 'विनोद वाटिका', 'वीर सौभद्र' आदि पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं। 'तितली' शीर्षक कविता मे बाल मन की रगीली कल्पना कितनी सुन्दर है—

तितली रानी बडी सयानी फूलो पर मंडराती।
रगरगीले नीले पीले पखो पर इतराती॥
वह मतवाली बडी निराली सबका मन भर देती।
फूल-फूल पर झूल-झूल कर उससे मधुरस लेती॥
उठती गिरती उडती फिरती करती नित मनमानी।
नाच दिखाती मन बहलाती, तितली मस्त दिवानी॥

८. मनहर चौहान—चौहानजी अपने विद्यार्थी जीवन से ही बालसाहित्य की रचना कर रहे हैं। आपका गुजराती से अनूदित बाल उपन्यास 'जादूगर कबीर' साप्ताहिक हिन्दुस्तान मे प्रकाशित हुआ था। इसे बच्चो ने बहुत पसन्द किया था। आपने बच्चों के लिए अनेक कहानिया और उपन्यास लिखे हैं। उपन्यासों मे 'खूब लडी मर्दानी', 'हल्दी घाटी' तथा 'जय भवानी' प्रमुख है। कहानी की उल्लेखनीय पुस्तकों के नाम हैं—'देश देश की परिया आईं', 'रग बिरगी परिया', 'हाथी का शिकार', 'रूप और लल्ली' तथा 'पूपू'। बच्चो की समस्याओं तथा आधुनिक जीवन के विविध पहलुओ पर कहानिया लिखने म आपने विशेष सफलता प्राप्त की है।

९. जयप्रकाश भारती—भारती जी बालसाहित्य के अनन्य सेवक हैं। बाल-साहित्य की लगभग सौ से भी अधिक पुस्तको का आप सपादन कर चुके है। आपकी रोचक पुस्तकों मे 'बर्फ की गुडिया,' 'विज्ञान की विभूतिया,' तथा 'अस्त्र शस्त्र' हैं। बाल मनोविज्ञान के अनुकूल बालसाहित्य लिखने मे भारती जी सिद्ध-हस्त हैं। 'बर्फ की गुडिया' में जहा परी-लोक की कल्पना है वही उसमे विज्ञान के आधुनिक जगत् का भी रूप झलकता है। 'उनका बचपन यू बीता' शीर्षक पुस्तक भी भारती जी की उल्लेखनीय कृति है। इसमे हमारे महापुरुषों के बचपन की बहुत ही रोचक तथा प्रेरक घटनाए वर्णित हैं।

भारती जी बालसाहित्य की वृद्धि के विकास मे मिश्नरी भावना से काम करने के पक्षपाती हैं। आपको बालसाहित्य के अखिल भारतीय पुरस्कार भी प्राप्त हो चुके है। आपके ही कुशल निर्देशन मे बालसाहित्य की प्रमुख प्रकाशन सस्था—'शकुन प्रकाशन' ने केवल बालसाहित्य प्रकाशन का ही व्रत लिया।

१० योगेन्द्रकुमार लल्ला—लल्लाजी न केवल एक कुशल लेखक है बल्कि चित्रकार भी हैं। आपने हिन्दी बालसाहित्य को कई योजनाबद्ध प्रकाशन दिए हैं और वे कम से कम हिन्दी मे तो निश्चित ही प्रथम तथा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए। 'प्रतिनिधि बाल सामूहिक गान,' 'प्रतिनिधि सामूहिक गान,' 'प्रतिनिधि राष्ट्रीय एकाकी,' 'प्रतिनिधि वैज्ञानिक कथाए' आदि लल्ला जी द्वारा सपादित पुस्तकें हैं और बालसाहित्य की इन से बहुत बडी कमी पूरी हुई है। लल्लाजी ने बच्चो मे 'खेल खेल मे विज्ञान' तथा इसी तरह के अन्य क्रियात्मक भाव उत्पन्न करने वाले खेलो से सबधित पुस्तकें भी लिखी है। बालसाहित्य के लिए पूरी लगन से कार्य करने मे ही आप अपनी सफलता मानते हैं।

११ श्रीकृष्ण—श्रीकृष्णजी भी लल्लाजी के साथ प्रतिनिधि साहित्य के सकलन मे सपादक के रूप मे थे। बालसाहित्य से आपको विशेष लगाव है। बच्चों के लिए विचित्रता तथा अचरजभरी बातो का साहित्य लिखने म आप अग्रणी हैं। आपने हिन्दी बालसाहित्य की नाटक विधा का भण्डार भरने मे भी काफी योगदान दिया है। न केवल रेडियो एकाकी बल्कि मच एकाकी लिखने मे भी श्रीकृष्ण जी सिद्धहस्त हैं।

१२ रत्नप्रकाश शील—बच्चों के लिए बाल-उपन्यास मासिक का प्रकाशन-प्रयोग करने का साहस आपने ही हिन्दी मे पहली बार किया। सीमित साधनो के बावजूद भी 'मिलिन्द' निकला और अब वह एक सुन्दर मासिक बालपत्र के रूप मे बच्चो का मन बहलाता है। शील जी बच्चो की रुचि को समझते है और उन्हे उसी के अनुकूल साहित्य देते है। आपकी पुस्तक 'विज्ञान की कहानिया' भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है।

इन लेखको के अतिरिक्त भी अनुप्मलाल शर्मा, दयाशकर मिश्र दद्दा, वेद मित्र, देवराज दिनेश, रामकृष्ण शर्मा आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये सभी बालसाहित्य को समृद्धि तथा विकास मे लगे हुए हैं। श्री योगेन्द्रकुमार लल्ला और जयप्रकाश भारती तथा श्रीकृष्ण ने बालसाहित्य को सफलतापूर्वक सम्पादित प्रकाशित करने मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। लल्लाजी द्वारा सम्पादित तथा आत्माराम एण्ड सस दिल्ली से प्रकाशित एव जयप्रकाश भारती द्वारा सम्पादित तथा शकुन प्रकाशन द्वारा प्रकाशित बालसाहित्य आजकल बहुत लोकप्रिय हुआ है। आशा है भविष्य मे इस दिशा की ओर अग्रसर होने वाले और भी लेखक-प्रकाशक उसे समृद्धिशाली बनाने का प्रयास करेंगे।

(अ) महिलाओं द्वारा बालसाहित्य की समृद्धि में योगदान

बालमन की भावनाओं, अनुभूतियो तथा विचारो को मा से अधिक भला कौन समझ सकता है। भारत मे तो 'मा' को जो महत्त्व प्राप्त है, वह अन्यत्र नहीं है। कहते हैं एक बार पार्वती जी ने गणेश और कार्तिकेय से कहा कि देखू तुम

दोनों में से कौन पृथ्वी का चक्कर पहले लगाकर आता है। गणेश और कार्त्तिकेय ने दौडना शुरू किया। लेकिन गणेश चूहे से थोडी दूर जाकर ही लौट आए, उन्होंने पार्वती के तीन चक्कर लगाए और बैठ गए। काफी देर बाद कार्त्तिकेय लौटकर आए और उन्होंने गणेश जी पर दोष लगाया कि वह बिना चक्कर लगाए ही आ गए। गणेश जी बोले—'तुम तो केवल पृथ्वी का चक्कर लगाकर आए हो। मैं समस्त जगत् का चक्कर लगाकर आ रहा हू।'

'सो कैसे ?' कार्त्तिकेय ने पूछा।

'मैंने माता पार्वती के तीन चक्कर लगाए और तीनो लोको की यात्रा पूरी करली। हमारी मा तो स्वय जगत-जननी हैं। फिर भला पृथ्वी के लिए दौडने से क्या लाभ ?'

मा का यह महत्त्व भारत की अपनी परम्परा का ही द्योतक है। श्री निरकारदेव सेवक ने भारतीय और पाश्चात्य मा की तुलना करते हुए लिखा है—"भारतीय माता अपने बच्चे के लिए त्याग, तप करने मे अग्रेज माता से अधिक बढ-चढ कर होती है। फूहड से फूहड भारतीय मा शीत की कठिन रात मे बच्चे द्वारा बिस्तर पर मूत्र त्याग कर देने पर सहर्ष बच्चे को सूखे भाग मे सुलाकर स्वय गीले मे पडा रहना पसन्द कर लेती है। पर अग्रेज माताओ मे त्याग की ऐसी भावना नही होती। इन्ही सब कारणो से अपने बच्चे के प्रति अग्रेज माताओं की अपेक्षा भारतीय 'मा' का सम्बन्ध अधिक ममतापूर्ण और मधुर होता है। मा के इस सम्बन्ध की ही अभिव्यक्ति लोरियो और ललनोज मे होती है।"[1]

हिन्दी मे अनेक ऐसी कवयित्रिया हुई हैं जिन्होने बच्चो के लिए मधुर गीत तथा लोरिया लिखी हैं। इन लेखिकाओ ने न केवल बालसाहित्य को समृद्ध बनाया है, बल्कि उनमे एक ऐसे माधुर्य का सचार भी किया है, जो मा के हृदय द्वारा ही अभिव्यक्त हो सकता है। "पुरुष प्रयत्न करके भी भावो की वह कोमलता और कल्पनाओ की वह बारीकी नही ला सकते जिनके आधार पर सरस और मधुर लोरिया लिखी जाती हैं।"[2] आगे के विवेचन मे हम स्पष्टत देख सकते है कि मा किस प्रकार अपने बच्चो को दुलराती है, उसके प्रत्येक कार्य को सूक्ष्म दृष्टि से देखती है और उसके भविष्य के बारे मे कितनी मधुर कल्पनाए सजोए रहती है।

हिन्दी बालसाहित्य को प्रत्येक समय मे ऐसी लेखिकाओ ने समृद्ध बनाने का यत्न किया है। उनके काव्य के महत्त्व तथा मूल्याकन सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत है—

१ श्रीमती गोपालदेवी—आप सभवत सबसे प्रथम और सबसे प्राचीन महिला बालसाहित्य लेखिका थी। आप 'शिशु' की सम्पादिका भी थी और इसलिए भी बच्चो के लिए रोचक मनोरजक साहित्य लिखने मे कुशलता प्राप्त थी। आपकी अनेक कहानिया 'शिशु' मे प्रकाशित हुई है। कुछ कहानिया है—'वशीवाला'

---

१ बालगीत साहित्य, पृष्ठ ६८।

२ वही पृष्ठ ६९।

(शिशु, फरवरी १९२८), 'राजा बेटी' (शिशु, अगस्त १९२६), 'जादू का हम' (शिशु, सितम्बर १९२५)। आपकी 'वशीवाला' कहानी के कुछ अश इस प्रकार है—"माता ने कहानियो की किताब बन्द करते हुए कहा—'इस कहानी का कैसा दुखदायी अन्त हुआ।' वह कुन्नी और बिट्टो को एक कहानी सुना रही थी जिसमे किसी वशीवाले के पीछे उसकी बशी की आवाज सुनते-सुनते दो बालिकाए अपने घर से बहुत दूर चली गई थी और फिर उनका पता न लगा।

बिट्टो ने कहा, 'अच्छा हुआ, उसने मुझ पर अपना जादू नही डाला।'

'मैं तो कभी न जाती', कुन्नी बोली, बिट्टो ने फिर कहा, 'जाती भी तो जहा यह सडक खतम होती है वहा से लौट आती।'

माता ने हसकर कहा, 'तुम दोनो बडी चालाक हो।'

२ श्रीमती तारा पाडे—आपने बच्चो के लिए अनेक सुन्दर गीत लिखे। य गीत 'बालसखा' मे सन् '४६ से '४८ के बीच समय समय पर प्रकाशित होते रह हैं। आपके गीतो मे बच्चो का भविष्य गौरवमय तथा उज्ज्वल बनाने की उत्कट अभिलाषा व्यक्त हुई थी। बच्चो मे राष्ट्रीय भावना का सचार तथा उनके भविष्य की कामना से पूर्ण प्रस्तुत गीत द्रष्टव्य है—

आओ तुम्हे सुनाऊ गान।
बोलो जय भारत माता की,
जिसके हो तुम लाल।
जो तुमको सब सुख देकर,
करती है सदा निहाल।
करो उसीका ही गुणगान।
हो यह वर्ष सुखद और सुन्दर,
यही कामना मन की।
प्राणो मे आनन्द जगाओ,
जगे ज्योति जीवन की।
पाओ यही अमर वरदान।[1]

३ श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान—सुभद्रा जी ने जहा 'बुदेले हरबोलो के मुख' सुनकर राष्ट्रीयता का अलख जगाया था, वही इन्होने अपना बचपन याद कर बच्चो के लिए भी अनेक गीत लिखे। इनमे जिन प्रसगो को चुनकर सुभद्रा जी ने काव्यमय रूप दिया है, वे बडे ही मार्मिक और बाल-प्रवृत्ति के अनुकूल हैं। यही कारण है कि वे सभी गीत न केवल प्रभावोत्पादक बन पडे हैं, बल्कि बालगीत-साहित्य मे ऐतिहासिक महत्त्व के है। 'अजय की पाठशाला जाना' सुभद्रा जी के पुत्र 'अजय चौहान' की ही घटना, नही है बल्कि वह उनके लाडलो

---

१. बालसखा, अक्टूबर १९३३।

की है जो अपनी मा की गोद छोडकर पहली बार किसी ऐसी जगह जाते हैं जहा उनका नहीं बल्कि किसी और का शासन होता है—

उस दिन पहले पहल अजय जब पढने गया पाठशाला,
उन्हे गुरुजी ने घर भेजा, पहना फूलो की माला।
पूछा गया नाम, तब बोले, मुझे बड भैया कहते,
घर मे भी हम नही खेलते, 'छाले दिन पलते रहते।'
शाम हुई जब घर को लौटे, पट्टी और पुस्तक लेकर,
उनके स्वागत को उत्सुक मा खडा हुआ था सारा घर।
मा ने कहा, दूध तुम पी लो, बोले 'जला टहल जाओ,
मा पलने के समय बोलती हो क्या अब तुम बतलाओ।
तुम पलती हो हम आते है तब तुम होती हो नाराज़,
मैं भी तो पलने बैठा हू फिर क्यो बोल रही हो आज।'
× × ×
दो दिन धूम रही शाला की, खूब हुआ लिखना-पढना,
याद आगया किन्तु तीसरे ही दिन पेडो का चढना।
× × ×
यही मजे से पडा पर चढ विही तोड कर खाता हू,
मा शाला मे बैठा बैठा मैं दिनभर थक जाता हू।
आज पेड पर बैठूगा मैं पहने फूलो की माला,
मा मत शाला भेज इकट्ठा मैंने सब कुछ पढ डाला।[१]

सुभद्रा जी ने बालको के मनोविज्ञान को भली भाति समझा था। इसीलिए बाल-मनोवृत्तियो का चित्रण आपने बडी सफलतापूर्वक किया है। बच्चो का जिद करना, मचलना, खेलना, बहाने बनाना और तरह तरह के तर्क प्रस्तुत करना आपके गीतो मे बहुत सुन्दर ढग से व्यक्त हुआ है। पतग के लिए विनय तथा तरह-तरह के तर्क प्रस्तुत करने वाले बालक का चित्र कितना सजीव है—

बनिये की दुकान पर अम्मा, आये है पतग इतने,
एक नही दो नही सुनो मा उतने तारे है जितने।
लाल-लाल है हरे-हरे हैं, पीले और चाद तारा,
धेले वाला भी पतग मा लगता हमे बहुत प्यारा।
पैसे वाला ले दो मा या धेले वाला ही ले दो,
क्यो देरी करती जाती हो, चलो उठो पैसा दे दो।
तुम तो नही समझती हो मा पतग और मझे की बात,
घर मे बैठी-बैठी जाने क्या करती रहती दिन रात।
आओ चलकर बाहर देखो उडती हैं पतग कितनी।

१ बालसखा, अक्टूबर १६३३।

बच्चो मे राष्ट्रीय भावनाओ का सचार करने मे सुभद्रा जी भला कैसे पीछे रहती। 'सभा का खेल' पुस्तक की पहली कविता इसी शीर्षक की है और इसमे राष्ट्रीय भावना कितने सरस एव बालसुलभ ढग से व्यक्त हुई है—

सभा सभा का खेल आज हम,
खेलेंगे जीजी आओ।
मैं गाधी जी, छोटे नेहरू
तुम सरोजनी बन जाओ।
छोडो सभी विदेशी चीजें,
लो देशी सुई तागा।
इतने मे आए काका जी,
नेहरू सीट छोडकर भागा।

बाल-कल्पना की उडान कितनी निश्छल, स्वाभाविक और सरल होती है, इसका सुन्दर उदाहरण सुभद्रा जी की 'यह कदम्ब का पेड' कविता है। इसमे श्रीकृष्ण की कथा सुनकर, उन जैसा ही नटखट और चतुर बनने का प्रयास बालोचित ही है—

यह कदब का पेड अगर मा होता यमुना तीरे,
मैं भी उस पर बैठ, कन्हैया बनता धीरे-धीरे।
ले देती यदि मुझे बासुरी तुम दो पैसे वाली,
किसी तरह नीची हो जाती, यह कदब की डाली।
तुम्हे नही कुछ कहता पर मैं चुपके-चुपके आता,
उस नीची डाली से अम्मा ऊचे पर चढ जाता।
वही बैठ फिर बडे मजे से मैं बासुरी बजाता,
अम्मा अम्मा कह बसी के स्वर मे तुम्हे बुलाता।
× × ×
बहुत बुलाने पर भी मा जब मैं न उतरकर आता,
मा, तब मा का हृदय तुम्हारा बहुत विकल हो जाता।
तुम आचल फैलाकर अम्मा वही पड के नीचे,
ईश्वर से कुछ विनती करती बैठी आखें मीचे।
तुम्हे ध्यान मे लगी देख मैं धीरे धीरे आता,
और तुम्हारे फैले आचल के नीचे छिप जाता।
तुम घबरा कर आख खोलती, पर मा खुश हो जाती,
जब अपने 'मुन्ना राजा' को गोदी मे ही पाती।
इसी तरह कुछ खेला करते हम तुम धीरे धीरे।
यह कदब का पेड अगर मा होता यमुना तीरे।

इस प्रकार सुभद्रा जी ने बालसाहित्य को कुछ ऐसी अमूल्य रचनाए दी है, जिनके लिए वह सदा ऋणी रहेगा।

४. श्रीमती शान्ति अग्रवाल—आपने बच्चों के लिए प्रचुर मात्रा में लिखा है। आपकी अनेक बालोपयोगी रचनाए सन् '४५ मे 'बालसखा' मे प्रकाशित हुई है। आपकी दो बालोपयोगी पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं—'बाल वीणा' और 'बाल सौरभ।' बच्चो की मनोवृत्तियों तथा रुचियो से परिचित होकर सरल और सादी भाषा मे अभिव्यक्त करने मे आप बहुत कुशल है। बालक का तग करना, रूठना, मनाना कितने सहज रूप मे प्रस्तुत हुआ है—

छोटा सा मेरा लाला, रोज मचाता गडबड झाला।
तोडफोड कर खेल फेंकता, पानी मे भी खूब खेलता।
काम नही कुछ करने देता, साथ-साथ है फिरता रहता।
तब मैं गुस्सा हो जाती हू, उससे चट यह कह देती हू।
'तेरी अम्मा नही बनूगी, खेल मिठाई तुझे न दूगी।
कभी न मैं तुझसे बोलूगी, और न तुझको प्यार करूगी।'
तब कहता वह अम्मा रानी, अब न करूगा मै शैतानी।
कभी तुम्हे अब दिक न करूगा, कहा तुम्हारा मैं मानूगा।
'राजा बेटा' कह दो अम्मा प्यार मुझे अब कर लो अम्मा।
तब कहती मैं—'मेरा बेटा, सचमुच तू है राजा बेटा।
सचमुच तू है राजदुलारा, हा मेरी आखो का तारा।''[१]

५ शकुन्तला मिश्र—आपने अनेक वर्षो तक बालसाहित्य की सेवा की है। सन् '४८ से '५२ तक आपकी रचनाए 'बालसखा' मे नियमित रूप से छपती रही हैं। आपने अनेक नाटक, कहानियो आदि की रचना की है। आपकी कहानियो मे 'मैं उदासीन नही हू' तथा 'सूखे सन्तरे' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

६. सुशीला कक्कड़—आपने बच्चो के लिए अनेक कविताए तथा कहानिया लिखी। आपकी रचनाए सन् १९३२-३३ मे मुख्यत बालसखा मे ही छपी है। एक मा अपने बच्चे को विनयी, शील तथा आज्ञाकारी बनाने के लिए जो कुछ सोचती है, उसी तरह के सस्कार बच्चो पर भी पडते हैं—

प्रभो दो ऐसी शक्ति महान।
निर्धन धनी सबल औ' निर्बल ज्ञानवान अज्ञान।
भेद न मानू कभी किसी मे, सब हो एक समान।
झूठे जात-पात का जग मे, रहे न नाम निशान।
एक पिता और एक राष्ट्र की हों हम सब सन्तान।[२]

---

१. बालसखा, जुलाई १९४५, पृष्ठ २११।
२ बालसखा, अप्रैल १९३३।

बच्चो मे राष्ट्रीयता तथा बापू के स्वदेशी के सिद्धान्त का भाव जगाने के लिए प्रस्तुत गीत बहुत अच्छा है—

जगत मे हैं वही अच्छे जो सबका कष्ट हरते हैं,
विनय से बोलते है, गुरुजनो का मान करते हैं।
× × ×
स्वदेशी का विदेशी म अधिक जो मान करते हैं,
सदा निज देश की चीजो प जो अभिमान करते हैं।[1]

७ विद्यावती कोकिल—बच्चा के लिए लोरिया हिन्दी मे बहुत कम लिखी गई है। 'कुछ कवयित्रियो ने इस दिशा म प्रयास किया है और उनमे कोकिल जी भी एक हैं। आपने बडी सरस और सगीतमय लोरिया लिखी है—

निंदिया बहुत ललन का प्यारी।
अपने प्राणो का दीपक कर जीवन की कर बाती।
सिरहाने बैठी बैठी हू कब से उसे जगाती।
निंदिया बहुत ललन को प्यारी।

बच्चों की अनुभूतियो को भी कोकिल जी ने बडी सूक्ष्मता से देखा परखा है। आपका एक बालगीत इसका उदाहरण है—

मुझको आता हुआ देख कर,
चिडिया क्यो उड जाती है ?
मेरे सींचे हुए आम की,
इन बौराई डाली पर।
कठिन गगन यात्रा से थककर,
पहर पहर सुस्ताती है।
मुझको आता हुआ देखकर,
चिडिया क्यो उड जाती है ?[2]

८ शान्ति मेहरोत्रा—बच्चो के लिए सरल कविताए, कहानिया तथा नाटक लिखने म आपने विशेष सफलता प्राप्त की है। आप आकाशवाणी इलाहाबाद से बच्चों का कार्यक्रम भी प्रस्तुत करती हैं। बच्चो की चपलता, मा को तग करना, चिढाना और फिर रूठकर मान जाना—प्रस्तुत गीत मे द्रष्टव्य है—

पहना सुन्दर सुन्दर वस्त्र भेजोगी न मुझे इस्कूल,
जानबूझ कर मैं चालाक, जाऊगा कुछ बाकी भूल।

---

१ बालसखा, जनवरी, १९३२।
२ बालसखा, मई १९४०।

कभी मचलकर मैं हठ ठान, कह दूगा मैला है पैंट,
या कि कहूगा मेरे पास अभी नही पुस्तक अर्जेण्ट।
जबकि सातवें घंटे बीच आजाएगी उस ही रोज,
हो जाएगी उस ही रोज मेरी सब ड्राइग बरबाद।
निकल किसी कोने से तेज भग जाऊगा तेरे पास।
कहते पंडित जी मुन्ना कि करुणाशकर है बदमाश।

६ सुमित्राकुमारी सिन्हा—आप आकाशवाणी लखनऊ मे हैं। बच्चो के लिए सहगान तथा प्रयाण गीत लिखने मे आपने विशेष ख्याति प्राप्त की है। बालोपयोगी कविताओ की आपकी दो पुस्तकें 'आगन का फूल' तथा 'दादी का मटका' और कहानी की 'कथाकुज' प्रकाशित हो चुकी है। एक सहगान प्रस्तुत है—

हम मनमोहन, हम गोपाल, नाचें सब मिल देकर ताल।
ता-ता थैया, ता-ता थैया॥
खिलती है बागो मे कलिया, गमक रही फूलो की डलिया।
चलो मनाए हम रगरलिया, देश हमारा ब्रज की गलिया॥
हम मनमोहन हम गोपाल, नाचे सब मिल देकर ताल॥

१० शकुन्तला सिरोठिया—आपने बच्चो के लिए सरस, रोचक और गेय गीत लिखे है। इनमे बालमन की झाकी स्पष्ट झलकती है—

अम्मा मुन्ना नही मानता, मेरी गुडिया लेता है।
अपनी गेंद छिपा देता है, मुझ से बहुत झगडता है।
अम्मा तेरी मुन्नी मेरी रोज शिकायत करती है,
मैं गुडिया से व्याह करूगा, यह क्यो नही समझती है।

आपने बच्चो के लिए लोरिया भी प्रचुर सख्या मे लिखी है—

आख बन्द कर सुन रे मुन्ना! बाज रही शहनाई।
तेरी पलको पर शरमीली, नीद उतर कर आई।
बात नही करती है लाओ, तू भी अब चुप हो जा।
निदिया के सग मेरे लाडले, जा सपनो मे सो जा।

बच्चो के लिए आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं—'काटो मे खिलते है फूल', 'चटकीले फूल', 'आरी निदिया', 'गीतों भरी कहानी', 'उन्होंने शिकार खेला', 'नन्ही चिडिया', 'शिशु नगर', 'बादल' और 'कारे मेघा पानी दे'।

इन लेखिकाओ के अतिरिक्त श्रीमती गुप्त (उर्मिला), कुमारी कृष्णा सरीन, शोभा मिश्र, शान्तिप्रभा श्रीवास्तव, शशिप्रभा शास्त्री, विभा देवसर, डाली

रिजवी, सावित्रीदेवी वर्मा, मोहिनी राव आदि द्वारा की जा रही बालसाहित्य की सेवाए उल्लेखनीय है।

इस प्रकार बालसाहित्य की समृद्धि मे महिलाओं का भी पूर्ण योगदान रहा है। उनमे बच्चो की हर बात समझने की क्षमता, उनके द्वारा प्रणीत बालसाहित्य को मनोविज्ञान से पुष्ट बना सकने मे सफल रही है। सुभद्रा जी, तारा पाडे, शकुन्तला सिरोठिया आदि की सेवाओ के लिए तो बालसाहित्य जगत सदैव आभारी रहेगा।

(ब) बदलते हुए युग, समाज और जीवन के मूल्यों का बालसाहित्य पर प्रभाव

मानव इतिहास इस बात का प्रमाण है कि बच्चे सदैव अपने देश की धार्मिक मान्यताओं, सास्कृतिक परम्पराओ तथा सुखी जीवन के नियमो द्वारा प्रभावित रहे हैं। कई देशों मे तो आर्थिक पहलू भी इतना प्रभावशाली रहा है, और आज भी अमरीका जैसे देश मे है, उसने लोगो के बच्चो के प्रति व्यवहार का रूप ही बदल दिया। आज जो प्राचीन लोकसाहित्य उपलब्ध है, उसका अध्ययन करने पर पता चलता है कि बच्चे पहले समाज मे सबसे कमजोर, निरर्थक तथा अयोग्य समझे जाते थे। जब तक उन्हे इस योग्य नही तैयार कर दिया जाता था कि वे कुछ धन कमाकर परिवार की सहायता करने लगें, तब तक वे उपेक्षित ही रहते थे। एक भावना अवश्य थी कि लोगो को बच्चो पर इतना विश्वास होता था कि उनके बूढे हो जाने पर बच्चे उनकी परवरिश करेंगे। लेकिन वास्तव मे यह स्वार्थपरता ही थी। स्वार्थसिद्धि की यह भावना कई समाजो मे इतनी प्रबल थी कि वे अपने देवताओ को प्रसन्न करने के लिए बच्चो की बलि चढाने मे भी सकोच नही करते थे। कई समाज ऐसे भी थे जिनमे अपग बच्चों को पैदा होते ही मार डालते थे।

लेकिन जैसे-जैसे बच्चों का महत्त्व लोग समझने लगे, उनके प्रति व्यवहार भी बदलता गया। मानव सभ्यता के विकास के साथ बच्चो के जीवन तथा उनके विकास की ओर भी ध्यान दिया जाने लगा। दुनिया के हर धर्म ने बच्चो की रक्षा तथा उनके प्रति स्नेह की भावना रखने का सदेश दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि बच्चो का जन्म एक शुभ चिन्ह माना जाने लगा। उन्हें समाज का एक महत्त्वपूर्ण सदस्य माना जाने लगा और भविष्य के समाज का निर्माता मानकर उन्हे जीवन के अनुभव तथा ज्ञान देने का कर्त्तव्य बन गया। लोग अपनी लम्बी जीवन यात्रा के सभी पहलुओ की कहानिया बच्चो को सुनाने लगे जिससे वे भविष्य मे उन कठिनाइयो से सघर्ष करने के लिए तैयार रहे और उपलब्धियो की रक्षा करें।

सुखी जीवन जीने के लिए बताए गए ये अनुभव धीरे-धीरे उत्तराधिकार के रूप मे दिए जाने लगे। इस आदान-प्रदान की क्रिया ने अनेक कथा-कहानियो को

जन्म दिया। लेकिन ये कहानिया आपस मे एक-सी होने के बाद भी स्थान, जलवायु, सभ्यता तथा सस्कृति के प्रभाव से विभिन्न थी। प्राचीन कथाओ का अध्ययन करने से पता चलता है कि वे जैसे-जैसे आगे बढती गई, उनका रूप बदलता गया, हालाकि आत्मा वही रही। ये परिवर्तन मुख्यत पशु पक्षियों, नदी-पहाडो, सवारियो, वेश भूषा, खाद्यान्न आदि से सम्बन्धित ही थे। इन परिवर्तनो का एक मुख्य कारण यह भी था कि बच्चो के लिए सुनाई जाने वाली ये कहानिया एक लम्बे युग तक मौखिक ही रही। इसका परिणाम यह हुआ कि जैसे-जैसे वे पीढिया बदलती गई, उन पर बदलते हुए युग और समाज का भी प्रभाव पडा। 'पचतत्र' की अनेक कहानिया, अनेक देशो मे प्रचलित है। लेकिन उन सभी मे स्थानीय विशेषताओ के कारण कुछ न कुछ परिवर्तन हो गया है।

'पचतत्र' की कहानिया, विश्व कथा साहित्य का स्रोत मानी गई हैं। उन कहानियो को, बच्चो को शिक्षा तथा नीति ज्ञान देने के उद्देश्य से लिखा गया था। सभी कहानियों मे तद्‌युगीन सस्कृति तथा परम्पराओं की छाया विद्यमान है। यही स्थिति 'जातक कथाओ' की भी है। भगवान बुद्ध के जन्म से सम्बन्धित ये कथाए, भारत मे बौद्ध-धर्म का प्रचार-प्रसार करने मे बहुत सहायक सिद्ध हुई थी। श्रीमती सावित्री देवी वर्मा का मत है—"जातक कथाए शुद्ध भारतीय साहित्य हैं। ये कथाए बहुत पुरातन है, अतएव यह मानना पडेगा कि बौद्ध कथाओ मे महाभारत और रामायण आदि की जो झलक दिखती है वह उस समय प्रचलित लोक-कथाओ के परस्पर आदान-प्रदान से पैदा हुई है। जातक कथाओं की कई एक कथाए ससार के कोने-कोने तक पहुच गई है। इन कथाओं को फैलाने का श्रेय 'पचतत्र' को है। इसमे कोई सन्देह नही कि इन कथाओ की जननी भी हमारी ये जातक कथाए ही है। यदि मनोरजन के साथ साथ, मन पर अमिट छाप छोडने वाली उपदेशप्रद कहानिया पढनी हो तथा अपने देश की प्राचीन राजनीतिक और सामाजिक अवस्था को जानकारी प्राप्त करनी हो तो जातक कथाओ से बढकर दूसरे किसी कथा-साहित्य की सिफारिश नही की जा सकती।"[१] यह कथन सही है। जातक कथाओ म तद्‌युगीन लोकाचार, रहन सहन, परपरा आदि का सुन्दर परिचय मिलता है। श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन के शब्दो मे "जातक साहित्य मे साधारण बाता से लेकर हमारी शिल्प कला, हमारी कारीगरी हमारे व्यापार की चर्चा के साथ ही साथ हमारी अर्थनीति, राजनीति तथा हमारे समाज सगठन का विस्तृत इतिहास भरा पडा है।'[२]

इससे यह सिद्ध है कि प्राचीन बालसाहित्य मे उस युग के जीवन-मूल्यो, समाज तथा वातावरण का पूरा प्रभाव था। यह प्रभाव ही वास्तव मे समय-समय पर कथाओं के परिवेश मे परिवर्तन की प्रेरणा देता रहा। जब चोरी ठगी,

---

१ जातक कथा, सम्पादिका सावित्री देवी वर्मा, पृष्ठ ३।

२ वही, पृष्ठ ३।

डकैती का प्रभाव बढ़ने लगा तो लोग अपने अनुभवों के आधार पर उन विषयों की कहानियां भी बच्चों को सुनाने लगे, जिससे वे भविष्य के लिए तैयार हो जाएं। यही स्थिति सीमावर्ती प्रदेशों की है, जहां विदेशी शत्रुओं तथा आक्रान्ताओं से लोगों को जूझना पड़ता था। पंजाब, राजस्थान आदि की कथाओं में इस तथ्य की स्पष्ट झलक मिलती है। ये कहानियां उस क्षेत्र के बच्चों को सदैव प्रेरणा तथा साहस देती रही हैं।

फिर आया वह युग जब भारत मुगलों और उनके बाद अंग्रेजों की दासता का शिकार बन गया। मुगलों के प्रभाव के कारण एक ओर भारतीय धर्म तथा संस्कृति की रक्षा के लिए पौराणिक कहानियां तथा धर्म कथाओं का प्रभाव बढ़ा तो साथ साथ मुस्लिम संस्कृति का भी प्रभाव पड़ा। अरबी और फारसी की अनेक कथाएं भारतीय-जनजीवन में प्रचलित हो गई। बच्चों के लिए 'अलीबाबा चालीस चोर' की कहानी इतनी प्रसिद्ध हुई कि आज उसे भारतीय कथा ही समझा जाता है। लेकिन ये सब कहानियां 'अलिफलैला' से निकली थीं और जनजीवन में इतनी घुलमिल गईं कि उन पर भारतीयता का ही रंग चढ़ गया। अन्य प्रसिद्ध कथा-पुस्तकों में 'बहार दरवेश' का स्थान प्रमुख है। इसकी कहानियां जहां बच्चों को शिक्षा देती थीं, वहीं उनमें भरपूर मनोरंजन और कौतूहल भी मिलता था। उर्दू के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण फारसी और अरबी की कहानियां बच्चों को प्रभावित करती रहीं। उर्दू में भी जो साहित्य लिखा गया उसमें अधिकांश ऐसा था, जिसकी पृष्ठभूमि मुस्लिम संस्कृति थी। बगदाद के खलीफा की कहानियां, काज़ी के फैसले, बादशाह और गुलामों के किस्से इस युग में खूब चले। चूंकि देश में उस समय मुगलों का शासन था और उनकी संस्कृति का वातावरण निर्मित हो चुका था, इसलिए बहुत स्वाभाविक था कि बच्चे उन कहानियों में रस लें। इन कहानियों के माध्यम से बच्चों के मन में जहां एक ओर मुगल बादशाहों, फकीरों तथा अधिकारियों के प्रति श्रद्धा का भाव जागृत होता था, वहीं मुस्लिम संस्कृति को अपनी जड़ें मजबूत करने में भी सहायता मिलती थी।

उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों के बढ़ते प्रभाव का देशभर में विरोध हुआ। उस समय बच्चों के मन में फिरंगियों के क्रूरता और बर्बरतापूर्ण व्यवहार के लिए भय समाया हुआ था। वास्तव में यह भय, थोड़ा-बहुत स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व तक बना रहा। अपने बड़ों से अंग्रेज सिपाहियों के अत्याचार सुनकर उनके मन में भय इसलिए भी जागता था कि उनके माता पिता उनसे भी अधिक भयभीत रहते थे। किन्तु जिन बच्चों के माता पिता देश की आजादी के लिए प्राण न्यौछावर करना जानते थे, उनके बच्चे भी वैसे ही संस्कार प्राप्त करते थे। बालक भगतसिंह का यह पूछना कि खेत में हम बन्दूकें क्यों नहीं बोते जिससे फिरंगियों को मार सकें—ऐसे संस्कार का प्रभाव था। बड़े होने पर भगतसिंह ने जो कुछ किया, वह किसी से छिपा नहीं है। अनेक क्रान्तिकारी बचपन में ऐसी ही विद्रोही भावना लेकर बड़े हुए थे। उन्होंने ब्रिटिश शासन की नींव हिलायी थी।

लेकिन ब्रिटिश शासन के समय पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति का जो प्रभाव पडा तथा उससे हममे जो जागृति आई उसे भी अस्वीकार नही किया जा सकता। बालसाहित्य रचना की बहुत कुछ प्रेरणा उन पुस्तको तथा कहानियो से भी मिली, जो उस समय विदेश से भारत आ रही थी तथा स्कूलो मे बच्चो को पढाई जाती थी। 'राबिन्सन क्रूसो' 'सिन्दबाद जहाजी,' 'गुलीवर,' 'कैसाबियान्का,' आदि रचनाओ ने उस समय के भारतीय बालसाहित्य को बहुत प्रभावित किया तथा प्रेरणा दी। यही कारण था कि इन पुस्तको के अनुवाद भी बहुत शीघ्रता से हो गए थे। राष्ट्रीय जागरण तथा नवचेतना भी विदेशी साहित्य के प्रभाव से ही आई। विज्ञान की दुनिया का प्रवेश अंग्रेजी शासनकाल मे ही हुआ। भारत मे बच्चों के स्वतन्त्र महत्त्व की बात, बहुत कुछ विदेशी साहित्य के प्रभाव से ही जन्मी। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के समय व्याप्त राजनीतिक चेतना ने भारतीय जन मानस को पूरी तरह आन्दोलित कर दिया था। उस समय के बाल-साहित्य को पढने से स्पष्ट हो जाता है कि नवोत्थान तथा पाश्चात्य एव भारतीय संस्कृतियो के समन्वय का प्रयास निरन्तर चल रहा था।

उधर विदेशो मे भी बालसाहित्य मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। विज्ञान की दुनिया जैसे जैसे आगे बढ रही थी, बच्चो को भी उसी के अनुरूप तैयार करने के प्रयत्न किए जा रहे थे। वहा आरम्भ मे केवल सामाजिक और आर्थिक स्थितियो का ही प्रभाव, बालसाहित्य पर पडा था। पहले महायुद्ध के समय बालसाहित्य पर युग का प्रभाव उतना नही था, जितना कि उसे दूसरे महायुद्ध की घटनाओ ने प्रभावित किया। दूसरे युद्ध के बाद बालसाहित्य का अपना अलग ससार बन गया था। उस समय की हर बडी घटना, हर सामाजिक पहलू तथा वैज्ञानिक प्रगति बालसाहित्य को प्रभावित करने लगी थी। इस सबका प्रभाव यह हुआ कि बच्चो के लिए ऐसी कहानिया लिखी जाने लगी जिन मे युद्ध के काम के लिए कुत्तो को प्रशिक्षित किया गया था। बच्चो के अनुभव के लिए युद्ध की कथाए, उस समय वैज्ञानिक प्रभाव के कारण निर्मित हो रही नई विचारधारा से सामजस्य स्थापना के लिए प्रेरणा देने वाली कहानिया तथा विदेशी आक्रमण से अपने घर तथा देश को बचाने के लिए मनोबल बढाने वाली कहानिया लिखी गई।[1]

---

1 At a time when social and economic trends are reflected in children's books, the events of the second world war would naturally have their effect During the first world war children's books had not become an expression of the times Long before the next war, children's literature had ceased to be a world unto itself, it had begun to feel the influence of every major event, every social attitude or scientific development .. There were stories in which dogs were trained for war service, stories of the war in

लेकिन दूसरी ओर ऐसे भी लेखक थे जो बच्चों को युद्ध की विभीषिका से बचाना चाहते थे। मैक्सिम गोर्की ने अपने एक पत्र मे एच० जी० वेल्स को लिखा था, "मेरे दो मित्रो ने एक बाल प्रकाशन गृह की व्यवस्था की है। आजकल, ससार की सर्वोत्कृष्ट और सबसे जरूरी चीज बच्चे ही हैं। बच्चो को दुनिया मे, उसके महापुरषो तथा मानव जाति के मुग के हेतु रचित उनकी कृतियो की सबसे अधिक जरूरत है। हमे बच्चो के दिलो पर से इस भयानक और निरर्थक युद्ध के खून से सने जग को हटाना है। उनके दिलो मे हमे मानव जाति के प्रति आस्था और आदर की भावना जगानी होगी। मेरी विनय है कि आप एडिसन के बारे मे—उसकी जीवन और कृतियो से सम्बन्धित एक पुस्तक बच्चो के लिए लिखें। आप निश्चय ही बच्चो के हृदय मे विज्ञान और कार्य के प्रति आदर की भावना जगाने वाली पुस्तक का महत्त्व समझेंगे। मैं रोम्या रोला से 'बीथोवन' पर और प्रिलज़ोफ नेल्सन से 'कोलम्बस' पर लिखने को कहूगा। मैं स्वय 'गैरीबाल्डी' के बारे मे लिखूगा। इस तरह बच्चो के सामने हम अनेक महान् विभूतियो के जीवन-चित्र प्रस्तुत कर सकेंगे। कृपया आप सूचित करें कि चार्ल्स डिकेन्स, बायरन, शेली आदि पर कौन-कौन से लेखक लिख सकते हैं।"

पाश्चात्य बालसाहित्य मे वर्णित पशु-पक्षियो मे थोड़ा-सा परिवर्तन आया। यो तो बालसाहित्य मे पशु-पक्षी सदैव बच्चो के लिए फन्तासी के रूप मे रहे हैं, लेकिन बीसवी शताब्दी के चौथे दशक मे पालतू पशुओं से सम्बन्धित कहानियो मे प्रस्तुत पशुओ मे परिवर्तन आने लगा। बच्चे सहज ही यह विश्वास करने को तैयार नही होते थे कि उनके ये पालतू पशु आदमियो की तरह ही बोलते है—जैसा कि किसी कहानी मे उन्हे दिखाया जाता है। इसलिए उस समय पशु-पक्षियो से सम्बन्धित जो भी कहानिया लिखी गईं उनमे लेखक अपने माध्यम से पशु-पक्षियो की बाते कहने लगे। यह एक बहुत उल्लेखनीय प्रयोग हुआ और इसमे अनेक उन लेखको ने सफलता भी प्राप्त की, जिन्होने पशु-पक्षियों को बाल-कहानियो मे नये ढग से प्रस्तुत करने का माध्यम खोज लिया था।

पाचवें दशक मे भारत तथा विदेशो मे बालसाहित्य का स्वरूप बिलकुल आधुनिक हो गया। बालसाहित्य मे एक क्रान्ति-सी हो गई। उसे नैतिक उपदेश देने वाली सीमा से बाहर निकाला गया। कल्पनालोक से उतर कर वह यथार्थ के धरातल पर अधिक विचरण करने लगा। इसका कारण सस्कृतियो का परिवर्तन और विकास ही है। आज के युग मे हम स्पष्टत देखते है कि दुनिया के साथ साहित्य के रूप

---

terms of childlike experience, stories of children's adjustments to a new ideology, of children playing their part in defending their homes against invasion.

—Cornelia Meigs *A Critical History of Children's Literature* Page 445.

में भी परिवर्तन हो रहे है। बालसाहित्य मे जगली राक्षस, राजा-रानी, परियो की कल्पना-भरी उडान का अब महत्त्व नही रह गया है। अब आवागमन की कठिनाइया भी दूर हो गई है। बर्बर राजाओं का आतक नही है। आज पुराना पुष्पक विमान नही है उसी नाम का वायुयान भले ही मिल जाए। इस नये आयाम मे परीकथाओ मे भी परिवर्तन हो गया है। यह परिवर्तन परीकथाओं के स्वरूप तथा उनके प्रभाव मे नही बल्कि विषय वस्तु मे आया है। आज राकेट और अन्तरिक्ष का युग है। अगर हम अपने बच्चो को झूठे और काल्पनिक लोक मे घुमाते हैं तो बडा होकर वह निश्चय ही निराश होगा, इसलिए कि उसे नये आयाम के बारे मे कोई जानकारी न होगी। परी-कथाए तो बालमन मे एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करती हैं जिस पर वे अपने जीवन को आगे आने वाले दिनो में सरलता से चला सकें। अभी तक जो परीकथाए सुनाई जाती थी, वे युगो पुरानी हैं और उस सभ्यता की याद दिलाती है, जिसे हम कोसों पीछे छोड आए है। ऐसी स्थिति मे परी-कथाओं की विषय-वस्तु मे परिवर्तन होना बहुत स्वाभाविक है। आज की लाल परी किसी भयकर घाटी मे भटकने की बजाय कश्मीर की घाटी मे यदि बच्चो को ले जाय तो अधिक उपयोगी होगा। वहा वे उस प्रदेश की जलवायु, प्राकृतिक सुन्दरता, जनजीवन, रहन-सहन आदि का परिचय प्राप्त करेंगे। यदि कौतूहल और चमत्कारपूर्ण घाटियों मे ही ले आना है तो नीलम परी से कहिए कि वह बच्चो को नेफा और लद्दाख की दुर्गम घाटियों मे ले जाए जहा वे अनेक कौतूहलमय और चमत्कारपूर्ण दृश्य देख सकेंगे। आज की उडनपरी को चाहिए कि वह अपने पखो का सहारा न लेकर बच्चो को राकेट मे बैठाए और अन्तरिक्ष ग्रहो की सैर कराए।

आज का युग विज्ञान के धरातल पर खडा है। वह सत्य और प्रमाणो का सहारा लेकर चलता है। इसलिए निर्मूल बातो का कोई महत्त्व नहीं रहा। बालरुचि और मनोवृत्ति के अनुकूल कल्पना और रहस्यमयी बातो का महत्त्व अत्यधिक है, यह एक निर्विवाद सत्य है, किन्तु अब उस कल्पना और रहस्य का भी कोई न कोई आधार बनाना आवश्यक हो गया है। आज की कहानिया के कथानक और पात्र कोरी कल्पना की उडान मात्र नही होते बल्कि जीवन के सत्य से अनुप्राणित होते हैं। हमारे जीवन मे रोज जो कुछ घटित होता है, वही साहित्य के निर्माण का आधार बन जाता है।

आज के बालसाहित्य मे उन पौराणिक गाथाओं का महत्त्व इतिहास की ही भांति है जिन्हें हम सस्कृति का पोषक तत्त्व कहते है। आज के युग मे लोककथा शैली पर लिखी कुछ कहानियो के बारे मे लेखक श्री मनमोहन मदारिया का विश्वास है कि "यदि आज भी लोक-कथाए उत्पन्न होती तो उनका स्वरूप प्राय ऐसा ही होता जैसा इस सग्रह मे प्रस्तुत कथाओं मे है, यानी उनमें आज की महत्त्वपूर्ण समस्याए, आज के सामाजिक जीवन की झलक देखने को अवश्य मिलती।"[1]

---

१. आज की लोक कथाए मनमोहन मदारिया, पृष्ठ १।

इसी तरह अन्तरिक्ष-युग मे ग्रहो की यात्रा, वहा की रहस्यमयी बातों का अध्ययन और अन्तरिक्ष मे उडान भरना—बालसाहित्य की नयी धाराएं हैं जिन्हे अस्वीकार नही किया जा सकता।

एक युग था जब युद्ध की रोमाचकारी कहानिया बच्चों को बहुत अच्छी लगती थी। आज भी वे कहानिया अवसर आने पर बडी प्रेरक सिद्ध होती हैं। लेकिन अब युद्ध का रूप ही बदल गया है। अब पहले जैसी बातें नही रही। एटम के इस युग मे पृथ्वी से आसमान तक युद्ध करने के लिए लोग तैयार हैं। दूसरी ओर युद्ध की विभीषिका से जो पीडित हो चुके हैं, वे उनसे घृणा करते हैं। ऐसे माता-पिता चाहते हैं कि उनका बच्चा खूब धनी हो अथवा कोई बडा नेता बने या कला-कौशल के क्षेत्र मे उन्नति करे।

अब आवागमन के साधन उपलब्ध होने के कारण वयस्क ही नही, बल्कि बच्चे भी यात्रा करने के अधिकारी हैं। बालसाहित्य मे यात्रा-सस्मरणो मे बच्चों का स्वय यात्री होना अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। बाल यात्री अपनी सूझ-बूझ के अनुसार जो कुछ भी अनुभव करेगा वह अन्य बाल-पाठको के लिए प्रेरक सिद्ध होगा। अपने सीमित साधनो के बीच बाल यात्री अधिक रोचक और प्रेरक सस्मरण दे सकेगा और ऐसे विवरण पढ़कर बच्चे उससे तादात्म्य सरलता से स्थापित कर लेंगे।

बालसाहित्य के नये-नये प्रतिमान बदलते हुए युग, समाज और जीवन से प्रभावित तथा अनुप्राणित हैं। आज प्राय ससार के सभी देशो मे इन्ही प्रतिमानों की आधारभूमि पर बालसाहित्य का सृजन हो रहा है। अन्तर केवल विचारधारा का है जो इन प्रतिमानो को अपने अनुकूल बना लेती है। बालसाहित्य के प्रसिद्ध अमरीकी लेखक लूसी स्प्रेग माइकल ने 'हियर एण्ड नाउ' शीर्षक से बच्चों के लिए जो साहित्य लिखा है उसमें यह स्पष्ट कर दिया है कि अब अभिभावकों और अध्यापकों को चाहिए कि वे बच्चों को काल्पनिक और परियो की कथाए न सुनाए। इससे उन पर कुप्रभाव पड़ते हैं और वे जीवन के मूल्य आकने मे भविष्य मे भूल कर सकते है। इसलिए ऐसे साहित्य के स्थान पर यह बताए कि ससार क्या है, सत्य क्या है और जीवन के सही मूल्य क्या हैं ? उन्हे यह बताए कि नल मे पानी कैसे आता है, घर पर दूध कैसे आता है आदि।

बालसाहित्य के ये नये प्रतिमान बच्चो के स्वाभाविक विकास, उनकी रुचि और मनोवृत्ति को महत्त्व देते हुए अपने अस्तित्व का निर्माण करना चाहते हैं। बदलते हुए युग, समाज और जीवन के मूल्यो ने आज बालसाहित्य को इन्ही प्रतिमानों के आधार पर लिखने के लिए विवश कर दिया है।

(स) बालसाहित्य के विकास में अवरोधक तत्त्व

आज के युग मे जबकि एक ओर बालसाहित्य विकसित होकर, साहित्य-जगत मे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाने मे सफल हुआ है, वही उसके विकास मे अवरोध

उत्पन्न करने वाले तत्वों की भी कमी नही है। बालसाहित्य के विकास मे ये अवरोधक-तत्व केवल इसीलिए विद्यमान हैं कि विश्व मे बच्चो की स्वतत्र स्थिति स्वीकार करने के बाद भी, उनके उत्तरदायित्वों के प्रति उस सजगता और विस्तीर्ण दृष्टि का अभाव है, जो उन्हे समान-रूप से समझे जाने योग्य बना सके। भारत का ही उदाहरण लें तो स्वतत्रता प्राप्ति के बीस वर्षो के बाद भी, एक ओर बच्चो को वही पारपरिक और पौराणिक वातावरण मिल रहा है, तो दूसरी ओर सभ्यता की आधुनिकता के शिकार होकर, वे आधुनिक जगत मे भी घुटन महसूस कर रहे हैं। यही वे स्थितिया हैं जो उनके साहित्य के विकास मे अवरोध उत्पन्न करती है। आज यह स्पष्ट रूप से समझा जाता है कि बच्चो के साहित्य का एक निश्चित महत्व है और उसके विकास को रोककर, बच्चो को उससे वचित रखना, उनके भविष्य को अन्धकारमय बनाना है। लेकिन इसके विपरीत समस्या ज्यो-की-त्यो है। इन अवरोधक तत्वो पर विस्तृत विचार आगे प्रस्तुत किए जा रहे हैं। ये विचार विश्व तथा भारतीय बालसाहित्य के सन्दर्भ मे, विशेष रूप से हिन्दी बाल-साहित्य की स्थिति पर प्रकट किए गए हैं।

(१) साधारण छपाई और प्रकाशन समस्याएं :

भारत मे छपाई कला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन न होते हुए भी, उसने छपाई मे काफी गति से उन्नति की है। बालसाहित्य के विकास को आरभ मे गति न मिल पाने का एक कारण यह भी था कि छपाई की सुविधाए अधिक न थी। बच्चे केवल वही पुस्तकें पसन्द करते हैं जो रग-बिरगी हो, चित्रमय हो तथा अच्छे कागज पर छपी हो। छपाई की सुविधाओं के अभाव में ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करना कठिन था। यदि उन्हे विदेशो मे छपवाया जाता तो भारत मे उनका मूल्य अधिक हो जाता और फिर उनकी बिक्री की कोई सभावना नही रह जाती। लेकिन चूकि उन दिनो बालसाहित्य की माग थी और बच्चो के लिए पुस्तकें एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बनती जा रही थी, इसलिए कुछ पुस्तकें अवश्य ही छापी गई। बच्चो की कुछ पत्र-पत्रिकाए भी प्रकाशित हुई और इस कमी को पूरा करने के प्रयास आरभ हुए। लेकिन न तो ये प्रयास बहुत सफल हुए, न ही बालसाहित्य के विकास को वाछित गति दे सके। जो पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाए प्रकाशित हुई, इतनी उच्च स्तरीय नही थी कि उन्हे देखते ही बच्चे अपना लें। फिर भी एक भूख तो थी ही, जिससे विवश होकर बच्चे उन पुस्तको से ही अपनी तुष्टि करते थे। उन दिनो हिन्दी मे प्रयाग के इडियन प्रेस ने अनेक पुस्तकें छापी थी। बच्चो का मासिक 'बालसखा' भी प्रकाशित होता था। यहा से प्रकाशित इस समस्त बालसाहित्य को चित्रमय तथा सुन्दरतम बनाने का प्रयास किया जाता था। किन्तु यह जलते तवे पर पानी की एक बूद के समान ही था। अन्य भारतीय भाषाओं की भी यही स्थिति थी। बीसवी शताब्दी के इस आरभिक काल की तुलना मे, विदेशो मे अच्छी पुस्तकें छप रही थी। वे पुस्तकें जब भारत आती तो हाथो-हाथ

बिक जाती। लोग चाहते कि ऐसी ही पुस्तकें हमारे यहा भी प्रकाशित हो।

आखिर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बालसाहित्य को सुन्दरतम रूप मे देखने की लोगो की यह इच्छा साकार होने की आशा बधी। लेकिन जिस सीमा तक उन्नति की आशा थी, उतनी सफलता नही मिली। जबकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद छपाई के आधुनिकतम साधनो की सुविधाए उपलब्ध हो गई हैं और विदेशो के स्तर की पुस्तकें प्रकाशित की जा सकती हैं, हमारे यहा का बहुत कम बालसाहित्य ऐसा है जो विदेशो की तुलना मे रखा जा सके। इसके कई कारण हैं। किन्तु इस पर विचार करने से पूर्व प्रकाशकीय मनोवृत्ति का अध्ययन कर लेना भी उचित होगा।

हमारे यहा के प्रकाशको मे कुछ को छोडकर, अधिकाश ऐसे है जिन्हे पुस्तक प्रकाशन या उसकी बिक्री की कला का कोई ज्ञान नही है। भारतीय भाषाओ के अधिकाश प्रकाशक वे पुस्तक विक्रेता है, जिनमे पुस्तक प्रकाशन के लिए आवश्यक तकनीक, उसके लिए योग्य व्यक्ति साधनो का नितान्त अभाव होता है। लेकिन फिर भी वे प्रकाशन-व्यवसाय की ओर भागते हैं—केवल उस पुस्तक का आलेख लेकर, जिसकी बाजार मे बिक्री होने की उन्हे आशा होती है। ऐसी पुस्तको का न तो सही ढग से सम्पादन किया जाता, न उनकी छपाई, जिल्दबन्दी, साजसज्जा आदि की ओर ही कोई ध्यान दिया जाता है। इस कारण अधिकांश भारतीय प्रकाशनो का स्तर गिरा हुआ होता है।

बालसाहित्य प्रकाशन के क्षेत्र मे उपर्युक्त स्थिति अक्षरश लागू होती है तथा कुछ बातो मे बालसाहित्य-प्रकाशक एक कदम और आगे भी जा चुके हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जब बालसाहित्य की माग बढी तो अनेक अवसरवादी प्रकाशको ने इसका लाभ उठाने का प्रयास किया। उन्होंने तुरन्त अपने लेखको से या हल्की-फुल्की चीजें लिखने वालो से बच्चो के लिए सस्ते दामो मे पुस्तकें लिखवा डाली। उस समय प्रकाशक और लेखक की दृष्टि मे बच्चो के लिए सरल भाषा मे कुछ भी लिखकर प्रकाशित कर देने से वह 'बालसाहित्य' बन जाता था। इसके साथ ही थोडे से साधारण चित्रों के साथ, साधारण कागज़ पर पुस्तकें छापी गईं और उन्हे बाजार मे बिकने के लिए डाल दिया गया। यह काम राष्ट्रीय स्तर पर हुआ और अनेक प्रकाशकों ने ऐसी पुस्तकें स्कूलो तथा पुस्तकालयो मे खपा दी।

इसके दो परिणाम हुए—एक तो अच्छी पुस्तकें भी इस साधारण कोटि के बालसाहित्य के घटाटोप मे छिप गईं तथा दूसरा यह कि बालसाहित्य के नाम पर हो रही इस व्यावसायिक वृत्ति के प्रति लोग सजग होने लगे। उधर विदेशी प्रकाशन भी भारत मे आने लगे और उनकी छपाई सफाई उच्च कोटि की होने के कारण बच्चे उनकी ओर अधिक आकर्षित होने लगे। माता पिता तथा अभिभावक भी भारतीय प्रकाशनो को कम तथा विदेशी प्रकाशनो को अधिक महत्त्व देने लगे। इस कारण बालसाहित्य की प्रगति बहुत अवरुद्ध हो गई। बाल-

साहित्य प्रकाशन व्यवसाय भी चिन्ता का विषय बन गया।

आखिर दस वर्ष बाद यानी १९५७ मे बालसाहित्य प्रकाशन की ओर गभीरता से विचार आरभ हुआ। उसी वर्ष बच्चों के प्रिय चाचा नेहरू के जन्म दिवस पर दिल्ली मे बाल पुस्तको की एक प्रदर्शनी का आयोजन हुआ और अखिल भारतीय स्तर पर बाल-पुस्तक सप्ताह मनाया गया। बच्चो की पुस्तको की स्थिति देखते हुए ही चाचा नेहरू ने इस बाल-पुस्तक सप्ताह के अवसर पर दिए गए अपने सन्देश मे कहा था, "विगत कुछ वर्षो से हमारे देश मे सभी भाषाओ मे बच्चो की पुस्तकों के प्रकाशन कार्य मे कुछ प्रगति हुई है। इतने पर भी हम अभी बहुत से ऐसे देशों से पिछड़े हुए है जो कि बच्चो के लिए मनमोहक पुस्तकें और पत्रिकाए प्रकाशित करते हैं। हमारे यहा जो लोग पुस्तकें लिखते और प्रकाशित करते है, उनमे बहुत कम ऐसे है जो यह सोचते हैं कि बच्चों की वास्तविक माग क्या है ?"

इसके बाद अखिल भारतीय प्रकाशक सघ के लखनऊ अधिवेशन मे श्री अखिलेश्वर पाण्डेय ने बालसाहित्य प्रकाशन की समस्याओ पर एक निबन्ध पढकर प्रकाशकों को इस दिशा मे सोचने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कहा, "आपको (प्रकाशकों को) सोचना है कि बच्चों के स्वाभाविक विकास क्रम को बनाए रखते हुए, बालसाहित्य के माध्यम से उन्हे कहा तक सुसस्कृत कर सकते हैं कि वे लोकतत्रीय देश के स्वतन्त्र चिन्तक बन सकें। हिन्दी म, दुर्भाग्य से, बालसाहित्य की खपत के लिए सम्पूर्ण रूप से सरकारी खरीद की ओर हमारे प्रकाशक उन्मुख हैं। यह झुकाव भी इस चेतना के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। जैसा वे चाहे वैसा ही बालसाहित्य हम दें, यह बात न तो सिद्धान्तत ठीक है और न व्यवसाय के विस्तार और भविष्य की दृष्टि से उचित ही।" पाण्डेय जी ने बच्चो की पुस्तको को सर्वोत्तम ढग से प्रकाशित करने पर बल देते हुए कहा था—"सम्पादक के साथ विचार-विमर्श कर विषय के अनुरूप लेखकों का निश्चय आप करेंगे और फिर लेखक-सम्पादक आपस मे विचार कर यह तय करेंगे कि किस विषय की कितनी बातें, आयुवर्ग को दृष्टि मे रखकर पुस्तको मे समाहित की जा सकती हैं। आवश्यक सुधार के बाद पुस्तक चित्रकार के पास चित्रण के लिए जाएगी। ऐसे बालसाहित्य के सर्वांग सुन्दर होने के लिए पूरी पुस्तक का चित्रकार द्वारा 'ले आउट' किया जाना ज्यादा अच्छा होता है। इसके बाद वह 'ब्लाक-मुद्रण' या 'आफसेट-मुद्रण' के लिए जा सकती है। बालसाहित्य की प्रकाशन क्रिया मे योजना का उपर्युक्त विस्तार तथा कठिनाइया, निस्सन्देह इसे महगा बना देती हैं। अत. मूल्य उपभोक्ता की क्रय-शक्ति के बाहर न हो जाए, इसके लिए प्रकाशक के पास बडी सख्या का सस्करण देने के अतिरिक्त कोई राह नही रह जाती। पर ऐसे बडे सस्करण की खपत कहा से, कैसे हो ? हिन्दी मे बालसाहित्य के विकास-क्रम मे यह समस्या प्रश्नचिह्न डाले खडी है। किन्तु मेरा निवेदन है कि खुला बाजार

बनाने और इस पर अधिकार करने के लिए भी यही मार्ग है।"[१]

इस प्रकार, इस बीसवी शताब्दी के सातवें दशक याने सन् १९६० के बाद बालसाहित्य प्रकाशन की ओर पूरी तरह ध्यान दिया जाने लगा। लेकिन आज जो छपाई की सुविधाए विद्यमान हैं उनका पूरा उपयोग करके पुस्तकें न प्रकाशित होने के कारण अधिकाश बालसाहित्य राष्ट्रीय महत्त्व का भले ही हो, अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व का नही है। विदेशो की तुलना मे भारतीय बालसाहित्य अभी भी बहुत पीछे है। हमारे यहा पुस्तको के पहले सस्करण २,००० से १०,००० प्रतियो के, सिगापुर मे ५,०००, इडोनेशिया मे ५,००० से २०,०००, ईरान मे २,००० और पाकिस्तान मे २,५०० प्रतियो के होते हैं।

हमारी सरकार बच्चो की पुस्तको को अच्छे से अच्छे रूप मे प्रस्तुत किए जाने के लिए प्रोत्साहन देती है। नीति यह है कि अच्छी पुस्तको के प्रकाशन द्वारा बच्चो के मस्तिष्क को युगानुरूप बनाया जाय। इसलिए ऐसी पुस्तकें प्रकाशित की जाए जो बच्चो को आकर्षित करें तथा उनका ज्ञान वर्धन करें। ढेर से चित्रो सहित रगीन पुस्तकें बच्चो के आसपास एक अनोखा वातावरण निर्मित कर देती है। इसलिए ऐसी पुस्तको के प्रकाशन को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार हर साल देश की चौदह भाषाओ मे बालसाहित्य पुरस्कार भी देती है।

इतना सब होते हुए भी अभी इस दिशा मे बहुत अपेक्षाए हैं। वास्तव मे बच्चो की पुस्तको के प्रकाशन-क्षेत्र मे अभी तक छपाई के सभी अधुनातन साधनो का प्रयोग नही किया जा रहा है। पत्र पत्रिकाओ के क्षेत्र मे बच्चो के दो मासिक 'पराग' (टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन, बम्बई) और 'नन्दन' (हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन, दिल्ली) निश्चय ही अधुनातन छपाई की विधियो—क्रमश ग्रेव्योर प्रिंटिंग और आफसेट प्रिंटिंग द्वारा प्रकाशित होते हैं और इसी कारण वे देश भर की बच्चो की पत्रिकाओ मे सर्वाधिक लोकप्रिय भी हैं। किन्तु दूसरी ओर इडियन प्रेस, इलाहाबाद जैसी समृद्ध सस्था से प्रकाशित होने वाला 'बालसखा' मासिक बडी ही दयनीय और साधारण स्थिति मे निकलता है। अब उसकी छपाई आदि की ओर भी कोई ध्यान नही दिया जा रहा है। वर्षो पुराने ब्लाको को इस्तेमाल कर, रचनाओ को सचित्र बनाने का प्रयास किया जाता है। आवरण-पृष्ठ तो बच्चो को आकर्षित करने योग्य होता ही नही है। आज आवश्यकता ऐसे ही प्रकाशनो की ओर ध्यान देने की है। यदि बालसाहित्य के विकास मे योगदान करने वाले इस तरह के ऐतिहासिक प्रकाशनो मे ही कोई प्रगति नही होती तो भला बालसाहित्य का क्या भविष्य होगा ?

अत आज यह बहुत आवश्यक है कि बालसाहित्य के विकास की गति को, आधुनिक मुद्रण प्रणाली अपनाकर बढाया जाय। तभी वह इस योग्य बन सकेगा

---

१. अखिल भारतीय प्रकाशक सघ के लखनऊ अधिवेशन मे दिए गए भाषण से, साभार।

कि विदेशी बालसाहित्य की पुस्तकों से मुकाबला करके भारतीय ही नही, विदेशी बच्चों को भी अपनी ओर आकर्षित कर सके।

(२) लेखकों मे बच्चों की रुचि-प्रवृत्ति के अध्ययन का अभाव

कम से कम हिन्दी-बालसाहित्य के सम्बन्ध मे तो यह बात निश्चय ही कही जा सकती है कि हर लेखक बालसाहित्य लिखने का दावा करता है। बच्चों के सुप्रसिद्ध मासिक 'नन्दन' की नीति है—बडे बडे प्रतिष्ठित लेखकों स बालसाहित्य लिखवाया जाय। इस दिशा मे उसने कुछ प्रयास भी किए हैं। किन्तु इस तरह की नीतिया और धारणाए हिन्दी बालसाहित्य को न तो समृद्ध बना सकती है और न उसका विकास ही कर सकती है।

यदि गम्भीरता से सोचा जाय तो बालसाहित्य लिखना एक कला है—जो अनुभव से अधिक सीखी जा सकती है। यदि यह कहा जाता है कि सभी बडे लेखकों ने बाल-साहित्य लिखा है तो इसका अर्थ न तो यह है कि उनमे बच्चो के लिए साहित्य लिखने के मूलभूत गुणो का अभाव था और न यह मानना ही ठीक होगा कि इसीलिए हमारे यहा के बडे लेखक भी बच्चो के लिए लिख सकते हैं।

बालसाहित्य रचना का मूल आधार बाल-मनोविज्ञान है। बालसाहित्य लेखक जब तक अपनी इस आधार भूमि को पुस्तको द्वारा कम तथा व्यावहारिक अनुभव द्वारा अधिक सुदृढ नही बनाता, तब तक वह सफल बालसाहित्य लेखक नही बन सकता है।

बच्चों के लिए लिखने वाले लेखकों के विषय मे, बालसाहित्य के प्रसिद्ध आलोचक 'पाल हेज़ार्ड' ने बहुत स्पष्ट ढग से लिखा है,[१] "बच्चो के लिए लिखना एक

---

1 Writing for children is the work of a specialist, a technician, as they say today, who, having made his reputation and fortune, wanted to expound the art of writing for the use of beginners, his colleagues Beware, those of you who wish to enter this field, he says to them Do not fool yourselves into believing that children are going to read any kind of stories, and that all you have to do is to impose your taste on them, that is a beautiful illusion To succeed, start out by believing just the contrary and be prepared not to command but to obey the children will be your masters Do not fail to start off with originality and liveliness make use of a dialogue in developing your story—that is what they want Give them all the action you can, that goes almost without saying Let your endings, while they satisfy their curiosity, leave something still open to wonder, so as not to close their horizon, for after they have finished the tale you have made up they will make up one of their own .Avoid

विशेषज्ञ, एक टेक्निशियन का काम है जो अपनी प्रतिष्ठा तथा भाग्य का निर्माण करने के बाद अपनी लेखन कला का विकास, बच्चों के उपयोग के लिए करना चाहता है। इसलिए जो लोग भी इस क्षेत्र में प्रवेश करना चाहते हो, उन्हें सावधान रहना चाहिए। अपने आपको यह समझकर मूर्ख मत बनाइए कि बच्चे किसी भी तरह की कहानी पढ लेंगे और आपको तो केवल इतना करना है कि अपनी रुचि की रचनाएं उन पर लाद दें। यह बहुत बडा भ्रम है। यदि वास्तव में सफलता प्राप्त करनी है तो ठीक विपरीत दिशा में विश्वास करके चलिए कि आपको आज्ञा नही देनी है बल्कि आज्ञा माननी है। बच्चे आपके मालिक होंगे। इसलिए बिना मौलिकता और सजीवता के लिखना आरभ न करें। जहा तक सभव हो अपनी कहानी का विकास करने के लिए सवादो का प्रयोग करें—क्योंकि वे चाहते है कि आप उनसे बातें करें। बिना कुछ कहे, उन्हें जितनी क्रियात्मकता दे सकते हो दें। उनकी जिज्ञासा शान्त हो जाने पर ही आप कहानी समाप्त न कर दें, बल्कि उसके बाद भी कुछ आश्चर्यों के बारे मे जानने के लिए उनके मस्तिष्क को खुला छोड दें जिससे उनके ज्ञान का क्षितिज सीमित न बनने पाए। ऐसा इसलिए भी आवश्यक है कि वे आपकी कहानी पढने के बाद, एक कहानी अपने मन मे अपनी बना लेते है। शब्दजाल और वर्णनात्मकता, जिसे केवल बडे लोग ही पढने का साहस कर सकते है, त्यागने का प्रयत्न करें। यह भी ध्यान रखिए कि जब तक एक बार पूरी कहानी नही पढ ली जाती, आपके पाठक आप से पूछने के लिए तैयार रहेगे कि आगे क्या हुआ ? वास्तव मे वे उसे जानने के लिए व्याकुल

---

wordiness, descriptions that only adults endure kindly, do not forget that almost before one found is ended your readers will be all set to ask you what happens next They are indefatigable Be brief, be nimble You may use as many plants and animals as you wish Every candidate for success in literary material for children must visit a zoological garden at least several times a year They have an innate sympathy for birds, fishes and insects, they commune with plants and flowers, sensing in themselves the same universal vitality In short, future writers of best sellers, you who want to succeed in this field, as others do in the bandit or ghost story market, you must keep in mind a certain number of exact rules and one principle perhaps formerly children accepted without protest the books put in their hands however boring they were, in those days they were easier to please, or better brought up, but today, to please them, you must first submit to their demands

—Paul Hazard *Books, Children & Men*
Fourth Edition 1960 Pages, 74, 75, 76

रहते है। जहा तक हो सके, अपने कथन मे संक्षिप्त और गतिशील रहे। बाल-साहित्य के हर लेखक को सफल बनने के लिए साल मे कई-कई बार प्राणिविद्या सम्बन्धी उद्यान अवश्य देखना चाहिए और अपनी रचनाओ मे जितने पौधे तथा पशुओं को चाहे इस्तेमाल करें। बच्चों के मन मे पक्षियो, मछलियो तथा कीडो-मकोडो के बारे मे आन्तरिक सहानुभूति होती है। वे पौधो और फूलो से बातें करते है। वे अपने आप मे उन जैसी ही शाश्वत चेतना का अनुभव करते हैं। संक्षेप मे, भविष्य के लेखक यदि इस क्षेत्र मे सफल होना चाहते हैं, जैसे कि दूसरे लोग डाकुओ या भूतो की कहानियो मे अपना बाज़ार बनाते हैं, तो आपको कुछ नियम तथा एक सिद्धान्त ध्यान मे रखना ही होगा कि पहले शायद बच्चे बिना किसी बहस के उनके हाथो मे दी गई पुस्तको को स्वीकार कर लेते थे—चाहे वे कितनी ही उबाने वाली क्यो न रही हो, लेकिन आज उन्हे प्रसन्न रखने के लिए पहले उनकी माग पूरी करनी ही होगी।"

पाल हेज़ार्ड का यह कथन सत्यता के बहुत निकट है। जब तक बच्चो की रुचि, मनोवृत्ति तथा आदतो का गहराई से अध्ययन नही किया जाता, सफल बालसाहित्य नहीं लिखा जा सकता। विदेश के बडे लेखका ने भी बालसाहित्य लिखा है, उसे यदि कसौटी पर देखा जाता है तो वह खरा उतरता है—यही इस बात का प्रमाण है कि उन्होने बच्चो की रुचियो का अध्ययन करके ही उस रचना को लिखा था। विश्व प्रसिद्ध बालसाहित्य की पुस्तक 'एलिस इन दि वडरलैड' के लेखक लेविस कैरोल बच्चों के साथ खेलने तथा उन्हे कहानिया सुनाने में विशेष रुचि लेते थे। उनकी उसी रुचि के परिणाम स्वरूप ही 'एलिस इन दि वडरलैंड' पुस्तक की रचना हुई। किन्तु हमारे यहा सभवत इस तरह के अध्ययन की लगन और रुचि का नितान्त अभाव है। उसी का परिणाम है कि आज तक हमारे देश के बालसाहित्य की कोई कृति इस स्तर की नही बन पाई कि वह अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर सके।

इस तथ्य के प्रति अब कुछ लेखक सजग अवश्य हुए है। वास्तव मे बाल-साहित्य की सफलता का यह एक बहुत बडा कारण रहा है और इसलिए लेखक इस दिशा मे प्रयत्नशील हो रहे हैं। १ जनवरी, १९६९ को कानपुर मे हुए 'बालसखा रजत जयती समारोह' के अध्यक्षीय भाषण मे द्विवेदी युगीन साहित्यकार तथा 'बालसखा' के सपादक प० लल्लीप्रसाद पाण्डेय ने कहा था, "बालसाहित्य वही लिख सकता है जो अपने आपको बच्चों जैसा बना ले। बडे होकर बच्चा बनना मुश्किल है और उसमे भी अधिक मुश्किल है बच्चा बनकर उनके अनुकूल लिखना। इसलिए जो लोग बच्चो के लिए लिखते हैं वे एक पवित्र कार्य करते हैं। उनका कार्य साधना का कार्य है।"

यहा एक और महत्त्वपूर्ण समस्या की ओर इगित करना ठीक होगा। आरभ मे विदेशों मे भी बालसाहित्य लिखना बचकाना काम समझा जाता था। यही कारण था कि 'एलिस इन दि वडरलैंड' जैसी श्रेष्ठ पुस्तक के लेखक को अपना

नाम बदलना पडा, 'टाम सायर' के लेखक ने अपना नाम बदल कर लिखा। इन्हें भय था कि लोग उनकी हसी न उडाए और उनके लेखकीय गौरव पर यह लाछन न लगाए कि उन्होने बच्चो के लिए लिखा। धीरे-धीरे विदेशों मे यह भावना दूर हुई और बालसाहित्य लेखन न केवल गौरवपूर्ण कार्य समझा गया बल्कि इसे एक विशेषज्ञ और एक तकनीक का काम माना जाने लगा।

भारतीय बालसाहित्य के साथ आज वही स्थिति है जो कभी विदेशो मे थी। आज हमारे यहा बच्चो के लिए लिखना 'बचकाना' काम समझा जाता है। बडे साहित्यकार बच्चो के लिए लिखना अपनी हीनता समझते है और जो बालसाहित्य लिखते हैं उन्हे लेखक मानने मे कडवापन महसूस करते है। आज एक ओर साहित्य पर विदेशी प्रभाव स्वीकार किया जा रहा है, विदेशो से होड लेने का प्रयास हो रहा है, लेकिन जो स्थिति बालसाहित्य की वहा है, उसे यहा देने मे हीनता का भाव अनुभव करते है। हिन्दी मे बालसाहित्य को अभी तक अन्य स्वतत्र-विधाओ की भाति स्थान नही मिला है। जबकि विदेशो मे बालसाहित्य, साहित्य की एक सशक्त विधा है। यह विधा जहा बच्चो के विकास मे सहायक होती है वही वह प्रौढ साहित्य के लिए सुयोग्य पाठक तथा लेखक भी तैयार करती है। अत जब तक बालसाहित्य को स्वतत्र विधा के रूप मे स्वीकार किया जाकर, उसके विकास का मार्ग प्रशस्त नही किया जाता, तब तक हम विदेशो की तुलना मे बहुत पीछे ही रहेगे।

लेकिन इस समस्या का समाधान करने का एक अन्य सशक्त माध्यम यह भी है कि बालसाहित्य के लेखक पूरे मनोयोग से श्रेष्ठ रचनाए लिखें। बालरुचि-मनोवृत्ति और मनोविज्ञान के अनुरूप लिखी गई पुस्तके स्वयमेव सफलता प्राप्त कर समस्त भारतीय बालसाहित्य के अस्तित्व का निर्माण कर सकती है। आज के बालसाहित्य लेखक से, बालसाहित्य के विकास के लिए, यही अपेक्षाए हैं।

(३) अभिभावको मे मूल्याकन की क्षमता का अभाव :

आज के युग मे जो बच्चे गावो मे हैं, उनके माता-पिता उन्हे शहर के प्रति आकर्षित करते हैं और जो शहर मे हैं वे शहरी-जीवन की कुण्ठाओ के शिकार हैं। इस तरह गाव के बच्चे गाव से भागना चाहते हैं और शहर के बच्चे आधुनिकता भरे जीवन मे घुटन का अनुभव कर रहे हैं। इन स्थितियों के प्रति वास्तव मे बच्चो के माता-पिता तथा अभिभावक ही जिम्मेदार है।

आधुनिक भाव-बोध से अनुप्राणित आज के समाज मे बूढो का कम और बच्चो का अधिक महत्त्व हो गया है। एक जमाना था बूढ़े लोग बच्चो का मनोरजन करते थे। बच्चो की दुनिया और अनुभव ज्ञान का निर्माण दादी-नानी अपनी परम्परागत कहानियो से करती थी। लेकिन अब बच्चे इन बधनो को तोड कर छूट निकले हैं। वे अपनी मदद आप करते हैं और अपने अस्तित्व की स्थापना का प्रयत्न करते हैं। वे अधिक से अधिक बातें जानने के लिए जिज्ञासु होते हैं और

नयी दुनिया के हर काम को देखने-समझने का प्रयास करते है। आज की आधुनिक सभ्यता महानगरो मे केन्द्रित है। बच्चे, इन महानगरो मे पनपने वाली संस्कृति का बीज ग्रहण करते है और उसे अपने ढग से विकसित करके आगे बढने का सपना देख रहे है। जो बडे हो गये है, उन्हे अपना बचपन याद है। वे अपने बच्चो को आज की महानगरी सभ्यता मे पूरी तरह ढाल देना चाहते है। वे जानते है कि भविष्य मे इसी से बच्चो को तादात्म्य स्थापित करना होगा। तब क्यो न उन्हे इस महानगरी सभ्यता के योग्य बनाया जाय।

आज की दुनिया मे हर कोई चाहता है कि बच्चो का अधिकाधिक विकास हो और वे अच्छे से अच्छा बन सकें। लेकिन इस दिशा मे वास्तव मे कितना ध्यान दिया जाता है, इस बात का यदि सर्वेक्षण किया जाय तो अनेक तत्त्व उभरते हैं। आज जिन महानगरो मे एक ओर नयी सभ्यता और संस्कृति का जन्म हो रहा है वहा बच्चो के विकास पर पूरा ध्यान नही दिया जाता। दिया भी जाता है तो यह भूलकर कि ऐसे ही बच्चे गावो मे भी अभावग्रस्त होकर असहाय बने पडे हैं। आज दुनिया के तीन-चौथाई बच्चे उन देशो मे अपने भाग्य को रो रहे हैं जो अभी तक पूरी तरह से आर्थिक और औद्योगिक विकास मे आत्मनिर्भर नही बन पाये हैं। इन देशो मे मशीनी दुनिया का प्रवेश अभी आंशिक रूप मे ही हो सकता है। कुल सख्या मे से केवल आधे बच्चे स्कूल जाते हैं और बहुत कम ऐसे होते हैं जो आधुनिक जगत से अपना परिचय स्थापित कर पाते हैं। इन्ही कारणो से अब सभी ओर जागृति आ रही है। लोग इस तथ्य को भलीभाति समझने लगे है कि यदि रहन-सहन का स्तर और सामाजिक चेतना मे वृद्धि न की गई तो बच्चो का विकास सभव नही होगा।

आधुनिकीकरण की इस आवश्यकता के परिणामस्वरूप ही अब महानगरो मे बच्चो को अधिकाधिक सुशिक्षित और सुसंस्कृत बनाने के प्रयास हो रहे है। यो आम धारणा यही है कि भला बच्चो का क्या महत्त्व? कम से कम भारत मे तो यह भावना आज भी पचहत्तर प्रतिशत है। शेष पच्चीस मे से केवल पाच प्रतिशत ऐसे हैं जो वास्तव मे बच्चो के प्रति सही दृष्टि रखते हैं। पन्द्रह प्रतिशत लोगो के मत मे आज भी बच्चो के प्रति उपेक्षा या कर्तव्य-निर्वाह की बात है।

माता-पिता का अत्यधिक व्यस्त रहना और बच्चो के प्रति पूरी तरह सजग न होना आज की आधुनिकता का सबसे विषैला तत्त्व है जो आने वाली पूरी पीढी को दमित, व्याकुल और विद्रोही बना रही है। केवल कर्त्तव्य समझकर बच्चो के दायित्वो को पूरा करना पर्याप्त नही है।

आज तक भारतीय बालसाहित्य को माता पिता तथा अभिभावको को इसी प्रवृत्ति का सामना करना पड रहा है। शहरो मे आजकल बच्चो के लिए छपने वाला साहित्य खरीदना एक फैशन बना जा रहा है। यह फैशन उनके दो काम एक साथ करता है—एक तो यह कि वे उस जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते है जिसे बच्चो द्वारा उन पर लादा जाता है, दूसरे उन्हे अधिक सुसंस्कृत तथा सभ्य और आधु-

निक कहलाने का अवसर प्राप्त होता है। लेकिन यह खरीद उन रग-बिरगी पुस्तको की होती है जो विदेशो से छपकर आती है। "भारत मे ऐसी पुस्तके छपती ही कहा हैं। उन पुस्तको को पढने से बच्चे बिगड जाएगे।" यह दलील होती है भारतीय बालसाहित्य के प्रति। इस तरह की उपेक्षा या केवल दायित्व निर्वाह की बात से ही प्रेरित होकर आज के युग मे कुछ विचारको का यह मत बनता जा रहा है कि अब बच्चो को अपनी मदद आप करनी पड़ती है यानी पुस्तको से अपनी रुचि के अनुकूल कहानिया ढूढकर पढना, दादी-नानी के बजाय रेडियो से कहानी सुनना और जो उपलब्ध न हो उसे मित्रो से प्राप्त कर काम चलाना।

ऐसी स्थिति मे आज के युग मे बच्चो के प्रति सही ढग से कर्त्तव्य निर्वाह एक आवश्यकता है। इस आवश्यकता का ही एक महत्त्वपूर्ण पहलू है—बच्चो को बालसाहित्य खरीदकर देना। यहा यह स्वीकार किया जा सकता है कि आर्थिक विषमताओं के इस युग मे सभवत. बालसाहित्य खरीदने के लिए सभी अभिभावक सक्षम न हो। किन्तु हमें यह भी कहने मे सकोच नही है कि जो सक्षम है वे भी इस दिशा मे पीछे ही रहते है। अत आज दृष्टिकोण-परिवर्तन करना ही होगा और जब तक बच्चो के लिए प्रकाशित साहित्य उन तक न पहुचाएगे, तब तक न तो बच्चो के उज्ज्वल भविष्य की कामना कर सकते है और न बालसाहित्य के विकास की ही आशा बन सकती है।

पाचवां अध्याय

हिन्दी बालसाहित्य : सैद्धान्तिक विवेचन

आज बालसाहित्य मे जिस सैद्धान्तिक आधारभूमि की बात कही जा रही है, वह उसी बाल मनोविज्ञान पर अवलम्बित है जो बालक के विकास तथा बदलते हुए परिवेश मे सामजस्य स्थापित करने मे उसके लिए सहायक होता है। बालसाहित्य के शास्त्रीय विधान, न केवल मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, बल्कि साहित्य रचना की दृष्टि से भी बडो के साहित्य शास्त्रीय विधानो से बिलकुल अलग हो जाते है। ···बाल अनुभूति की सरल और गेय शब्दो मे छन्दबद्ध अभिव्यक्ति ही बालगीत है।······कहानिया सुनकर बच्चे कुछ सीखते हैं, नए-नए सपने देखते हैं। उनके सामने सारा ससार होता है, उनके मानसिक क्षितिज का विस्तार होता है और उनकी रुचि गहरी होती है। बाल उपन्यासो मे बच्चो के सामने जीवन की बहुविध घटनाए इस ढग से प्रस्तुत की जाती हैं कि ससार की विचित्रता तथा रहस्यो *को समझने के लिए उत्सुक बालक, अपनी अनेक गुत्थिया उनके माध्यम* से सुलझा सकें।······बच्चो के नाटक वे हैं जो उनकी कल्पना शक्ति को जागृत एव उत्तेजित कर सकें, उनके व्यक्तित्व का विकास कर सकें, और उनके अनुभव का प्रसार करने मे समर्थ हों।

साहित्य तथा उसकी विभिन्न विधाओ के सम्बन्ध मे भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानो के अपने-अपने मत तथा सिद्धान्त रहे हैं। उन सभी के परम्परागत अध्ययन--और विवेचन के पश्चात् आज कुछ शास्त्रीय-विधान निर्मित हो सके हैं। किन्तु समय और समाज के साथ, साहित्य के इन शास्त्रीय विधानों मे भी परिवर्तन

होता रहता है। आज बालसाहित्य की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। जब तक बालसाहित्य, साहित्य की स्वतंत्र विधा के रूप में नहीं स्वीकार्य था, उसे उन्हीं परम्परागत सिद्धान्तों और विधानों के आधार पर लिखा जाता रहा, जो साहित्य मे विद्यमान थे। यद्यपि बालसाहित्य की उन रचनाओं में, उसका स्वतंत्र शास्त्रीय विधान अप्रत्यक्षरूप से विद्यमान होता था। अब जबकि बालसाहित्य एक स्वतन्त्र साहित्य विधा के रूप में प्रकट हो गया है—तो यह भी आवश्यक है कि उसके शास्त्रीय विधानों पर भी विचार किया जाय।

बालसाहित्य के पृथक् शास्त्रीय विधानों के सम्बन्ध में, एक प्रश्न के उत्तर में डा० रामकुमार वर्मा ने लेखक से कहा था, "यह विधान की बात प्राय चुभ जाया करती है। जो साहित्य जीवन के लिए लिखा जाता है, उसमें विधान का बहुत-सा बड़ा हिस्सा काट देना चाहिए। जहा तक कलात्मक रूप से निखारने की बात है, कला के मूल्य हमेशा बदलते रहते है। हमें इस बात की खोज करनी चाहिए कि साहित्य का कौन-सा रूप अधिक से-अधिक कलात्मक हो सकता है? उसके विकास की वे दिशाए कौन सी हैं, जो मनुष्य को सही मार्ग पर बढा सकेंगी या उसकी रागात्मक भावनाओं की रक्षा कर सकेंगी? इसलिए बच्चों के लिए आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के आधार पर यदि हम नाटक लिखेंगे तो शायद रस की निष्पत्ति भले ही हो जाय लेकिन जिस तथ्य को बालक समझना चाहता है, उसे समझाने मे शायद रसनिष्पत्ति कारगर न हो सके। इसलिए हमें तो उन सचारी भावों को फिर परीक्षा करने की कसौटी पर लाना होगा जो कि मनोविज्ञान की दिशा मे सही उतरते है। यद्यपि सचारी भाव, जो रस के आधार पर रखे गए हैं, वे भी मनोविज्ञान को देखकर ही रखे गये हैं, लेकिन वे केवल दिशा सकेत मात्र हैं, स्थिर नहीं हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि मनोविज्ञान को हम बालक के जीवन मे प्रतिष्ठित कर उसी आधार पर साहित्य की रचना करें। हमें तो आज के परिवेश में बढते हुए बालक के मनोविज्ञान को सही दिशा मे, राष्ट्रीय दिशा मे, विश्व-बधुत्व की दिशा मे प्रेरित करने के लिए कोई नया सिद्धान्त निकालना होगा। कारण यह कि साहित्य तो प्रगतिशील है। उसमे सदैव ही नये-नये मस्तिष्कों का चिन्तन, उससे सबद्ध होता रहना चाहिए, वरना आचार्य भरत ने जो कुछ सोचा था वह आज के परिवेश मे किस सीमा तक घटित हो सकेगा, यह एक चिंत्य विषय है।"[१]

डा० रामकुमार वर्मा के उपर्युक्त कथन से सहमत होते हुए यहा यह स्पष्ट कर देना उचित ही होगा कि आज बालसाहित्य मे जिस सैद्धान्तिक आधारभूमि की बात कही जा रही है, वह उसी बाल-मनोविज्ञान पर अवलम्बित है, जो बालक के विकास तथा बदले हुए परिवेश में सामजस्य स्थापित करने मे उसके लिए सहा-

---

१. २७ अप्रेल १९६७ को लेखक द्वारा लिए गए इण्टरव्यू से, 'मधुमती' . भारतीय बालसाहित्य विवेचन विशेषांक।

यक होता है। आज के बालसाहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन और ज्ञानवर्धन करना ही नहीं है, बल्कि बालक को इस योग्य बनाना भी है कि वह जीवन के मूल्यों तथा भावी संसार के परिवेश से सम्बन्ध बनाए रखने में सफल हो सके। अत इस परिप्रेक्ष्य मे यदि हम देखें तो बालसाहित्य के शास्त्रीय विधान, न केवल मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, बल्कि साहित्य-रचना की दृष्टि से भी, बडों के साहित्य-शास्त्रीय विधानो से बिलकुल अलग हो जाते हैं।

बालसाहित्य के शास्त्रीय-विधानो का विवेचन हम निम्न विधाओं मे, उनकी परम्परा तथा विकास और विभेदो के साथ प्रस्तुत करेंगे—

(अ) बालगीत, (ब) बाल कहानियां, (स) बाल नाटक, (द) बाल उपन्यास, (इ) बाल-जीवनी साहित्य।

(अ) बालगीत

"बच्चे परिस्थितियो का ज्ञान सबसे पहले देख-सुन और समझकर उतना प्राप्त नही करते, जितना शारीरिक चेष्टाओ और सस्पर्श के आधार पर प्राप्त करते हैं। वह जिस वस्तु को देखते हैं उसे हाथ मे लेकर, तोडकर, नोचकर या खोलकर भी देखना चाहते है। देखने मात्र से उनकी जिज्ञासा शान्त नहीं होती। बडे लोग फूल को बाग मे खिला हुआ देखकर प्रसन्न हो सकते हैं, पर बच्चे इस प्रसन्नता के साथ-साथ उसे तोडकर हाथ मे लेने की स्वाभाविक इच्छा को रोक नही सकते। भले ही वह उसे तुरन्त नोच-नोचकर धरती पर फेंक दें। बाल कृष्ण के चाद को देखकर उसे पकड लेने के लिये मचलने की बात साहित्य मे प्रसिद्ध ही है। शारीरिक चेष्टाए करने की प्रवृत्ति उन मे इतनी तीव्र और स्वाभाविक होती है कि वह कभी-कभी निरर्थक ही उछलते-कूदते, घूमते-झूमने और चलते फिरते थकते नही। उनकी इस प्रकार की चेष्टाओ से ही उनके गढे हुए उस बालगीत साहित्य का निर्माण होता है जो न कभी छपता है न प्रकाशित होता है, पर निरन्तर गाया-दुहराया जाने के कारण वह धीरे-धीरे बच्चों के समाज मे फैल जाता है और शताब्दियो तक उनका मनोरंजन करता रहा है।"[१]

(१) सैद्धान्तिक विवेचन .

बच्चो के लिए गीतो के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए राबर्ट लिण्ड का कथन है— 'काव्य का आनद, कुछ चुने हुए लोगों के ही अधिकार की बात नही है। बल्कि वह तो सबकी सम्पत्ति है। इसे हम आरंभिक रूप मे बच्चों के गीतो मे दुहराए जाते वाले शब्दो तथा स्वरो मे देख सकते हैं।"[२]

---

१ निरंकारदेव सेवक—बालगीत-साहित्य, पृष्ठ २१-२२।

2. The enjoyment of poetry is not the possession of a select few but a part of the general human inheritance,...we see

बच्चे गीत क्यो पसन्द करते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर यदि हम खोजें तो हमे इसकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना होगा। वास्तव मे बच्चो को गीत पढने मे कहानी पढने जैसा आनन्द नही मिलता। गीत गेय होता है इसलिए उसे उन्ह, गाने या सुनने मे ही आनन्द आता है। काव्य से बच्चो को जो आनन्द मिलता है उसके बारे मे एगनिस रिपलर का मत है कि वह बहुत विस्तृत तथा कई प्रकार का होता है। वीरता भरे गीत जहा उनमे रोमाच का भाव जगाते हैं, वही परियो का सगीत उनके कानो मे गूजता है, अधूरी कही हुई कहानिया उनमे सपनों का निर्माण करती है ये सब बच्चो को बहुत अच्छी लगती हैं और वे उन्हें जानते हैं। काव्य मे बालक की कल्पना उसके ज्ञान की सीमा पार करके आगे निकल जाती है, उसके भाव उसे इतनी दूर ले जाते है जहा उसके ज्ञान की पहुच नही होती—उसे तो केवल आनद चाहिए—आनद।[1] यह आनद गीत सुनकर या गाकर ही बच्चे प्राप्त करते है। बालगीतो के स्वरो की यही विशेषता होती है कि वे श्रोता बालक के मन मे आनद का सचार करते है। वाल्टर डि ला मारे के शब्दो मे—"कविता के शब्दो की ध्वनि, सगीत की ध्वनि से मिल जाती है। तब वे शब्द केवल सुनने से ही आनद और प्रसन्नता प्रदान करते हैं। वे पक्षियो के स्वरो जैसे जब चढते-उतरते और बहते हैं, रुकते हैं और गूजते हैं तो विशेष आनद मिलता है।"[2] इसीलिए बालगीतो मे शब्दो की ध्वनियो को विशेष महत्त्व दिया गया है। इनके लिए ऐसी शब्द योजना आवश्यक होती है, जो सगीत के स्वरो स मिलती-

---

beginnings of it in the child's love of repetitions and rhythms
—Robert Lynd *Introduction to an Anthology of Modern Verse* Page xiii

1 The enjoyment which children receive from poetry is far reaching and of many kinds Martial strains which fire the blood, fairy music ringing in the ears, half told tales which set the young heart dreaming—all these good things the children know and love . .In the matter of poetry, a child's imagination outstrips his understanding, his emotions carry him far beyond the narrow reach of his intelligence He has but one lesson to learn —the lesson of enjoyment
—Agnes Repplier Quoted by Lillian Smith *A Critical Approach to Children's Literature* Page 98

2 The sounds of the words of poetry resemble the sounds of music They are a pleasure and delight merely to listen to, as they rise and fall and flow and pause and echo—like the singing af birds
—Walter de la Mare Quoted by Lillian Smith *Ibid*, Page 100

जुलती हो। इसका आशय यह नही है कि बालगीतो मे केवल सगीतमय शब्द ही रखे जाय या बालगीत केवल शब्दो की ध्वनि होते हैं। वास्तव मे बाल-गीतकार के लिए यह आवश्यक होता है कि वह उस विषय, भाव तथा विचार को स्पष्ट करने वाले ऐसे शब्दो का सयोजन करे जिनका प्रयोग सार्थक हो और वे सगीत की दृष्टि से भी ठीक हो। बच्चे शब्दो की सगीतमयता के माध्यम से कविता का आनन्द अधिक शीघ्रता से ग्रहण कर लेते हैं। फिर वे शब्द थोडे कठिन ही क्यों न हो, वे उनका भाव सरलता से समझ लेते हैं। उदाहरण के लिए—

हाथी झूम झूम झूम।
हाथी घूम घूम घूम।
राजा झूमे रानी झूमे झूमे राजकुमार।
घोड़े झूमे फौजें झूमे झूमे सब दरबार॥
हाथी झूम झूम झूम।
हाथी घूम घूम घूम।
झूम झूम, घूम घूम, घूम हाथी, झूम हाथी।
धरती घूमे बादल घूमे सूरज चाद सितारे।
चुनिया घूमे मुनिया घूमे घूमे राजदुलारे॥
हाथी झूम झूम झूम।
हाथी घूम घूम घूम।
घूम झूम, झूम घूम, घूम हाथी, झूम हाथी।
राजमहल मे बादी झूमे पनघट पर पनिहारी।
पीलवान का अकुस घूमे सोने की अम्बारी।
हाथी झूम झूम झूम
हाथी घूम घूम घूम।

(डा० विद्याभूषण विभु)

बालगीतो के सम्बन्ध मे श्री निरकारदेव सेवक का मत है, "सब बालगीत राग-रागनियो मे बधकर सगीत के स्वर-लय के आधार पर भले ही न गाये जा सकें, पर बच्चे उन्हे अपनी तरह से स्वर के उतार चढाव के साथ गा सकते हैं। किन्तु स्वानुभूति की अभिव्यक्ति होने की दृष्टि से गीत और बालगीत मे बहुत अन्तर होता है। बडो के गीतो की प्रेरणा कवि को स्वय अपनी अन्तरनुभूतियो से मिलती है। उसके अपने मन मे भावनाओ के उत्थान पतन, उसे उन्हे गीतो मे व्यक्त करने के लिए विवश कर देते हैं। पर बालगीतो की प्रेरणा कवि को स्वय उसकी अपनी अनुभूतियो से नही मिलती। न उसकी भावनायें ही उसे व्यक्त करने के लिए विवश करती हैं। बच्चो की बातो, उनकी चेष्टाओं, उनके क्रिया-कलापो से वह प्रेरणा ग्रहण करता है और अबवान-उल्लास के क्षणो मे वह उनके ही आधार पर बालगीतो की रचना किया करता है। यह प्रेरणा उसी प्रकार से होती है जैसी

प्रकृति के किसी रूप व्यापार को देखकर किसी भी कवि को प्राप्त हो सकती है।"[१]

यहा यह विचारणीय है कि क्या विना स्वानुभूति के काव्य लिखना सभव है ? प्रकृति के उपकरण देखकर भी यदि मन मे स्वानुभूति नही है तो काव्य रचना सभव नही है। एक कवि और साधारण मानव मे यही अन्तर है कि कवि प्राकृतिक उपकरणों के प्रभाव को आत्मसात कर लेता है और फिर उसे अपनी स्वानुभूति के रग मे रगकर अभिव्यक्त करता है। यही स्थिति बालगीतो की भी है। बालक की बातो, चेष्टाओ तथा क्रिया-कलापो के दर्शन मात्र से ही प्रेरणा नही मिलती। उन बातो, चेष्टाओ तथा क्रिया-कलापो के अन्तर्गत छिपी बाल-अनुभूति को समझना परखना और फिर उस जैसा स्वय अनुभव करना भी आवश्यक है, तभी सही बालगीत का जन्म हो सकता है। किसी वस्तु को देखकर उसके बारे मे लिखे गये विवरण तथा देखने के बाद मन पर पडे प्रभाव के साथ लिखे गये विवरण मे भी यही अन्तर होता है। इसीलिए बालगीत, बडो के काव्य जैसे गुण रखने के बाद भी, उनसे अलग स्वीकार किए गए हैं, क्योकि उनमे बालजीवन के छोटे से समय के अनुभव ही, रचना के मूल आधार होते हैं।[२]

बालगीत रचना मे बच्चो की रुचि-प्रवृत्ति की बातो को ही स्थान मिलता है। उनमे गेयता पहला गुण है। गेय-गीत बच्चो को बहुत शीघ्रता से याद हो जाते हैं और वे उन्हे खेल-खेल मे दुहराते रहते हैं। बालगीतो की भाषा आधुनिक ही होनी चाहिए। देशज अथवा लोकबोली के शब्दो का प्रयोग उन्हे समझने मे कठिनाई उत्पन्न करता है और वैसे गीत क्षेत्र विशेष मे ही सीमित रह जाते हैं। कठिन और विभक्ति वाले शब्दो को प्रयत्न करके हटा ही देना चाहिए। इन शब्दों के उच्चारण मे बच्चों को कठिनाई होती है। बालगीतो के विषयो के चुनाव मे भी उनके कोमल स्वभाव और मन का ध्यान रखना चाहिए। कई बातें जो बच्चों मे भय या घृणा उत्पन्न करती हैं, बालगीतो के उपयुक्त विषय का निर्माण नही करती। ऐसे गीत प्रभावशाली भी नही बनते।

पाश्चात्य बालसाहित्य मे, बच्चो के लिए पद्यावली तैयार करते समय इन बातो का विशेष ध्यान रखा गया है। वास्तव मे यही वह कसौटी है जिस पर बाल गीतो का मूल्याकन किया जाता है।

अत उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम बालगीतो को इस प्रकार परिभाषित

---

१. बालगीत साहित्य, पृष्ठ १५।

2 Poetry unlike other forms of literature, is common ground for both children and grown ups But since childhood is brief and since there is much poetry that waits on experience, it is I think, generally conceded that anthologies for children offer the widest range for individual response
—Lillian Smith *A Critical Approach to Children's Literature* Page 101

कर सकते हैं—"बाल-अनुभूति की सरल और गेय शब्दों में छन्दबद्ध संगीतमय अभिव्यक्ति ही बालगीत है।"

इन बालगीतों का, बालकों के लिए केवल आनन्ददायी महत्त्व ही नही होता, बल्कि ये "बच्चों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने मे बहुत सहायक होते हैं। गीतों मे तुक और स्वरो की संतुलित व्यवस्था ही अव्यक्त रूप से बच्चों के मन को संतुलित बनाये रखने के लिए पर्याप्त प्रेरणा देने वाली होती है। बार-बार निश्चित मात्राओं के आने और स्वरो के उतार-चढाव से वह अपने आप अपने मन को व्यवस्थित करने के अभ्यस्त हो जाते हैं। मानसिक संतुलन की यह बात उनके बड़े होकर उच्च कक्षाओं में पहुंच जाने पर अनुशासन से भी सम्बद्ध होती है। बचपन मे समुचित बालगीतो द्वारा जिन्हें अपने मन को संतुलित रखने की शिक्षा मिल जाती है वे बड़े होकर भी अनुशासन और व्यवस्थाप्रिय बने रहते हैं।"[1]

इस प्रकार बालगीत न केवल बाल-अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं, बल्कि उनसे बच्चों का भाषा ज्ञान तथा मानसिक-स्तर भी बढता है।

(२) हिन्दी बालगीत . परम्परा तथा विकास :

हिन्दी के बालगीतों की परम्परा भारतेन्दु युग से ही आरम्भ होती है। उनके नाटक 'अन्धेर नगरी' मे अनेक ऐसे गीत हैं जो बच्चों के मन को लुभाने वाले हैं। उनका 'चने का लटका' बच्चो को बहुत पसन्द आता है और वे उसे याद करके खेल-खेल मे दुहराते रहते हैं—

चने बनावें घासीराम। जिनकी झोली मे दूकान।
चना चुरमुर चुरमुर बोले। बाबू खाने को मुह खोलें।
चना खावें तोकी मैना। बोलें अच्छा बना चबैना।
चना खाय गफूरन मुन्ना। बोलें और नही कुछ सुन्ना।
चना खाते सब बगाली। जिनकी धोती ढीली ढाली।
चना खाते मियां जुलाहे। डाढी हिलती गाह बगाहे।
चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिक्स लगाते।
चने जोर गरम ....[2]

इसमे चने वाला बनकर गीत गाने की अभिनेयता तो है ही, 'चना खाय गफूरन मुन्ना' पंक्ति में बच्चे अपने मित्रों के नाम जोड कर उन्हें चिढाने का आनन्द भी लेते हैं। बगालियो की ढीली-ढाली धोती और मियां जुलाहे का दाढी हिलाकर चना खाने का चित्रमय दृश्य बच्चों के लिए बहुत रोचक है।

लेकिन भारतेन्दु के इन गीतों से बालगीतो की न तो परम्परा आरंभ हुई और न इस दिशा मे कोई उल्लेखनीय योगदान ही किया गया। सन् १९०० मे श्रीधर

---

१. निरंकारदेव सेवक, बालगीत साहित्य, पृष्ठ ६५ ६६।
२. भारतेन्दु ग्रन्थावली, सम्पादक, ब्रजरत्नदास, पृष्ठ ६६१।

पाठक ने सबसे पहले बच्चों के लिए कुछ कविताए लिखी। इस प्रकार हिन्दी बालगीत साहित्य का इतिहास सत्तर वर्ष से अधिक पुराना नही स्वीकार किया जा सकता। श्री निरंकारदेव सेवक ने हिन्दी बालगीत साहित्य के इतिहास को तीन भागों मे बांटा है।[१]

पहला	१६००	से	१६२०
दूसरा	१६२१	से	१६४१
तीसरा	१६४२	से	१६६२

इस काल विभाजन के प्रति उनका कोई पूर्वाग्रह नही है। उनके ही शब्दो मे—"यह काल विभाजन हमने किन्ही निश्चित कारणा के आधार पर नही किया है। इसलिए हम यह नही कहते कि इस काल विभाजन के अतिरिक्त कोई दूसरा काल विभाजन हो ही नही सकता। वास्तव मे यह ६० साल का समय इतिहास मे इतना कम है कि उसे अलग-अलग कालो मे विभाजित करने की आवश्यकता ही नही है।"[२]

लेकिन यदि सन् १६०० से अब तक के समस्त बालगीत साहित्य को देखें तो स्वतन्त्रता से पूर्व और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के बालगीत साहित्य मे कुछ स्पष्ट मौलिक अन्तर दिखाई पडते हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व धार्मिक, आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीय चेतना जागृत करने वाले गीतों, प्राकृतिक शोभा तथा उपकरणो से सम्बन्धित गीतों और पौराणिक गीत-कथाओं की ही प्रचुरता थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमने आधुनिक जगत से तादात्म्य स्थापित करने के लिए प्रयत्न किए। देश के औद्योगीकरण तथा वैज्ञानिक प्रगति ने बडी तेजी से लोगो को प्रभावित किया। जीवन के मूल्यों मे परिवर्तन होने लगा। इसके परिणामस्वरूप बच्चो के गीतों मे भी बहुत कुछ अन्तर आया। अत इस स्पष्ट अन्तर के आधार पर ही हम बालगीतों की परम्परा तथा विकास का विस्तृत अध्ययन करने के लिए उसे दो भागों मे विभाजित कर लेते हैं—

(१) पूर्व स्वातन्त्र्य युग (१६०० से १६४६)

(२) स्वातन्त्र्योत्तर युग (१६४७ से १६६७)

(१) पूर्व स्वातन्त्र्य युग—यह समय, देश के साहित्यिक तथा सास्कृतिक विकास के लिए बहुत ही नाजुक था। कारण कि उस समय अग्रेजी भाषा का बोल बाला था। हिन्दी अपना स्वरूप निश्चित करने के लिए प्रयत्नशील थी। हिन्दी काव्य रीतिकाल की परम्परागत रूढियो से मुक्त होकर लिखा जा रहा था और नये-नये विषय तथा शैलिया उसे आकर्षित कर रही थी। बालगीत साहित्य मे भी कवियों ने यही नये विषय तथा शैलिया प्रयोगात्मक रूप मे अपनाईं और उन्हे सफल देखकर रचनाए लिखी। इस समय के समस्त कवियो मे, दो तरह की प्रवृत्तिया

१ बालगीत साहित्य, निरंकारदेव सेवक, पृष्ठ १४२।

२ वही।

थी—एक तो वे जो स्वच्छन्द होकर, किन्तु अंग्रेजी के बालगीतों के अनुरूप काव्य रचनाएं करते थे। दूसरे वे थे जो भारतीय राष्ट्रीयता, संस्कृति, परम्परा तथा नैतिक जीवन के पोषक थे। पहले वर्ग के कवियों मे श्रीधर पाठक, लोचनप्रसाद पाण्डेय, डा० विद्याभूषण विभु आदि थे। दूसरे वर्ग के कवि थे—रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, कामताप्रसाद गुरु आदि।

पहले वर्ग के कवियों में श्रीधर पाठक तथा लोचनप्रसाद पाण्डेय ने अंग्रेज़ी की अनेक सुन्दर बालोपयोगी कविताओ के अनुवाद किए तथा उनकी छाया मे भारतीय वातावरण के अनुकूल कविताएं लिखी। लेकिन पाठक जी की भाषा बालोपयोगी न थी। उदाहरण के लिए यह ऋतुवर्णन द्रष्टव्य है—

पड़ने लगी तुषार बरफ पड़ने लगी,
अद्‌भुत शोभा के कौतुक करने लगी।
घर पर, दीवारो पर, वन के पेड़ पर
खेतों मे, बागो मे, उनकी मेड़ पर।
जमकर धरती वहा अनेको आकृती,
दृश्य बनाती विविध विलक्षण प्राकृती।

लोचनप्रसाद पाण्डेय ने अंग्रेज़ी के बालगीतों का अनुवाद किया था। बच्चो के प्रिय प्राकृतिक-जीव 'मधुमक्खी', 'बुलबुल-जुगनू' आदि से सम्बन्धित कविताएं, अंग्रेज़ी का ही अनुवाद थी। डा० विद्याभूषण विभु ने अंग्रेजी के गीतों की संगीतमयता तथा शब्दो की पुनरावृत्ति से प्रभावित होकर 'घूम हाथी घूम घूम,' 'रेल का खेल' आदि अनेक कविताए लिखी थी।

दूसरे वर्ग के कवियों मे—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने बच्चो के लिए अनेक सरल कविताएं लिखी थी। उनके बालगीतो के छ संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'हरिऔध' के नाम से विख्यात उपाध्याय जी बच्चों को प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से उनकी अनुभूतियों को जगाते थे। उनका 'चन्दामामा' शीर्षक बालगीत इस कथन के प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत है—

मेरे प्यारे बड़े दुलारे।
ऐ मेरी आंखों के तारे॥
आ मैं तेरा जी बहलाऊं।
तुझे अनूठी बात बताऊं॥
जो है दूध समुद्र कहाता।
कढ़ी उसी से लछमी माता
प्यारा चान्द चान्दनी वाला।
उसमे से ही गया निकाला॥
इसीलिए दोनों मन भाए।
जग मे भाई बहन कहाए।

जगत पिता जो माना जाता।
वह लछमीपति है कहलाता॥
इस नाते है सभी उमगते।
चन्दा को मामा हैं कहते॥

इस गीत मे उपाध्याय जी ने जहा एक ओर सागर मन्थन की धार्मिक कथा के प्रति बच्चा के मन मे जिज्ञासा उत्पन्न की है, वही उन्होने उस कथा के आधार पर निश्चित किए गए 'मामा' के रिश्ते की भी जानकारी दी है। गीत की भाषा तथा विचारो की सरलता भी द्रष्टव्य ही है।

कामताप्रसाद गुरु की रचनाए बच्चो मे नैतिक भावनाओ का सचार करने वाली होती थी। उन्होने जहा नैतिक विषयो पर स्वतत्र कविताए लिखी, वहीं अनेक ऐसे ऐतिहासिक कथानको को भी पद्य रूप म प्रकाशित किया जो बच्चो को नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा दे सकते थे। गढ मडला की रानी 'दुर्गावती' शीर्षक कविता मे, रानी के वीर बालक का चरित्र कितना प्रेरक प्रस्तुत किया है—

रानी का प्रिय पुत्र वीर नारायण बालक,
करता था अभिमन्यु सरीखा रण रिपुघालक।
निज माता को देख मृत्यु के मुख मे जाते,
सेनापति का भार लिया उसने हर्षाते।
बालक ने दो बार शत्रुओं को विचलाया,
कठिन मार कर उन्हे युद्ध का स्वाद चखाया।
किन्तु तीसरी बार मुसलमानो ने मिलकर,
उसी एक को घेर, चलाये अस्त्र भयकर।
घोडे से वह गिरा वीर जब घायल होकर,
रानी व्याकुल हुई और विचला हिन्दू दल।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त भी भारतीय सस्कृति तथा नैतिक-जीवन से सम्बन्धित कविताए बच्चो के लिए लिखते थे। उनकी अनेक गीत-कथाए, जो पचतत्र, हितोपदेश आदि की कहानियो पर आधारित थी, 'बालसखा' मे प्रकाशित हुई थी। उनकी 'रगा सियार' कविता बहुत प्रसिद्ध हुई थी। इसके अतिरिक्त बच्चा के मनोबल तथा नैतिक स्तर के विकास के लिए भी उनकी कवितायें उपयोगी सिद्ध हुई थी। गुप्त जी की राष्ट्रीय कविताए भी उल्लेखनीय हैं। 'मातृ भूमि' कविता का एक अश यहा उद्धृत है—

जिस रज मे लोट-लोटकर बडे हुए हैं,
घुटनो के बल सरक-सरक कर खडे हुए हैं।
परम हस सम बाल्य काल म सब सुख पाये,
जिसके कारण 'धूल भरे हीरे' कहलाए।

हम खेले कूदे हर्ष-युत,
जिसकी प्यारी गोद मे।
हे मातृ भूमि ! तुझको निरख,
मग्न क्यो न हों मोद मे ?

रामनरेश त्रिपाठी ने भारतीय जीवन तथा सस्कृति से बच्चों को परिचित कराने के लिए अनेक रचनाए लिखी। उनकी प्रस्तुत प्रार्थना आज भी बहुत प्रसिद्ध है, किन्तु लोग उनका नाम भूल गए हैं—

हे प्रभो, आनन्द दाता, ज्ञान हमको दीजिए।
शीघ्र सारे दुर्गुणों से दूर हमको कीजिए।
लीजिए हमको शरण मे हम सदाचारी बनें।
ब्रह्मचारी, धर्म रक्षक, वीर, व्रतधारी बनें॥

अन्य तत्कालीन कवियो मे लालजीराम शर्मा, मन्नन द्विवेदी गजपुरी, मुरारीलाल शर्मा 'बालबन्धु,' देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर, गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश,' मनोरजन प्रसाद सिन्हा, ठाकुर श्रीनाथसिंह, शभुदयाल सक्सेना, स्वर्ण सहोदर, रामसिंहासन सहाय 'मधुर,' ज्योतिप्रसाद 'निर्मल,' सुभद्रा कुमारी चौहान, बलभद्रप्रसाद गुप्त 'रसिक' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी कवियो ने विशुद्ध बालगीतों की रचना की और बालसाहित्य की समृद्धि तथा विकास मे योगदान किया।

हिन्दी बालगीतो की परम्परा तथा विकास को गति देने मे बाल-पत्रो का भी बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यह सही है कि केवल इने गिने बालपत्र ही ऐसे हैं जो लम्बी आयु तक जीवित रह सके, किन्तु उन सभी ने बालगीतों को, बडो की कविताओं से अलग प्रस्तुत कर बालसाहित्य के इतिहास को क्रमबद्ध बनाने मे निश्चय ही स्तुत्य कार्य किया।

बालगीतो की परम्परा को विकसित करने मे सबसे पहला पत्र 'बालसखा' था, जिसमें द्विवेदी युगीन खडी बोली के प्राय सभी प्रसिद्ध कवि बच्चो के लिए लिखते थे। मैथिलीशरण गुप्त, कामताप्रसाद गुरु गोपालशरणसिंह, हरिऔध आदि ने सुन्दर बालगीतो की रचना द्वारा बालसाहित्य की इस विधा का भडार भरा। उन्हीं दिनो 'शिशु' का प्रकाशन भी आरभ हो गया था और इसमें भी छोटे बच्चो के लिए मधुर गीत प्रकाशित होते थे।

प्रथम महायुद्ध के बाद पाश्चात्य बालसाहित्य के प्रभाव के कारण बालगीतो के विकास को और अधिक गति मिली। इस समय बालगीतो की परम्परा को अग्रसर करने में कई प्रमुख बाल-पत्र आगे आए। सन् १९२६ मे प० लालजीराम शर्मा ने अपने पुत्र प० रघुनन्दन शर्मा के सम्पादकत्व काल मे 'खिलौना' मासिक का प्रकाशन किया। सन् १९२७ मे आचार्य रामलोचन शरण ने पटना से 'बालक' निकाला। सन् १९३२ मे कालाकाकर के कुवर सुरेशसिंह ने 'कुमार' का ...

किया। १९३० मे गगाप्रसाद उपाध्याय ने कला प्रेस प्रयाग से 'चमचम' निकाला था। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने भी बच्चो के लिए 'वानर' मासिक का प्रकाशन आरम्भ किया था। सन् १९३३ मे 'वालविनोद' मासिक श्री ज्योतिलाल भार्गव तथा दुलारेलाल भार्गव ने निकाला था। सन् १९४२ मे रामकृष्ण शर्मा खद्दर जी ने 'हमारे बालक' नामक मासिक दिल्ली से निकाला था। इन सभी पत्रो मे बच्चो के लिए प्रचुर मात्रा मे रोचक, मनोरजक, सरल और गेय बालगीत प्रकाशित हुए।

भाव पक्ष की व्यापकता, बाल मनोवृत्ति, सरलता तथा गेयता की दृष्टि से प० अयोध्यासिंह उपाध्याय, डा० विद्याभूषण विभु, रामनरेश त्रिपाठी, श्रीनाथ सिंह, स्वर्ण सहोदर, सुभद्रा कुमारी चौहान, रमापति शुक्ल आदि के बालगीत श्रेष्ठ सिद्ध हुए। रमापति शुक्ल ने बच्चो के आसपास के वातावरण के पात्रो को लेकर अनेक सुन्दर कविताए लिखी थी।

इस प्रकार पूर्व स्वातन्त्र्य युग मे बालगीत साहित्य की रचना मे काफी प्रगति हुई।

(२) स्वातंत्र्योत्तर युग—स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बालगीतो की उन्नति और भी अधिक तीव्र गति से हुई। बच्चो के लिए गीतो का महत्त्व जानने पर उनकी माग बढने लगी। अत "जो बालगीत इस काल मे लिखे गए उनमे से कुछ तो पहिले से लिखे बालगीतो की छाया मात्र हैं। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित बालगीत भी बहुत से लिखे गए, पर उनकी अभिव्यक्ति के स्वरूप का समुचित विकास नहीं हुआ। बालगीतो के भाव-क्षेत्र का विकास इस काल मे अवश्य हुआ। चाचा नेहरू और बापू आदि के जीवनादर्शो से प्रेरित बालगीत ही नही लिखे गए बल्कि सागर, राकेट, कलकत्ता जैसे असाधारण विषयो पर भी लिखे हुए बालगीत अब मिल सकते है।"[1] अब तो विज्ञान के विषयो को लेकर भी गीत लिखे जाने लगे हैं। उदाहरण के लिए यह गीत द्रष्टव्य है—

जेम्स वाट इन्जन के दाता,
स्टीफेन्सन रेल-प्रदाता।
मोर्स तार को लेकर आए,
फुल्टन ने जलयान चलाए।
छापे के पितु गटनवर्ग, पनडुब्बी के हालैंड।
ए जी बेल फोन क, डाक टिकट के है रालैंड॥
तार मारकोनी का सुखकर,
मोटर के निर्माता डेमलर।
मिस्टर जान्सन की दुरबीन,
एक्स किरण के रोटगीन।
वायुयान बना जैप्लिन ने किया विश्व कल्याण।
टाइपराइटर बना सुखद, बन बैठे शोल्स महान॥

१ निरकारदेव सेवक, बालगीत साहित्य पृष्ठ १६७।

टैंको का निर्माता स्विन्टन,
चल चित्रों का है एडिसन।
स्युइग मशीन होव की देन,
वाटरमैन का फाउण्टेनपेन।
फैरनहाइट का थर्मामीटर, अजब दिखाता शान,
गुड ईयर ने रबर बनाकर की यात्रा आसान।
ऐसे ही यदि कर पाए हम सब भी आविष्कार,
गुण गाएगा सदा हमारे, हो कृतज्ञ ससार।

—रत्नप्रकाश शील

"भाषा शैली की दृष्टि से इस काल मे बालगीत साहित्य ने बहुत विकास किया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह बच्चो के मन के अधिक पास और उनकी भावनाओ और कल्पनाओ के अपेक्षाकृत अधिक निकट हैं।"

इस युग मे सोहनलाल द्विवेदी, निरंकारदेव सेवक, शकुन्तला सिरोठिया, चन्द्रपालसिह यादव 'मयक', राष्ट्रबधु, रामवचनसिंह आनन्द, श्रीप्रसाद, विनोद चन्द्र पाण्डेय, वीरेन्द्र मिश्र, योगेन्द्रकुमार लल्ला आदि प्रमुख बालगीतकारो ने बहुत प्रशसनीय कार्य किया है। सोहनलाल द्विवेदी और निरंकारदेव सेवक ने बाल-मनोविज्ञान के अनुरूप अनेक बालगीतों के सग्रह प्रकाशित किये है। बच्चो मे विश्वबधुत्व तथा सद्भाव के विचारो को जगाने के लिए निरंकारदेव सेवक का यह गीत इस युग के प्रमुख कवियो की आधुनिक विचारधारा का भी परिचय देता है :

आज हमारे घर आगन मे मस्ती और बहार है।
बाल दिवस यह दुनिया भर के बच्चो का त्योहार है।।
कैद नही हम देश जाति की सीमाओं के जाल मे।
उछल कूद के मस्त सदा हम, पडते नही बवाल मे।।
छोटे-छोटे देश बडो के, बच्चो का ससार है।
आज हमारे घर आगन मे मस्ती और बहार है।।
मिकोयान मौली लेवैना, बाल डौर तिन च्वाग पो।
आज हमारे घर तुम सबकी दावत है ज्योनार है।
बाल दिवस यह दुनिया भर के बच्चो का त्योहार है।।

आधुनिक युग मे बालगीतकार बच्चो के बारे मे जिस विचारधारा को लेकर चल रहे हैं उसे निरंकारदेव सेवक ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—"आज का बालक भविष्य मे जिस समाज का अग होगा वह एक ऐसा विश्व मानव समाज होगा जिसमे जाति, देशों के रूप मे मानव मन की कल्पित सीमाओं के लिए स्थान ही न रह जायगा। अब भी यदि हमारे कवि बच्चों को राष्ट्रीयता के नाम पर प्राचीन परम्परागत सकीर्णताओ और ससार के मनुष्यो मे वैर-विरोध की भावनाओ

को बढाने वाले बालगीतो के बजाय, विश्व नागरिक बनने की प्रेरणा देने वाले बालगीत रचकर नही देंगे तो वे बडे होकर उनका कुछ भी अहसान नही मानेंगे। उनके लिए अब तक के रचे बडो के गीत समय की हवा के साथ उड जावेंगे और भविष्य के बच्चे उन्हे गैस के गुब्बारो की तरह उडता देखकर भी खेलने के लिए पकडने का प्रयत्न नही करेंगे। जब उन्हे खेल खेल म अन्तरिक्ष तक उडने-उडाने के लिए असली वायुयान, बैलून, राकेट और हैलीकाप्टर मिलने लगेंगे तो वे इन जरा मे फट जाने वाले नकली गुब्बारो को लेकर क्या करेगे ?"

आधुनिक बालगीतो के सम्बन्ध मे निरकारदेव सेवक की यह टिप्पणी बहुत महत्त्वपूर्ण तथा विचारणीय है। आज बच्चे वे गीत चाहते हैं, जो आज की तथा भविष्य की दुनिया से सम्बन्ध रखते हो। आज के बच्चो के साहस, धैर्य और विश्वास का भाव प्रस्तुत गीत मे कितना स्पष्ट है—

हम नन्हे मुन्ने हो चाहे, पर नही किसी से कम,
आकाश तले जो फूल खिलें, वे फूल बनेंगे हम।
बादल के घेरे मे,
कुहरे के घेरे मे,
भयभीत नही होगे,
घनघोर अन्धेरे मे।
हम दीपक भी, हम सूरज भी, तुम मत समझो शबनम।
अब जान गया यह नील गगन, दिन रात तपेंगे हम।
यह ऊच नीच क्या है ?
यह जात पात क्या है ?
दीवार उठाने से,
तो साथ छूटता है।
आधी मे भी उडता रहता इसाफ बना परचम।
इकार करे ससार भले, इन्सान रहेंगे हम।
आवाज देश की है,
आशीष देश का है,
आदेश हमे हो तो
यह शीश देश का है।
जिसके आगे बेकार रहे दुनिया के एटम बम।
विश्वास भरी, इक फौज नई तैयार करेंगे हम।

—वीरेन्द्र मिश्र, 'पराग', जनवरी १९६६

अब बच्चो मे परम्परागत रूढियो तथा विश्वासो के प्रति कोई आस्था नही रही। वे अपना स्वतत्र अस्तित्व मानते हैं और मन मे एक नई उमग, नई भावना लेकर चलते है—

हमे लुटानी है धरती पर
विमल शांति नभ चदा सी।
हमे मिटानी है धरती से
भूख-प्यास दुख दर्द उदासी,
हम विज्ञान लोक के वासी।
ले जायेगे यत्र तत्र सब गीत गाव को,
एक करेंगे बुद्धि भाव को धूप छाव को।
धरा उठाने, अभ्र झुकाने को आए है,
भूलभालकर धर्म कर्म के भेदभाव को।

—कु० रतना, 'पराग', जनवरी १९६४

इन्ही विचारधाराओ को लेकर आधुनिक युग के बालगीतकार अपनी रचनाए लिख रहे हैं। यद्यपि आधुनिक युग मे बालगीत सग्रहो की बिक्री बहुत कम होती है—कथा-कहानिया अधिक बिकती हैं, फिर भी पत्र-पत्रिकाओ तथा पुस्तकालयो मे उपलब्ध बालगीत-सग्रहो को पढकर बच्चे निश्चित ही आनन्द लेते हैं। पत्र-पत्रिकाए जो बालगीत साहित्य की सेवा कर रही हैं—'बालभारती', 'पराग', 'नन्दन', 'बालक' और 'बालसखा' प्रमुख हैं। 'पराग' मे शिशु-गीत भी प्रकाशित होते हैं, जिनका विवेचन आगे प्रस्तुत करेंगे।

सक्षेप मे अब बालगीत के भाव पक्ष मे बहुत अन्तर आ गया है और पुरानी बालगीत-रचना की परम्परा बहुत पीछे छूट गई है। आज बालगीतो की परम्परा विज्ञान-युग से गुजर रही है और इसलिए स्वाभाविक ही है कि वह इस युग की विशेषताओ से अभिभूत हो। अब बालगीत अपने पुराने रूप को छोडकर नए परिवेश मे जन्म ले रहे हैं—जहा विश्व का बहुत बडा, सबके लिए, खुला हुआ मच है।

(३) हिन्दी बालगीतो के भेद :

आधुनिक युग मे जहा बालगीतो को नया परिवेश मिला है, वहीं जीवन की विविधताओ से भरे अनेक विषय भी उन्हें मिले हैं। इसलिए इन्हें यदि वर्गीकृत रूप मे प्रस्तुत कर, प्रत्येक रूप का पृथक् अध्ययन करें तो अधिक सुविधाजनक होगा। मुख्यत बालगीतो को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है—

१ ऋतु गीत
२ खेलकूद के गीत
३ वन्दना गीत
४. जागरण-गीत
५. नये गीत
६ शिशु गीत और लोरिया

१ ऋतु गीत : इनमे विभिन्न ऋतुओं, उनके मौसम तथा उस समय के प्राकृतिक उपकरणों से सम्बन्धित गीत आते हैं। बच्चों के लिए प्रकृति सदैव कौतूहल का विषय रही है। विभिन्न ऋतुओं मे उसकी, भिन्न शोभा को देखकर वे तरह-तरह की कल्पनाए मन मे करते हैं। ऐसे गीत, बालगीत साहित्य के इतिहास के आरंभिक दिनो से ही लिखे जा रहे हैं। श्रीधर पाठक, लोचनप्रसाद पाण्डेय, कामताप्रसाद गुरु, डा० विद्याभूषण विभु, सोहनलाल द्विवेदी, निरकार देव सेवक आदि अनेक कवियों ने ऋतु-गीत लिखे है। श्रीधर पाठक तथा लोचन-प्रसाद पाण्डेय के ऋतुगीतो के बारे मे हम लिख चुके हैं। यहा डा० विद्याभूषण 'विभु' के 'बसत' शीर्षक गीत से कुछ पक्तिया प्रस्तुत हैं—

अवनि पर आ पहुचा ऋतुराज,
साजकर अपना नवल समाज।
सौम्यता सुषमा का सिरताज,
अनोखी छवि विराजती आज॥
× ×
जा रहे कुसुमो पर मकरन्द,
पान करते हैं मधु मकरन्द।
विचरते जो हैं नित स्वच्छद,
न होता क्यों उनको आनद॥

देश मे जैसे-जैसे राष्ट्रीय चेतना का जागरण हुआ, तो कवियो के स्वर मे भी परिवर्तन हुआ। सुभद्राकुमारी चौहान की 'वीरों का वसन्त' कविता बदले हुए स्वर का ऋतु-गीत है—

फूली सरसो ने दिया रग,
मधु लेकर आ पहुचा अनग।
वधु वसुधा पुलकित अग-अग।
है वीर वेश ये—किन्तु कन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?
भर रही कोकिला इधर तान,
मारू बाजे पर उधर तान,
है रग और रण का विधान।
मिलने आये है आदि अन्त,
वीरो का हो कैसा वसन्त ?
हल्दी घाटी के शिला खड,
रे दुर्ग सिंहगढ के प्रचड,
राणा, ताना का कर घमड,
दो जगा आज स्मृतिया ज्वलन्त।
वीरो का हो कैसा वसन्त ?

आधुनिक युग मे ऋतु गीतो का स्वरूप बहुत कुछ बदल गया है। अब वे केवल प्राकृतिक वातावरण का ही चित्रण नही करते बल्कि हमारे जीवन से उनके सम्बन्ध को भी स्पष्ट करने का प्रयास होता है। शरद् सुहानी आई तो वर्षा के सारे आनन्द गए और शरद् मे जीवनोपयोगी वस्तुओ का महत्त्व बढ गया—

आसू सूख गए वर्षा के, शरद लुटाती है मुस्काने।
हरियाली का हरियल तोता डाल-डाल मन लगा लुभाने।

सदूको मे ऊनी कपडो की होने लग गई ढुढाई,
नए जन्म की खुशी मनाने निकले कबल और रजाई।
सरदी के बढने के सग सग लगी याद गरमी की आने,
आसू सूख गये वर्षा के, शरद लुटाती है मुस्कानें।

आइसक्रीम विदा लेकर अब नानी के घर गई चली है।
रेवडिया के सग खेलने मूगफली बाहर निकली है।
आओ भाई हम भी निकलें सगी साथी नए बनाने,
आसू सूख गए वर्षा के, शरद लुटाती है मुस्कानें।

—सीताराम गुप्त, 'पराग', अक्टूबर १९६४

इस प्रकार पुराने और आधुनिक ऋतु गीतो मे अब बहुत अन्तर हो गया है। अब ये गीत केवल भावो की आधार भूमि पर नही लिखे जाते, बल्कि उनमे जीवन की सत्यता तथा उस पर पडने वाले प्रभावो को भी स्पष्ट करने का प्रयास होता है।

२ खेलकूद के गीत : खेल-कूद के गीत, लोकसाहित्य मे प्रचुर मात्रा मे हैं। उन्ही के आधार पर आधुनिक जीवन से सम्बन्धित गीत लिखने की परम्परा चली। एक पुराना खेल गीत है—

हाथी घोडा पालकी,
जय कन्हैयालाल की।

इसका आधार लेकर श्री सत्यप्रकाश कुलश्रेष्ठ ने लिखा—

गिल्ली डडा गेंद न गोली,
नही साथ बच्चो की टोली।
तब तो चलो कबड्डी होली।
अब क्या खेलें यह बतलाओ ?
एक बात है हाल की,
डोली डडा पालकी।
जय कन्हैया लाल की।

अब गुडियो के मेल के स्वरूप मे भी अन्तर आ गया है। वे बच्चो के लिए

केवल खिलौना ही नही बल्कि उनकी साथी भी बन जाती है :

मेरी गुड़िया, मेरी गुड़िया, है पक्की जादू की पुड़िया।
मेरा चित्त लुभाया करती, पागल मुझे बनाया करती।
जिस दिन से आई मेरे घर, फूंक दिया मुझ पर छूमंतर।
एक-एक से नये सलौने, भूल गई सब खेल खिलौने।
फैलाई कुछ ऐसी माया, बन बैठी मैं इसकी छाया।
यह भीतर तो मैं भी भीतर, यह बाहर तो मैं भी बाहर।
यह हसती है मैं खुश होती, यह पीछे मैं पहले रोती।
कौन-कौन सी बात बताऊ, यह जब खाए तब मैं खाऊ।

—हरिकृष्ण देवसरे

अब खेलो के पीछे छिपे बाल-अन्तर्मन की अनुभूतियों को समझने का प्रयास किया जाता है और उसके अनुकूल कविताएं लिखी जाती है। इसलिए आधुनिक खेल-गीत मनोवैज्ञानिक आधार पर भी लिखे जाते हैं।

३. वन्दना गीत—भारतीय संस्कृति और धर्म मे वन्दना का बहुत महत्व है। वन्दना बच्चो को नम्र, विनयी तथा सुशील बनाती है। इसीलिए पहले स्कूलों में, सबसे पहले वन्दना होती थी। अब ईश-वन्दना, राष्ट्र-वन्दना में बदल गई है। अधिकाश आधुनिक स्कूलो मे राष्ट्र-वन्दना ही होती है। ईश वन्दना जहां बच्चों मे आध्यात्मिक चेतना का सचार करने के साथ, अलौकिक शक्ति की महिमा का ज्ञान कराती है, वहीं राष्ट्र-वन्दना बच्चों मे राष्ट्र के प्रति प्रेम, त्याग और बलिदान की भावना का संचार करती है।

बच्चो के लिए हिन्दी मे दोनो प्रकार की वन्दनाएं प्रचुर-मात्रा मे लिखी गई है। मुरारीलाल शर्मा 'बालबन्धु' की प्रस्तुत वन्दना अनेक स्कूलो के बच्चे गाते रहे हैं—

वह शक्ति हमे दो दयानिधे कर्तव्य मार्ग पर डट जाएं।
पर सेवा पर उपकार मे हम जग जीवन सफल बना जाएं।
हम दीन दुखी निबलो विकलो के सेवक बन सन्ताप हरें।
जो हैं अटके भूले भटके उनको तारें खुद तर जाए।
छल दम्भ द्वेष पाखड झूठ अन्याय से निशि-दिन दूर रहें।
जीवन हो शुद्ध सरल अपना शुचि प्रेम सुधा रस बरसावें।
निज आन मान मर्यादा का प्रभु ध्यान रहे अभिमान रहे।
जिस देश जाति ने जन्म दिया, बलिदान उसी पर हो जावें।

हमारे राष्ट्रीय गीत—'जन गन मन अधिनायक जय हे, भारत भाग्य विधाता', तथा राष्ट्र-गान 'वन्दे मातरम्' के अतिरिक्त बच्चो मे राष्ट्रीय भावना जगाने के लिए अनेक कवियों ने राष्ट्र-वन्दना लिखी हैं। श्री निरकारदेव सेवक की राष्ट्र-

वन्दना यहा प्रस्तुत है—

जय जय भारत प्यारा।
मुकुट हिमालय साजे सिर पर।
गगा यमुना हार मनोहर।
रग विरगे कलि कुसुमो से सजा हुआ तन सारा।
जय जय भारत प्यारा।

छ ऋतुए आ रूप सवारे।
सागर लहरे चरण पखारें।
आरति सूरज चाद उतारें।
तारक दीपो से नीलम का जगमग मन्दिर न्यारा।
जय जय भारत प्यारा।

हम सब की आखो का तारा।
प्रजा राज यह स्वर्ग हमारा।
आज लगाते हम यह नारा।
हम बच्चे स्वाधीन देश के, ऊचा शीश हमारा।
जय जय भारत प्यारा।

इस प्रकार हिन्दी मे वन्दनागीत बच्चो के लिए बहुत प्रेरक सिद्ध हुए हैं। वास्तव में ये गीत उनके विचारो तथा भावो को परिष्कृत करते हैं।

४ जागरण गीत—ये गीत नवोत्थान तथा देश की सुरक्षा के लिए गाए जाते हैं। जब हमने आजादी प्राप्त नही की थी, तब जागरण गीतो का बहुत महत्त्व था। सदियो से गुलाम भारत मे एक नई चेतना, नई स्फूर्ति का सचार करना था जिससे वह आजादी की आग को प्रज्वलित कर सके। उस समय ऐसा ही हुआ। जागरण-गीत अपने उद्देश्य मे सफल हुए। उसी युग का एक जागरण गीत—

हम नन्हे नन्हे बच्चे हैं,
नादान उमर के कच्चे हैं।
पर अपनी धुन के सच्चे हैं॥
जननी की जय जय गाएगे,
भारत की ध्वजा उडाएगे।
अपना पथ कभी न छोडेंगे।
अपना प्रण कभी न छोडेंगे।
हिम्मत से नाता जोडेंगे,
हम हिमगिरि पर चढ जाएगे।
भारत की ध्वजा उडाएगे॥
हम भय से कभी न डोलेंगे,
अपनी ताकत को तोलेंगे।

माता के बन्धन खोलेंगे,
अपना सिर भेंट चढाएगे।
भारत की ध्वजा उडाएगे।
—सोहनलाल द्विवेदी

स्वतन्त्रता के बाद जागरण-गीतों का स्वर बदल गया है। देश में प्रगति और विकास, हमारी नई चेतना और जागरण की परिभाषाए बने। दुनिया के अन्य देशो की बराबरी पर पहुचने का हमने व्रत लिया और अपने विकास कार्य आरंभ किए। इस नए भारत के सपने को अभिव्यक्त करने वाला एक अन्य जागरण गीत—

देखो नही हाथ की रेखा,
पलटो मत पत्रा पोथी।
मीन मेष कुछ कर न सकेगा,
ये सारी बातें थोथी॥
कभी निकम्मे मत बन बैठो,
उठो बढो कुछ काम करो।
सब कुछ कर सकते हो तुम,
मत ईश्वर को बदनाम करो।
नही भाग्य का मुख देखो तुम,
अपने बनो विधाता आप।
चलो बढो अपने पावो से,
लो सारी दुनिया को नाप।
—सोहनलाल द्विवेदी

पिछले दिनो हुए विदेशी आक्रमण के कारण, भारतीय स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए देश का एक एक बालक जाग उठा था। एक ऐसे ही जागृत बालक के मन की अनुभूतिया इस प्रकार है—

सीमा रेखा अगर लाघकर कोई दुश्मन आए,
सीमा रक्षक की गोली से कभी न बचने पाए।
सदियो से है अपनी धरती माता की मर्यादा,
इसकी रक्षा का व्रत प्यारा, प्राणों से भी ज्यादा।
जो आया है लौट गया है, कभी न आख उठाई,
यहा सिकन्दर जैसो ने भी आकर मुह की खाई।
क्या बिसात है हमलावर की, क्या है उसके बस मे,
बना हुआ जब जोश चौगुना सैनिक की नस-नस मे।
—प्रेमचन्द गोस्वामी, 'पराग', जनवरी १९६६

हिन्दी के इन जागरण-बालगीतो मे बालमन की बाते बडी ही सरलता से कही गई है। एक साथ मिलकर आगे बढने की बात यदि बच्चो से कहलाई जाय तो वह गीत मे कुछ इस तरह होगी—

वीर सिपाही हम हम।
वीर सिपाही हम हम।
बढते पाव हमारे साथ।
हिलते साथ हमारे हाथ।
एक नियम है एक कदम।
वीर सिपाही हम हम हम।

सक्षेप मे, हिन्दी मे इस तरह के गीत प्रचुर मात्रा मे लिखे गए हैं और वे बाल मन की अभिव्यक्ति मे पूर्णतया सफल है।

५ नये गीत—नये गीत वे है जो आधुनिक विषयो पर लिखे जाते हैं। इन विषयो मे यात्रा, वैज्ञानिक विषय, समाज की तथा जीवन की अधुनातन समस्याए आदि आती है। वास्तव मे इन विषया से सम्बन्धित गीत लिखना कठिन काम है, और इससे भी कठिन है इन्हे बाल मन और बुद्धि के अनुकूल बनाना। लेकिन अब ऐसे गीतो का महत्त्व है, इसलिए उन्हे भी सफलतापूर्वक लिखा गया है। श्री आरसीप्रसादसिंह की 'सैर-सपाटा' कविता इस सन्दर्भ मे द्रष्टव्य है—

कलकत्ते से दमदम आए, बाबू जी के हमदम आए।
हम वर्षा मे झम झम आए, बर्फी पेडे चमचम लाए।
खाते पीते पहुचे पटना, पूछो मत पटना की घटना।
मोटर के टायर का फटना, तागे का बेलाग उलटना।
पटना से हम पहुचे राची, राची मे मन मीरा नाची।
सबने अपनी किस्मत जाची, 'देश-देश की पोथी बाची।
राची से हम आए टाटा, सौ सौ मन का लोहा काटा।
मिला नही जब चावल आटा, भूल गए हम सैर सपाटा।

मनुष्य की श्रेष्ठता को आधुनिक वस्तुग्रो की तुलना मे सिद्ध करने का रोचक प्रयास श्री रमापति शुक्ल की इस कविता मे उल्लेखनीय है—

आलपीन के सिर होता, पर बाल न होता उस पर एक,
कुर्सी के दो बाहे है, पर गेंद नही सकती है फेक।
कघी के है दात, मगर वह चबा नही सकती खाना,
गला सुराही का पतला है किन्तु न गा सकती गाना।
होता है मुह बडा घडे का, पर वह बोल नही सकता,
चार पाव टेबिल के होते, पर वह डोल नही सकता।

जूते के है जीभ, मगर वह स्वाद नही चख सकता है,
आँखें रहते हुए नारियल कभी न कुछ लख सकता है।
बकरे के लम्बी दाढ़ी है, लेकिन बुद्धि न उसके पास,
झींगुर के मूछें हैं फिर भी दिखा नही सकता है त्रास।
है मनुष्य के पास सभी कुछ, ले सकता है सबसे काम,
इसीलिए दुनिया मे सबसे बढकर है उसका ही नाम।

इस तरह नयी भावभूमि पर आधारित अनेक नये गीत लिखे गए हैं और लिखे जा रहे है। ये सब मिलकर भविष्य मे लिखे जाने वाले बालगीत साहित्य की एक विशेष श्रेणी बनेंगे।

६. शिशु गीत और लोरियां—शिशु गीतो के सम्बन्ध मे श्री आनन्द प्रकाश जैन, सम्पादक 'पराग' का मत है—"हिन्दी मे शिशु गीतों (नरसरी राइम्स) का चलन बहुत पुराना है। ये बड़े दिलचस्प और चटपटे होते हैं। फिर भी इन्हे जैसा प्रचार-प्रसार मिलना चाहिए था, वैसा नही मिल सका। शुद्ध शिशु-गीत लिखना उतना आसान नही है जितना समझा जाता है। ये गीत ऐसे होने चाहिए कि इन्हें चार से छह साल तक के बच्चे आसानी से जबानी याद कर लें और अन्य भाषा-भाषी बड़े बच्चे भी इनका आनन्द ले सकें। इनसे मुहावरेदार हिन्दी सरलता से उनकी जबान पर चढती है।"[१] इस कथन से सहमत होते हुए श्री निरंकारदेव सेवक का भी मत विचारणीय है—"कुछ इने-गिने कवि ऐसे हैं जिन्होने बहुत छोटे बच्चो के गीतो की ओर ध्यान दिया। पुरानी पीढ़ी के बच्चो के कवियो मे हरिऔध, श्री कामताप्रसाद गुरु, पं० रामनरेश त्रिपाठी, श्री सुदर्शनाचार्य, श्री मुरारीलाल शर्मा 'बालबधु', प्रो० मनोरजन एम० ए०, श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, प० ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', ठाकुर श्रीनाथसिंह, प० सोहनलाल द्विवेदी, श्री स्वर्ण सहोदर इत्यादि में से दो-चार ही ऐसे हैं जिन्होंने दो-चार पक्तिया उन अबोध बच्चों के लिए लिखने की कृपा की है। और दो-चार पक्तिया भी कोई एक सम्पूर्ण कविता के रूप मे नही बल्कि उनकी बड़ी-बड़ी कविताओं मे कही-कही पर दो-चार पक्तिया ऐसी आ गई है जिन्हें बहुत छोटे बच्चे अपनी पूरी कविता कह सकते हैं।"[२]

किन्तु आधुनिक युग मे इस दिशा मे अनेक कवि सजग हैं और वे बच्चों के लिए सुन्दर शिशु गीतो की रचना कर रहे हैं। इनमे राष्ट्रबधु, सुधाकर दीक्षित, श्रीप्रसाद, गंगासहाय प्रेमी, विष्णुकान्त पाडेय, सरस्वतीकुमार दीपक, चन्द्रपाल-सिंह यादव 'मयंक' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये शिशु-गीत जहा छोटे बच्चो के लिए सरल तथा याद करने योग्य हैं वही अपने आप मे पूरे भी होते हैं। उदाहरण के लिए—

---

१. 'पराग', सितम्बर १९६४ और जनवरी १९६६ के अक, पृष्ठ ५२।
२ बालगीत साहित्य : निरंकारदेव सेवक, पृष्ठ ३१।

हाऊ हाऊ हप,
एक (सुनाऊ (गप्प।
बाबा जी की दाढी,
झरबेरी की झाडी।
उस दाढी के अन्दर,
घुसे बीसियों बन्दर।
करते खों खों खों,
यूं ही बीते बरसों।

—गगासहाय प्रेमी

"लोरी उन गीतों को कहते हैं जो छोटे बच्चा को सुलाने के लिए गाए जाते है। लोरी शब्द सस्कृत के 'लोल' शब्द का अपभ्रश है जिसका अर्थ होता है हिलाना-डुलाना या थपथपाना। मातायें अपने बच्चों को गोद मे लेकर, कन्धे पर डालकर या पालने मे लिटाकर थपथपी देकर सुलाती हैं और उनकी आखो मे नीद का बुलाने के लिए मुख से मधुर शब्दो मे ऐसे गीत सुनाती हैं जिन्हे सुनकर बच्चों को जल्दी नीद आ जाती है। ये गीत पारिवारिक होते हैं और इनमे माता-पिता के हृदय की ममता और निर्मल वात्सल्य की सरल स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है।"[1] हिन्दी मे लोरिया प्रचुर मात्रा मे लिखी गई हैं। प० अयोध्यासिंह उपाध्याय की लोरी इस प्रकार है :

आरी नीद लाल को आजा।
उसको करके प्यार सुलाजा।
तुझे लाल हैं ललक बुलाते।
अपनी आखो पर बिठलाते। आदि।

लोरियो मे, माताओ मे बच्चो के भविष्य की कल्पना के चित्र होते हैं। ये चित्र युग परिवर्तन के साथ बदलते भी रहते हैं। एक ऐसी ही आधुनिक लोरी भी प्रस्तुत है—

कतक थैया थूनू मनइया,
चदा भागा पइया पइया।
यह चन्दा हलवाहा है नीले-नीले खेत मे।
बिलकुल सेंत-मेंत मे, रत्नो भरे खेत मे।
किधर भागता लइया पइया,
कतक थैया थूनू मनइया।
अन्धकार है घेरता टेढी आखो हेरता।
चाद नही मुह फेरता, राकेट को टेरता।

---

१. निरकारदेव सेवक, बालगीत साहित्य, पृष्ठ ६६।

मुन्नू को लगा मैं दइया,
कतर थैया थून मनइया।

—राष्ट्रबन्धु

इस प्रकार आधुनिक युग के परिवेश मे छोटे बच्चो के लिए बहुत सरस और सरल शिशु-गीतो तथा लोरियों की रचना हुई है। लोरी लिखने वाले कवियो मे शंभू दयाल सक्सेना, शकुन्तला सिरोठिया, डा० विद्या भूषण 'विभु' आदि के नाम उल्लेखनीय है।

सक्षेप मे हिन्दी का बालगीत साहित्य इतनी अल्पायु म ही विकसित होकर समृद्धिशाली बन रहा है। उसमे अब अधिकाधिक मनोवैज्ञानिकता आती जा रही है, जो उसकी लोकप्रियता का भी एक गुण है। आधुनिक जीवन के अनुरूप बालगीतो की रचना से हिन्दी बालसाहित्य समृद्ध हुआ है।

(ब) बालकहानियां

बच्चे कहानियो मे सर्वाधिक रुचि लेते हैं। उनमे आरभ से ही कहानियो के प्रति अनुराग होता है। इसका आधार उनकी मनोवैज्ञानिक रुचि तथा भावुक तत्त्व होते है। रूसो का तो कहना है कि आठ साल के पहले तक बालक प्राकृतिक वस्तुओ का अध्ययन करता है। इस अवस्था में वह निरथक कार्यों को बहुत पसन्द करता है। तोड-फोड, चीजो को बिखेरना, इधर-उधर फेंकना आदि उसे बहुत अच्छा लगता है।[१] किन्तु अरस्तू का मत है कि बच्चो की य क्रियाए कम की जा सकती हैं यदि उन्ह जिज्ञासा शान्त करने वाली कहानिया सुनाई जाए।[२] कहानिया सुनकर बच्चे कुछ सीखते है, नए-नए सपने देखते हैं। उनके सामने सारा ससार होता है। उनके मानसिक क्षितिज का विस्तार होता है और उनकी रुचि गहरी होती है।

तीन साल तक की वय मे बच्चे अपने घर और आस-पडोस की चीजो से परिचित हो पाते है। घर के पालतू जानवर और चिडिया, जिन्हें वे नित्य देखत हैं, उनके प्रिय बन जाते है। इस अवस्था मे उनके मन को वही कहानिया लुभाती हैं, जो इनसे सम्बन्धित होती है। इन्हे वे राग और लय के माध्यम से सुनना अधिक पसन्द करत है। मा उन्ह हथेली पर उगलिया रखकर सुनाती है—

एक चिरैया दुर्गादासी,
अन्न खाय पानी की प्यासी,
चली ढूढने पानी पानी ये मिला•• ये मिला।

कह कर वह बच्चे को गुदगुदाती है तो वह बहुत खुश होता है। फिर तो वह रोज सोने से पहले 'चिर्री मौर्सा' की कहानी सुनाने का आग्रह करने लगता है।

---

१ हिन्दी किशोर साहित्य श्रीमती ज्योत्स्ना द्विवेदी, पृष्ठ २।
२ वही।

धीरे-धीरे वह परीलोक में पहुंचता है। परियों की कहानी सुनकर वह सोचता है कि उस परी ने मिठाई का डिब्बा वैसा ही दिया होगा जैसा कि मेरे पास है। यह तादात्म्य स्थापित करने की स्थिति होती है, जबकि बालक कहानी को स्वयं अपने पर घटित सोचता है और उसके नायक को स्वयं मे अनुभव करता है।

सात से ग्यारह वर्ष के बच्चों का मानसिक विकास बड़ी तीव्रता से होता है। वे परी-कथाओ की निर्मूल कल्पना मे निकलकर संसार के वास्तविक सत्यो की ग्रोर अधिक आकर्षित होते है। ऐसी कहानिया उन पर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। उनके नायकों से वे अपनी तुलना करने के वाद यह देखते है कि वैसा काम करने मे उन्हे क्या कठिनाई है। यही भावना उनके जीवन मे क्रियात्मकता का संचार करती है। बाल्यावस्था मे कौतूहल के कारण आत्मसात की गई सभी बातों का विश्लेषण बालक किशोरावस्था मे करता है। वह कहानियो की काल्पनिक बातों से निकलकर विज्ञान, इतिहास आदि के सत्यों को पहचानने का प्रयत्न करता है। यही वह अवस्था होती है जब बच्चे की रुचि को प्रस्फुटित होने का अवसर मिलता है। फिर उसी के आधार पर वह अपने भविष्य का मार्ग प्रशस्त बनाता है।

(१) सैद्धान्तिक विवेचन :

हमारे जीवन मे जो भी घटनाए घटती है उन्हे भूत, भविष्य या वर्तमान कालों मे प्रस्तुत किया जा सकता है। ये घटनाए चाहे दिन प्रति दिन के जगत् में घटें या हमारे काल्पनिक जगत की हो लेकिन इनके पात्र अवश्य ही वे होने चाहिए जो वास्तविक जगत मे विद्यमान हैं। यदि ऐसा है, तभी वह कहानी अपने पाठकों-श्रोताओं का मन बाधकर रख सकेगी। वास्तव मे कहानी की पकड़ 'आगे क्या हुआ ?' मे निहित होती है। बच्चो के लिए, वह घटना कहा घटी और क्यो घटी आदि प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण होते हैं। स्थान, समय तथा चरित्र, कहानी को वास्तविकता प्रदान करने तथा उसे मनोरंजक बनाने के लिए बहुत आवश्यक होते है। कैसे और क्यो वह घटना घटी, इस बात की विश्लेषण-वृत्ति बच्चो मे बहुत होती है। लेकिन इन सबके वाद बाल-कहानियों के लेखक की कुशलता इस मे होती है कि वह कथा मे कौतूहल तथा आश्चर्य का वातावरण बनाए रखे। अगर बालक-श्रोता या पाठक कहानी मे आगे आने वाली घटनाओं के प्रति उत्सुकता नही प्रकट करता तो समझना चाहिए कि कहानी ठीक नही बन पाई है।

बच्चे कहानिया केवल इसलिए नही पढते कि वे उन्हे भी औरलोगो की तरह आनन्द देती है। बच्चे कहानियों मे केवल आनन्द ही नहीं पाते बल्कि अपनी अनुभूतियो की अभिव्यक्ति प्रतिबिम्बित देखते हैं। इसीलिए वे उसे बार-बार पढने के बाद भी नही थकते। किसी भी कहानी की सफलता की कसौटी यही है कि उसे कितनी बार, कितने लोग पढ़ते है। यह गुण कहानी मे उसके लेखक द्वारा ही उत्पन्न किया जा सकता है कि वह किस तरह के विषय को चुनकर किस प्रकार

उसका निर्वाह करता है और उसे कितना प्रभावशाली बनाता है। ये सभी गुण अलग-अलग कहानियों में कम-अधिक मात्रा में भी होना स्वाभाविक है। इसलिए हर कहानी, हर बच्चे को प्रभावित नहीं कर सकती। दूसरी ओर बच्चों की रुचियों में अन्तर होने से हर कहानी हर रुचि के बालक के अनुरूप होना कठिन है। लेकिन फिर भी कुछ समान तत्व ऐसे होते हैं जो सफल बाल-कहानी के लिए आवश्यक है।

बच्चों की आयु, मनोवैज्ञानिक रुचि तथा ज्ञान सीमा के अनुसार बाल-कहानियों का वर्गीकरण कर लेना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। वास्तव में यह वर्गीकरण बच्चों की कल्पना और मानसिक विकास के अनुसार ही सभव है। कैथरीन डनलप ने बच्चों की कहानियों में अन्तर स्पष्ट करने के लिए उनकी वय के अनुसार एक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है—'रिदमिक पीरियड' अर्थात् लयपूर्ण अवस्था, 'इमेजनेटिव पीरियड अर्थात् काल्पनिक अवस्था, 'हीरोइक पीरियड' अर्थात् साहसिक अवस्था और 'रोमाण्टिक पीरियड' अर्थात् कोमल भावनाओं की अवस्था।[1]

लयप्रधान या लयपूर्ण अवस्था में बच्चे गीतों-भरी कहानियां पसन्द करते हैं। जैसे—

तेली तमोली के, पाच पसेरी के।
उड गए तीतुर बस गए मोर।
सडी डुकरियन ले गए चोर।
चोरन के घर खेती भई।
खाय डुकरिया मोटी भई।
मन मन पीसे दस मन खाय।
बडे गुरु के जूझन जाय।
बडे गुरु के आए चोर।
सौ सौ करिहा बाधे तीर।
एक तीर मारो तो।
दिल्ली जाय पुकारो तो।
साभर का सीग पोलो तो।
पताल पानी ढोलो तो।

लयप्रधान कहानियों में किसी विशेष वाक्य को बार बार दुहराना या जानवरों या पक्षियों की बोली की नकल करके कहानी सुनाना आवश्यक होता है। क्रम-सवर्द्ध कहानियां भी ऐसी ही होती हैं जैसे, चिड़िया का दाना खूटे में फस जाने के कारण उसका बढई से अनुरोध करना, बढई के न मानने पर राजा से, फिर रानी

---

१. हिन्दी किशोर साहित्य : श्रीमती ज्योत्स्ना द्विवेदी, पृष्ठ ११२।

से, फिर चूहे से, कुत्ते से, बिल्ली से आदि। अन्त मे चीटी द्वारा सहायता करने के लिए तैयार हो जाने पर उसी क्रम से कहानी लौटती है और चिड़िया का दाना मिल जाता है।

कल्पना प्रधान अवस्था मे पहुचने पर बच्चो को घरेलू कहानिया सतुष्ट नही कर पाती। उनकी कल्पना धीरे-धीरे जागती है और नए नए सपनो का ताना-बाना बुनने लगती है। वे परियो, जीव-जन्तुओ, घाटियो, जगलो आदि की काल्पनिक कहानियो मे रुचि लेने लगते हैं।

साहसिक अवस्था मे साहसिक वीरो की कथाए, शिकार की कहानिया, यात्रा-सस्मरण और चमत्कार भरी कहानियो को सम्मिलित किया जा सकता है। कल्पना जगत से उतरकर ससार के धरातल पर पहुचने की अवस्था यही होती है। तब बच्चो को कल्पना लोक मे विचरण करने मे कोई रुचि नही होती। वे कठिनाइयो को झेलने और साहसिक कार्यो को करने मे विशेष रुचि लेते है। 'राबिनहुड,' 'सिंदबाद जहाजी,' 'राबिन्सन क्रूसो' आदि की कहानिया इस अवस्था मे उनकी बौद्धिक क्षुधा शान्त कर उनका मानसिक विकास करती है।

कोमल भावनाओं की अवस्था का विकास, किशोरावस्था को प्राप्त करने पर साहसिक कहानियो के पीछे छिपे किसी आदर्श उद्देश्य की लालसा जाग्रत होने पर होता है। ऐसी कहानिया विशेष रुचिकर प्रतीत होती है जिनमे कोई नायक, विपत्ति मे पड़ी नायिका को बचाता है। राजा-रानी की प्रेम-सम्बन्धी कहानिया भी अच्छी लगती है। सेवा अथवा परोपकार की कहानिया कोमल भावनाओ को बल देती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी इस तरह की कहानिया, इस आयु के लिए हितकर सिद्ध होती है।

इस प्रकार यह वर्गीकरण अधिक मनोवैज्ञानिक प्रतीत होता है। ऐसी कहानिया की रचना से बच्चो का मानसिक विकास तो होता ही है, साथ-साथ ये उनके सामने नैतिक और धार्मिक उपदेश भी उपस्थित करती है।

सभी वर्ग की बालकहानिया मे कुछ निश्चित तत्वो का निर्वाह अनिवार्य है। इन तत्वों को प्रमुखत इस प्रकार कहा जा सकता है—

१. कथानक २ कथोपकथन
३ चरित्र-चित्रण ४ शैली
५ भाषा

ये तत्व यों तो बडो की कहानियों मे भी होते है। किन्तु बालसाहित्य मे ये भिन्न रूप मे परिभाषित हुए है, जैसा कि आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जायगा—

१ कथानक—बालसाहित्य के कथानक की सबसे पहली समस्या उसके चुनाव की है। हर विषय का हर कथानक बच्चा को न प्रभावित कर सकता है, न रुचिकर लग सकता है और न उपयोगी ही सिद्ध हो सकता है। ऐसी दशा मे बहुत स्वाभाविक है कि कथानक चयन करते समय बच्चो की बुद्धि, रुचि तथा ५ के प्रभाव के बारे मे बहुत सतर्कता से काम लिया जाय। ये कथानक

मनोवैज्ञानिक अध्ययन द्वारा चुने जाय तो अधिक अच्छा हो। छोटी आयु के बच्चा के लिए सरल कथानक वाली घटनाप्रधान कहानिया बहुत अच्छी लगती हैं। बडे बच्चो के लिए उत्सुकता जागृत करने वाले कथानक उपयोगी होते है। पशु पक्षी तथा आसपास के वातावरण की घटनाए, किसी असभव कार्य को सभव करने वाले कथानक, बच्चा को बहुत अच्छे लगते है। जो कथानक बच्चो मे भय, घृणा, क्रोध जैसे भावो का सचार करते हैं वे बाल-कहानियो के सर्वथा अनुपयोगी होते है।

बच्चो की कहानियो मे कथानक का निर्वाह बडी कुशलता का काम है। घटनाओ की क्रमबद्धता सबसे पहली आवश्यकता है। जहा तक सभव हा हर दूसरी घटना, पहली घटना मे निकले या उसमे किए गए किसी प्रयास का परिणाम हो। सभी घटनाओ मे आपस मे सम्बन्ध हो—जिससे बालक को कहानी का तारतम्य बनाए रखने मे आसानी हो। कहानी मे आरम्भ से अन्त तक उत्सुकता और कौतूहल का निर्वाह बडी कुशलता से होना चाहिए। यदि यह सूत्र छूट गया तो कहानी शिथिल पड जाएगी और बालमन पर उसका प्रभाव नही पड सकेगा। कथानक का अनावश्यक विस्तार न होने देना तीसरा गुण है। बालकहानियो का कथानक जितना सक्षिप्त होता है, वे उतनी ही प्रभावशाली होती हैं। पचतत्र, हितोपदेश, ईसप आदि की कथाओ मे यही गुण है। किन्तु यदि कथानक मे अनावश्यक विस्तार हुआ तो बाल-पाठक के लिए उसे समझने मे कठिनाई हो सकती है, साथ ही कथासूत्र कही भी छूट सकता है और तब उसे दुबारा पकडने की झुझलाहट मे वह उस कहानी को पढना बन्द भी कर सकता है। वास्तव मे बच्चे कहानी पढते समय यह नही देखते कि कहानीकार ने कथानक की रचना मे क्या-क्या प्रयोग या विशेषताए प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वे तो उसे अपनी सहज स्वभाव बुद्धि द्वारा समझकर आत्मसात करना चाहते हैं। इस क्रिया मे यदि कोई कठिनाई होती है तो उसे नही पढते। इसलिए कहानी की भाषा, शैली, छपाई, चित्र आदि भले ही कितने भी आकर्षक क्यो न हो, यदि कथानक मे आकर्षण नही है तो वह कहानी बालोपयोगी नही बन सकती।

कई बार कहानी-लेखक बच्चो के लिए सोद्देश्य कहानिया लिखते हैं। उपदेशात्मक या नीतिकथाए ऐसी ही होती है। इसके अलावा किसी विशेष तथ्य का प्रभाव डालने के लिए भी कहानी गढ ली जाती है। ऐसी कहानियो के कथानक चुस्त नही होते और वे बालमन पर अपना प्रभाव डालने मे भी असफल होते हैं। इसका कारण यही है कि ऐसे कथानको मे वह स्वाभाविक प्रवाह नही होता जो किसी सामान्य घटना के कथानक मे होता है। इसलिए कथानक के लिए ऐसी ही घटनाओ का चुनाव करना चाहिए जो सहज स्वाभाविक हो।

२ **कथोपकथन**—बाल-कहानियो मे कथोपकथन का विशेष महत्त्व है। लम्बे लम्बे वर्णनात्मक अश पढकर बच्चे ऊब जाते है। उन्हे एसा लगता है जैसे सब कुछ लेखक की मनगढत बातें हैं। उनमे स्वाभाविकता का अनुभव नही होता। एक के बाद एक घटना का वर्णन, वातावरण का विवरण बाल मन पर

प्रभाव नही डाल पाते । परिणाम यह होता है कि कहानी प्रभावशाली नही बन पाती। यहा यह आशय कदापि नही है कि बालकहानियो मे वर्णनात्मकता होनी ही नही चाहिए । जहा आवश्यक होगा, वहा तो वर्णन करना ही होगा। किन्तु वर्णनात्मकता का आधिक्य, बालकहानियो को उबाने वाला बना देता है । अत बालकहानियो मे कथोपकथन एक आवश्यक तत्त्व मानना चाहिए। कथोपकथन से जहा कहानियो मे स्वाभाविकता आ जाती है, घटनाओं मे सजीवता आ जाती है, वही बाल-मन को अपनी बातें कहने का अवसर भी प्राप्त होता है। कहानी पढते पढते जब किसी चरित्र या स्थिति विशेष के प्रति बालमन मे कोई धारणा बन जाती है और वह आगे किसी वाक्य मे अभिव्यक्त हो जाती है तो बाल-पाठक बहुत प्रसन्न होता है—यह सोचकर कि जैसी उसकी इच्छा थी वैसा ही हुआ या उस पात्र ने वैसा ही कहा। कथोपकथन मे घटना का काल भी बदल जाता है। वर्णन और सवाद दोनो मिलकर तब एक ऐसे दृश्य का निर्माण करते है जो बाल-मन मे न केवल साकार हो उठता है बल्कि अपना प्रभाव भी छोडे जाता है।

लेकिन सवाद अधिक लम्बे नही होने चाहिए। छोटे तथा रोचक एव स्थिति के अनुकूल भाषा मे सवाद अधिक प्रभावोत्पादक होते है। कठिन और बोलने मे दुरूह शब्दो का प्रयोग, सवादो के प्रवाह को धीमा कर देता है। उनकी स्वाभाविकता समाप्त हो जाती है। इसलिए कथोपकथन लिखते समय ऐसी ही भाषा का प्रयोग उपयोगी है जो सब लोग, विशेषकर बच्चे बोलते हैं। ऐसे वाक्यों मे यह भी आवश्यक नही है कि वे व्याकरण के अनुसार पूर्णतया निश्चित रूप से शुद्ध ही हो। उनमे जहा-तहा स्वाभाविक रूप मे क्रिया, विशेषण आदि का प्रयोग आगे पीछे भी हो सकता है।

सवाद कहानी को आगे बढाने मे भी सहायक होते हैं। सवादो के माध्यम से कई बार कहानी रोचक भी बन जाती है। उदाहरण के लिए ये कुछ पक्तिया देखें —

"सवेरे का समय था। लोमडी अपने पलग पर पडी करवटें बदल रही थी। उसे पास की झाडी से खरगोश निकल कर जाता दिखाई दिया। लोमडी को तो सारे जगल की चिन्ता रहती थी, इसलिए पडोसी को यात्रा पर निकलते देख, छलाग मार कर उसके पास जा पहुची और हसते हुए बोली, 'राम-राम भैया। सवेरे सवेरे किधर चल दिए ? घर पर सब कुशल तो हैं न ?' खरगोश पहले ही इस मुसीबत से घबरा रहा था। बहाना बनाता हुआ बोला, 'सब तुम्हारी कृपा है, दीदी। जरा टहलने के लिए निकला था। अच्छा चलू।'

'अरे जरा एक मिनट को बैठ जाओ, ऐसी भी क्या जल्दी है। 'लल्लू, मामाजी आए हैं। उनके लिए एक कटोरी खीर तो दे जा।'

लाचार होकर खरगोश तख्त पर बैठ गया। लोमडी का बडा लडका एक कटोरी मे खीर ले आया। खरगोश उसे खतम करके उठना ही चाहता था कि लोमडी झट से साडी बदलकर आ गई। बोली, 'मुझे भी वैद्य जी ने सुबह शाम

टहलने के लिए बताया है। पर तुम्हारे जीजा, जल्दी उठने के कायल नही हैं। और तुम जानो, भैया, अकेले घूमना मेरे बस का नही है। बच्चो को साथ ले जाऊ तो वे रास्ते-भर आपस मे चीं-चू मारपीट करते चलते है। इसी से मैंने सोचा कि चलो इस समय साथ अच्छा मिल गया है। मैं भी मील दो मील टहल आऊ। भाभी नही चल रही है ?'

'उनके सिर मे दर्द है। मैंने सोचा वैद्यराज सियारसिंह से दवा लेता आऊगा।'

'बहुत अच्छा है। कल मेरी कलाई मे मोच आ गई थी मैं भी उन्हे दिखाकर कोई जडी बूटी ले आऊगी।' बचारा खरगोश लोमडी की चाल म बुरा फसा।"

पशु पक्षियो को कहानियो मे बातें करते देखकर बच्चे बहुत खुश होते है, इसलिए कि प्रत्यक्ष म वे उनसे बातें नही कर पाते और उनक मन मे ही बात रह जाती है। इसके अलावा लोमडी, कौए, गीदड आदि की चालाकी-भरी बातें, फिर उनका मुसीबत मे फसना—बच्चो को बहुत अच्छा लगता है। अत जहा तक सभव हो कहानियो मे कथोपकथन को पूरा महत्त्व देना चाहिए।

३. चरित्र-चित्रण—पात्रों के माध्यम से ही कहानी की घटनाए घटती हैं। इन्ही के क्रियाकलापो से कथानक का निर्माण होता है। कहानी मे इन पात्रो को किस प्रकार उपस्थित किया जाय, यह लेखक की रुचि तथा योग्यता और कहानी के उद्देश्य पर निर्भर करता है। फिर भी कुछ निश्चित स्वरूप तो हैं ही जिनके माध्यम से पात्रो का चरित्र चित्रण प्रस्तुत किया जा सकता है :—

(१) पात्रों के कार्यों द्वारा।

(२) उनकी बातचीत के द्वारा।

(३) लेखक के कथन और व्याख्या द्वारा।

इनमे से पहले दो स्वरूप ही बालकहानिया मे ग्राह्य है। तीसरे स्वरूप की कहानिया बच्चे अधिक पसन्द नही करते। वास्तव मे बच्चे पात्रों के कार्य अपनी आखो से देखना चाहते हैं और बातें कानो से सुनना चाहते है। इस प्रकार उनके मन मे उस पात्र के चरित्र के सम्बन्ध मे निश्चित धारणा बन जाती है और फिर वे उसके अनुकूल ही उसे कहानी मे ढूढते समझते है।

पात्र को कहानी मे प्रस्तुत करते समय उसकी आयु, योग्यता और क्षमताओं के बारे मे लेखक के मन म पहले से ही धारणाए होनी चाहिए, तभी वह उसके अनुकूल घटनाओ तथा क्रियाओं का निर्माण कर सकेगी। असभव या अस्वाभाविक घटनाओं को लेकर किये गए चरित्र चित्रण, बच्चों को प्रभावित नही कर पाते, क्योकि उनको वे पहले से ही झूठ समझ बैठते है। इसलिए चरित्र चित्रण करते समय पात्रों की विशेषताओं का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

बालकहानियो मे कम पात्र हो तो अधिक अच्छा होता है। कारण कि पात्रो की सख्या अधिक होने से हरएक के बारे मे याद रखना, उनके प्रति धारणा बनाना और कहानी म उसके सम्बन्ध सूत्र को ध्यान मे रखना सरल बुद्धि वाले बच्चों के

लिए कठिन काम है। अत कम पात्र होने से बच्चे उन्हे स्मरण भी रख सकते हैं और लेखक के लिए उसका चरित्र चित्रण प्रस्तुत करने का पूरा अवसर रहता है। यदि प्रत्येक पात्र अपने ढग का 'टाइप' हो या विचित्रता लिए हो (जैसे लेविस कैरोल की 'एलिस इन दि वडरलैंड' मे है) तो वे भी बच्चो के लिए आकर्षण का विन्दु होते हैं और उनसे कहानी की प्रभावोत्पादकता बढ जाती है।

चरित्र चित्रण मे यह ध्यान रखना चाहिए कि बालको को प्रभावित करने वाले पात्रो का चरित्र, उनके चरित्र को भी प्रभावित करता है। इसलिए वह चरित्र-चित्रण ऐसा हो जो बाल पाठक के चरित्र को उदात्त बनाने मे सफल हो।

४ शैली—जैसाकि हम पहले ही लिख चुके हैं कि बालकहानियो के लिए वर्णनात्मक-शैली अधिक उपयोगी नही है। बालकहानियो के लिए—सवाद-शैली, आत्मकथात्मक शैली और प्रश्नोत्तर-शैली ही अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई है। सवाद-शैली के बारे मे, हम जैसाकि पहले लिख चुके है, इसमे घटनाओ मे सजीवता आ जाती है। आत्मकथात्मक शैली मे बालक का कहानी के पात्र से सीधा सम्बन्ध रहता है, जबकि सवाद शैली मे पाठक दर्शक के रूप मे होता है। आत्मकथात्मक-शैली मे जहा बालक कहानी के पात्र से आत्मीयता का भाव स्थापित कर लेता है, वही उसके मन मे सद्भावना भी जागृत हो जाती है। इस प्रकार यह शैली भी विषयानुसार उपयोगी तथा प्रभावकारी होती है। प्रश्नोत्तर-शैली, बुद्धिमानी तथा चतुराई के विषयो के लिए उपयुक्त होती है। 'बैताल पच्चीसी' या 'राजा भोज तथा बुढिया' जैसी कहानियो मे यही शैली बहुत सफल हुई है। इसमे जहा प्रश्नो की जटिलता बच्चो को रोचक, चक्कर मे डालने वाली तथा सोचने की प्रेरणा देने वाली होती है, वही उनके लिए बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर भी प्रस्तुत करती है। इससे बच्चो का मनोरजन तथा ज्ञानवर्धन दोनो होते हैं। हमारे यहा बीरबल, तेनालीरमन आदि कथा-पात्र, ऐसी ही कहानियो के नायक बनकर आज भी प्रसिद्ध है।

५ भाषा—बाल-कहानियो की भाषा सरल और मुहावरेदार होनी चाहिए। उसे साहित्यिकता के पुट से बचाना चाहिए। लोक-जीवन के पात्रो के लिए लोक-भाषा का यत्र-तत्र प्रयोग भी कहानी को रोचक बनाता है। वाक्य छोटे तथा प्रवाहपूर्ण हो। इसका विशद विवेचन हम आगे के अध्याय मे प्रस्तुत करेंगे।

(२) हिन्दी बालकहानी परम्परा तथा विकास

हिन्दी बालकहानियो की परम्परा का आरभ पूर्व भारतेन्दु काल से मिलता है। आरभ मे ये बालकहानिया अनुवाद के रूप मे थी। फोर्ट विलियम कालेज मे लल्लूलाल ने 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी' तथा 'हितोपदेश' की कहानियो का अनुवाद किया था। इनके बाद राजा शिवप्रसादसिंह 'सितारेहिन्द' ने कुछ मौलिक कहानियो की पुस्तकें लिखी। इनमे 'राजा भोज का सपना', 'बच्चों का इनाम', 'लडको की कहानी' प्रमुख हैं। इन कथा-पुस्तकों की भाषा भले ही उच्च-

कोटि की न रही हो किन्तु इतना तो निश्चित है कि उस समय के बच्चो के लिए ये मनोरजक-साहित्य के रूप मे सिद्ध हुई थी। लेकिन इनके बाद बालकहानियो की दिशा मे विशेष उल्लेखनीय प्रगति नही हुई।

सन् १९०३ मे 'सरस्वती' का सम्पादन भार सम्हालने के बाद आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने पौराणिक और धार्मिक कहानिया बच्चो के लिए लिखी। उनकी ही प्रेरणा से 'महाभारत', 'रामायण' आदि जैसे कथा-ग्रन्थो के सरल हिन्दी मे बाल सस्करण भी प्रकाशित हुए। इस समय के कहानीकारो मे—किशोरीलाल गोस्वामी, गिरिजादत्त वाजपेयी, 'प्रसाद आदि ने ऐसी कहानिया नही लिखी जो विशुद्ध रूप से या बडा के ही समान बच्चो के लिए भी रोचक तथा पठनीय रही हो।

बालकहानियो को प्रगति की दिशा देने का कार्य मुशी प्रेमचन्द की कहानिया से हुआ। उनकी बालोपयोगी कहानिया यो तो १९२६ के बाद मे ही लिखी गई हैं लेकिन इस दिशा मे उनका योगदान उस समय से ही माना जायगा, जब से उन्होने कहानिया लिखनी शुरू की। यहा एक प्रश्न स्वभावत ही उठ सकता है कि क्या वे सब कहानिया बच्चो के लिए ही थी ? इसके उत्तर मे यह कहा जायेगा कि उनकी बहुत-सी कहानिया, जो बडो के लिए लिखी गई थी, बच्चो ने अपना ली। मुशी प्रेमचन्द ने उन्हे लिखने समय बच्चो को भले ही ध्यान मे न रखा हो, किन्तु पढने समय बच्चो ने अपनी रुचि की कहानी देखकर अपनाने म सकोच नही किया। प्रेमचन्दजी के साथ यह ठीक वैसा ही हुआ है जैसाकि विदेशो म 'गुलीवर की कथाओ' के लेखक जोनाथन स्विफ्ट, 'राबिन्सन क्रूसो' के लेखक डेनियल डेफो, 'टाम सायर' के लेखक मार्क ट्वेन के साथ हुआ। मुशी प्रेमचन्द की ऐसी कहानिया ये हैं—'ईदगाह', 'बडे भाई साहब', 'ठाकुर का कुआ', 'दो बैलो की कथा', 'प्रेरणा', 'चोरी', राजा हरदौल', 'आत्माराम', 'पच परमेश्वर', 'परीक्षा' आदि। इन कहानियो मे से 'बडे भाई साहब' और 'प्रेरणा' कहानिया बाल मनोविज्ञान के अनुकूल लिखी गई हैं। 'बडे भाई साहब' मे पढाई की भावना, तरीके तथा स्पर्धा और बुराइयो से दूर रहने की नैतिक शिक्षा का समावेश प्रेमचन्दजी ने बडी खूबी से किया है। जिस मनोवैज्ञानिक ढग से उन्होने अन्त मे कहानी की मूल भावना को प्रस्तुत किया है वह बच्चो के लिए निश्चय ही प्रभावशाली सिद्ध हुई है। पौराणिक और धार्मिक नीति कथाओ की सीधी उपदेश-वृत्ति से मुक्त होकर बच्चो के लिए सभवत यही पहली कहानी लिखी गई थी, जिसमे बाल-मन की स्पर्धा और गर्व-जैसी अनुभूतियो का उदात्त रूप प्रस्तुत करने के बाद, मनोवैज्ञानिक ढग से उनका शमन किया गया है।

इसी प्रकार प्रेरणा' कहानी मे गुरु और शिष्य के रिश्ते को महत्त्वपूर्ण सिद्ध करते हुए, बिगडे हुए बालक का मनोवैज्ञानिक उपचार प्रस्तुत किया गया है। बाल-समस्याओ को लेकर मनोवैज्ञानिक आधार पर लिखी यह कहानी आज भी प्रेरक और प्रभावशाली है।

बच्चो के लिए विशेष रूप से उन्होने कुछ मनोरजक कहानिया लिखी हैं।

इनमे 'मन मोदक' (१९२६), 'कुत्ते की कहानी' (१९३६), 'जंगल की कहानिया' (१९३८), 'रामचर्चा' (१९३१), 'दुर्गादास' ही उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों को लिखते समय प्रेमचन्दजी बाल-रुचि तथा मनोवृत्ति के प्रति पूरी तरह सतर्क थे। इनमे सबसे लोकप्रिय कहानी—'कुत्ते की कहानी' है। इस पर भारतीय चिल्ड्रंस फिल्म सोसायटी ने फिल्म बनाई है। यह कहानी आज भी बच्चो का उतना ही मनोरजन करती है।

इस प्रकार हिन्दी बालकहानियो के पारम्परिक विकास को वास्तविक गति मुशी प्रेमचन्द ने दी, इस कथन मे कोई सन्देह प्रतीत नही होता। उन्होने सन् १९२६ से जो बालकहानिया लिखी, वे इस बात की परिचायक हैं कि इस आवश्यकता की ओर उनका ध्यान गया था।

प्रेमचन्द के समकालीन अन्य लेखको मे श्री विश्वभरनाथ शर्मा 'कौशिक' का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने 'पन्ना धाय' कहानी के माध्यम से बच्चो मे साहस और वीरता का भाव जगाने का प्रयास किया था। सुदर्शन की 'हार-जीत' कहानी भी बच्चो पर अपना मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने मे समर्थ हुई।

सन् १९२४-२५ मे काशी से 'उत्साह' नाम का एक पत्र प्रकाशित होता था। उसमे बालचरो के सम्बन्ध मे साहस की अच्छी कहानिया प्रकाशित होती थी। श्रीराम वाजपेयी ने भी बच्चो के लिए साहसिक कहानिया लिखी थी। लेकिन ये कहानिया अधिकाशत प्राचीन इतिहास और महाकाव्यो की आधारभूमि पर लिखी गई थी।

प० श्रीराम शर्मा ने बच्चो के लिए 'शिकार की कहानिया' लिखी। यह एक ऐसी विधा थी, जिसमे कहानियो की अधिकाधिक आवश्यकता थी। शर्मा जी ने इन कहानियो द्वारा बाल-साहित्य का भडार भरा और उस कमी को पूरा करने मे योग दिया।

इन्ही दिनो जहूरबख्श भी बच्चो के लिए खूब लिख रहे थे। उनकी 'मजेदार कहानिया' सन् १९२२ मे पहली बालोपयोगी-कहानियो की पुस्तक प्रकाशित हुई थी। सन् १९२६ मे एक अन्य पुस्तक 'मनोरजक कहानिया' प्रकाशित हुई थी। उनकी कहानियो की अन्य पुस्तको का पूरा एक सेट मित्र-बन्धु कार्यालय, जबलपुर से प्रकाशित हुआ था। बच्चो के लिए सरल और मुहावरेदार भाषा मे कहानिया लिखने मे जहूरबख्श जी सिद्धहस्त थे। लेकिन उनकी बालोपयोगी रचनाए सख्या मे अधिक और गुण की दृष्टि से कम ही बैठती है। फिर भी बाल-साहित्य के भडार को भरने का उनका प्रयास उल्लेखनीय तो है ही।

इस अवधि मे बच्चो के मासिको ने भी बालकहानियो की परम्परा को विकसित करने मे महत्त्वपूर्ण योग दिया। 'बालसखा', 'बालक', 'शिशु' मे प्राय. सभी कहानीकार कहानिया लिखते थे। ये कहानिया या तो विशुद्ध रूप मे मनोरजक होती थी या नीतिपरक। 'बालक' मे राष्ट्रीय भावना जागृत करने वाली ऐतिहासिक कहानिया भी प्रकाशित होती थी।

इस प्रकार पूर्व स्वातन्त्र्योत्तर युग मे बालकहानियो की दिशा मे निरन्तर अभिवृद्धि होती रही। किन्तु उसमे वह गति नही आई, जो उसे उन्नति के शिखर पर पहुचा सकती। इस युग मे प्रयोगो का नितान्त अभाव था। दूसरी ओर अग्रेजी के बालसाहित्य मे अनेक प्रयोग हो रहे थे। वहा अनेक बालकहानिया विश्व-विख्यात हो चुकी थी। हमारे यहा हिन्दी के अधिकाश कथाकार बच्चो के लिए कहानिया लिखने म कतराते थे। वे केवल दो ही स्थितियो मे बालकहानिया लिखते थे—(१) जब किसी ने आग्रह-अनुरोध किया तो ऐतिहासिक, पौरा णिक या धार्मिक भावभूमि पर आधारित कहानिया लिख देते थे। इससे केवल आवश्यक्ता पूर्ति ही होती थी। ऐसी कहानिया नैतिक तथा शिक्षाप्रद होती थी। उनकी भाषा भी सरल होती थी। लेकिन इन कहानियो मे कोई ऐसा चमत्कार नही होता था जो 'बालसाहित्य' म कहानिया क क्षेत्र मे उल्लेखनीय रहा हो। जहूर-बख्श, स्वर्णसहोदर, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी आदि की कहानिया इसी प्रकार की थी। (२) दूसरे प्रकार के वे कहानी लेखक थे जो किसी घटना या प्रसग से प्रेरित होकर कभी-कभी बालकहानिया लिख देते थे। ये कहानिया प्रेरक और प्रभाव-शाली होती थी। किन्तु ऐसे कथाकारा तथा उनकी कहानियो की सख्या बहुत कम ही थी। महावीरप्रसाद द्विवेदी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जैनेन्द्र कुमार, चतुरसेन शास्त्री आदि ऐसे ही कथाकार थे जिन्होंने कभी किसी प्रेरणा से कोई बालकहानी लिख दी। आज उन कहानियो का कुछ पता भी नही लगता और वे सभवत इतनी महत्त्वपूर्ण भी नही रही कि साहित्य जगत म स्मृति क रूप मे रह पाती। आज जो कुछ बालकहानिया उपलब्ध हैं, उनका अध्ययन करने मे यह अवश्य प्रतीत होता है कि यदि विदेशो की भाति भारत म भी विशेष रूप से उच्चकोटि की बालकहानिया लिखी जाती तो हमारे यहा भी 'राबिन हुड,' 'राबिनसन क्रूसो,' 'एलिस' जैसे कुछ कथा पात्र निश्चय ही विश्व-बाल-कथासाहित्य मे अपना स्थान बना लेते। लेकिन पूर्व स्वातन्त्र्योत्तर युग मे इस ओर कोई ध्यान नही दिया गया। विज्ञान के विषयो की कहानियो का भी इस अवधि मे नितान्त अभाव रहा। जबकि विदेशो मे विज्ञान कल्पना का कथा-साहित्य बच्चो के लिए एक आवश्यकता मानकर लिखा जाने लगा था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी बाल कथासाहित्य मे अभूतपूर्व प्रगति हुई। हालाकि बालकहानियो के स्वरूप मे आमूल परिवर्तन तो नही हुआ, किन्तु ये केंचुली तो निश्चित ही बदलने लगी थी। साथ ही बच्चो के लिए कहानियों का महत्त्व समझा जाने लगा और कुछ ठोस कदम भी उठाए गए। साहित्य मे यह समय लोकसाहित्य के मूल्याकन का युग था। समस्त भारतीय भाषाओ के लोक-साहित्य से लोक-कथाओ को निकाल कर बच्चो क लिए प्रस्तुत किया जाने लगा था। लेकिन लोक-कथाओ क इस अनुसन्धान कार्य म जहा काफी कहानिया बाल-साहित्य को प्राप्त हुई वही उनकी प्रामाणिकता सदिग्ध हो गई। एक ही कथा कई रूपो म, कई नामो से छपी। प्रकाशको के लिए तो जैसे व्यवसाय का अच्छा साधन

बन गया था। प्रकाशित लोक कथा पुस्तको का विषय तत्व, भाषा, छपाई आदि बालोपयोगी है या नही, इसकी चिन्ता किसी को न हुई।

लेकिन साथ ही साथ बच्चो के लिए मनोवैज्ञानिक और उपयोगी बालसाहित्य न प्रकाशित हुआ हो, ऐसी बात भी नही है। भूपनारायण दीक्षित का उपन्यास 'खडखडदेव,' डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की 'खिलौने की कहानी,' भारती भडार, प्रयाग से प्रकाशित 'अपना देश,' 'सात कहानिया,' बालकृष्ण की 'मै चब्बो था,' 'चुहिया राजकुमारी'—सरस और मनोरजक बालकहानिया की पुस्तकें प्रकाशित हुई।

स्वतनता प्राप्ति के दूसरे दशक मे यानी १९५७ के बाद बालकथाओ के विषय तथा प्रस्तुतीकरण मे समान रूप से प्रगति हुई। श्री शिवमूर्तिसिंह 'वत्स' की 'लाल हाथी' तथा बालकृष्ण एम० ए० की 'फैली'—बालोपयोगी कहानी पुस्तकें नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली से प्रकाशित हुई। 'लाल हाथी' मे सपनो के बहाने से कहानिया कही गई। बालसाहित्य मे यह अपने ढग की अनूठी पुस्तक सिद्ध हुई। आत्माराम एण्ड सन्स द्वारा मनमोहन सरल कृत 'धनुष बाण'—बालकहानियो का सकलन प्रकाशित हुआ। राजेन्द्र शर्मा की 'सतलुज की कहानी' म सतलुज के मुह से ही कही गई कहानी बच्चो तथा किशोरो का भौगोलिक ज्ञान वर्धन करने के साथ रोचक भी सिद्ध हुई।

बच्चो के स्वस्थ बौद्धिक विकास के लिए यह आवश्यक नही होता कि उनके लिए जो कुछ लिखा जाए वह सीधा-सादा तथा उपदेशात्मक ही हो। विज्ञान के युग मे पहुचकर यह महसूस किया जाने लगा कि अब बाल-कहानिया केवल मनोरजक या अन्तिम वाक्य मे नीति कहने वाली ही नही होनी चाहिए। बालकहानिया तो ऐसी हो जो मनोवैज्ञानिक ढग से, बच्चो की रुचि के अनुकूल और उनके ससार की समस्याओ को सुलझाने के उद्देश्य से लिखी गई हो। इसी कारण यह बहुत आवश्यक समझा गया कि बाल-कहानियो के रूप, उनके विषय तत्त्व और उनकी एप्रोच मे बिलकुल परिवर्तन कर दिया जाए। यह सही है कि परम्परा या कहानियो के निश्चित आकार को उतनी शीघ्रता से बदलना सभव न था। फिर भी 'पुरानी बोतल मे नई शराब' भरने का प्रयास तो किया ही गया। परीकथाओ को वैज्ञानिक चमत्कारो द्वारा गढा गया। उनमे कल्पनालोक के माध्यम से भौगोलिक सत्य प्रतिपादित किए जाने लगे। साहस, त्याग, यात्रा आदि की कहानियों के पात्र बच्चो मे से ही चुने गये। ऐसा करने से बच्चा मे उन कथाओ से तादात्म्य स्थापित करने की क्षमता आने लगी।

विकास और राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करना भी एक आवश्यक तथ्य सामने था। बच्चो में इनके बीज अकुरित करने के लिए कई तरह की कथाए लिखी गई। 'नयी बानी कथा पुरानी' मे मनमोहन मदारिया ने लोक कथा शैली में कहानिया लिखी। 'सतलुज की कहानी,' 'नये तीरथ' आदि पुस्तकें भी इसी कोटि की हैं।

वर्तमान दशक मे बच्चो के लिए मनोवैज्ञानिक कहानिया लिखकर उनके

सस्कारो, उनकी आदतो को सुधारने का कार्य भी आरम्भ हुआ। श्रीमती सावित्री देवी वर्मा, मन्मथनाथ गुप्त आदि ने इस तरह की कुछ कहानिया लिखी, पर वे पर्याप्त सिद्ध नही हुई।

बच्चो मे 'एडवेंचर' की भावना जाग्रत करने के उद्देश्य से लिखी गई कहानिया हिन्दी मे बहुत कम हैं। विज्ञान के तथ्यो पर आधारित अनेक कहानिया लिखी जा रही है। हरिकृष्ण देवसरे की 'नये परीलोक मे', सतोष नारायण नोटियाल कृत 'चन्दामामा का देश,' रामचन्द्र तिवारी कृत 'पानी बोला, 'धरती माता,' नरेन्द्र धीर कृत 'अन्तरिक्ष के यात्री,' रमशचन्द्र प्रेम कृत 'नन्हे मुन्न वैज्ञानिक बने' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

कहानिया तो आदि काल से बच्चो का मन लुभाती रही हैं, किन्तु प्रत्येक युग मे मनुष्य क जीवन के मूल्य वदलते रहे हैं और इसलिए आज यह आवश्यक हो गया है कि इन बदलते हुए मूल्यो से बच्चो को परिचित कराया जाए। केवल परी-लोक की ऊची कल्पना तक ही बाल-कहानिया अब सीमित नही रह गई हैं, बल्कि अब राकेट और चाद का युग है जहा सब कुछ सत्य और तथ्य पर अवलम्वित है।

इस प्रकार स्वातत्र्योत्तर काल मे लिखी गई बाल-कहानियो के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अब कहानियो के स्वरूप मे ही नही बल्कि उनके विषय तत्त्व मे भी आमूल परिवर्तन हो रहे हैं। आज जो भी बाल कथासाहित्य लिखा जा रहा है उस पर आधुनिक जीवन, भावबोध तथा पाश्चात्य बाल-कहानियो का प्रभाव सर्वाधिक है। किन्तु इस प्रभाव के बावजूद भी सभी प्रयास मौलिक अधिक हैं, जो कि बालकहानियो के विकास की दिशा मे एक शुभ चिह्न है। ये प्रयास आज ही भले न बाल-कहानियो को विदेशी बाल-कहानिया के स्तर पर रख सकें, किन्तु आशा तो निश्चित ही बधती है।

(३) हिन्दी की बाल-कहानियो के भेद

हिन्दी की बाल-कहानिया भारतीय जीवन, परम्परा तथा सस्कृतियो की विविधताओ से प्रभावित रही हैं। अत इनके अध्ययन की सरलता के लिए मुख्यत ये भेद किए जा सकते है

१ उपदेशात्मक कहानिया
२ पशु पक्षी सम्बन्धी कहानिया
३ ऐतिहासिक कहानिया
४ साहसिक कहानिया
५ वैज्ञानिक कहानिया
६ मनोवैज्ञानिक कहानिया
७ मुहावरो की कहानिया
८ गीत-कथाए
९ परी-कथाए

१. उपदेशात्मक कहानिया—इस प्रकार की कहानिया वे होती हैं जो बालकों को जीवन के सत्यो के प्रति उपदेश देती हैं। 'यह करो' 'वह न करो' ही इनकी मूल भावना होती है। कई बार ये कहानिया उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्मित होती हैं और कई बार इनके कथानक द्वारा ध्वनित निर्णय, कहानी के अन्त मे सूत्र बन कर प्रकट हो जाता है। हिन्दी मे इस तरह की कहानिया अधिकाशत पुराणो तथा धार्मिक ग्रन्था से आई हैं। 'जातक कथाए,' 'पचतन्त्र' तथा 'हितोपदेश' ऐसी कहानियो के मूल स्रोत है। उदाहरण के लिए 'पचतन्त्र' की यह उपदेश कथा—

"एक गाव के पास, जगल की सीमा पर, मन्दिर बन रहा था। वहा के कारीगर दोपहर के समय भोजन के लिए गाव मे आ जाते थे।

एक दिन जब वे गाव मे आए हुए थे तो बन्दरो का एक दल इधर-उधर घूमता हुआ वही आ गया, जहा कारीगरो का काम चल रहा था। कारीगर उस समय वहा नही थे। बन्दरो ने इधर-उधर उछलना और खेलना शुरू कर दिया।

वही एक कारीगर शहतीर को चीरने के बाद उसमे कील फसाकर गया था। एक बन्दर को यह कौतूहल हुआ कि यह कील यहा क्या फसी है। तब आधे चिरे हुए शहतीर पर बैठकर वह अपने दोनो हाथो से कील को बाहर निकालने लगा। कील बहुत मजबूती से वहा गडी थी—इसलिए बाहर नही निकली। लेकिन बन्दर भी हठी था। वह पूरे बल से कील निकालने मे जूझ गया। अन्त मे भारी झटके के साथ वह कील बाहर निकल आई किन्तु उसके निकलते ही बन्दर का निचला भाग शहतीर के चिरे हुए दो भागो के बीच मे आकर पिचक गया। अभागा बन्दर वही तडप तडप कर मर गया।"[१]

हिन्दी बाल कहानियो के आरम्भ मे ऐसी ही पुस्तकें अधिक लिखी गईं। लेकिन ये अधिकतर अनुवाद थी। प० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कुछ पौराणिक आख्यान महाभारत, भागवत आदि ग्रन्थो से लेकर मौलिक ढग से लिखा था। अन्य जो कहानिया उपदेश देने की भावना से लिखी गई, उनका भी मूल आधार ये ही ग्रन्थ थे। प्रमुख उपदेशात्मक कहानियो की पुस्तको मे—राजबहादुरसिंह कृत 'भागवत की कहानिया,' सस्ता साहित्य मडल प्रकाशन की 'बोध कथाए,' 'नीति के बोल,' 'आदर्श देविया,' नाना भाई भट्ट की 'महाभारत पात्र-माला' के अन्तर्गत प्रकाशित 'सूत पुत्र कर्ण,' 'पाचाली द्रौपदी,' 'दुर्योधन,' 'महावीर भीमसेन' आदि, शिवनाथसिंह की 'सीख की कहानिया,' आदि विशेष उल्लेखनीय है।

२. पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानिया—बच्चो के प्रिय पशु-पक्षियो के माध्यम से कथा कहानी सुनाने की, हमारे देश की सबसे पुरानी विधा है। 'पचतन्त्र' तथा 'हितोपदेश' एव 'जातक कथाए'—इन्ही पशु-पक्षियो के माध्यम से कही गई थी। यही परम्परा ससार के अन्य देशो मे पहुची और 'ग्रिम की कहानिया,' 'ईसप की कहानिया' आज भी इसका प्रमाण हैं। ये कथाए अधिकाशत. ऐसी होती है जिनमे

---

१. पचतन्त्र, अनुवादक, सत्यकाम विद्यालकार, पृष्ठ १२।

पशु-पक्षी ही प्रमुख पात्र होते हैं और वे आपस मे बातें करते हैं। कुछ ऐसी भी कहानिया होती है जिनमे पात्र की सहायता के लिए पशु-पक्षी होते हैं और वे आदमियो की तरह ही बातें करते है। ऐसी भी कहानिया होती है जिनमे पशु पक्षियो के बारे मे सभी कुछ लेखक ही कहता है। इस प्रकार पहले वर्ग की कहानिया छोटे बच्चो के लिए, दूसरी किस्म की कहानिया मध्यम आयु के बच्चो के लिए और तीसरे प्रकार की बडे बच्चो के लिए होती है।

हिन्दी मे पशु-पक्षियो की अधिकाश कहानिया यो तो लोककथाओ द्वारा ही आई हैं, लेकिन फिर भी कुछ मौलिक प्रयास हुए हैं। यह प्रयास जहूरबख्शजी ने खूब किया। उन्होने अनेक जगली जीव-जन्तुओ को लेकर कहानिया लिखी, जिनमे उनकी आदतो, रहने का ढग, खाने-पीने के तरीको आदि का भी विवरण होता था।

वर्तमान युग मे इस कोटि की कथा-पुस्तको मे रामनारायण उपाध्याय की 'चतुर चिडिया,' भगवतसिंह की 'चू-चू,' मुबारक अली की 'करामाती घोडा', नर्मदाप्रसाद मिश्र कृत 'काव काव काका,' 'खरगू की खटपट,' 'खरगू की चालाकी,' जगदानन्द झा कृत 'गधेराम की कहानी,' जहूरबख्श की 'गीदडराज नीलमसिंह,' 'हत्तेरे गधे की,' श्रीकृष्ण गुप्त की 'घमडी गिलहरी,' शिवनाथसिंह शाडिल्य की 'चिडिया की नसीहत,' इडियन प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित 'जानवरो की मजेदार कहानिया,' सुरेश्वर पाठक की 'पक्षियो की पचायत,' शारदा मिश्र कृत 'बन्दर का क्रिकेट,' मोहनलाल गुप्त कृत 'बन्दर का ब्याह,' राजेन्द्रसिंह गौड कृत 'म्याऊ की दावत' और 'म्याऊ की फासी,' देवीदयाल चतुर्वेदी कृत 'शेर का शिकारी,' बालबन्धु की 'हाथी दादा' उल्लेखनीय हैं। इनमे उपर्युक्त वर्णित तीनो प्रकार की कहानिया हैं। पत्र-पत्रिकाओ मे से 'पराग' मे प्रकाशित डाली रिज़वी की 'डिमटिम खरगोश' से सम्बन्धित कहानिया बहुत रोचक सिद्ध हुई।

३. ऐतिहासिक कहानियां—इतिहास की घटनाओ तथा मार्मिक एव रोमाचक प्रसगो को लेकर लिखी गई कहानिया इस कोटि मे आती हैं। राजा शिवप्रसादसिंह 'सितारेहिन्द' कृत 'राजा भोज का सपना' ऐसी ही कहानी है। इस विषय की अन्य कथा-पुस्तको मे 'शूरवीरो की कथाए' व्यथित हृदय, सस्ता साहित्य मडल, दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'आजादी के सेनानी', धर्मपाली शास्त्री कृत 'भारत के साहसी वीरो की गाथाए' उल्लेखनीय हैं। श्री जहूरबख्श ने 'धन्य ये बेटिया' तीन भागो मे प्रस्तुत की है। इनमे इतिहास की उन तमाम बेटियो की कहानिया हैं, जिन्होने कोई उल्लेखनीय कार्य किया है। नर्मदाप्रसाद खरे की पुस्तक 'वीरो की कहानिया' दो भागो मे है। इनमे भारतीय इतिहास के वीर पात्रो की कहानिया है। इसी तरह 'भारत की विभूतिया' पुस्तक मे भी खरे जी ने इतिहास के उन पात्रो को लिया है, जो किसी समय अपनी विशेषता तथा गुणो की कीर्ति बिखरा चुके हैं।

४. साहसिक कहानिया—इस वर्ग मे साहस तथा वीरतापूर्ण कार्यों से सम्ब-

न्धित कहानिया आती है। साहस तथा वीरता—भारतीयो का विशेष गुण है। इस गुण की सिद्धि के लिए ही साहस, वीरता तथा शिकार की अनेक कहानिया लिखी गई हैं। 'बालबन्धु' कृत 'बहादुर दमकल वाले और मौसी', दयाशकर दद्दा कृत 'बहादुर राजकुमार', नन्दकुमार देव की 'वीर बच्चा की कहानिया', कामताप्रसाद की 'वीर बालक', नर्मदाप्रसाद मिश्र कृत 'शिकारी मोरा', व्यथित हृदय की 'शूरवीरो की कथाए', बैजनाथ केडिया कृत 'शेर का शिकार', प्रकाशचन्द्र श्रीवास्तव की 'साहस की कहानी', रामदहिन मिश्र की 'साहस के पुतले', मुरारीलाल कृत 'साहसी बच्चे' उल्लेखनीय रचनाए हैं। साहसिक कहानिया बच्चो के मन को बडे और जटिल काम करने की प्रेरणा देती हैं। इन कहानियो से उन्हें अनेक साहसिक कार्यों के लिए मार्ग दर्शन भी प्राप्त होता है।'

५. वैज्ञानिक कहानिया—विज्ञान के युग मे, बच्चो को आरभ से ही विज्ञान की बातो की जानकारी देना उपयोगी होता है। ऐसी कथाओ से बच्चो की कल्पना विकसित होती है और उसी के ही आधार पर बडे होकर वे कुशल वैज्ञानिक बनते हैं। विज्ञान की कहानिया लिखने का काम मुख्यत स्वतत्रता प्राप्ति के बाद ही आरभ हुआ। लेकिन आरभ मे वैज्ञानिक आविष्कारो की कहानियों से सम्बन्धित पुस्तकें बहुत निकली। इनके पीछे निहित उद्देश्य यह होता था कि स्कूलो के पाठ्यक्रम मे स्वीकृत हो जाएगी। लेकिन इसमे अधिक सफलता नही मिली। दूसरी ओर वैज्ञानिक कहानियों की बढती हुई माग तथा आवश्यकता ने लेखको को विवश कर दिया। फलत अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तको द्वारा बालसाहित्य की इस नई विधा का भडार भरा गया। डा० गोरखप्रसाद कृत 'आकाश की सैर', राजेश दीक्षित की 'जलयान की कहानी', कुवर सुरेशसिह की 'जीवा की कहानी', श्रीनाथसिह की 'पृथ्वी की कहानी', तारकेश्वर वर्मा कृत 'बच्चो का बायस्कोप', 'बोलती तस्वीरें', राजपाल एण्ड सस के यहा से 'ज्ञात विज्ञान' पुस्तकमाला के अन्तर्गत प्रकाशित १८ पुस्तकें, जयप्रकाश भारती की 'विज्ञान की विभूतिया', हरिकृष्ण देवसरे की 'नए परीलोक म' और डा० शुकदेव दुबे की 'अपने लोग अपनी खोज' पुस्तकें उल्लेखनीय है। लेकिन अभी 'साइस फिक्शन' यानी वैज्ञानिक कथाओ का बहुत अभाव है। इस दिशा म अधिकाधिक प्रगति अपेक्षित है।

६ मनोवैज्ञानिक कहानिया—बच्चो की समस्याओ तथा कठिनाइयो का अध्ययन कर मनोवैज्ञानिक कहानिया लिखने का कार्य भी स्वतन्त्र्योत्तर-काल म ही प्रमुख रूप से आरम्भ हुआ। या मुशी प्रेमचन्द ने 'बडे भाई साहब' और 'प्रेरणा' कहानिया मनोवैज्ञानिक भावभूमि पर ही लिखी थी, किन्तु उसके बाद इस कहानी विधा मे कोई प्रगति नहीं हुई। स्वातन्त्र्योत्तर-काल मे जहा बच्चो की समस्याओ को लेकर कहानिया लिखी गई, वही उनकी आदतो को सुधारने तथा उनका पथ-प्रशस्त करने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिक कहानिया भी लिखी गई। लेकिन ये कहानिया पत्र-पत्रिकाओ तक ही सीमित रह गई। पुस्तक रूप म अधिकतर अन्य विषयो की कहानिया ही छपती रही। फिर भी सावित्री देवी वर्मा,

मन्मथनाथ गुप्त, विद्वान् के० नारायण आदि कई लेखको ने मनोवैज्ञानिक कहानिया लिख कर इस कमी को पूरा करने का व्रत लिया है ।

७ मुहावरो की कहानिया—यह एक नई विधा है । बच्चो को मुहावरे का जन्म, अर्थ तथा प्रयोग—कहानी के माध्यम से बताने का यह मौलिक प्रयास हरिकृष्ण देवसरे ने किया है। इन कहानियो की रचना मे विशेषता यह होती है कि वे मुहावरो मे से ही निकलती हैं । इन कहानियो को बच्चो ने बहुत पसन्द किया है । एक छोटी कहानी उदाहरण के रूप मे यहा प्रस्तुत है—

"दो जुलाहे थे । दोनो गहरे मित्र थे । लेकिन दोनो मूर्ख थे । एक दिन उन्होने तय किया कि शहर चलें । वहा कुछ काम करेंगे और धन कमाएगे ।

जब वे गाव के बाहर आए, तो एक खेत मिला । उसमे कोई फसल नही बोयी गई थी । वह खाली पडा था ।

'अहा'''हा'''कितना बढिया खेत है। अगर इसमे कपास बोए तो खूब अच्छी फसल मिलेगी ।' पहले जुलाहे ने कहा ।

'हा भई, बात तो सोलह आने सच है ।' दूसरा जुलाहा सिर हिला कर बोला ।

अब दोनो उस खेत की मेड पर बैठ गए। पहले खेत की मिट्टी उठाकर देखने लगे। फिर बीज की बात तय की । लेकिन जब बोने की बात आई, तो दूसरा जुलाहा बोला, 'अगर आधा खेत मुझे मिल जाय, तो मैं भी बुआई करूगा ।'

'ठीक है । बाकी मैं बो लूंगा ।' पहले जुलाहे ने सहमत होते हुए कहा ।

'तब तो मैं सबसे कीमती बीज बोऊगा ।'

'तो क्या मैं नही खरीद सकता ? मैं उससे भी अच्छा बीज लूगा ।'

'मैं तो सोलह घण्टे खेत पर मेहनत करूगा ।'

'मैं चौबीसो घण्टे खेत मे ही लगा रहूगा ।'

अब दोनों एक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करने लगे। दोस्ती की बातें भूलकर आपस मे बढ-बढकर बाते करने लगे ।

'अरे तू क्या चौबीस घण्टे मेहनत करेगा ? जरा अपने मरियल बैलो को तो देख ?'

'और तू जरा अपने एक हड्डी के ढाचे को ता देख ।'

'तुझे खेती का काम आता भी है ?'

'हा'''हा'''मेरे बाप दादा के यहा सैकड़ो मन अनाज होता था। पर तू तो सिवा ताना-बाना के जानता ही क्या है ?'

'अरे जा'''जा'''किसी और के सामने डीग हाकना ।'

'तो तू किस शान मे ऐंठ रहा है ।'

'और तू किस ऐंठ मे अकड रहा है ?'

'अरे तेरी अकड तो मैं अभी सीधी करता हू ।'

'और तेरी शान अभी धूल मे······'

इसके बाद दोनो ने अपनी-अपनी लाठिया उठाई।

खट'' खट'''खटाखट'''!

गाव के लोगो ने दोनो को झगडा करते देखा तो झपट कर आए और अलग किया। जब लोगो ने झगडे का कारण सुना तो खूब हसे। बोले, 'यह भी खूब रही। सूत न कपास, जुलाहो मे लट्ठम लट्ठा'।"

८ गीत-कथाए—गीतो मे यदि कहानिया कही जायें तो बच्चे उन्हे बडे चाव से सुनते है। छोटी आयु के बच्चो को गीत-कथाए बहुत अच्छी लगती हैं। हिन्दी मे गीत-कथाओ का आरम्भ स्व० मैथिलीशरण गुप्त ने किया था। उनकी अनेक गीत-कथाए 'बालसखा' मे प्रकाशित हुई थी। 'रगा सियार' उनमे सबसे अधिक लोकप्रिय हुई। स्वतत्रता प्राप्ति के बाद गीत-कथाए लिखने की ओर अनेक कवियो का ध्यान गया। श्री निरकारदेव सेवक 'मयक', हरिकृष्ण देवसरे, शकुन्तला सिरोठिया, विनोदचन्द्र पाडेय 'विनोद' आदि ने प्रमुख रूप से गीत-कथाए लिखी। हरिकृष्ण देवसरे की 'नकलची बन्दर', निरकारदेव सेवक कृत 'जर्मनी की लोक-कथाए', 'फ्रास की लोक-कथाए', 'रूस की लोक-कथाए', तथा 'जापान की लोक-कथाए', 'ईसप की गीत-कथाए' (दो भाग), राम वचनसिंह आनद की 'अगलू-मगलू' कुछ प्रमुख गीत-कथा प्रकाशन है। एक गीत-कथा का उदाहरण प्रस्तुत है —

एक केकडी ने एक दिन
कहा अपने प्रिय बच्चे से—
"क्यो ऐसा टेढा होकर,
चलता है तू धरती पर।
सीधा होकर चलना सीख
वरना मागेगा तू भीख।"
बच्चा बोला, "मा पहले
तू ही चलकर दिखला दे।
तुझको चलते देखूगा,
तब मैं तुमसे सीखूगा—
सीधे चलते हैं कैसे,
पहले तू ही चल वैसे।"
बिना किए खुद जो औरो को,
कुछ करना सिखलाते हैं,
वे कुछ सिखा न पाते हैं
उल्टे मुह की खाते हैं।

—निरकारदेव सेवक

९ परीकथाए—परियो के बारे मे बच्चो के मन मे बडी मधुर कल्पना और

स्वाभाविक जिज्ञासा होती है। परिया वास्तव मे अलौकिक, अदृश्य, शुभचिन्तक और सहायक मानी गई है। वे कभी-कभी बुरी और भयानक भी सिद्ध होती हैं और कभी रहस्यमयी तथा किसी सनक का परिणाम भी सिद्ध होती हैं। किन्तु वे रहती धरती पर हैं और वह भी मनुष्य के साथ।[१]

हर एक देश की परियो के बारे मे, उस देश की अपनी अलग-अलग मान्यताए होती हैं। लेकिन वे दुनिया के हर कोने म पाई जाती है। यूरोप तथा एशिया मे इनका प्रभाव अधिक है तथा अमरीका और अफ्रीका मे कम।[२] लेकिन परियो के प्रमुख गुण सभी देशो मे लगभग एक से ही हैं। वे आम तौर पर छोटी होती हैं और कभी-कभी तो बौनो जैसी। वे अपनी इच्छानुसार अदृश्य हो सकती हैं। उनके रहने के स्थान गुफाए, बावडिया, पहाड, हरे-भरे वन, बगीचे आदि माने गए हैं। उनके रगो मे लाल, हरा तथा सफेद ही प्रमुख है। पवित्र तथा शान्त स्वभाव वाली परियों के लिए सफेद रग ही माना गया है, शेप कोई भी रग ग्रहण कर सकती है। परिया स्वभावत बहुत कम हानि पहुचाने वाली होती हैं। यदि वे बच्चो को उठा भी ले जाती हैं तो उन्हें किसी तरह की हानि नही होने देती। लेकिन यदि परियो के साथ दुर्व्यवहार किया गया तो वे भयानक से भयानक हानिया पहुचा सकती हैं। उन्हे खेतो मे, मैदानो मे, उपवनो मे घूमने तथा खेलने मे बहुत आनन्द आता है। वे बच्चो को मिठाइया और खिलौने देती है गरीबो को कपडे तथा धन देती हैं और बडे बडे असभव कामो को पूरा करने मे मदद करती है।

परियो के बारे मे विभिन्न मान्यताए तथा कल्पनाए भी बहुत रोचक हैं। भारतीय बच्चोके मन मे परिया एक ऐसा प्राणी है जो मा की तरह स्नेह, बहन की तरह खिलवाड तथा देवियो की तरह रक्षा करने वाली होती है। सुन्दरता म भी भारतीय बच्चो की परिया अद्वितीय होती है। लेकिन विदेशो म परियो की कल्पना इतने सुन्दर रूप मे नही हुई। वहा डाकिनी, राक्षसिनी, चुडैल, जादूगरनी आदि सभी को 'फेयरी' अर्थात् 'परी' कहते हैं। हमारे यहा स्त्रियो के रूप मे ही परियो की कल्पना की गई है, किन्तु विदेशो मे राक्षस, जादूगर, देव आदि भी 'फेयरी' की

---

1 A term loosely used to denote a type of supernatural being, usually invisible, sometimes benevolent and helpful, sometimes evil and dangerous, sometimes just mischievous and whimsical, dwelling on the earth in close contact with the man

—MacEdward Leach *Standard Dictionary of Folklore* Vol I Page 363

2 Under one name or the other they are found all over the world, they are more frequently met with in Europe and Asia, less frequently met with in America and Africa

—*Ibid*

कोटि मे आते है और उनके लिए पुल्लिग प्रयोग किया जाता है।

परियो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे भी कई सिद्धान्त है। एक तो यह है कि परिया वे देवता तथा महापुरुष है जिनका महत्व कम हो गया और वे पुराने देवताओं के रूप मे नई राहे दिखाते है।[१] दूसरा सिद्धान्त यह है कि परिया, प्रकृति की आदि शक्तियो का मानवीयकरण है।[२] तीसरा यह है कि वे मृतको की आत्माएं होती हैं, जो भूमि के अन्दर होती है।[३]

लेकिन यदि इन सिद्धान्तो पर गम्भीरता से विचार करें तो ऐसा लगता है कि परियो की कल्पना बहुत पुरानी है। मानव इतिहास के आदिम-युग में, जब मनुष्य प्रकृति पर इतनी विजय प्राप्त नही कर पाया था, तभी से उसने ऐसे अलौकिक प्राणियो की कल्पनाए की थी। भयानक वर्षा, बाढ, आधी, तूफान आदि के कारणो को न समझकर वह इन्हे प्राकृतिक कोप समझता था। वह सोचता था कि सभवत. हर वस्तु मे जादू है, हर जादू का चलाने वाला एक जादूगर या जादूगरनी है। यदि उस समय के मनुष्य की रक्षा, इन मुसीबतो से कोई कर सकता था तो वह भी कोई जादूगर या जादूगरनी ही होनी चाहिए थी। इसीलिए जहा इस तरह के भयानक कार्य करने वाले जादूगरों की कल्पना हुई, वही उनसे रक्षा करने वाले जादूगरो की कल्पना भी की गई। इसी तरह उस समय के बच्चो ने भी अपनी मधुर कल्पना मे परियो को जन्म दिया और अनेक मुसीबतो मे रक्षा करने वाली तथा बच्चों की कठिनाइयो को हल करने वाली परिया बन गई।

धीरे-धीरे परियों से सम्बन्धित कहानियो की रचना होने लगी। इन कहानियो मे जितनी ही भयानक मुसीबत दिखाई जाती थी, उतनी ही तत्परता से रक्षा करने वाली परी भी अपना काम करती थी।

फिर जैसे-जैसे ये कहानिया एक मुह से दूसरे कान तक पहुंचती गई, इनकी हजारो मील लम्बी यात्रा होती गई। लोगो ने इन पर विश्वास करना आरम्भ कर दिया और एक 'परीलोक' की कल्पना की गई। परीलोक असीम होता है। इसी पर किसी राजा या रानी का शासन होता है। पर आमतौर से कोई परी रानी ही इसकी प्रमुख होती है। परीलोक मे मृत्यु नही होती, बीमारी का नाम

1. ...... that fairies are discarded gods or heroes reduced in stature and importance as an old set of gods gives way to the new.
2. ...... that the fairies are a personification of the old primitive spirits of nature.
3. ...... fairies as spirits of the dead or as the dead themselves, on the grounds that fairies are commonly found underground.

—MacEdward Leach : *Standard Dictionary of Folklore*, Vol. I, Page 363.

नही होता और किसी तरह की कुरूपता के दर्शन नही होते। परिया अपने इस लोक से निकलकर धरती पर आती है और मनुष्यो के कामो मे रुचि लेती है। उनका जीवन आदमियों जैसा ही होता है। वे परी-घरो मे रहती है। ये परीघर हीरे-जवाहरात तथा सोने-चादी के बने होते है। परिया सर्वोत्तम भोजन खाती हैं। उनका अधिकाधिक समय नृत्य तथा सगीत मे ही बीतता है। परियों के बच्चे भी होते है। परियो के प्रिय पशु घोडा और कुत्ता हैं। घोडे आमतौर पर सफेद होते है और उनके पख लगे होते है। जब परिया उन पर बैठकर चलती हैं तो घोडों के गले मे लगी घटियो की मधुर ध्वनि होती है।

कहते है परिया बच्चों को उठा ले जाती है। वे ऐसा इसलिए करती है कि उनका मनोरजन हो तथा उनके चमत्कार के बारे मे लोगो को जानकारी हो। कभी-कभी परिया अपने बच्चे छोड जाती है और मनुष्य के बच्चे उठा ले जाती हैं। ऐसा इसलिए कि परिया चाहती है कि उनके बच्चा का लालन-पालन मानवी द्वारा हो। यह भी कहते हैं कि परिया स्वर्ग के राजा को बलिदान चढाने के लिए मनुष्य के बच्चो को ले जाती हैं। लेकिन आमतौर से बदले हुए बच्चे शीघ्र ही लौटा दिए जाते हैं और परियो के बच्चे, वापस परीलोक मे पहुच जाते है। कई ऐसी कहानिया है जबकि परी अपना बच्चा छोड गई और मनुष्य के बच्चे को उठा ले गई। इधर मा ने जब उस बदले हुए बच्चे को उठाया तो उसने मा को नोचा और काटा। तब उसने गुस्से मे उसे दूर डाल दिया। इस पर परी उसका बच्चा लौटा गई और अपना बच्चा ले जाते हुए बोली कि मैने, तुम्हारी अपेक्षा, तुम्हारे बच्चे के साथ कही अच्छा व्यवहार किया है। परिया द्वारा बच्चे बदलने के भय से ही बचने के लिए बच्चो के पालने मे कैंची, चाकू और शेर आदि के नाखून तथा पवित्र ग्रथ—रामायण, बाईबिल या पवित्र जल रखने की परम्परा है। इनसे परिया दूर भागती है।

इस प्रकार परियो के बारे मे प्रचलित विभिन्न रहस्यमयी और आश्चर्यजनक बातो के परिणामस्वरूप जन्मी कहानिया बच्चों ने खूब पसद की। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने परीकथाए न सुनी हो। यही कारण है कि बालसाहित्य मे परियो का प्रमुख स्थान है। प्राचीन साहित्य के ग्रन्थो का अध्ययन करने से पता चलता है कि बडो के साहित्य मे भी परिया विद्यमान थी और उनका अस्तित्व स्वीकार किया गया था। महाकवि होमर कृत 'इलियड' और 'ओडिसी' मे भी ऐसी परियो का उल्लेख है जो बहुत सुन्दर और अदभुत गुणो वाली थी। प्राचीन भारतीय साहित्य मे वर्णित यक्ष-यक्षिणिया भी परिया ही थी। भारतीय साहित्य मे 'परी' शब्द, अग्रेजी के 'फेयरी' शब्द का अपभ्रश 'फरी' तथा इसके बाद 'परी' बना है।

मनुष्य को परियो की दो अद्भुत बातो ने सर्वाधिक आकृष्ट किया। एक है सौन्दर्य और दूसरा आकाश में उडना। आकाश मे उडने की अदम्य आकाक्षा ही मनुष्य को परियो के निकट ले गई थी। अनेक परीकथाओ के माध्यम से उसकी

यह आकांक्षा अभिव्यक्त हुई।

परीकथाएं पानी का वह स्वच्छ दर्पण मानी गई है जो गहरा होने हुए भी एक-एक कण स्पष्ट प्रदर्शित करता है। उनकी गहराई मे हमे हजारों साल के रहस्यमय अनुभवो की झलक मिलती है। वे मानव के उस आदिम युग से चली आ रही है जबकि मनुष्य ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए कहानियों तथा प्रतीकों को माध्यम बनाया।[1] इन कहानियों मे एक विशेषता और मिलती है कि ये बहुत थोड़े से अन्तर से अनेक देशों मे हजारो मील के क्षेत्र मे फैली हुई है।

बच्चो की कल्पना शक्ति को उर्वर बनाने मे परीकथाओं का बहुत महत्त्व रहा है। ये न केवल उनका मनोरंजन करती रही है बल्कि उन्हे जीवन के मूल्यो से भी अवगत कराती रही है। यही कारण है कि बालसाहित्य का सबसे सशक्त कथा-माध्यम परीकथाए ही मानी गई है।[2] उनमे उस देश की विशेषताओं तथा वातावरण की पूरी झलक मिलती है, जहा वे जन्मी होती है।

वास्तव में यदि इन परीकथाओ का साहित्यिक मूल्यांकन करें तो ये हमे एक विशिष्ट कला तथा शैली के रूप मे प्राप्त हुई है। इसीलिए बच्चो को इन्हें देते समय केवल वही रूप दें—चाहे वह पारंपरिक हो या आधुनिक—जो अपनी विशेषताओ को उन तक पहुचा सके। हर कथा की अपनी कुछ विशेषताएं होती है और उनका विश्लेषण करने के बाद ही बच्चों को देना चाहिए। कार्ल बुहलर के मतानुसार, "परीकथाए मानव जाति के बाल्यकाल में उत्पन्न होने वाली कथाओ का पहला या कई मे से एक रूप है। लेकिन बच्चो को पढने के लिए देने के पहले मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनकी छानबीन आवश्यक है।"[3]

लगभग सभी भाषाओं तथा देशो की परीकथाएं 'एक बार' या 'ऐसे-ऐसे' शब्दो से शुरू होती है और सुखद अन्त लेकर समाप्त हो जाती हैं। परीकथाओ

---

1. Fairy tales are like beautiful mirrors of water, so deep and crystal clear. In their depth we sense the mysterious experience of a thousand years. Their contents date from the primeval ages of humanity...when man instinctively created fables and symbols in order to express himself.
   —Paul Hazard : *Books, Children and Men.* Page 157.

2. For the past that fairy tales play in children's literary and imaginative development is precisely that of any other literary art form.
   —Lillian H. Smith : *A Critical Approach to Children's Literature*, Page 56.

3. Fairy tales represent the first or one of the forms of artistic stories arising during the childhood of humanity.
   —Karl Buhler : *The Mental Development of the Child.*

मे जीवन से कही अधिक बडे वातावरण तथा वस्तुओ के रूप की कल्पना होती है। इनका कथ्य किसी व्यक्ति की समस्याए अथवा दु ख-दर्द नही होता, बल्कि वह तो सत्य और असत्य का सघर्ष प्रस्तुत करता है और उसके इर्द-गिर्द रहस्य का वातावरण होता है। जो भी बालक ऐसी कहानियो को सुनता है या पढता है, इस रहस्यमय वातावरण का आनन्द लेते हुए ही कहानी के अन्त मे सतुष्ट होता है। यह बहुत सभव है कि उसने जो कुछ इस तरह की परीकथा से ग्रहण किया है उसे प्रत्यक्ष रूप मे न जान सके, किन्तु वह निश्चित ही सौन्दर्यानुभूति तथा कथा की कलात्मकता का आनन्द सरल सुन्दर और रोचक शब्दो के माध्यम से ग्रहण करता है। वास्तव मे, परीकथाओ मे निहित जीवन का यह बृहत् परिप्रेक्ष्य बच्चो के लिए बहुत आवश्यक है। इससे वे अनेक अनुभवो को आत्मसात् करते हैं।

परीकथाओ की कल्पना का विस्तार, बच्चो की असीम कल्पना से भी अधिक होता है। बच्चे उनमें भावपूर्ण सहानुभूति की गहराई पाते है। वे उसमे रहस्य, आश्चर्य, हास्य, दु ख, सौन्दर्य आदि भावो को पाकर आह्लादित हो उठते हैं और यही परीकथा की सफलता होती है।

(४) बालकहानियो मे फतासी

'फतासी' सार्वलौकिक सत्य का लाक्षणिक ज्ञान कराने का माध्यम मानी गई है। यह एक ग्रीक शब्द है और इसका अर्थ है—'किसी वस्तु को जो अदृश्य है, द्रष्टव्य बना दिया जाय।'[1] दूसरे शब्दो मे फतासी किसी वस्तु के ज्ञान की मानसिक पकड भी कही जा सकती है। यह कल्पना की वह क्रिया है जो किसी अमूर्त वस्तु की क्रिया, स्थिति, रूप तथा आकार का बोध कराती है। ज्ञान की सीमा मे कोई दृश्य वस्तुओ के आधार पर अमूर्त वस्तुओ को प्रस्तुत करने वाली क्रियाशील कल्पना का परिणाम भी फतासी मानी गई है।[1] अपने विशिष्ट अर्थो मे फतासी और कल्पना मे कुछ मूलभूत अन्तर है। कल्पना विगत प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक अनुभवो का बिम्बो और विचारो के रूप मे विवरणात्मक स्तर पर रचनात्मक नियोजन

---

1 The word fantasy comes from the Greek and literally translated, means "a making visible" The Shorter Oxford English Dictionary defines fantasy as "the mental apprehension of an object of perception", and as "imagination, the process, the faculty or the result of forming representation of things not actually present" That is to say, fantasy coms from the creative imagination, a power the mind has of forming concepts beyond those derived from external objects which are present to our senses

—Lillian Smith *A Critical Approach to Children's Literature* Page 150

मानी गई है। लेकिन यह एक अत्यन्त जटिल मानसिक प्रक्रिया होने के कारण दो रूपो में विभाजित कर दी गई है—एक तो वह जिसमे मानसिक उडानें आती हैं और मनुष्य काल्पनिक जगत का निर्माण करता है, दूसरी वह जो सृजनात्मक होती है, जिसके अन्तर्गत साहित्यिक, वैज्ञानिक तथा कलात्मक सृजनशील विचारो को जन्म मिलता है। फतासी इस दूसरे रूप के सत्य के अधिक निकट होती है। इसी-लिए इसका स्वतन्त्र अस्तित्व हो जाता है। इसमे केवल कल्पना ही नही होती, बल्कि लेखक का बाह्य ज्ञान तथा दूसरो के समक्ष अपने विचारो को प्रभावशाली ढग से अभिव्यक्त करने के लिए सशक्त भाषा-माध्यम भी होता है। इसीलिए फतासी का लेखक बहुत कुछ आविष्कारक जैसा काम करता है। फतासी वास्तव मे वह शक्ति है जो मूर्त के आधार पर उत्पन्न अमूर्त को पुन मूर्त रूप मे बदलने की प्रेरणा दे। फतासी इसी कारण कवि कल्पना से पृथक् मानी गई है। फतासी के अन्तर्गत उत्पन्न अमूर्त मे वह गहराई मे प्रवेश करके उसका रहस्योद्घाटन करती है और उसे समझने के लिए सरल बनाती है किन्तु यह भी सही है कि इसे प्रस्तुत करने के लिए लेखक में उतनी विचारशक्ति अवश्य होनी चाहिए।

फतासी लिखने मे एक विशेष सूझ की आवश्यकता होती है। एक स्वय उद्भूत फतासी मे और मस्तिष्क पर जोर देकर लिखी गई फतासी मे बहुत अन्तर होता है। सरल और स्वाभाविक ढग से उत्पन्न फतासी की कथा बच्चो को जहा एक ओर कल्पना-लोक का पूरा आनन्द देती है वही उनमे क्रियाशीलता की भावना का भी सचार करती है। किन्तु केवल सोच सोचकर लिखी गई फतासी मे भला यह बात कहा से आ सकती है।

बच्चो के लिए लिखी जाने वाली फतासी की पुस्तको मे कुछ आवश्यक तत्त्वो का होना अनिवार्य है। फतासी मे एक रोचक कहानी होनी ही चाहिए जो उन काल्पनिक चरित्रो के प्रति बाल मन को आकृष्ट कर सके—जिनकी उसमें चर्चा है, फिर चाहे वे मनुष्य, जानवर, पशु-पक्षी अथवा खिलौने कुछ भी हो। पात्रो का उस कथा से पूरा सम्बन्ध हो और उसका निर्वाह पाठक के मन मे उत्सुकता जागृत करने मे पूर्ण सफल होना चाहिए। पूरी कहानी की भूमि तथा वातावरण ऐसा हो जिसमे सत्य तथा अवास्तविक मे वास्तविक का-सा आभास होने लगे। बच्चे उसी फतासी को शीघ्रता से ग्रहण करते हैं जिनमे कल्पना और आश्चर्य का सुन्दर मिश्रण होता है। लेकिन सभवत बडे लोग, जिनमे फतासी को ग्रहण करने की क्षमता बच्चो से कम होती है, उतना आनन्द नही ले सकते। उनके सामने जीवन के सत्य का बहुत बडा कैनवास फैला होता है। इसीलिए बच्चो की पुस्तको मे फतासी का विशेष महत्त्व स्वीकार किया गया है। फतासी के माध्यम से बच्चो को अनेक सूक्ष्म, गम्भीर तथा विलक्षण विचारो से परिचित कराया जा सकता है। इन्हे पढकर बच्चे उपदेशात्मकता तथा नीतियों के बोझ से बच सकते हैं। इसीलिए फतासी का रूप, बडो के साहित्य की सीमा मे विशेषकर कथा-साहित्य मे जो कुछ है, उससे बालसाहित्य में बिलकुल भिन्न है। बालसाहित्य मे

में जीवन से कहीं अधिक बड़े वातावरण तथा वस्तुओं के रूप की कल्पना होती है। इनका कथ्य किसी व्यक्ति की समस्याएं अथवा दु:ख-दर्द नहीं होता, बल्कि वह तो सत्य और असत्य का संघर्ष प्रस्तुत करता है और उसके इर्द-गिर्द रहस्य का वातावरण होता है। जो भी बालक ऐसी कहानियों को सुनता है या पढ़ता है, इस रहस्यमय वातावरण का आनन्द लेते हुए ही कहानी के अन्त में संतुष्ट होता है। यह बहुत संभव है कि उसने जो कुछ इस तरह की परीकथा से ग्रहण किया है उसे प्रत्यक्ष रूप में न जान सके, किन्तु वह निश्चित ही सौन्दर्यानुभूति तथा कथा की कलात्मकता का आनन्द सरल, सुन्दर और रोचक शब्दों के माध्यम से ग्रहण करता है। वास्तव में, परीकथाओं में निहित जीवन का यह बृहत् परिप्रेक्ष्य बच्चों के लिए बहुत आवश्यक है। इससे वे अनेक अनुभवों को आत्मसात् करते हैं।

परीकथाओं की कल्पना का विस्तार, बच्चों की असीम कल्पना से भी अधिक होता है। बच्चे उनमें भावपूर्ण सहानुभूति की गहराई पाते हैं। वे उसमें रहस्य, आश्चर्य, हास्य, दु:ख, सौन्दर्य आदि भावों को पाकर आह्लादित हो उठते हैं और यही परीकथा की सफलता होती है।

(४) बालकहानियों में फंतासी :

'फंतासी' सार्वलौकिक सत्य का लाक्षणिक ज्ञान कराने का माध्यम मानी गई है। यह एक ग्रीक शब्द है और इसका अर्थ है—'किसी वस्तु को जो अदृश्य है, द्रष्टव्य बना दिया जाय।'[1] दूसरे शब्दों में फंतासी किसी वस्तु के ज्ञान की मानसिक पकड़ भी कही जा सकती है। यह कल्पना की वह क्रिया है जो किसी अमूर्त वस्तु की क्रिया, स्थिति, रूप तथा आकार का बोध कराती है। ज्ञान की सीमा में कोई दृश्य वस्तुओं के आधार पर अमूर्त वस्तुओं को प्रस्तुत करने वाली क्रियाशील कल्पना का परिणाम भी फंतासी मानी गई है।[1] अपने विशिष्ट अर्थों में फंतासी और कल्पना में कुछ मूलभूत अन्तर है। कल्पना विगत प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक अनुभवों का बिंबों और विचारों के रूप में विवरणात्मक स्तर पर रचनात्मक नियोजन

---

1 The word fantasy comes from the Greek and literally translated, means "a making visible" The Shorter Oxford English Dictionary defines fantasy as "the mental apprehension of an object of perception", and as "imagination, the process, the faculty or the result of forming representation of things not actually present" That is to say, fantasy coms from the creative imagination, a power the mind has of forming concepts beyond those derived from external objects which are present to our senses

—Lillian Smith *A Critical Approach to Children's Literature* Page 150

मानी गई है। लेकिन यह एक अत्यन्त जटिल मानसिक प्रक्रिया होने के कारण दो रूपो मे विभाजित कर दी गई है—एक तो वह जिसमे मानसिक उडानें आती है और मनुष्य काल्पनिक जगत का निर्माण करता है, दूसरी वह जो सृजनात्मक होती है, जिसके अन्तर्गत साहित्यिक, वैज्ञानिक तथा कलात्मक सृजनशील विचारो को जन्म मिलता है। फतासी इस दूसरे रूप के सत्य के अधिक निकट होती है। इसीलिए इसका स्वतत्र अस्तित्व हो जाता है। इसमे केवल कल्पना ही नही होती, बल्कि लेखक का बाह्य ज्ञान तथा दूसरो के समक्ष अपने विचारो को प्रभावशाली ढग से अभिव्यक्त करने के लिए सशक्त भाषा-माध्यम भी होता है। इसीलिए फतासी का लेखक बहुत कुछ आविष्कारक जैसा काम करता है। फतासी वास्तव मे वह शक्ति है जो मूर्त के आधार पर उत्पन्न अमूर्त को पुन मूर्त रूप मे बदलने की प्रेरणा दे। फतासी इसी कारण कवि कल्पना से पृथक् मानी गई है। फतासी के अन्तर्गत उत्पन्न अमूर्त मे वह गहराई मे प्रवेश करके उसका रहस्योद्घाटन करती है और उसे समझने के लिए सरल बनाती है किन्तु यह भी सही है कि इसे प्रस्तुत करने के लिए लेखक मे उतनी विचारशक्ति अवश्य होनी चाहिए।

फतासी लिखने मे एक विशेष सूझ की आवश्यकता होती है। एक स्वय उद्भूत फतासी मे और मस्तिष्क पर जोर देकर लिखी गई फतासी मे बहुत अन्तर होता है। सरल और स्वाभाविक ढग से उत्पन्न फतासी की कथा बच्चो को जहा एक ओर कल्पना-लोक का पूरा आनन्द देती है वही उनमे क्रियाशीलता की भावना का भी सचार करती है। किन्तु केवल सोच-सोचकर लिखी गई फतासी मे भला यह बात कहा से आ सकती है।

बच्चो के लिए लिखी जाने वाली फतासी की पुस्तको मे कुछ आवश्यक तत्त्वो का होना अनिवार्य है। फतासी मे एक रोचक कहानी होनी ही चाहिए जो उन काल्पनिक चरित्रो के प्रति बाल मन को आकृष्ट कर सके—जिनकी उसमे चर्चा है, फिर चाहे वे मनुष्य, जानवर, पशु पक्षी अथवा खिलौने कुछ भी हो। पात्रो का उस कथा से पूरा सम्बन्ध हो और उसका निर्वाह पाठक के मन मे उत्सुकता जागृत करने मे पूर्ण सफल होना चाहिए। पूरी कहानी की भूमि तथा वातावरण ऐसा हो जिसमे सत्य तथा अवास्तविक मे वास्तविक का-सा आभास होने लगे। बच्चे उसी फतासी को शीघ्रता से ग्रहण करते हैं जिनमे कल्पना और आश्चर्य का सुन्दर मिश्रण होता है। लेकिन सभवत बडे लोग, जिनमे फतासी को ग्रहण करने की क्षमता बच्चो से कम होती है, उतना आनन्द नहीं ले सकते। उनके सामने जीवन के सत्य का बहुत बडा कैनवास फैला होता है। इसीलिए बच्चो की पुस्तको मे फतासी का विशेष महत्त्व स्वीकार किया गया है। फतासी के माध्यम से बच्चो को अनेक सूक्ष्म, गम्भीर तथा विलक्षण विचारो से परिचित कराया जा सकता है। इन्हे पढकर बच्चे उपदेशात्मकता तथा नीतियों के बोझ से बच सकते हैं। इसीलिए फतासी का रूप, बडा के साहित्य की सीमा मे विशेषकर कथा-साहित्य मे जो कुछ है, उससे बालसाहित्य मे बिलकुल भिन्न है। बालसाहित्य मे

फतासी उतनी ही गहरी, महत्त्वपूर्ण तथा समृद्ध है, जितनी किसी चित्र मे रग और छाया। हर भाषा के साहित्य मे बच्चो की अनेक फतासिया है। केवल उन्हे समझने की सूक्ष्म दृष्टि चाहिए। केवल इसी दृष्टि मे उनके मूल्य तथा महत्त्व को आका जा सकता है। यहा यह भ्रम हो सकता है कि फतासिया का सारगर्भित अर्थ बच्चा को भुलावे मे डाल सकता है और वे तो केवल कहानी का आनन्द लेना चाहते हैं। लेकिन दरअसल बात यह है कि कल्पना की अतिशयता ही उन्हे वह सुनने के लिए विवश करती है और इसलिए कहानी के आनन्द म कमी आने की अपेक्षा वह वढ जाता है। फिर भी फतासी म यह आवश्यक है कि उसमे एक रोचक कथा हो। यह कथा अपने पाठक या श्रोता को, लेखक द्वारा कल्पित पात्रो के माध्यम से आकर्षित करे। ये पात्र भले ही मनुष्य हो, परिया हो, जीव जन्तु हो या खिलौने हो। लेकिन सभी पात्रा का एक-दूसरे मे सम्बन्ध होना चाहिए और घटनाओं मे रहस्य तथा कौतूहल हो। रहस्य की स्थिति सभी घटनाओ मे एक ही स्तर की न होकर आगे की ओर वढती हुई हो तथा चरमसीमा तक पहुचे जिससे कहानी का अन्त, अपने पाठक पर सन्तोषजनक प्रभाव डालते हुए हो। फतासी की पुस्तक के लिए, एक अच्छी पुस्तक के गुण भी आवश्यक हैं और कथाओ के सभी शास्त्रीय विधान इस पर भी लागू होते हैं। अन्तर केवल इतना है कि कथा-साहित्य की अपेक्षा फतासी बिलकुल अवास्तविक तथा अविश्वसनीय वातावरण मे रहती है।

बालसाहित्य मे फतासियो के प्रयोग की अलग अलग विधाए है। इन विधाओं के ही आधार पर उनके प्रस्तुतीकरण मे विविधताए आ गई हैं। कहानियो म फतासी, केवल परीकथाओ तक ही सीमित नही रह गई है। पशु पक्षिया का माध्यम भी बहुत प्राचीन रहा है। उसमे वर्ण्य विषय रोचक, मनोरजक तथा कौतूहलपूर्ण होता है। 'पचतत्र' दुनिया की सबमे पुरानी फतासी-पुस्तक मानी जा सकती है, जिसमे पशु-पक्षियो के माध्यम से श्रेष्ठ कथाओ की रचना की गई है। आधुनिक युग मे 'एलिस इन दि वडरलैंड' तथा 'विजार्ड आफ दि ओज' विश्व-प्रसिद्ध फतासिया है। भारतीय साहित्य मे, हाल ही मे एक अत्यन्त सशक्त फतासी-पुस्तक 'सरकस' प्रकाशित हुई है। यह मलयालम भाषा का बाल-उपन्यास है और अब तक कई भाषाओ मे अनूदित हो चुका है।

काव्य मे हमारे यहा चन्दामामा सबसे प्राचीन फतासी है। बच्चो का चन्दा मामा न केवल रोटी का टुकडा है बल्कि उसमे एक बुढिया भी रहती है जो चक्की पीसती है। चन्दामामा के पास तारो वाला कोट है, बालो वाला टोप है और वह बच्चो को खाने के लिए मिठाइया देते हैं। इसीलिए उनके लिए लिखी गई कविताओ मे कहा जाता है—

मेरे पास चन्दा तू आ जा,
आकर अपना खाना खा जा।

मुझको अपना हिरन दिखा जा,
मीठी-मीठी बात सुना जा।
—अयोध्यासिंह उपाध्याय

× × ×

बूढी माई बूढी माई,
उतर चाद से नीचे आई।
मुन्ना के घर दावत खाई,
लड्डू पूरी खीर मलाई।
सारी चीजों को खा पीकर,
वह चल दी उडकर अपने घर।
हमने उसको आते देखा,
हमने उसको जाते देखा।
अब हम भी उडकर जाएगे,
उसके घर दावत खाएगे।

इस प्रकार कविता, कहानियो तथा नाटको के माध्यम से चन्दामामा प्राचीन काल से कथा-फतासी रही है।

नाटको मे कल्पना-लोक के रोचक और सुन्दर पात्र जहा प्रभावकारी होते हैं वही उनसे अभिनय तथा नाटक के प्रस्तुतीकरण मे भी चार चाद लग जाते है। ये पात्र बडी सरलता से उस समय बालमन को लुभा लेते है और बच्चे अपने अनुभव ज्ञान के आधार पर उनसे तादात्म्य स्थापित कर विभोर हो उठते है। नरेशचन्द्र मिश्र के नाटक 'चाद और खरगोश' मे चाद की छाती पर चिपटा खरगोश जब यह सुनता है कि मानव निर्मित राकेट अब चाद पर हमला करने वाला है तो वह घबरा उठता है। खरगोश की सलाह से चदामामा अपनी रक्षा का उपाय ढूढने के लिए धरती वाले खरगोश के पास आते हैं। लेकिन मानव की शक्ति और वैज्ञानिक सूझ-बूझ के आगे कुछ भी न चल पाने के कारण निराश होकर चदामामा वापस चले जाते है। इस तरह की फतासिया बच्चो के लिए रोचक और मनोरजक तो होती ही है उनसे बच्चो मे साहस, क्रियाशीलता तथा सृजन-शीलता का भी भाव जागृत होता है। लेकिन नाटको मे फतासियो के प्रयोग बहुत कम किए गए है। नाटकीय फतासिया मच पर बडे अनोखे ढग से प्रस्तुत की जाने के कारण सामान्य नाटक से उनमे वैविध्य आ जाता है और ये बहुत अच्छी तथा प्रभावशाली सिद्ध होती है।

हिन्दी मे वैज्ञानिक फतासियो का भी बहुत अभाव है। विज्ञान के इस युग मे अनेक फतासियो के रोचक विषय उपलब्ध है जो बच्चो को न केवल मनोरजन प्रदान कर सकती हैं, बल्कि उन्हें विज्ञान की ओर आकृष्ट भी करने मे समर्थ होगी। अभी तक मुख्यत. अतरिक्ष-यात्री-सम्बन्धी फतासिया ही लिखी गई हैं।

बच्चों का मन बहलाने तथा उन्हें काफी देर तक कथा-रस में डुबाए रहने में सफल हुई थी। हिन्दी में आरम्भ में इन्हीं उपन्यासों के अनुवाद प्रकाशित हुए थे।

१ सैद्धान्तिक विवेचन :

"उपन्यास को साहित्य मे आधुनिक युग की देन माना गया है। उसमें घटनाएं कैसी भी हो, लोक की, परलोक की, आकाश की, पाताल की, पर वे होंगी कार्यकारण की शृंखला में आबद्ध, उनमें एक तारतम्य होगा, भले ही वे आन्तरिक तथा सूक्ष्म हों, वे हमारे जीवन के किसी पहलू को अवश्य रोशन करेंगी, घटनाएं, व्यापार शृंखलाएं और मानव मन, सब पारस्परिक रूप से एक-दूसरे को स्पष्ट करते चलेंगे। घटनाएं जीवन के केन्द्र से निकलकर जीवन के ही रूपों का प्रकाशन करेंगी। पशु-पक्षी तथा जड पाषाण भी पात्र के रूप में उपस्थित हो सकते हैं, पर उनकी प्रतिक्रियाएं वही होंगी जो मानव-हृदय की होती हैं। व्यापक दृष्टि से कह सकते हैं कि यह गद्य-साहित्य का एक अन्यतम रूप है, जिसका आधार कथा है—चाहे वह सीधे मनुष्यों की हो या मनुष्येतर जीव और निर्जीव प्रकृति की अथवा चाहे वह सच्ची हो या कल्पित। उसे उपस्थित करने में कल्पना का प्रयोग आवश्यक है।"[१]

बाल-उपन्यासों को यदि उपर्युक्त कथन के परिप्रेक्ष्य में देखें तो वे भी बच्चों के सामने जीवन की बहुविध घटनाओं को, चाहे मनुष्यों से सम्बन्धित हों या पशु-पक्षियों के माध्यम से कही गई हों, इस ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि संसार की विचित्रता तथा रहस्यों को समझने के लिए प्रयत्नशील बालक, अपनी अनेक गुत्थियां उनके माध्यम से सुलझा सके। 'राबिन्सन क्रूसो', 'सिंदबाद जहाजी', 'ट्रेजर आईलैंड', 'डेविड कापरफील्ड' आदि ऐसे उपन्यास हैं, जिन्हें बच्चों ने अपने मन की समस्याओं का समाधान समझ कर स्वीकार कर लिया। इनसे बच्चों का न केवल मनोरंजन हुआ, बल्कि उन्हें एक विस्तीर्ण दृष्टि भी मिली—इस दुनिया के रहस्यों को जानने-समझने के लिए।

बाल-उपन्यासों की इसी विशेषता के कारण, उनके तत्वों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कथानक है। यह कथानक बालकहानियों से कुछ अधिक बड़े कैनवास पर चित्रित होता है। उसमें विस्तार होता है, बारीक से बारीक बात भी स्पष्ट रूप में उभर कर सामने आती है और लेखक के लिए अपनी बात कहने की पूरी छूट होती है।

बाल-उपन्यासों के कथानक, बाल रुचि के अनुकूल किसी भी विषय के हो सकते हैं। लेकिन उनके चयन की ओर विशेष ध्यान देना होगा। आशय यह है कि बच्चों के अनुकूल कथानकों को ही बाल-उपन्यासों में लें। प्रेम, शृंगार, राज-

---

१. हिन्दी साहित्यकोश : ज्ञानमंडल वाराणसी, भाग १, पृष्ठ १३९-४०।

नीति, दर्शन जैसे विषयों का कोई महत्त्व नही है।

बाल-उपन्यासो मे चरित्र चित्रण दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू है। चरित्रो की योजना करते समय या तो बच्चों मे से ही चुनाव करें या फिर बडो के वे चरित्र लें जो उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकें। इन दोनो प्रकार के चरित्रो को उपन्यास मे पूर्ण विस्तार मिले। जहा तक सभव हो कम-से-कम चरित्रो का ही नियोजन किया जाय और मुख्य पात्र अधिकाश घटनाओं से सम्बद्ध होकर आरभ से अन्त तक क्रियाशील बना रहे।

२. हिन्दी के बाल-उपन्यास परपरा और विकास

हिन्दी मे बच्चो के उपन्यासों की परम्परा की कहानी बहुत पुरानी नही है। सन् १६०० के बाद जब बच्चों के लिए कथा-साहित्य लिखा जाने लगा था, उन्ही दिनों हिन्दी-कथा साहित्य मे उपन्यासो की दिशा मे अनुवाद तथा मौलिक प्रयास प्रस्तुत किये जा रहे थे। सौभाग्यवश अनुवादो मे कुछ बाल-उपन्यास ऐसे भी प्रस्तुत हुए जो बच्चो के अनुकूल थे। इनम 'राबिन्सन क्रूसो', 'टाम काका की कुटिया', 'सिन्दबाद जहाजी' आदि प्रमुख थे। लेकिन बच्चो के लिए विशेष रूप से इनका भी अनुवाद नही हुआ था। ये तो बालोपयोगी होने के कारण बच्चो द्वारा भी पढे जाने लगे थे।

वास्तव मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तक हिन्दी मे बाल-उपन्यास लिखने की ओर लेखको का ध्यान नही गया। लोग यही सोचते थे कि बच्चों को तो कहानिया अच्छी लगती हैं। अत कहानियो तक ही बात सीमित रही। 'अली बाबा चालीस चोर', 'राबिनहुड' आदि की लम्बी कहानियो को पुस्तक रूप मे प्रस्तुत भी किया गया। किन्तु उनसे बाल-उपन्यास की कमी पूरी नही हुई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस दिशा मे काफी प्रगति हुई। यह काम आरभ हुआ—पत्र-पत्रिकाओं म धारावाहिक प्रकाशन से। पत्रिकाओ मे रोचक उपन्यासो को धारावाहिक रूप मे प्रकाशित करने से, उनकी आगे की कथा पढने के लिए पाठको मे उत्सुकता होती है और वे हर महीने पत्रिका खरीदते हैं—जिससे पत्रिका की बिक्री बढती है। सन् १६५२ मे 'बालसखा' मे एक अत्यन्त रोचक उपन्यास 'खडखडदेव' प्रकाशित हुआ था। इसके लेखक भूपनारायण दीक्षित थे। उपन्यास मे होली के दिन हुडदग करने वाले लडके एक गधे को रग कर उसकी दुम मे एक कनस्तर बाध देते हैं। दिन-भर घुमाने के बाद उसे छोड देते हैं किन्तु कनस्तर नही खोलते। गधा छूटते ही भागता और कनस्तर की खडखड से घबराकर सोचता है कि शायद कोई मुसीबत उसका पीछा कर रही है। अत वह और तेजी से भागता है और इस तरह वह जगल मे पहुचता है। जगल के सभी जीवो मे समाचार फैलता है कि 'खडखडदव' आये है। बस यहा से उपन्यास का कथानक आगे बढता है।

इसके कुछ वर्ष बाद दयाशकर मिश्र दद्दा का उपन्यास 'दीनू बेटा' 'साप्ताहिक

हिन्दुस्तान' की 'बच्चो की फुलवारी' मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था। यह भी बहुत रोचक उपन्यास था।

सन् १६५७ तक बच्चो के लिए उपन्यासों की आवश्यकता तथा महत्त्व को समझा जाने लगा था। अत इस समय तक अनूदित तथा मौलिक उपन्यासो की पर्याप्त सख्या प्रस्तुत हो चुकी थी। रानी प्रकाशन, कृष्णनगर, दिल्ली ने 'ज्ञान नवीनम' पुस्तकमाला के अन्तर्गत किशोर पाठको के लिए तीन उपन्यास प्रकाशित किये —

(१) प्रेरी के मैदानो मे।
(२) ब्राजील के वनो मे।
(३) ससार के चिडियाघरो मे।

ये उपन्यास अंग्रेजी के उपन्यासो का रूपान्तर हैं। इस शैली तथा तकनीक की ये पहली रचनाए थी। इन उपन्यासो मे बाल-मनोवृत्ति को ध्यान मे रखते हुए लेखक ने विभिन्न भू-भागो की प्राकृतिक बनावट, जलवायु, पशु-पक्षी, पैदावार आदि का ज्ञान किशोर पाठको के लिए कुतूहलमयी, उत्तेजनशील, प्रवाहमयी कथाओ के रूप मे प्रस्तुत किया। पुस्तको की भाषा सरल, मुहावरेदार एव प्रवाहमयी है। 'ससार के चिडियाघरो मे' लेखक का मौलिक प्रयास है।

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली से प्रकाशित कमल शुक्ल का उपन्यास 'गुजाल' बाल-मनोविज्ञान पर आधारित था। इसमे लेखक ने छुआछूत की समस्या के साथ गरीबी और अमीरी के भेदभाव को मिटाने का पूरा प्रयास किया। इसी प्रकाशक के यहा से काव्योपन्यास माला के अन्तर्गत भी कुछ उपन्यास प्रकाशित हुए। इनमे से 'सीगफ्रिड', 'मेघनाद', 'एकिलिस' 'रत्नसेन' तथा 'यूलिसिस' और 'ओडिसियस' प्रमुख है। इस काव्योपन्यास माला के अन्तर्गत प्रकाशित उपन्यासो मे ससार के उत्कृष्ट महाकाव्यो के कथानक देने का प्रयास किया गया। इस प्रकार के उपन्यासो से बाल पाठको का मनोविनोद होने के साथ-साथ ससार के श्रेष्ठ साहित्य से उनका परिचय भी हो जाता है।

सन् १६५८ मे हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी से 'बालबंकिम कथा-माला' के अन्तर्गत 'चन्द्रशेखर,' 'दुर्गेशनन्दिनी,' 'मृणालिनी,' 'कृष्णकात का वसीयतनामा' और 'विषवृक्ष' का प्रकाशन हुआ था। १६५६ मे 'रजनी,' सीताराम', 'कपालकुण्डला' तथा 'राधारानी इन्दिरा' का भी प्रकाशन हुआ। बकिमचन्द्र चटर्जी के बगला उपन्यासो के यह किशोरोपयोगी हिन्दी रूपान्तर बहुरगे मुखपृष्ठ, दोरगे-इकरगे चित्रो से सुसज्जित तथा मोटे १४ पाइण्ट टाइप में प्रकाशित हुए। इनमे मूल पुस्तक का भाव, भाषा और शैली प्रभावशील बन पडी है।

अन्य अनूदित उपन्यासो मे 'खजाने की खोज मे,' 'डैविड कापरफील्ड,' 'कैदी की करामात' आदि हैं। अन्य भारतीय भाषाओ से अनूदित उपन्यासो मे— विजयगुप्त मौर्य के उपन्यास का मनहर चौहान द्वारा हिन्दी अनुवाद 'जादूगर कबीर' 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' की 'बच्चो की फुलवारी' मे प्रकाशित हुआ था।

मौलिक उपन्यास भी बच्चो के लिए प्रचुर मात्रा मे लिखे गए हैं। कृष्णचन्दर का 'खरगोश का सपना', सत्यप्रकाश अग्रवाल का 'एक डर . पाच निडर' उल्लेखनीय बाल-उपन्यास हैं। 'एक डर पाच निडर' मे पाच साहसी बालको की कहानी है। उपन्यास का कथानक काफी चुस्त और सरस है। चित्रो तथा बढिया छपाई से यह बहुत सुन्दर बन पडा है। पुस्तक रूप में प्रकाशित होने से पूर्व यह बाल मासिक 'पराग' मे धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हो चुका था।

'सुनहला हिरन' और 'जादू की टहनी' श्रीप्रशान्त के दो बाल-उपन्यास हैं। बच्चो की उपन्यास पढने मे रुचि जाग्रत करने की दृष्टि से ये दोनो पुस्तकें अच्छी हैं। दोनो के कथानको मे कौतूहल है और स्थान-स्थान पर बच्चो के लिए प्रेरणादायक बातें कही गई हैं।

अन्य मौलिक उपन्यासो मे विश्वमित्र शर्मा कृत 'सम्राट् अशोक', मनहर चौहान का 'जय भवानी,' उमाशकर का 'चित्तौडगढ की रानी' तथा हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि' का 'बदला' उल्लेखनीय हैं।

उमेश प्रकाशन दिल्ली ने किशोर उपन्यासमाला के अन्तर्गत लगभग ६० उपन्यास प्रकाशित किए हैं। इस प्रकाशन सस्था ने केवल ऐसे ही प्रकाशनो का व्रत लिया है। इतिहास के प्रमुख पात्रों पर आधारित उपन्यास हैं—'अर्जुन' (सुदर्शन चोपडा), 'कर्ण' (सुदर्शन चोपडा), 'भीष्म' (सुदर्शन चोपडा), 'खूब लडी मर्दानी' (मनहर चौहान), 'हल्दी घाटी' (मनहर चौहान), 'गढमण्डला की रानी' (मनहर चौहान), 'बाजीराव पेशवा' (उमाशकर), 'वीरकुवर सिंह' (वीरेन्द्र मोहन रतूडी), 'वीर कुणाल' (शिवमूर्तिसिह वत्स), 'दुर्गादास' (शत्रुघ्नलाल शुक्ल), 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य' (प्रकाश नगायच), 'वीरागना चेन्नमा' (शकर बाम), 'महाबली छत्रसाल' (हरिकृष्ण देवसरे) आदि।

शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटको की कथाओ का औपन्यासिक रूपान्तर श्री शत्रुघ्नलाल शुक्ल ने किया है। ये हैं—हेमलेट, मेक्बेथ, तूफान, जूलियस सीजर, राई से पहाड, राजा लियर, रोमियो जूलियट, भूल पर भूल, वेनिस का सौदागर।

बच्चो के मासिका तथा बाल पृष्ठों पर भी अनेक धारावाहिक उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। 'पराग' मे हरिकृष्ण देवसरे का 'चन्दामामा दूर के', 'राजा और भिखारी' (रूपा० विनोदकुमार), 'वीर विक्रमादित्य' (रूपा० विनोदकुमार), 'टामकाका की कुटिया' (रूपा० विनोदकुमार), 'सरकस' (मलयालम उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर) तथा 'शेर का पजा' (अवध अनुपम) अब तक प्रकाशित हो चुके है। 'नन्दन' मे १९६६ मे डा० लक्ष्मी नारायणलाल का 'हरी घाटी' उपन्यास प्रकाशित हुआ था। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के बालपृष्ठा मे द्रोणवीर कोहली का 'करामाती कद्दू' तथा शशिप्रभा शास्त्री का 'सुनहरा' प्रकाशित हुए हैं।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक बाल उपन्यास है जिनकी काफी लम्बी सूची तैयार हो सकती है। लेकिन कुल मिलाकर यह निश्चित ही कहा जा सकता है कि अब हिन्दी म प्रचुर मात्रा मे बाल-उपन्यास लिखे जा चुके हैं और लिखे जा रहे हैं।

(३) हिन्दी बाल-उपन्यासों के भेद :

विषय-वस्तु के आधार पर बाल-उपन्यासो के मुख्यतः छ भेद किये जा सकते हैं—

(१) ऐतिहासिक
(२) भौगोलिक
(३) यात्रा-सम्बन्धी
(४) साहसिक
(५) वैज्ञानिक
(६) जासूसी

(१) ऐतिहासिक—बच्चो के तद्युगीन वातावरण, सस्कृति, रहन-सहन और आचार-विचार से परिचित कराने मे ऐतिहासिक उपन्यास बहुत उपयोगी होते हैं। इनके माध्यम से वे न केवल कथा का मनोरजन प्राप्त करते है बल्कि इतिहास के उस युग की पूरी झलक भी देख लेते है। इधर कई रोचक तथा उपयोगी ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुए है। हरिकृष्ण देवसरे के 'महाबली छत्रसाल', 'वीर हरदोल' तथा 'राजा भोज', मनहर चौहान के 'हल्दी घाटी', 'जय भवानी', 'खूब लड़ी मर्दानी', उमाशकर के 'बाजीराव पेशवा', 'गढमण्डला की रानी', राजेश शर्मा का 'गुरु गोविन्दसिंह', शत्रुघ्नलाल शर्मा का 'सम्राट् शिलादित्य' तथा सुशीलकुमार का 'चन्द्रगुप्त मौर्य' उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

(२) भौगोलिक—भौगोलिक जानकारी देने वाले अथवा भौगोलिक तथ्यो पर आधारित बाल-उपन्यास बहुत रोचक होते हैं। रूसी भाषा मे यह प्रयोग बहुत सफल हुआ है, जिनमे खनिजो, पहाड़ो तथा वनों की खोज और अध्ययन की चर्चा मिलती है। हिन्दी मे अभी तक 'प्रेरी के मैदानो मे' और 'ब्राजील के वनो मे' शीर्षक केवल दो ही उपन्यास ऐसे देखने को मिले है जिन्हे इस कोटि में रखा जा सकता है।

(३) यात्रा-सम्बन्धी—'राबिनसन क्रूसो,' 'सिन्दबाद जहाजी,' 'खजाने की खोज मे' तथा 'गुलीवर की कथाएं' यात्रा-सम्बन्धी उपन्यासो की विश्व विख्यात कृतियां हैं। बच्चो के लिए यात्रा-सम्बन्धी उपन्यास, उनमे साहस तथा भ्रमण की भावना का सचार करते हैं। हिन्दी मे ऐसे उपन्यास अनूदित अधिक, मौलिक कम हैं। उपर्युक्त उपन्यासो के अनुवाद के अतिरिक्त इस प्रकार के मौलिक उपन्यास 'ससार के चिड़ियाघरो मे' (किशोर गर्ग), तथा अन्तरिक्ष यात्रा पर आधारित 'चन्दामामा दूर के' (हरिकृष्ण देवसरे) के उपन्यास ही उल्लेखनीय हैं। इस कोटि के उपन्यासो की हिन्दी मे बहुत कमी है।

(४) साहसिक—बच्चो मे साहस तथा बल की भावना जाग्रत करने मे इस वर्ग के उपन्यास बहुत उपयोगी होते हैं। इस प्रकार के उपन्यास हिन्दी मे प्रचुर मात्रा मे लिखे गए हैं। ऐतिहासिक वीरो से सम्बन्धित उपन्यासो के अतिरिक्त

सत्यप्रकाश अग्रवाल का 'एक डर पाच निडर', हरिकृष्ण देवसरे का 'डाकू का बेटा', भीमसेन त्यागी कृत 'ह्वेल का शिकार', 'मगरमच्छ का शिकार', मनहर चौहान कृत 'हाथी का शिकार', 'बाघ का शिकार', 'सुबह के पक्षी', विमला शर्मा कृत 'एक था छोटा सिपाही' विशेष उल्लेखनीय है।

(५) वैज्ञानिक—विज्ञान के इस युग मे अनेक ऐसे रोचक कथानक हैं जिन पर विदेशो मे प्रचुर मात्रा म वैज्ञानिक बाल उपन्यास लिखे गए है। हमारे यहा अधिकतर अन्तरिक्ष यात्रा सम्बन्धी उपन्यास ही लिखे गए। इस कल्पना के प्राचीन पड जाने पर इधर कुछ वर्षों में नए विषय चुन जाने लग हैं। जयप्रकाश भारती का 'बर्फ की गुडिया, ओमप्रकाश कृत 'चाद मे आग तथा हरिकृष्ण देवसरे का 'चन्दू चटपट' ऐसे ही उपन्यास हैं जिनम नए वैज्ञानिक विषय चुने गये हैं।

(६) जासूसी—बच्चों मे चतुराई तथा पैनी दृष्टि के गुण लाने के लिए ऐसे उपन्यास बहुत उपयोगी होते हैं। लेकिन इन उपन्यासों मे लेखक को बहुत सावधान रहना पडता है कि कोई ऐसी बात न लिख दी जाय कि उसका कुप्रभाव पडे। हाल ही मे 'पराग' मे प्रकाशित 'शेर का पजा' ऐसा ही उपन्यास है, जिसमे अवध अनुपम ने बडी कुशलता से बदमाशो के चगुल मे फसे एक बालक की कहानी प्रस्तुत की है।

साराश यह कि हिन्दी मे कुछ वर्ग के उपन्यासो को छोडकर प्राय सभी विषयो पर बाल उपन्यास लिखने की ओर प्रयास किया जा रहा है। यात्रा, शिकार तथा बच्चो की समस्याओं से सम्बन्धित उपन्यासो की बहुत कमी है। आज के युग मे यात्रा करना कोई कठिन काम नही है और इसलिए लेखक की कल्पना के लिए भी पर्याप्त आधारभूमि है। इसी तरह शिकार की कहानिया भी बहुत कम लिखी गई हैं। मनोवैज्ञानिक ढग के बाल समस्याओ का समाधान करने वाले उपन्यासो की प्रचुर मात्रा मे आवश्यकता है।

लेकिन यह सब तभी सभव है जब कि अभिभावक अपने साथ बच्चो के लिए भी उपन्यास खरीद कर उन्हे पढने क लिए देने की आदत डालें। जब बच्चों को रुचिकर उपन्यास पढने को मिलेंगे तो उनकी रुचि उपन्यास पढने की ओर स्वय नेव प्रवृत्त होगी।

(द) बालक नाटक

बच्चो मे अनुकरण और अभिनय की प्रवृत्ति बडो से अधिक होती है। वे अनुकरण की प्रवृत्ति द्वारा ही घर मे चलना, बोलना आदि सीखते हैं। बच्चो के अनेक खेल अनुकरण का ही परिणाम होते है। राम लीला देखने के बाद अनेक बच्चे राम-लक्ष्मण और रावण का अभिनय खेल खल मे करते देखे गये है। यह अनुकरण का ही परिणाम है। यह अनुकरण दो तरह का होता है—एक तो सहज और दूसरा विचारपूर्ण। सहज अनुकरण म व्यक्ति विशेष का अनुकरण स्वाभाविक होता है। बच्चों के खेलो मे इसे सहज ही देखा जा सकता है। बडे होने

पर बच्चे विचारपूर्ण अनुकरण करते है। वे किसी व्यक्ति को आदर्श मानकर उसके सब आचरणो और व्यवहारो का अनुकरण करते हैं।

बच्चे अनेक कार्यो को स्वय करके देखने के लिए जिज्ञासु होते है। ऐसी दशा मे प्रभावोत्पादक एव उत्तेजक घटनाओ का प्रभाव उन पर बडी गहराई से पडता है। अवसर देखा गया है कि बच्चे अपने पापा का हैट या टोपी लगा कर, हाथ मे बेंत या छडी लेकर मा के पास वैसी ही गभीरता के साथ पहुच जाते हैं और रौब जमाने लगते हैं। रेलगाडी देखकर दियासलाई की डिब्बियो के सहारे रेलगाडी बनाना और 'छुक-छुक' की आवाज मुह से निकाल कर उसे चलाना, उनकी अनुकरण प्रवृत्ति का परिचय देती है।

अनुकरण और अभिनय की प्रवृत्ति बच्चा मे उस समय से जागृत होने लगती है, जब से उनमे अपने आसपास की दुनिया को समझने की शक्ति आ जाती है। यह अवस्था चार साल की होती है। तब बच्चे अपने मन के भावो को अभिव्यक्त करने लगते हैं। आरभ मे यह अभिव्यक्ति अनुकरण का परिणाम होती है। धीरे-धीरे उसमे अभिनय का पुट भी आने लगता है। झूठमूठ ऊ ' ऊ ' करके रोना, बहाना बनाना, शेर की तरह हाऊ ' हाऊ'' करना, बिल्ली, कुत्ते और गाय की बोलियों की नकल करना—उनकी नाटकीय प्रवृत्ति के ही अकुर है।

बच्चो मे नाटकीयता का सचार करने वाले ये अकुर जब विकसित होते है, तब बच्चो के लिए अभिनय योग्य नाटको की आवश्यकता होती है।

(१) सैद्धान्तिक विवेचन

नाटक से मनोरजन के साथ साथ जीवन की सम्यक् अभिव्यक्ति सभव मानी गई है। भारतीय आचार्यो के मतानुसार नाटक—'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' तथा पाश्चात्य विचारको द्वारा 'रिप्रेजेंटेशन आफ मेन लाइफ इन एक्शन' माना गया है।[1] कुल मिलाकर नाटक कार्य रूप मे जीवन की अभिव्यक्ति और अनुकृति है।

बच्चा के नाटको के बारे म प० सीताराम चतुर्वेदी का मत है—"बच्चो के नाटको का मुख्य उद्देश्य, अवसर के अनुकूल आचरण सिखाना है। साथ ही नाटक मानव स्वभाव और मानव चरित्र का अध्ययन करना, भावा को व्यक्त करना, सम्यक् रीति से उच्चारण करना, बोलना और अभिनय करना भी सिखाते हैं।[2] किन्तु नाटका का उद्देश्य शिक्षा देना मात्र ही नही है। उनका प्रमुख गुण मनोरजन प्रदान करना है। बच्चा के नाटक ऐसे होने चाहिए जो उनकी कल्पना शक्ति को जागृत एव उत्तेजित कर सकें, उनके व्यक्तित्व का विकास कर सकें और साथ ही उनके अनुभव क्षेत्र का प्रसार करने मे समर्थ हो। आज विदेशो मे इसी आधार पर बाल-नाटका की रचना हो रही है। उन्हे सफलतापूर्वक मच पर प्रस्तुत भी किया

---

१ हिन्दी किशोर साहित्य · ज्योत्स्ना द्विवेदी, पृष्ठ १३०।

२ भाषा की शिक्षा, पृष्ठ १८३।

गया है और वे प्रभावशाली सिद्ध हुए है। पीटर स्लेड का मत है—"नाटक का अर्थ है क्रिया और सघर्ष। यह बहुत वडी क्रिया है। जहा कही भी जीवन है वहा यह कभी नही रुकती। इसका मानसिक स्वास्थ्य से आन्तरिक सम्बन्ध होता है। यह जीवन जीने की कला है। यह तभी कार्य करती है जब भावात्मक पक्ष, वास्तविकता के साथ अनुकूल रूप मे होता है।"[1]

बच्चो को अपने नाटको के लिए अपने अध्यापक या अभिभावक पर निर्भर करना पडता है। हिन्दी ही नही, अधिकाश भारतीय भाषाओ मे वाल नाटको का बहुत अभाव रहा है। जब कभी भी बच्चों को नाटक खेलने की आवश्यकता होती थी तो वडो के लिखे किसी नाटक को काट छाट कर वालोपयोगी बना दिया जाता था और उससे ही काम चलाया जाता था। किन्तु यदि देखा जाय तो उससे वाल रुचि सतुष्ट नही हो पाती। बाल रुचि के अनुकूल अभिनय नाटक का तो अलग ही स्वरूप होता है। किसी वडे नाटक को काट-छाट कर वालोपयोगी बनाना, समीचीन नही लगता और न ऐसे नाटक अपना उद्देश्य ही पूरा कर पाते हैं। वास्तव मे बाल-नाटको मे अभिनय का जो स्वतत्र रूप होता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस-लिए जब तक अनुकरण की प्रवृत्ति के आधार पर बाल-नाटक की रचना नही की जाती, वह बाल-रुचि के अनुकूल नही होगा। वास्तव मे आवश्यकता इस बात की होती है कि बाल-नाटक में सब कुछ ठीक वैसा ही हो, जैसा कि बच्चे अपने रोज के जीवन मे करते हैं। विशेष बात यह होगी कि जब उस साधारण-सी बात को नाट-कीय ढग से प्रस्तुत किया जाएगा तो बच्चे देखेंगे तो उसका उनके मन पर एक निश्चित प्रभाव पडगा। तभी वे बाल-नाटक बच्चो के लिए ऐसा अवसर उपस्थित करने मे समर्थ हो सकेंगे कि जिससे वे अपनी स्कूली शिक्षा के साथ-साथ अपने व्यक्तित्व का निर्माण करेंगे तथा अपनी अनुभूतियो की अभिव्यक्ति का सही मार्ग खोज सकेंगे।

इस सम्बन्ध मे डा० रामकुमार वर्मा का मत है—"वडो के नाटक किसी दूसरे दृष्टिकोण से लिखे गये होते हैं और उनको हम फिट करना चाहते है बाल मनो-विज्ञान के साचे मे। इस मे मैं समझता हू कि न तो बच्चो के मनोविज्ञान के अनु-रूप बात होती है और न नाटककार को ही सतोष हो सकता है।"[2]

अत यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि बाल-नाटकों का स्वरूप, वडो के नाटको से सर्वथा भिन्न होता है। बच्चो के नाटको का स्वरूप यो तो बडा ही सीधा-सादा है, पर सवाद, कथानक, वेशभूषा आदि मे इनकी अपनी सीमाए हैं। यह सीमाए ही इन्हे वडो के नाटकों से अलग करती हैं। बच्चे रोज ही खेल-खेल मे अनेक बातो को अभिनय ढग से प्रस्तुत करते है। इन्ही बातो को यदि सुसगठित कर 'नाटक' का रूप दे दिया जाय तो वे बहुत उपयोगी सिद्ध होंगी। किन्तु ये 'मच

1. Peter Slade—'*Child Drama*', Page 25
२ २७ अप्रेल को लेखक द्वारा लिए गए इण्टरव्यू से।

नाटक' नहीं बन पाएगी। ये ऐसे नाटक होंगे जिन्हे बच्चे खेल खेल मे घर पर प्रस्तुत कर सकेंगे। इनमे वेशभूषा, मच की तडक-भडक, अभिनय का बनावटीपन आदि भी नही होगा। रोज की सीधी-सादी बोलचाल की भाषा मे आपस के व्यावहारिक अभिनय के रूप मे ही इन्हे प्रस्तुत किया जा सकेगा। अपने से बडो या स्कूल के अध्यापको की मदद की भी इन नाटको के लिए आवश्यकता नही होगी। इन नाटको मे एक छोटी सी घटना होनी है जो अपने-आप मे किसी महत्त्वपूर्ण समस्या का हल भी होती है। छोटी आयु के बच्चो के मन पर ये नाटक बडे स्वस्थ सस्कार डालते हैं।

बाल-मच नाटक वे हैं, जिनमे हम नाटकीय तत्त्वो की झलक पा सकते है। किन्तु उन तत्त्वो को नाट्यशास्त्रीय तत्त्वो के अनुकूल पाना कठिन है। बाल-नाटको के प्रमुख तत्त्वो की सीमाए, बालरुचि और बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से पहले से ही बधी हुई है। ये ही तत्त्व बाल-नाटको के पृथक् स्वरूप का निर्माण करते हैं —

(१) कथानक (२) सवाद (३) पात्र योजना (४) भाषा-शैली। आगे इनका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत है —

१ कथानक—बाल नाटको के लिए कथानक चयन बडी ही कुशलता से करना चाहिए। यो कुछ लेखको का मत है कि दैनिक जीवन की यथार्थ बातो का नाटकीय प्रदर्शन बच्चो को रुचिकर प्रतीत नही होता, इसलिए उन्हे तो काल्पनिक और विचित्र परिस्थितियो वाली घटनाओ पर आधारित नाटक ही देने चाहिए। किन्तु यह मत बाल-मनोविज्ञान सम्मत नही है। वास्तव मे किसी रोचक कथा या ऐतिहासिक कथानक अथवा बाल समस्या पर लिखा गया नाटक बच्चो के लिए अधिक रुचिकर होता है।

बच्चो की अपनी अनेक समस्याए होती हैं। उन्हे नाटकीय रूप देकर किसी निश्चित हल का निर्देश प्रस्तुत करना, बच्चो के लिए बहुत उपयोगी होता है। ऐतिहासिक कथानको मे भी यही बात होती है। जिन ऐतिहासिक घटनाओ तथा पात्रो के बारे मे वह सुनते हैं, उन्हें प्रत्यक्ष देखने की उनमे तीव्र उत्कण्ठा होती है। वीर शिवाजी, महाराणा प्रताप, सुनहली परी, जादूगर आदि के बारे मे उनके मस्तिष्क मे अनेक कल्पनाए व चित्र उभरते हैं। जब वे उन्हे मच पर प्रस्तुत हुआ देखते है तो उनकी कल्पना को बल मिलता है। उसे साकार देखकर स्वय मे वैसे ही गुणों को उपस्थित करने की लालसा उनमे जागृत होती है।

बाल-नाटको का कथानक ऐसा होना चाहिए जो बच्चो की सरल बुद्धि पर अपना प्रभाव आसानी से डाल सके तथा उनकी बौद्धिक क्षुधा शान्त कर सके। उसका कलेवर भी इतना बडा न हो कि बच्चे ऊब जाए। वरना उन मे न तो उत्सुकता होगी, न धैर्य रह पाएगा और न उसका अभिनय ही उनके लिए सभव होगा।

बच्चो के नाटको मे कथानक चयन की समस्या पर डा० रामकुमार वर्मा का

मत है, "बच्चे कुतूहल प्रिय होते है। इसलिए वे बच्चे जो नई चीज देखते हैं उसमे उनकी रागात्मक प्रवृत्ति रमण करने लगती है। उदाहरण के लिए वे आकाश मे इन्द्रधनुप देखते है तो उछलने-कूदने लगते हैं, तितलियो को देखते हैं तो उनके पीछे दौडते फिरते हैं। आशय यह है कि जगत की जितनी आकर्षक, सुन्दर तथा कुतूहलपूर्ण परिस्थितिया हैं उनके पीछे वे दीवाने हो जाते है। इसका कारण यह है कि उनके मानस का बाह्य जगत् सबसे बडा अधिकारी है। जिस समय बच्चे कुछ ज्ञान सचय के लिए प्रवृत्त होते हैं उस समय जितनी रगीनी, जितनी विचित्रता, जितना कौतुक आप बाह्य जीवन मे उनके समक्ष प्रस्तुत कर सकेंगे, उतना ही अधिक उनके जीवन को प्रभावित कर सकेंगे। उतना ही अधिक वे अपने भविष्य जीवन के निर्माण के लिए सामग्री प्राप्त कर सकेंगे। और यह कार्य नाटको के माध्यम से सर्वाधिक प्रभावशाली ढग से किया जा सकता है

"मुझे स्मरण आता है कि टाल्स्टाय ने एक छोटा-सा नाट्य सग्रह लिखा है—'अभी तुम्हारी समझ में नही आएगा।' इसका अनुवाद भी हो चुका है। उसमे बाल-जीवन की जिज्ञासा को सतुष्ट करने वाली समस्त वैज्ञानिक और अनुसधानात्मक प्रवृत्तियों को एकत्र किया है जिनको देखकर बच्चो के मन में कुतूहल जागृत हो कि ये क्यो है, ऐसा क्यो है, ऐसी बात क्यों हुई। बडे-बडे इजन, बडी-बडी इडस्ट्रीज तथा मशीनो के निर्माण की बात उसमे कही गई है। बालक जानना चाहता है कि ये बात क्या है, इसमे किस प्रकार कार्य होता है, इससे जीवन मे किस प्रकार की सुविधा मिल सकती है ? उस समय अध्यापक हो, पिता हो या बडा भाई—कोई भी हो—एक पात्र धीरे-धीरे बच्चे के मन का प्रसन्न करते हुए उन समस्त यत्रो की प्रक्रिया समझा देता है। बालक सोचता है कि मैं इजन आज ही बना लू, मैं बढई का काम भी कर सकता हू, मैं दर्जी का काम कर सकता हू। क्या नही कर सकता ? इस तरह का आत्मविश्वास बच्चे के हृदय मे उत्पन्न हो जाता है ?"[1] तात्पर्य यह कि आज के बाल-नाटकों के कथानक ऐसे हों जो आज के जीवन की समस्याओ तथा समाधानो को प्रस्तुत करते हुए बच्चो के लिए उज्ज्वल भविष्य का मार्ग प्रशस्त करें। आज का जीवन केवल गाव, शहर या देश की सीमाओ मे बधा नही है। उसके लिए सम्पूर्ण विश्व का विशाल क्षेत्र है। यदि विश्व के जीवन से तारतम्य रखने की आज के तथा भविष्य के मानव मे क्षमता नही आती तो वह प्रगति नही कर सकेगा।

२. सवाद—बाल नाटको के कथानक का निर्वाह सवादो पर अधिक निर्भर करता है। उलझे हुए, लम्बे और अस्पष्ट सवाद वाले नाटक, बच्चो के लिए ग्राह्य नही होते। वे तो उन्ही नाटको ,को अधिक पसन्द करते है, जिनके सवाद छोटे, सरल और चुटीले हो। इससे बच्चो मे नाटक के प्रति आव-

---

१. २७ अप्रेल १९६७ को लेखक द्वारा लिए गए इण्टरव्यू से। 'मधुमती', भारतीय बालसाहित्य विवेचन [illegible]ेपाक।

पंण तो बढता है, साथ ही उनकी सरल बुद्धि उसे समझ भी जाती है। छोटे सवाद बाल-कलाकारो को बोलने और याद करने मे सहायक सिद्ध होते है। यदि बडे सवाद हुए तो उन्हे याद करना कठिन तो होता ही है, साथ ही उनको बोलते हुए अभिनय करना भी कठिन होता है। परिणाम यह होता है कि सवाद और अभिनय दोनो बिगड जाते हैं। प्रस्तुत उदाहरणा द्वारा यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी।

बडे सवाद

केशव . मास्टर साहब, आपने कल हमारे जिले का हाल बताते वक्त कहा था कि इस जिले की आबादी ढाई लाख है। यह आबादी कैसे मालूम हो जाती है।

मास्टर सा० : सरकार की ओर मे इसके लिए मर्दुमशुमारी का एक महकमा खोल दिया जाता है, आबादियो के हल्के बना दिये जाते हैं। हर हल्के के लिए अलग-अलग शुमार करने वाले रखे जाते है। कई-कई गाव पर एक अफसर होता है जो इन आदमियो की जाच करता है।[1]

सरल सवाद :

तुलाराम आपका मतलब ?

दूसरा श्रोता बडा साफ मतलब है, तुलाराम जी। आपकी तुला का एक न एक पलडा भारी रहता होगा ' तोलते समय।

तुलाराम (क्रुद्ध होकर) आप 'आप अपनी जवान सभालिए मैं क्या कोई लालची बन्दर हू।

पहला श्रोता आपसे यह किसने कहा। आप तो खामखाह गरम हो रहे है।[2]

अत यदि सवाद सरल और सक्षिप्त हुए तो बच्चों के लिए अधिक बोधगम्य सिद्ध होते हैं। सवादो का चटपटापन नाटक के प्रति रुचि पैदा करता है। बाल-नाटको मे प्रभावोत्पादक और प्रेरणात्मक सवाद उसकी सफलता की कसौटी हैं।

३ पात्र योजना—बाल नाटको मे पात्र योजना सक्षिप्त हो तो अच्छा है। कम पात्र होने से बच्चा को नाटक के सयोजन तथा प्रस्तुतीकरण मे सहायता मिलती है। अधिक पात्रों को मच पर प्रस्तुत करने से, कथानक के साथ उनके सभी के सम्बन्धो को याद रखना, सरल बुद्धि वाले बच्चा के लिए कठिन हो जाता है। पात्रों के सम्बन्ध मे नाटक के आरभ मे विस्तृत परिचय दे देने से उनका अभिनय, मच पर प्रस्तुतीकरण तथा सयोजन— निर्देशक के लिए सरल हो जाते है। पात्रों के परिचय के साथ उनकी पूरी वेशभूषा विस्तार से दे देनी चाहिए, जिससे उन्हे

---

१. 'मर्दुमशुमारी' से—हिन्दी किशोर साहित्य—ज्योत्स्ना द्विवेदी, पृ० १३३।
२ 'पराग' अक्टूबर १९६४ से—'यगवस क्लब' शीर्षक एकाकी से।

उसी रूप मे प्रस्तुत किया जा सके और वे नाटक का पूरा प्रभाव डाल सकें। उदाहरण के लिए एक नाटक का पात्र परिचय तथा वेशभूपा यहा प्रस्तुत है—

विपिन . एक सात-आठ वर्ष का बालक। यदि इससे भी कम उम्र का कोई बालक अभिनय करने म समर्थ हो, तो अच्छा है। सुन्दर और भोला मुख। बोलते समय बहुत भोलापन प्रकट होता है। हाफ पेण्ट और कमीज पहने है। बालो की शैली मुख को और भी भोला बना देती है। इसके लिए एक ओर के बाल आगे की ओर रखे जा सकते है।

रगीराम एक दुबला-पतला टिपीकल चाचा। जल्दी जल्दी बोल सकता हो। आश्चर्य का भाव मुख पर इस तरह प्रकट होता हो कि हसी आए। चुन्नटदार धोती और कुरता हो, बाल-बिखरे हुए से हा।

लाल परी, सब्ज परी, नीलम परी, जामनी परी . ये सब परिया दस-बारह वर्ष की सुन्दर बालिकाए हो। रगीन साटन की सलवारें और कमीजें पहने हो जिनम सफेद सलम सितारो से कढाई की गई हो। लाल, हरी, बैंगनी और नीली साटन की पोशाकें हो, सिरो पर छोटे-छोटे चमकीले मुकुट हो। पोशाको पर चमक लाने के लिए पन्नियां भी चिपकाई जा सकती है।

चार बालक आठ दस वर्ष की उम्र के वानर हो सकते है। चुस्त पाजामे और कुरते पहने हुए हो। कमर म कमरपट्टे हो और पख लगे हो या न लगे हो—जैसी सुविधा हो।

४ भाषा शैली—आपस की बोलचाल मे लिखे गये सवाद बच्चो के लिए अधिक सरल होते है। व उनका उच्चारण भी सरलता से और शुद्ध रूप मे कर लेते है। जहा गुजायश हो, लोक बोली के शब्द भी प्रयोग किये जा सकते हैं। बच्चो को हसाने गुदगुदाने के लिए कुछ शब्दो का बार-बार दुहराना या गलत ढग से बोलना भी बाल नाटको की भाषा मे स्वीकार हो सकता है। लेकिन ऐसा करने मे यह सावधानी रखनी होगी कि उसका हास्यास्पद रूप बच्चे समझ जाए। वर्ना इनका कुप्रभाव भी पड सकता है। पात्रो के अनुकूल भाषा का प्रयोग नाटक को अधिक प्रभावशाली बनाता है। मुहावरेदार, चटपटी भाषा बाल नाटको को प्रभावशाली बनाने मे सहायक होती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बाल नाटको का स्वरूप तथा उनके सिद्धान्त अपने-आप मे स्वतन्त्र हैं। उनका आधार विशुद्ध रूप से मनोवैज्ञानिक है। बच्चो के लिए सफल नाटको की रचना तथा उनका मूल्यांकन इन्ही सिद्धान्तो पर सभव है।

(२) हिन्दी बाल-नाटक परम्परा और विकास :

हिन्दी म बाल नाटको का आरम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ही माना जा सकता है जबकि उन्होने 'सत्य हरिश्चन्द्र' तथा 'अधेर नगरी चौपट राजा' नाटक की रचना की। 'सत्य हरिश्चन्द्र की रचना के सम्बन्ध मे हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि भारतेन्दु ने अपने मित्र बाबू बालेश्वरप्रसाद बी० ए० की प्रेरणा से विशुद्ध

रूप से यह नाटक बच्चो के लिए लिखा था। भारतेन्दु का 'अधेर नगरी' नाटक भी अपनी रोचक तथा गुदगुदाने वाली कथा तथा भाषा के कारण बच्चो ने खूब पसन्द किया था।

द्विवेदी युग मे, बाल-नाटकों की दिशा मे बहुत महत्वपूर्ण प्रगति हुई। इस प्रगति का श्रेय १९१७ मे नर्मदाप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित तथा मिश्र बन्धु प्रकाशन, जबलपुर से प्रकाशित बाल-नाट्य सग्रह 'सरल नाटकमाला' को है। बाबू श्यामसुन्दरदास ने लिखा था—"सरल नाटकमाला पुस्तक विद्यार्थियों के बडे काम की है।"[१] कलकत्ता के 'माडर्न रिव्यू' ने लिखा था—"पुस्तक मे ४४ सुन्दर नाटक हैं जो कि निस्सन्देह शिक्षाप्रद सिद्ध होगे। साथ ही इनसे पर्याप्त मनोरजन भी होगा। ये शैक्षणिक सस्थाओ के सामाजिक उत्सवो के लिए उपयुक्त हैं। ये करीब-करीब सभी गद्य में हैं और उनमे पद्य नही है। फिर भी यह कोई कमी नही है। कुछ नाटक बालको के लिए उपयोगी नही प्रतीत होगे, किन्तु कालेज के विद्यार्थियो के सामने उनका अभिनय करने मे कोई हानि नही है। भाषा और शैली बहुत सन्तोषजनक है।"[२]

चवालीस नाटको के इस सग्रह के पहले सस्करण की भूमिका मे सम्पादक श्री नर्मदाप्रसाद मिश्र ने लिखा था—"जब किसी स्कूल मे किसी उच्च पदाधिकारी का शुभागमन होता अथवा कोई शुभ अवसर उपस्थित होता है, तो एकत्रित जन-समुदाय के मनोविनोद के लिए कोई नाटक खेलने का प्रयत्न बहुत किया जाता है। इसके सिवाय शहर के स्कूलो में पूर्व तथा वर्तमान छात्रो के सम्मेलन भी प्रतिवर्ष हुआ करते हैं। इन अवसरो पर, दर्शको के मनोरजन के लिए, नाटक खेलना एक आवश्यक बात समझी जाती है—बिना नाटक खेले सारा मजा किरकिरा हो जाता है। नाटक खेलना कोई बुरी बात नही है। इतना ही नही, मेरी समझ मे, नाटकाभिनय इतना आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यार्थी को वह जानना ही चाहिए। क्योकि नाटक खेलने से हाव-भाव प्रकट करने की योग्यता होती, वृहत् जन-समुदाय के समक्ष अपने विचार स्वतत्रता से प्रकट करने का साहस होता तथा यदि

---

१ 'सरल नाटकमाला' के आवरण पृष्ठ से।

2 The book contains 44 very nice plays which would be found very instructive indeed and at the same time they afford much amusement They are just suited for social gatherings in educational institutions They are almost all in prose and there are no verses in them However, this is not a drawback Just a few of the dramas will not do for quite young students, but there is no objection to their being played by and before college students The language and style are quite satisfactory

—'सरल बाल-नाटक माला' के आवरण पृष्ठ से।

नाटक अच्छे लेखकों के लिखे गये होवें तो अभिनेताओं को अच्छी भाषा सीखने का अवसर प्राप्त होता है।

"यह सब तो ठीक है, परन्तु कठिनाई उपस्थित होती है नाटक चुनने मे। यद्यपि हिन्दी मे नाटको का अभाव नही है, तथापि अच्छे नाटको की सख्या बहुत थोडी ही है। जो अच्छे नाटक मिलते है उनमे से कोई-कोई बहुत बडे रहते है जिससे उनकी तैयारी मे बहुत समय लग जाता है। दूसरे, स्त्री पात्रो के आने से, लडके स्त्री का भाग लेने मे शरमाते है और जो किसी प्रकार विवश किये जाने पर, भाग लेते भी हैं, उन पर स्त्री के अनुरूप हाव-भाव आदि करते रहने के कारण, बहुत बुरा प्रभाव पडता है। तीसरे, अनुचित शृगार-रस आ जाने से उसे विद्यार्थियो के सम्मुख रखना उचित नही दीखता है। इन कठिनाइयो से बचने के लिए छात्रो या उनके शिक्षको को स्वय उपयुक्त नाटक लिखने का प्रयत्न करना पडता है एव शीघ्रता करने तथा यथेष्ट अभ्यास न रहने के कारण, कभी-कभी आशानुरूप सफलता नही मिलती है।

"मैं स्वय कई बार इस प्रकार की कठिनाई मे पड चुका हू, इसलिए कई वर्षो से मेरी इच्छा हो रही थी कि मैं कुछ ऐसे नाटक लिखू जो विद्यार्थियो के सामने बिना किसी सकोच के, खेले जा सकें—उनसे कुछ 'शिक्षा भी मिले और यथेष्ट मनोरजन भी होवे। इस इच्छा से प्रेरित होकर मैंने तीन नाटक लिखे है जो समय पाकर प्रकाशित होगे। तब तक छोटे-छोटे नाटको के सग्रह की आशिक पूर्ति का प्रयत्न ही प्रस्तुत पुस्तक की रचना का मूल कारण है।"[१]

सभी नाटको के चयन तथा सग्रह के लिए सम्पादक के मन मे कुछ उद्देश्य थे, जो इस प्रकार हैं—

१. अश्लीलता या अनुचित शृगार-रस न आवे।
२. स्त्री-पात्र न आवें।
३. परदो का विशेष उलझाव न रहे।
४. यथासभव शिक्षा मिले।[२]

इन उद्देश्यों के अनुसार सम्पादक ने ४४ नाटको का सग्रह करके एक महत्त्वपूर्ण काम किया। इन मे कुछ प्रकाशित थे तथा कुछ अप्रकाशित। पुस्तक के आरम्भ मे ही मच निर्देश भी दिए गए है—

१. किसी भी सवाद आदि का अभिनय करने से पहले, उचित कपडो, परदों आदि की व्यवस्था कर लेनी चाहिए। कपडो आदि के विषय मे अपने सुभीते के अनुसार व्यवस्था की जा सकती है। ध्यान केवल इस बात का रखना चाहिए कि जो वेशभूषा चुनी जाय वह पात्र के आचरण के अनुकूल हो, मौलवी को पडित और पडित को मौलवी न बनाना चाहिए।

---

१. सरल-नाटक-माला, सम्पादक : नर्मदाप्रसाद मिश्र, भूमिका, पृष्ठ ५, ६, ७।
२. वही, पृष्ठ ७।

२. किसी परदे को कहां रखना, किसको कब गिराना एव किसको कब उठाना, किस दृश्य मे कौन-कौन से पात्र रहें और किस प्रकार आवें-जावें आदि का निर्णय सवाद आदि को पढकर पहले ही कर लेना चाहिए।

३. इस सग्रह मे शिष्ट लोगों की भाषा का भी प्रयोग किया गया है ताकि समझने में सुविधा हो, पर आवश्यकतानुसार ग्रामीण या स्थानीय भाषा का प्रयोग करने से अभिनय की रोचकता और भी बढ़ जाती है। जैसा कि 'बकड्घोंघों' नामक प्रहसन से जाना जा सकता है।

४. हावभाव तथा स्वर के उतार-चढाव पर विशेष लक्ष्य रखना चाहिए। उत्तम वेशभूषा तथा परदों के रहने पर भी, ठीक स्वर के बिना, अभिनय निर्जीव-सा रहता है।[1]

इस प्रकार 'सरल-नाटक-माला' का यह सग्रह हिन्दी वालसाहित्य मे पहली बार बच्चो के लिए नाटक लेकर प्रस्तुत हुआ। यह वास्तव मे एक सेतु बन गया, जिसने द्वितीय महायुद्ध के पहले तक बाल-नाटको की कमी को पूरा किया। इसके लेखकों के नाम हैं—सर्व श्री द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र', शालग्राम द्विवेदी, रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे, बद्रीनाथ भट्ट, सुखराम चौबे गुणाकार, सैयद 'शकर हुसैन' शर्मा, गरीबदास अग्निहोत्री, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, राजाराम शुक्ल, रूपनारायण पाण्डेय, आत्माराम देवकर, बीरेश्वर बनर्जी, ब्रजलाल, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवन्नारायण भार्गव, रामचन्द्र सघी, माखनलाल चतुर्वेदी, मुरली मनोहर दीक्षित, लालनारायणसिंह, गणेशराम मिश्र, प्रियोनाथ बसक, रामलाल पहारा, कामताप्रसाद गुरु, शकर दामोदर पराजपे, अम्बिकाप्रसाद चतुर्वेदी। इन सभी ने बच्चों के लिए नाटक लिखने का प्रयास किया था।

'सरल-नाटक-माला' के नाटक सभी तो नही, किन्तु अधिकाश निश्चय ही बच्चो के अनुकूल लिखे गये थे। ये उस समय इतने लोकप्रिय हुए थे कि 'सरल नाटक-माला' का पहला सस्करण ५-६ वर्षों मे ही बिक गया था। लेकिन कई कारणों से शीघ्र ही दूसरा सस्करण प्रकाशित नही हो सका। तब कानपुर के 'प्रताप' के १३ फरवरी १६२६ के अक मे एक विज्ञापन छपा था, "कुछ समय पूर्व 'सरल-नाटक-माला' नाम की पुस्तक जबलपुर से प्रकाशित हुई थी। क्या वह अब किसी सज्जन के पास है ? यदि हा, और वे यदि उसे बेचना चाहे तो पाचगुना तक मूल्य मिल सकेगा। न बेचना चाहें तो १० दिन को पढने को भेज दें। उचित दक्षिणा लिखें।—क्षेत्रपाल शर्मा, सुख सचारक कम्पनी, मथुरा।[2]"

इस कारण प्रयत्न करके सन् १६३१ मे दूसरा सस्करण प्रकाशित हुआ। इसमें नाटकों की सख्या बढाकर ४४ से ५१ कर दी गई थी। यह सस्करण भी खूब बिका। उस समय इस पुस्तक द्वारा एक बहुत बडी कमी पूरी हुई थी। कारण

---

१. सरल-नाटक-माला, पृष्ठ ११, 'अभिनय करने वालो को सूचना' से।
२. दूसरे सस्करण की भूमिका मे ' सरल नाटक-माला, पृष्ठ ६।

नाटक अच्छे लेखकों के लिखे गये होवें तो अभिनेताओं को अच्छी भाषा सीखने का अवसर प्राप्त होता है।

"यह सब तो ठीक है, परन्तु कठिनाई उपस्थित होती है नाटक चुनने में। यद्यपि हिन्दी में नाटकों का अभाव नहीं है, तथापि अच्छे नाटकों की सख्या बहुत थोड़ी ही है। जो अच्छे नाटक मिलते हैं उनमें से कोई-कोई बहुत बड़े रहते हैं जिससे उनकी तैयारी में बहुत समय लग जाता है। दूसरे, स्त्री पात्रों के आने से, लड़के स्त्री का भाग लेने में शरमाते हैं और जो किसी प्रकार विवश किये जाने पर, भाग लेते भी हैं, उन पर स्त्री के अनुरूप हाव-भाव आदि करते रहने के कारण, बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। तीसरे, अनुचित शृंगार-रस आ जाने से उसे विद्यार्थियों के सम्मुख रखना उचित नहीं दीखता है। इन कठिनाइयों से बचने के लिए छात्रों या उनके शिक्षकों को स्वय उपयुक्त नाटक लिखने का प्रयत्न करना पड़ता है एव शीघ्रता करने तथा यथेष्ट अभ्यास न रहने के कारण, कभी-कभी आशानुरूप सफलता नहीं मिलती है।

"मैं स्वय कई बार इस प्रकार की कठिनाई में पड चुका हू, इसलिए कई वर्षों से मेरी इच्छा हो रही थी कि मैं कुछ ऐसे नाटक लिखू जो विद्यार्थियों के सामने बिना किसी सकोच के, खेले जा सकें—उनसे कुछ 'शिक्षा भी मिले और यथेष्ट मनोरजन भी होवे। इस इच्छा से प्रेरित होकर मैंने तीन नाटक लिखे हैं जो समय पाकर प्रकाशित होंगे। तब तक छोटे-छोटे नाटकों के सग्रह की आंशिक पूर्ति का प्रयत्न ही प्रस्तुत पुस्तक की रचना का मूल कारण है।"[1]

यह भी था कि तत्कालीन किसी नाटककार ने इस दिशा मे कोई योगदान नहीं दिया और यही वह पहली पुस्तक थी, जिसे विशेष रूप से बालको के लिए तैयार किया गया था।

किन्तु यदि पुस्तक के सभी नाटको को देखें तो कुछ ही ऐसे है जो शुद्ध रूप से बाल-नाटक तो हैं, किन्तु उनमे अनेक ऐसी बातें आ गई हैं जो अनुपयुक्त लगती हैं। सम्पादक महोदय ने एक उद्देश्य यह निश्चित किया था कि अश्लील या अनुचित शृगार-रस न आवे। लेकिन वह इसका निर्वाह नही कर सके। अनेक ऐसे स्थल हैं जो बच्चो के लिए सर्वथा अनुपयुक्त और उन पर कुप्रभाव डालनेवाले हैं। उदाहरण के लिए—

(१) शास्त्रार्थी सनातन धर्म किस चिडिया का नाम है। यह तो कोई नही जानता पर हा उसके नाम म एक लकीर पिट रही है जिसमे कि सडे-मुसडे बाबाजियो को यथाशक्ति दान देना पडता है, मन्दिरो म रडिया नचवानी पडती हैं खासकर मुसलमानिया—

('ढकोल शख और शास्त्रार्थी' लेखक बद्रीनाथ भट्ट, पृष्ठ ४३)

(२) नौजवान सुनिए। एक सुन्दरी लडकी ४-५ बरस की अवस्था मे ही अपने पडौसी एक खूबसूरत लडके पर आशिक हो गई। धीरे-धीरे लडकी जवान हुई, मगर उसके मा बाप ने उसकी मर्जी के खिलाफ दूसरे आदमी से शादी कर दी। वह लडकी अपने पति को फूटी आखो न देख सकती थी। लडकी जब ठीक सोलह बरस की हुई तब अचानक एक दिन वह लडका—जिस पर वह आशिक थी—राह मे खडा दिखा। देखते ही वह कटी मछली की तरह तडफने लगी।

('समालोचना रहस्य' लेखक रूपनारायण पाण्डेय, पृष्ठ १०२)

केवल ये दो उदाहरण ही यह स्पष्ट कर देते हैं कि इस नाट्य सग्रह मे नाटको का चयन करते समय वास्तविक उद्देश्य की ओर ध्यान नही दिया गया है। साथ ही नाटको के लेखको मे भी बाल रुचि, मनोवृत्ति तथा उन पर पडने वाले प्रभाव के सम्बन्ध मे जानकारी का अभाव था। ऐसा लगता था कि किसी भी माध्यम से केवल लडको को हसाने गुदगुदाने का ही उद्देश्य था। इसके लिए कही-कही पर बहुत खीचातानी की गई है और कुछ नाटको मे केवल निरर्थक हास्य है। उदाहरण के लिए—

गुरुजी अच्छा, कल हमने तुमको घोडे पर एक निबध लिखने के लिए कहा था, सो लिखा कि नही ?

सब लडके जी नही गुरुजी, हमने नही लिखा।

गुरुजी क्यो नही लिखा ?

नन्दू मेरे यहा घोडा ही नही है, फिर मैं किस पर निबध लिखू।

गुरुजी अरे गधे ! यदि तेरे पास घोडा न हुआ तो क्या हो गया ? क्या कभी तूने घोडा नही देखा है ? गधा कही का ! उसका वर्णन, रूप, रग, निवास

स्थान, उत्पत्ति स्थान, भक्ष्य इत्यादि लिखना था। इसके लिए घर में ही घोड़े की क्या आवश्यकता थी ? अच्छा, मैं तुम्हे अभी देखता हू।

क्यों रे रामू ! तू क्यो नही लिख पाया ?

रामू : गुरुजी महाराज! धन्य है आप को (दोनों हाथ जोड़ता है) आपकी इस मूर्खता पर मेरे पिता जी अत्यन्त ही क्रुद्ध हुए। उन्होने कहा कि आपने जो निबध दिया है, वह आपकी मूर्खता को प्रदर्शित करता है। इस निबंध के कारण कल मेरे हाथ-पैर दुरुस्त हो गए।

गुरुजी : (क्रोधित होकर) याने ?

रामू : याने क्या ? आपने घोड़े पर निबन्ध लिखने के लिए कहा था, इसीलिए मैं दवात, कलम और कापी लेकर अपने घोड़े पर किसी तरह बैठ गया। ज्यों ही मैंने एक लकीर लिखी कि न जाने हमारे घोड़े को क्या लहर आई कि उसने इकदम अपनी गर्दन जोर से हिला दी। बस, फिर क्या था, मैं नीचे हुआ और वह ऊपर। बाल-बाल बच गया नही तो जान पर ही आ बीती थी।

('पाठशाला का एक दृश्य' : रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे, पृष्ठ ८८)

इस उद्धरण से बच्चो को थोड़ी-बहुत हसी भले ही आ जाए, किन्तु यह अत्यन्त भोंडा हास्य माना जायेगा। गुरुजी और शिष्यों के बीच इस तरह की बातें आज के आधुनिक युग मे भी नही होती, तब की बात कौन माने ? क्या यही भारतीय सस्कृति और शिष्टाचार है ? इन नाटको का बच्चो पर कुप्रभाव क्या नही पड़ेगा ? क्या गुरु जी के मुख से बच्चों के सामने यह कहना कि घोड़े का उत्पत्ति स्थान देखा ही होगा, शिष्ट व्यवहार कहा जायेगा ? ये कुछ प्रश्न ऐसे है जिनके उत्तर 'सरल-नाटक-माला' के सम्पादक द्वारा निश्चित चौथे उद्देश्य का खडन करते है और उन्हे असफल घोषित करते हैं।

कई नाटको की भाषा बहुत कठिन है। केवल निम्न पंक्तियों से ही इस कथन की सत्यता प्रमाणित हो जाएगी—

चन्द्र : वाह ! इस रमणीय शरत्काल मे, इस सुन्दर ज्योत्स्ना के विस्तृत साम्राज्य में भी मनुष्यों को पशु के समान आहार की आवश्यकता है ?

('भाव और अभाव,' रा० र० सर्वटे, पृ० ३७)

इसी प्रकार अनेक स्थानों पर व्युत्पत्ति, ज्योतिर्विद्, जैसे शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।

कई स्थानो पर अनावश्यक हास्य उत्पन्न करने के असफल प्रयास मे कुछ विशेष वर्गों पर व्यंग्य भी प्रस्तुत किये गये है—"क्यो बे बनिया, चटनी की धनिया, तूने ऐसे चने क्यो बेचे कि जिसे खाने से नौआ मर गया।"

कुल मिलाकर, सरल-नाटक-माला ऐतिहासिक दृष्टि से ही बाल-नाट्य-साहित्य मे महत्त्व रखती है। इसके नाटक बच्चो के लिए होने पर भी उपयोगी स्वीकार नही किए जा सकते।

स्वातन्त्र्योत्तर-काल मे, इस दिशा मे कुछ और प्रगति हुई। मासिक पत्र-

पत्रिकाओ मे भी ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सामाजिक विषयो के नाटक निकलने लगे। कुछ नाटककारो जैसे डा० रामकुमार वर्मा उदयशंकर भट्ट आदि ने बच्चो के लिए मच के उपयुक्त नाटक लिखने का उल्लेखनीय कार्य किया। इससे बाल-साहित्य की इस विधा को बहुत बल मिला। 'प्रतिनिधि बाल एकांकी' का सम्पादन कर श्री योगेन्द्रकुमार लल्ला ने उल्लेखनीय कार्य किया। इसमे बच्चो के लिए विशेष रूप से नाटक लिखने वाले साहित्यिको का ही प्रतिनिधित्व प्रस्तुत किया गया। श्री आनन्दप्रकाश जैन, मगल सक्सेना, विमला लूथरा, वेद राही आदि कुछ प्रमुख बाल नाटककारो के नाम उल्लेखनीय है। २२ एकाकियो के इस सग्रह मे नन्हे-मुन्नो और किशोरो को सीख तथा मनोरजन प्रदान करने के साथ-साथ उनका सास्कृतिक विकास करने का भी उद्देश्य है। सभी एकाकी अभिनेय हैं और उन्हे अत्यन्त साधारण मच सज्जा द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। सभी एकाकियो के साथ रगमंच निर्देश, अभिनय तथा सवादो की अपनी विशेषता है। मगल सक्सेना का 'चन्दामामा की जय', विमला लूथरा का 'मोटे मिया', आनन्दप्रकाश जैन का 'जानमेटरी उलझमरा', तथा वेद राही का 'नीलम परी और उड़नखटोला' विशेष उल्लेखनीय हैं।

डा० महेन्द्र भटनागर की पुस्तक 'बच्चो के रूपक' मे चार बाल रूपक हैं। 'दो मित्र', 'इस हाथ ले उस हाथ दे', 'स्वार्थी दैत्य' और 'राम जीते, रावण हारा' इनके शीर्षक है। किन्तु ये मच-नाटक नही हैं—समय-समय पर आकाशवाणी से प्रसारित रेडियो नाटक है।

'वे सपनो के देश से लौट आए'—श्री भानु मेहता का हास्य प्रधान नाटक है। इसमे दो अक है। बच्चो के लिए यह सुन्दर नाटक है, क्योकि इसमे रगमच निर्देश आदि सभी बातें दी गई है। वास्तव मे बच्चो के लिए लिखे गए नाटको मे इन बातो का समावेश उपयोगी होता है।

सिद्धनाथकुमार की पुस्तक 'आओ नाटक खेलें' मे दो नाटक सगृहीत है। 'देश का कानून' पहला नाटक है। इसमे सुकरात के जीवन से सम्बन्धित कथा है। दूसरा नाटक 'एकलव्य' की पौराणिक कथा को लेकर लिखा गया है। दोनो नाटको के कथानक पौराणिक हैं तथा रगमच की दृष्टि से ठीक है। इन्ही की एक और पुस्तक है 'दो बाल एकाकी' जिसमे महाराणा प्रताप और वीर अभिमन्यु के कथानको को प्रस्तुत किया गया है। इन दोनो की भाषा ओजपूर्ण और बच्चो में साहस तथा वीरता का सचार करती है।

मिश्र बन्धु कार्यालय, जबलपुर से प्रकाशित 'नवीन बाल-नाटक-माला' (दो भाग) के लेखक है श्री नर्मदाप्रसाद खरे। दोनो भागो में सामाजिक, ऐतिहासिक तथा शिक्षाप्रद नाटक हैं। ये नाटक तीसरी और चौथी कक्षा की अतिरिक्त पुस्तक के रूप में लिखे गए है। इसलिए ये बाल-साहित्य के अन्तर्गत आते भी हैं और नही भी आते है। इस बीच की स्थिति को स्वीकार करते हुए जब हम सभी नाटको का मूल्याकन करते हैं तो उनमे से अधिकाश पठनीय अधिक और अभिनेय कम हैं।

कमलेश्वर की 'पैसों का पेड़' सुन्दर नाट्यवृत्ति है। इसमे वीरता, साहस, सचाई, ईमानदारी, एकता और मैत्री जैसे सद्गुणो पर आधारित छ एकाकी प्रस्तुत किए गए हैं। सभी एकाकी सरल भाषा में हैं और दिलचस्प भी। इन्हे मच पर भी प्रस्तुत किया जा सकता है। किन्तु पात्र-परिचय तथा मच-निर्देश का अभाव है।

'सवेरे के फूल' मे श्री व्यथित हृदय ने १७ एकाकियो के माध्यम से बच्चो मे सद्गुणो का समावेश करने का प्रयास किया है। साहस, ईमानदारी, कर्मठता, लगन आदि जैसे विषयो पर आधारित ये एकाकी बाल-पाठकों के लिए निस्सन्देह उपयोगी हैं।

अन्य उल्लेखनीय बाल-नाटक हैं—श्री कृष्ण का 'ईश्वर का मन्दिर', श्री रामेश्वर गुप्त द्वारा सम्पादित 'एकाकी नाटक', परितोष गार्गी कृत 'गार्गी के बाल-नाटक', सत गोकुलचन्द कृत 'बच्चों का मच', प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' कृत 'बालकों के चार नाटक' और विष्णुप्रभाकर का 'मा का बेटा'।

इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् बाल-नाटकों का भडार तो पूरी तरह नही भरा, लेकिन इतनी आशा अवश्य है कि यदि इसी तरह प्रगति होती रही तो शीघ्र ही हिन्दी बालसाहित्य की यह विधा समृद्ध हो जाएगी। इस अवधि मे जो प्रयास हुए वे इसलिए भी उल्लेखनीय हैं कि अधिकाश नाटककारो ने नये विषयो तथा समस्याओं को लेकर नाट्य-रचना की। बच्चो की समस्याओ से भी सम्बन्धित नाटक लिखे गए।

मासिक पत्रिकाओ मे 'पराग' ने बाल-नाटकों की प्रतियोगिता आयोजित करने के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से भी बाल-नाटकों का प्रकाशन किया। लेकिन रग-मच की व्यवस्था तथा नाटक के प्रस्तुतीकरण सम्बन्धी बातों का उल्लेख अभी बहुत कम नाटको मे होता है, इसलिए इस ओर ध्यान देना आवश्यक होगा। साथ ही अभी आवश्यकता पूर्ति के लिए अधिकाधिक मचीय बाल नाटको की रचना अपेक्षित है।

(३) बालनाटकों के भेद—विषय-वस्तु के आधार पर बाल-नाटको को मुख्यत. इन भागों मे बाटा जा सकता है—

१. राष्ट्रीय
२. धार्मिक
३. मनोरजक
४. ऐतिहासिक
५. समस्या प्रधान।

१. राष्ट्रीय एकाकी—राष्ट्रीय भावना का सचार करने वाले बाल-एकाकियों का महत्त्व सन् १९६२ मे हुए चीनी आक्रमण के समय से अधिक हुआ। इन नाटकों मे यह आवश्यक होता है कि नाटक का उद्देश्य प्रत्यक्ष होकर नाटक को प्रभावित न करने पाए। ऐसा होने पर नाटक की मनोरजकता समाप्त हो जाती

है और वह नीरस हो जाता है। 'राष्ट्रीय एकांकी' के सम्पादक श्री योगेन्द्र कुमार लल्ला ने इस तथ्य का विशेष रूप से ध्यान रखा है। इसमे आनन्द प्रकाश जैन, कणाद ऋषि भटनागर, कमलेश्वर, चिरजीत, देवराज 'दिनेश', मगल सक्सेना, राजेन्द्रकुमार शर्मा, विभा देवसरे, विष्णु प्रभाकर, सरस्वती कुमार 'दीपक' तथा श्रीकृष्ण के ग्यारह एकांकी सग्रहीत हैं। सभी एकांकी बहुत रोचक तथा अभिनेय हैं।

२ धार्मिक नाटक बच्चो मे भारतीय सस्कृति तथा धर्म के प्रति आस्था जगाने के उद्देश्य से लिखे गए नाटक आज के वातावरण मे अधिक प्रभावित नही कर पाते। लेकिन उनके महत्त्व को तो अस्वीकार नही किया जा सकता है। ऐसे नाटको मे उल्लेखनीय हैं—रघुवीरशरण मित्र का 'बालवीर कृष्ण', कृष्णदत्त भारद्वाज का 'प्रह्लाद', सिद्धनाथ कुमार कृत 'दो बाल एकांकी' (महाराणा प्रताप तथा वीर अभिमन्यु)। ये बाल नाटक केवल पठनीय होने के कारण अधिक महत्त्व के नहीं होते इसलिए लेखक भी इस दिशा मे कम ही लिखते है।

३ मनोरजक . बच्चो को हसाने-गुदगुदाने वाले नाटक बहुत अच्छे लगते है। हास्य प्रधान नाटको के अतिरिक्त जिन नाटको मे 'जोकर' या ऐसा ही कोई अन्य हसाने वाला पात्र होता है, उसके अभिनय मे बच्चो को बहुत आनद मिलता है। मनोरजक नाटको की श्रेणी मे कठपुतलियो के खेल भी आते है। पृष्ठभूमि से सूत्रधार के उभरते शब्द और मच पर कठपुतलियो का अभिनय, बच्चा का भरपूर मनोरजन करते है। हिन्दी मे मनोरजक नाटक काफी लिखे गए है—विमला लूथरा का 'मोटे मिया', दयाशकर मिश्र 'दद्दा' का 'नटखट नन्दू', भानु मेहता का 'वे सपनो के देश से लौट आये', स्वदेश कुमार का 'लाल गुलाब' विशेष उल्लेखनीय हैं।

४ ऐतिहासिक नाटक • बच्चो को ऐतिहासिक घटनाओं तथा पात्रो का प्रत्यक्ष दर्शन कराने का श्रेष्ठ माध्यम नाटक ही हैं। ऐतिहासिक चरित्र मच पर प्रस्तुत होकर बच्चो के मन पर स्वस्थ प्रभाव डालते हैं। साथ ही बच्चा के मन म निर्मित, उन ऐतिहासिक पात्रो के विषय की कल्पना भी आधार प्राप्त करती है। हिन्दी मे ऐतिहासिक नाटक बच्चो के लिए बहुत कम लिखे गए हैं। यदाकदा बच्चा के मासिक-पात्रो मे ही कुछ एकाकी प्रकाशित हाते रहते है, किन्तु उनसे बालसाहित्य की इस विधा की समृद्धि की आशा नही बनती।

५ समस्या-प्रधान नाटक • बच्चो की समस्याओ को लेकर लिखे गए नाटको की आज बहुत आवश्यकता है। लेकिन इस दिशा मे बहुत कम प्रगति हुई है। इस तरह के नाटक बच्चो पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते हैं। राजकमल जौहरी का 'जासूसी का शौक' (पराग, अक्टूबर १९६३), कुसुमलता भारद्वाज का 'यगवस क्लब' (पराग, अक्टूबर १९६४), ऐसे ही एकाकी हैं। इनमे बच्चो की समस्याओ को प्रमुखता दी गई है। लेकिन अभी इस दिशा मे बहुत प्रगति अपेक्षित है।

बच्चों को घर के कमरे में ही उपलब्ध हो सकें। टेबल, कुर्सी, चादर, टाइमपीस, कुछ मोटी किताबें, छड़ी, टोपी, हैट आदि ऐसी ही वस्तुएं हैं। इस प्रकार के मंच के लिए कमरे का फर्श ही उपयुक्त होगा।

दूसरे प्रकार का मंच, नाटक के कथानक के अनुरूप होगा। इसका नियोजन बच्चे, बड़ों की सहायता से करेंगे। इस रंगमंच का आकार कैसा हो, यह पहली समस्या है। यह बड़े रंगमंच जैसा तो नहीं ही होना चाहिए क्योंकि नन्हे शरीर वाले बच्चे इन पर बौने जैसे दीखेंगे। वे उस पर फिर कर थक जाएंगे। ऐसी दशा में यह ध्यान रखना होगा कि बच्चों की अभिनय क्षमता कितनी है और उसी के अनुरूप आकार निश्चित किया जाय। जहां तक हो सके बाल रंगमंच अत्यन्त सीधा सादा बनाया जाय। उसमें पर्दे प्रवेश द्वार, अन्य सामान आदि ऐसे हों जो कि आसानी से मिल जाय। साथ ही इसमें बच्चों को अभिनय में कठिनाई भी न होगी। बहुत से पर्दे, कई प्रवेश द्वार, मेज कुर्सियां आदि, बाल कलाकारों को भ्रम में डाल सकती हैं और वे अभिनय में गलती कर सकते हैं। इसलिए जहां तक हो सके रंगमंच का गठन ऐसा हो जिस पर बच्चे सरलता से अभिनय कर सकें। अगर नाटक का कथानक ऐतिहासिक है या किसी ऐसी घटना पर आधारित है, जिसके लिए विशेष वातावरण का प्रभाव देने वाले मंच का निर्माण करना आवश्यक ही हो तब तो बात ही और है। किन्तु इसमें यदि थोड़ी सूझ-बूझ से काम लिया जाय तो इसे भी सरल बनाया जा सकेगा।

वेश भूषा और पात्र सज्जा दूसरी समस्या है। साधारण वेश भूषा, जिससे बच्चे परिचित होते हैं—बाल कलाकारों के लिए अच्छी होती है। किन्तु ज्यादा तड़क भड़क वाली तथा अपरिचित वेश-भूषा से बाल कलाकारों को अभिनय में कठिनाई होती है। उसके कारण उनका ध्यान अभिनय की ओर कम तथा कपड़ों को सम्भालने में अधिक होगा। इस से अभिनय की स्वाभाविक गति पर भी प्रभाव पड़ सकता है। एक बार एक कलाकार को धोती पहना दी गई थी। वह न तो पहनना जानता था और न उसने कभी धोती पहनी ही थी। फल यह हुआ कि जब वह मंच पर आया तो उसे हर क्षण यही ध्यान रहा कि कहीं उसकी धोती खुल न जाय। इस कारण वह बार बार धोती सम्हालता था। बाल-दर्शकों ने पहले तो ध्यान नहीं दिया, लेकिन उसके बार-बार धोती पकड़ने पर वे हंसने लगे। आशय यह है कि ऐसी वेश भूषा जिससे बच्चे परिचित नहीं हैं, कभी-कभी नाटक का सारा प्रभाव समाप्त कर देती है। ऐतिहासिक नाटकों में तो यह वेश-भूषा कुछ निश्चित प्रकार की ही होगी, लेकिन उसे भी इस तरह से नियोजित करें कि कलाकार पर उसका भार न पड़े तथा पहले से ही रिहर्सल के दौरान उसे पहनाकर अभ्यस्त बना दें। वैसे कागज की बनी ढाल, तलवार, मुकुट, कवच आदि ऐसी वस्तुएं हैं जिन्हें बच्चे स्वयं बना सकते हैं। इसमें बच्चों को हस्तकला की शिक्षा भी मिलती।

बच्चों की साज-सज्जा अर्थात् मेकअप तीसरी समस्या है। यह भी कभी-कभी

नाटक का सारा रंग फीका कर देती है। ऐसी प्रसाधन-वस्तुए, जो बच्चो के कोमल शरीर को कष्टदायक प्रतीत हो, कभी न इस्तेमाल मे लानी चाहिए। आजकल बहुत-सा मेकअप का सामान ऐसा उपलब्ध है जो बच्चों की कोमल त्वचा को हानि भी नही पहुचाता और वे सुन्दर भी लगते हैं।

मच-निर्देश का बाल नाटकों मे बहुत महत्त्व होता है। बाल-नाटकों मे सरलता से अभिनय करने की प्रेरणा मच-निर्देशन से ही मिल सकती है। इससे बच्चो को नाटक के लिए आवश्यक सामान जुटाने तथा अभिनय करने में आसानी होती है। यदि सभव हो सके तो नाटक के सभी दृश्यो के पात्रो की, मच मे स्थिति बताने वाला एक नक्शा भी दे दिया जाय। इससे कही भी नाटक मे रुकावट नही आएगी। नाटका के साथ दिए गए मच-निर्देश का एक उदाहरण यहा प्रस्तुत है।

मंच व्यवस्था और प्रकाश[1]

"मच पर असली झाड लाकर रखे जा सकते हैं और पेड़ का सैट बनवाया जा सकता है या फिर कागज के फूलों से ही झाड बनाए जाए। बीच-बीच मे छोटे-छोटे बल्ब छिपे हुए हो, जो परीलोक का दृश्य उपस्थित होने पर जल उठें।

लाल, हरे, नीले, बैंगनी—इन चारो रगो के फ्लड-लैम्प्स मच के दोनो किनारो पर रखे जाएं। फ्लड लैम्प्स उपलब्ध न होने पर गत्ते के चार डिब्बे बनाए जा सकते है, जिनके आगे का भाग खुला हो और उनमे पाच सौ पावर के बल्ब लगे हो। बल्बों के पीछे शीशे लगाए जा सकते है जिनसे प्रकाश दुगुना आए।

परी लोक का दृश्य उपस्थित होने पर पूर्ण अधकार छा जाए। इसके लिए मच के साथ-साथ दर्शक गैलरी का प्रकाश भी बुझ जाना चाहिए। अच्छे कीमती फ्लड-लैम्प्स प्रकाश को धीरे-धीरे कम और ज्यादा कर सकते है। वे न हो तो गत्ते के डिब्बे के आगे कई-कई रगीन पतले कागज हों और प्रकाश फेंकने वाला व्यक्ति एक-एक कागज हटाते रहे।

पूर्ण अन्धकार मे परिया आकाश मे उडती नजर आए, इसके लिए विशेष प्रकार से परवाली गुडिया बनानी होगी। उनके भीतर सेल्स के छोटे-छोटे बल्ब लगाए जा सकते है या बिजली के छोटे लट्टू, जिनको डोरियो से ही मच के ऊपर से उन्हे आकाश मे तथा पेड के चारो ओर घुमाया जाए। यह दृश्य निर्देशक की सूझ-बूझ पर अधिक निर्भर करता है। किन्तु परी-लोक का दृश्य उपस्थित करने मे इससे विशेष सहायता मिलती है।

आदमकद रसगुल्ला तीरगरो को विशेष रूप से आर्डर देकर, खपच्चियों के ऊपर कागज मढवा कर बनवाया जा सकता है। इसके ऊपर भी चूने की पुताई करके उसे बिलकुल रसगुल्ले की शक्ल दे देनी चाहिए। इसका लाने मे जोर लगाने

---

१. 'परियों के देश में'—आनन्द प्रकाश जैन के नाटक मे दिया गया मच-निर्देश : 'पराग', अगस्त १९६१, पृष्ठ ४३।

का अभिनय करने से ही उसका भारीपन प्रकट होगा। दोबारा अन्धकार होने पर परियों तथा रसगुल्ले को चटपट मच पर से हटा देना चाहिए।"

इस प्रकार बाल रगमच का स्वतन्त्र निर्माण, सही अर्थों मे बच्चो को अभिनय की प्रेरणा दे सकेगा और उनमे नाटक के प्रति रुचि जाग्रत होगी।

आजकल बच्चो के लिए कठपुतली मच भी काफी रुचिकर और सफल सिद्ध हुआ है। कठपुतली कला हमारे देश की प्राचीन कला है। विदेशो मे तो अब इसे नये-नये प्रयोगो द्वारा अपनाया जा रहा है। वहा इसे बच्चो के मनोरजन के अलावा शिक्षा का भी एक तरीका मानकर कई सफल प्रयोग किए गए है। अनेक देशो मे कठपुतली थियेटर बच्चो मे काफी लोकप्रिय है। हमारे यहा इस ओर भी बहुत कम ध्यान दिया गया है। वह वास्तव म लोककला के रूप मे विभिन्न स्तरो पर चल रहा है। बच्चों की दुनिया से उसे बिलकुल अलग रखा गया है। जबकि विदेशो मे बाल-कठपुतली-मच की कल्पना अपना अलग ही महत्त्व तथा विशेषताए रखती है। वहा इस तरह की निजी और सरकारी—दोनो तरह की सस्थाए हैं। इन कठपुतली थियेटरो से एक लाभ यह भी है कि बच्चो के लिए जो कथानक—जैसे कुत्ता, बिल्ली या चूहे से सम्बन्धित है—मच पर आसानी से प्रस्तुत नही किए जा सकते हैं। उन्हे कठपुतलियो के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है विदेशो मे कठपुतली का खेल प्रस्तुत करने की कई नई तकनीकें अपनाई गई है। कुछ लोग डोरों की बजाय कठपुतलियो मे लकडी लगाकर उन्हे हाथ से चलाते हैं। विदेशा मे कठपुतली कला बच्चो के बीच दिन पर दिन लोकप्रिय होती जा रही है।

इस प्रकार बच्चो के लिए आज हमारे देश मे रगमच की कोई व्यवस्था नही है। यदि इस दिशा म गम्भीरतापूर्वक काम किया जाय तो बाल-नाटकों की दिशा मे बहुत प्रगति हो सकती है। इस बात की भी आवश्यकता बहुत है कि हर नाटक के साथ लेखक मच-व्यवस्था की एक विस्तृत टिप्पणी दे। इससे भी बच्चो को नाटक-मच पर प्रस्तुत करने मे सुविधा होगी तथा इन्ही प्रयासो से बाल-रगमच का स्वतन्त्र अस्तित्व निर्मित होगा।

(५) विदेशी बाल-रगमच का स्वरूप तथा विकास :

विदेशो मे बाल रगमच का निर्माण बहुत पुरानी बात नहीं है। वहा पहले जो थियेटर बडो के लिए थे, उन्ही मे बच्चे भी अपना मनोरजन किया करते थे। बच्चों के लिए अलग रगमच या थियेटर नही थे।

सन् १९४८ मे जब अन्तर्राष्ट्रीय थियेटर सस्थान की स्थापना हुई तब बच्चे मे अभिनय की सहज प्रवृत्ति के कारण उनके लिए पृथक् थियेटर की आवश्यकता अनुभव की गई। इस सस्थान की बैठक म यह निर्णय किया गया कि बच्चों के लिए भी ऐसे थियेटर स्थापित होने चाहिए जिनमे उनकी रुचि के कथानक बाल कलाकारो द्वारा, बाल दर्शको के लिए प्रस्तुत किए जाए। इस सम्बन्ध मे पूरी योजना तैयार हो जाने पर उसे अन्तर्राष्ट्रीय थियेटर सस्थान की सन् १९५६ मे

हैलस्की में हुई बैठक में प्रस्तुत किया गया। इसका सहर्ष स्वागत किया गया और इसे इस सुझाव के साथ स्वीकार कर लिया गया कि बाल-नाट्यशालाओं में दर्शक बच्चे ही होंगे। चाहे उसके कलाकार बड़े हों या बच्चे या कठपुतलियां। इस तरह के थियेटर स्थापित करने का उद्देश्य यह था कि उनसे बच्चों का मनोरंजन होगा ही, साथ-साथ उनकी कल्पना शक्ति का विकास भी होगा। वे अपने व्यक्तित्व का सुन्दरतम् ढंग में निर्माण कर सकेंगे और उनके अनुभव का क्षेत्र भी बढ़ सकेगा।

इसके बाद बच्चों के थियेटर की अन्य समस्याएं भी सामने आईं। बाल-थियेटर में वस्त्र, साज-सज्जा, प्रकाश आदि के सम्बन्ध में कई महत्त्वपूर्ण निर्णय किए गए। मुख्य समस्या थी बाल नाटकों की प्राप्ति की, जिसे दूर करने के लिए अलग से प्रयत्न करने का निर्णय किया गया। इस बैठक के बाद इंगलैंड में ब्रिटिश चिल्ड्रन्स थियेटर एसोसियेशन की स्थापना हुई। सबसे पहले इस संस्था ने बाल-थियेटरों की एक सूची बनाई, फिर एक सूची उन नाटकों की तैयार कराई जिन्हें बच्चों के समक्ष सरलता से प्रस्तुत किया जा सके। विश्व का पहला बाल-थियेटर लन्दन में ही स्थापित हुआ था।

बाल थियेटरों को स्थापित करने तथा उन्हें विकसित करने में विश्व के जिन देशों ने रुचि प्रदर्शित की उनके नाम हैं—संयुक्त राज्य अमरीका, हालैंड, पश्चिमी जर्मनी, कनाडा, फ्रांस, चैकोस्लोवाकिया और पोलैंड। इन सभी देशों में बाल-थियेटर की स्थापना की पृष्ठ भूमि में अलग-अलग विचारधाराएं रही हैं। कुछ देशों का उद्देश्य, इनके द्वारा बच्चों का चारित्रिक उत्थान करना है, कुछ इन्हें शिक्षा देने का एक अच्छा माध्यम मानते हैं और कुछ मात्र मनोरंजन का साधन। लेकिन बाल थियेटरों का महत्त्व सभी ने स्वीकार किया है और वहां इनकी काफी प्रगति हो रही है।

इंगलैंड में बाल थियेटर काफी दिनों से थे, किन्तु ब्रिटिश चिल्ड्रन्स थियेटर एसोसियेशन की स्थापना के पूर्व वे सब बिखरे हुए तथा अनियन्त्रित थे। इस कारण वे विशेष उन्नति नहीं कर पाए। सन् १९५९ के बाद वे सब संगठित किए गए और उनका एक निश्चित उद्देश्य तय किया गया। बहुत से थियेटर आरंभिक अवस्था में थे और कुछ थियेटर व्यावसायिक उद्देश्य की पूर्ति पर लिए थे। किसी में बड़े अभिनय करते थे और किसी में बच्चे। इनका दर्शक कोई भी हो सकता था। इनमें खेले जाने वाले नाटक या तो शिक्षाप्रद होते थे या मनोरंजक। किन्तु जब से एसोसियेशन का गठन हुआ, हालैंड के बाल थियेटरों में बहुत परिवर्तन आ गए हैं। एसोसियेशन उनकी कठिनाइयों पर विचार करती है और उन्हें दूर करने के प्रयत्न करती है।

अमरीका में बच्चे थियेटर में बैठकर नाटक देखना अधिक पसन्द करते हैं। थियेटर में बैठकर बच्चे यह अनुभव करते हैं कि जो कुछ मंच पर घट रहा है वह बिलकुल सच है। इस तरह उनकी कल्पना-शक्ति को विकसित होने का अवसर

मिलता है। थियेटर मे नाटक देखते समय वे यह नही सोचते कि जो कुछ हम देख रहे है वह किन्ही मशीनो की करामात का परिणाम है। अमरीका मे भी व्यापारिक तथा आरभिक अवस्था मे कार्य करने वाले थियेटर हैं। इनमे कुछ तो बच्चो के लिए लिखे गए मौलिक नाटक प्रस्तुत करते है और कुछ प्रसिद्ध बाल-कथाओ का नाट्य रूपान्तर तैयार करके दिखाते है। इन सभी थियेटरो के निर्देशक काफी परिश्रम के बाद नाटक तैयार करते है। इन दिनो अमरीका मे बाल थियेटरो का उन्नतिशील होना 'चिल्ड्रन थियेटर कान्फ्रेंस' की स्थापना का परिणाम है। पिछले १७ वर्षों मे इसके प्रयत्न से अमरीका के बाल थियेटरो मे अभूतपूर्व प्रगति हुई है। अमरीका मे बाल-थियेटरो का उद्देश्य अपने दर्शकों की कल्पना-शक्ति का विकास करना है।

हालैण्ड मे स्केपिनो बाल-थियेटरो का बहुत चलन है। इटली की एक हास्य-कथा के नायक का नाम है स्केपिनो। वह बच्चो को हर पात्र के बारे मे बताता है, उनकी हसी उडाता है और नाम स्केपिनो पड गया है। स्केपिनो बाल थियेटर पिछले १६ वर्षों से हालैण्ड के बच्चो का मनोरजन कर रहा है। अपने अनूठे नृत्य नाट्यो के कारण यह बच्चो की सर्वाधिक लोकप्रिय सस्था है। यह प्रति वर्ष लगभग एक लाख बच्चो का मनोरजन करती है। स्केपिनो द्वारा जो नृत्य-नाट्य प्रस्तुत किए जाते है वे मनोरजक तो होते ही है, साथ ही उनसे बच्चो को शिक्षा भी मिलती है। इनके कथानक जल्दी समझ मे आने वाले तथा बाल-रुचि के अनुकूल होते है। स्केपिनो के नृत्य नाटको के कथानक परी-कथाओ, लोक-कथाओ और प्रचलित पारम्परिक कहानियो पर आधारित होते है। स्केपिनो को अनेक उच्च कलाकारो तथा चित्रकारो और कथा लेखको का सहयोग प्राप्त है। वर्ष मे घूम-फिरकर यह सस्था लगभग १६० शो करती है और अनेक शहरो के बच्चे इसे देखते है।

पोलैण्ड मे कठपुतली-थियेटरो का बहुत प्रचार है। केवल राज्य-सरकार द्वारा सचालित कठपुतली थियेटरो की सख्या २३ है। ये प्रतिवर्ष लगभग दो करोड बच्चो का मनोरजन करते है। पोलैण्ड के इन बाल-थियेटरो मे प्रदर्शित कठपुतलिया प्लास्टिक की बनी होती हैं। कठपुतलियो का पुराना और पारम्परिक रूप यहा समाप्त हो चुका है और इनके खेल प्रस्तुत करने मे आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणो का प्रयोग पूरी स्वतन्त्रता से किया जाता है। इन थियेटरो की विशेषता यह है कि ये आधुनिक कठपुतली कला और आधुनिक चित्रकला के माध्यम से अनेक लोक-कथाओ को बिलकुल सजीव ढग से मच पर प्रस्तुत करते हैं। इनके मच उतने ही बडे होते हैं जितने अन्य थियेटरो के। पोलैण्ड मे कठपुतली-थियेटरो मे बच्चे विशेष रुचि लेते है। छोटी-छोटी मनोरजक कहानियो को बिलकुल सजीव ढग से मच पर देखने मे उन्हे बहुत आनन्द आता है। इन थियेटरो द्वारा प्रस्तुत कथानक बच्चो को विकास की दिशा मे ले जाने वाले होते हैं। इनसे बच्चो को बहुत-सी शिक्षाप्रद बातें भी जानने को मिलती है। फिर भी इनका प्रधान उद्देश्य

मनोरंजन ही होता है।

चैकोस्लोवाकिया की बाल-अभिनय कला बहुत उन्नतिशील है। वहां के थियेटर भी उन्नतिशील हैं। वहां के बच्चों के लिए एक नेशनल थियेटर है। इसके अतिरिक्त कई अन्य निजी बाल-थियेटर भी हैं। चैकोस्लोवाकिया के थियेटरों में विभिन्न लोक-कथाओं और परी-कथाओं तथा अन्य कथानकों वाले नाटकों को प्रस्तुत किया जाता है। इन्हें मधुर संगीत साज सज्जा और सुन्दर गीतों से सजाया जाता है। इस तरह थियेटर में अभिनय करने वाले पात्र के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसमें अभिनय के साथ-साथ गाने नृत्य करने तथा बच्चों का मन लुभाने का भी गुण हो। इसका फल यह होता है कि नाट्यशालाओं में दर्शक बच्चे जीवन में होने वाली रोज जैसी घटनाओं का अनुभव करने लगते हैं।

फ्रान्स में बाल-थियेटरों की आवश्यकता तो बीसवीं सदी के आरम्भ में ही अनुभव कर ली गई थी, किन्तु जब इनकी स्थापना का प्रश्न उठा तब लोगों में मतभेद हो गया। कुछ लोगों ने कहा कि थियेटर केवल बच्चों के लिए हों और कुछ लोगों का मत यह था कि उन्हें बच्चे ही चलाएं। यह विवाद चलता रहा। इसी बीच प्रथम महायुद्ध तथा उसके बाद दूसरा महायुद्ध होने के कारण इस दिशा में कोई प्रगति नहीं हो सकी। अन्त में सन १९३७ में बाल-थियेटर की स्थापना हेतु एक समिति गठित की गई। किन्तु इसका भी कोई ठोस परिणाम न निकला।

सन् १९५२ में यूनेस्को की अन्तर्राष्ट्रीय नाट्यशाला परिषद की बैठक जब पेरिस में हुई तब वहां संसार-भर से आए बाल-थियेटर विशेषज्ञों ने गम्भीरता-पूर्वक विचार कर कई महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए। इस बैठक में व्यावसायिक बाल-थियेटरों की निन्दा की गई और यह कहा गया कि ये तभी चल सकते हैं जब इनके अभिनेता बड़े हों तथा ये बहुत ही उच्चकोटि के नाटक प्रस्तुत करें। इसके बाद कई स्कूलों में बाल-थियेटरों की स्थापना हुई। किन्तु फ्रान्स में अभी तक राष्ट्रीय स्तर पर कोई बाल-थियेटर स्थापित नहीं हो सका।

इस समस्त विवेचन से स्पष्ट है कि विदेशों में बच्चों के लिए थियेटर तथा रंगमंच की स्थापना का इतिहास बहुत पुराना न होते हुए भी, वहां कम समय में बहुत प्रगति हुई है। इन सभी के पीछे बच्चों की रुचि तथा उनके मनोरंजन की भावना विद्यमान है और यही कारण है कि वे दिनोदिन सफलता तथा उन्नति प्राप्त कर रहे हैं।[1]

(इ) बाल-जीवनी-साहित्य

बच्चों को अनेक ऐतिहासिक, सामाजिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक तथा राज-नीतिक विभूतियों से परिचित कराने तथा उनके जीवदर्शों को ग्रहण करने के

---

१. इस अंश को लिखने में चिल्ड्रन्स लिटिल थियेटर कलकत्ता की पत्रिका 'रिद्म एण्ड राइम्स' के दसवें वर्षांक की सामग्री से बहुत सहायता मिली है।

कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, कैसे उसने प्रयोग किए, सफलता मिलने पर उसने क्या अनुभव किया, आदि अनेक बातो का समावेश उसमे आवश्यक है। ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो जीवनी पढ़ते समय बाल-पाठक के मन को आन्दोलित करते हैं। वह सोचता है कि मैं ऐसा क्यों नही कर सकता, अवश्य कर सकूगा एवं कर सकता हू ? फिर वह तुरन्त उन बातो को जानना चाहता है, जिनकी सहायता से वह वैज्ञानिक सफल हुआ है।

इसी तरह साहित्यिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक महापुरुषों के सम्बन्ध मे पढ़ते समय भी बच्चो के मन मे कुछ स्वाभाविक प्रश्न उठते हैं। यहा यह तथ्य स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी जीवनी पढते समय बच्चे उसकी तुलना मे अपने आपको रखते हैं और अपने मन को टटोलकर देखते जाते हैं कि क्या वे भी ऐसा करने मे समर्थ हो सकते है ? जहा उन्हे यह महसूस होता है कि वे नही कर सकते, वही से उनकी प्रेरणा बलवती हो उठती है और वे 'काश ! कि मैं भी ऐसा ही कर सकता' से प्रभावित होकर अनेक कठिनाइयो से जूझने तथा गुत्थियों को सुलझाने के लिए अग्रसर हो उठते हैं।

इस प्रकार जीवनिया बच्चो के भावो को जहा उत्तेजित करती है वही उनमें क्रियात्मकता का भी संचार करती हैं और फिर उनका पथ-प्रदर्शक बनकर उन्हे आलोक देती हैं। लगभग सभी भाषाओ मे बच्चो के लिए जीवनियो का यही महत्त्व स्वीकार किया गया है।

लिए प्रेरणा देने के उद्देश्य से बाल-जीवनिया महत्त्वपूर्ण मानी गई हैं। बडो के जीवन तथा कार्यों एव उपदेशो से अनेक महापुरुषो ने अपने को महान् बनाया और इसीलिए इन जीवनियो का प्रभाव सत्य के अधिक निकट तथा चिरस्थायी माना गया है। बाल-जीवनियों को पढते समय बच्चो के मन मे यह सत्य विद्यमान होता है कि वे जो कुछ, जिसके बारे मे पढ रहे हैं, वैसा सचमुच ही हुआ है। इसलिए सारी घटनाओ, विशेषताओ तथा गुणो के प्रति उनके मन मे एक सहज जिज्ञासा तथा विश्वास होता है।

(१) सैद्धान्तिक विवेचन :

बाल-जीवनी लिखते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वह वर्णनात्मक इतिहास न बनकर, उस पात्र विशेष के जीवन की घटनाओ तथा कार्यों का एक कथा चित्र बन जाय। बाल जीवनी बच्चो के लिए एक वास्तविक व्यक्ति की कहानी होती है। इसलिए उसमे बच्चों की पठन रुचि को बनाए रखने की क्षमता होना आवश्यक है। सारी घटनाए तथा कार्य इस ढग से प्रस्तुत किए जाए कि वे सब मिलकर सत्य जीवन घटनाए होते हुए भी कहानी का आनन्द दें। अनेक ऐसे महापुरुष होते है जिनकी जीवन-कथा बच्चो के लिए कोई महत्त्व नही रखती। इसलिए जीवनी लिखने के पूर्व ऐसे महापुरुषो का चुनाव कर लेना चाहिए, जिनकी कथा सही अर्थो मे बच्चो को प्रभावित तथा प्रेरित करेगी। जीवनियों के बारे मे बच्चो के मन मे एक सहज जिज्ञासा यह होती है कि उस व्यक्ति विशेष मे कौन से गुण थे, उसने क्या ऐसा किया जिससे कि वह इतना महान् बना। इसलिए इन बातो का समावेश अवश्य ही पुस्तक मे करना चाहिए। कारण यह है कि बच्चे अपनी कल्पनाशक्ति तथा अपनी सीमाओ के भीतर रहकर उन गुणो को आत्मसात् कर, वैसे ही कार्य करने की ओर प्रवृत्त होते हैं। किन्तु यदि वे उस मे सफल न हुए तो उनके मन म उस जीवन-चरित्र के प्रति कोई आस्था नही रहती। इसी एक मुख्य गुण का निर्वाह करने मे अनेक बाल-जीवनी लेखक असफल हो जाते हैं। अनेक ऐसे महापुरुष होते है जिनका बचपन इतना प्रभावशाली, रोचक तथा वैचित्र्यपूर्ण होता है कि बच्चे उससे ही प्रभावित होकर उस महापुरुष के समान बनने का सपना देखने लगते हैं। इसलिए किसी भी महापुरुष की जीवनी लिखते समय उसके बचपन की जितनी सामग्री मिल सके, रोचक से रोचक रूप मे प्रस्तुत करनी चाहिए। वास्तव मे बाल-जीवनी की सफलता इसी मे होती है कि वह सत्य घटनाओ को कितने रोचक ढग से प्रस्तुत कर पाती है।

अलग-अलग क्षेत्रो के महापुरुषो की जीवनिया लिखने मे कुछ अलग नियमो को भी ध्यान मे रखना आवश्यक है। एक वैज्ञानिक की जीवन कथा लिखते समय यह आवश्यक है कि बचपन से ही उसमे वह सूत्र पकडकर बाल-पाठक को दे दिया जाय जिसके कारण वह इतना बडा वैज्ञानिक बना। वैज्ञानिक बनने मे उसे किन

कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, कैसे उसने प्रयोग किए, सफलता मिलने पर उसने क्या अनुभव किया, आदि अनेक बातों का समावेश उसमें आवश्यक है। ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो जीवनी पढ़ते समय बाल-पाठक के मन को आन्दोलित करते हैं। वह सोचता है कि मैं ऐसा क्यों नहीं कर सकता, अवश्य कर सकूंगा एवं कर सकता हूं ? फिर वह तुरन्त उन बातों को जानना चाहता है, जिनकी सहायता से यह वैज्ञानिक सफल हुआ है।

इसी तरह साहित्यिक सामाजिक तथा ऐतिहासिक महापुरुषों के सम्बन्ध में पढ़ते समय भी बच्चों के मन में कुछ स्वाभाविक प्रश्न उठते हैं। यहा यह तथ्य स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी जीवनी पढ़ते समय बच्चे उसकी तुलना में अपने आपको रखते हैं और अपने मन को टटोलकर देखते जाते हैं कि क्या वे भी ऐसा करने में समर्थ हो सकते हैं ? जहा उन्हे यह महसूस होता है कि वे नहीं कर सकते, वहीं से उनकी प्रेरणा बलवती हो उठती है और वे 'काश ! कि मैं भी ऐसा ही कर सकता' से प्रभावित होकर अनेक कठिनाइयों से जूझने तथा गुत्थियों को सुलझाने के लिए अग्रसर हो उठते हैं।

इस प्रकार जीवनिया बच्चों के भावों को जहा उत्तेजित करती है वहीं उनमें क्रियात्मकता का भी सचार करती हैं और फिर उनका पथ प्रदर्शक बनकर उन्हे आलोक देती हैं। लगभग सभी भाषाओं में बच्चों के लिए जीवनियों का यही महत्त्व स्वीकार किया गया है।

(२) हिन्दी में बाल-जीवनिया : परम्परा तथा विकास :

बच्चों के लिए जीवन-कथाओं का महत्त्व द्विवेदी युग में ही समझा जाने लगा था। इडियन प्रेस से प्राचीन ऐतिहासिक तथा धार्मिक महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित अनेक बाल-जीवनिया प्रकाशित हुई थीं। साथ ही तत्कालीन बाल-मासिकों 'बालसखा', 'शिशु', 'किशोर', 'बालक', 'विद्यार्थी' आदि सभी में एकलव्य, उपमन्यु, शतमन्यु, अभिमन्यु, ध्रुव, प्रह्लाद आदि के जीवन-चरित्र प्रकाशित हुआ करते थे। लेकिन इन सभी में वर्णनात्मकता का आधिक्य होता था जिससे ये उपदेशपरक, शुष्क इतिहास या धर्मकथा बन जाती थीं और बच्चों को बहुत प्रभावित नहीं कर पाती थीं। बच्चे इन्हें उतना रस लेकर नहीं पढ़ते थे, जितना कथा-कहानी में डूब जाते थे। लेकिन फिर भी जीवनी लिखने—प्रकाशित करने की परम्परा चलती रही। हिन्दी में बाल-जीवनिया प्रकाशित करने में प्रयाग के ओंकार प्रेस तथा बाद में छात्र हितकारी पुस्तकमाला ने उल्लेखनीय योगदान किया। छोटी-छोटी, किन्तु सारगर्भित, मोटे टाइप में छपी, कम मूल्य वाली पुस्तकों के कई सैट इन दोनों प्रकाशन संस्थाओं से बच्चों के लिए तैयार हुए। उन दिनों इस प्रकार की पुस्तकों का अभाव होने के कारण ये लोकप्रिय भी खूब हुई। लेकिन इनमें बाल-जीवनियों के गुणों का नितान्त अभाव था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बाल-साहित्य की इस विधा को भी समृद्धिशाली बनाने के प्रयास हुए। 'महान भारतीय' में भारत के प्रमुख राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और वैज्ञानिक महापुरुषों के जीवन की छोटी-छोटी रोचक घटनाएं संकलित हैं। 'जब ये बच्चे थे' में बालकृष्ण एम० ए० ने महापुरुषों के बचपन की उन घटनाओं का वर्णन किया है, जिनसे बच्चों को प्रेरणा मिलेगी। 'बाल जीवनी माला' के अन्तर्गत पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस दिल्ली द्वारा प्रकाशित जीवनी माला-सम्बन्धी पुस्तकें अत्यन्त रोचक हैं। डारविन, वाल्टेयर, एडिसन, मैडम क्यूरी, जगदीश बसु आदि संसार के महान् वैज्ञानिकों को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। साहित्यिकों में 'निराला' और 'गालिब' की जीवनियां भी प्रकाशित हुईं। पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली द्वारा 'नवीन भारत के निर्माता' तथा 'भारत के गौरव' (२ भाग) प्रकाशित हुईं। पहली पुस्तक में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी तथा भारतीय नेताओं की जीवनियां प्रस्तुत की गई हैं।

महापुरुषों की जीवनियों पर आधारित उपन्यासों का प्रकाशन, उमेश प्रकाशन दिल्ली का सर्वथा मौलिक प्रयास है। बाल-पाठकों के लिए ये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनमें 'मीरा बावरी', 'आचार्य चाणक्य', 'संत कबीर', 'रवि बाबू' आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार बच्चों के लिए महापुरुषों की जीवनियां प्रस्तुत करने में जहां मौलिक प्रयोग हुए, वहीं अधिकाधिक पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं।

(३) बाल-जीवनियों के भेद :

विषय वस्तु के आधार पर हिन्दी में प्रकाशित बाल-जीवनी पुस्तकों के भेद इस प्रकार किये जा सकते हैं :

१. धार्मिक
२. राजनैतिक
३. शिक्षाविद्
४. वैज्ञानिक
५. लेखक

१. धार्मिक—धार्मिक तथा पौराणिक महापुरुषों के जीवन, उनके कार्यों तथा गुणों से बच्चों को परिचित कराने के उद्देश्य से ये जीवनियां बहुत उपयोगी होती हैं। हिन्दी में, आरम्भ में, इंडियन प्रेस में ऐसी बहुत-सी जीवनी-पुस्तकें बच्चों के लिए प्रकाशित हुईं। गीताप्रेस, गोरखपुर से भी बच्चों के लिए इस प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इनके विषय मुख्यतः पांच पांडव, द्रोणाचार्य, एकलव्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि थे। हाल ही में 'जीवनोपन्यास' के रूप में उमेश प्रकाशन दिल्ली से 'गुरु नानकदेव', 'गुरु अमरदास', 'गुरु अंगददेव' (राजेश शर्मा) तथा 'गौतम बुद्ध' (यादवचन्द्र जैन) प्रकाशित हुई हैं।

सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली ने संस्कृत-साहित्य-सौरभ-माला के अन्तर्गत

चालीस पैसे मूल्य की कई सुन्दर एव उपयोगी बाल-जीवनी पुस्तकें प्रकाशित की है। इनमे 'गौतम बुद्ध', 'चैतन्य महाप्रभु', 'बाहुबलि और नेमिनाथ', 'सत तुकाराम,' 'तिरुवल्लुवर', 'नरसी मेहता', 'सत ज्ञानेश्वर', 'रामकृष्ण परमहस', 'समर्थ रामदास', 'तीर्थंकर महावीर', 'स्वामी विवेकानन्द', 'सत वेमन्ना', 'महर्षि अगस्त्य', 'शकराचार्य' आदि प्रमुख है।

२ राजनैतिक—देश की राजनीति, शासन तथा प्रगति को सचालित करने वाले महान् नेताओ की जीवनिया बच्चों के समक्ष न केवल आदर्श प्रस्तुत करती है बल्कि उनका भविष्य भी सवारती हैं। 'राष्ट्रबन्धु' कृत 'ये महान कैसे बने', वेदमित्र कृत 'प्रतिभा के पुत्र', अ० अ० अनन्त कृत 'याद रहगी गाथाए,' 'प्रेमलता अग्रवाल कृत 'देश की मशालें', बाबूराम जोशी कृत 'जनता के जवाहर', 'राष्ट्रपति राजेन्द्र', 'सन्त विनोबा', 'सबके बापू', सोमा भाई कृत 'हमारे सरदार', नारायणदत्त पाण्डेय कृत 'लोकमान्य तिलक', डा० शुकदेव दुबे कृत 'श्रीमती विजय लक्ष्मी पडित', 'राजर्षि टडन जी', 'खुदीराम बोस', 'महादेव देसाई', 'ठक्कर बापा', 'भारत की महान विभूतिया', 'बडो की कहानिया', 'आचार्य विनोबा भावे', 'नपोलियन बोनापार्ट' आदि उल्लेखनीय पुस्तक है। इनमे यदि लेखक का प्रयास सरल भाषा मे रोचक सामग्री देने का है तो प्रकाशक ने उसे सुन्दरतम रूप मे प्रस्तुत भी किया है।

३ शिक्षाविद्—हमारा देश शिक्षाविदो तथा शिक्षाशास्त्रियो के लिए धनी रहा है। ऐसे महान् विद्वानो के जीवन, कार्यों तथा गुणो से परिचित कराने के लिए अनेक बाल जीवनिया लिखी गई हैं। सस्ता साहित्य मडल, दिल्ली से प्रकाशित 'महामना मालवीय', 'ईश्वरचन्द्र विद्यासागर', 'बालगगाधर तिलक', 'रवीन्द्रनाथ ठाकुर', उमेश प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित सुशीलकुमार कृत 'आचार्य चाणक्य' उल्लेनीय पुस्तकें हैं।

४ वैज्ञानिक—स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वैज्ञानिको की जीवनिया प्रचुर मात्रा मे प्रकाशित हुई है। 'विज्ञान की विभूतिया' (जयप्रकाश भारती), 'अपनी धरती अपने लोग,' 'विज्ञान की बातें', 'खोज के पथ पर', 'सर सी० वी० रमन' (डा० शुकदेव दुबे), पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस दिल्ली से प्रकाशित 'आइजक न्यूटन', 'मदाम क्यूरी' आदि सुन्दर प्रकाशन सिद्ध हुए है।

५. लेखक—बच्चो को देश के महान् लेखको तथा 'बच्चो के लेखको' से परिचित कराने के उद्देश्य से इस वर्ग की जीवनी पुस्तकें अधिक उपयोगी होती हैं। हिन्दी में बडे साहित्यकारो की पृथक तथा सम्मिलित जीवनिया प्रकाशित करने की परम्परा अधिक रही है, क्योकि ऐसी पुस्तकें कोर्स मे लगकर बिक जाती हैं। लेकिन बच्चो के लेखको की ओर अभी तक बहुत कम ध्यान दिया गया है। इस दिशा मे केवल एक पुस्तक 'ये कहानी वाले' (हरिकृष्ण देवसरे) प्रकाशित हुई है जिसमे बच्चो के सभी विश्वप्रसिद्ध कथाकारो की जीवनी तथा बच्चो के लिए कहानी लिखने की रुचि का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

कुल मिलाकर हिन्दी का बाल-जीवनी-साहित्य, सख्या मे अधिक होते हुए भी विषयो मे विविधता कम ही मिलती है। इसका कारण प्रकाशकीय दृष्टिकोण है, क्योकि ऐसी पुस्तकें स्कूल के पाठ्यक्रमो मे भी स्वीकृत हो जाती हैं। अत यदि स्कूल की दृष्टि छोडकर विशुद्ध रूप से बालसाहित्य रचना की जाय तो वे जीवनी-पुस्तके अधिक उपयोगी होगी।

छठवां अध्याय

हिन्दी बालसाहित्य : तुलनात्मक विवेचन

विभिन्न भारतीय भाषाओं का बालसाहित्य शुद्ध भारतीय परिवेश, सभ्यता और संस्कृति के अनुकूल लिखा गया। सभी भाषाओं का अपना स्वतंत्र रूप, साहित्य तथा क्षेत्र है। इसलिए उनके बाल-साहित्य की भी अपनी कुछ विशेषताएं हैं। पाश्चात्य बाल-साहित्य ने हिन्दी-बालसाहित्य को जिस रूप में प्रभावित किया, उससे हिन्दी-बालसाहित्य की अभिवृद्धि होने के साथ साथ उसे कई नई दिशाएं भी मिली हैं।

हिन्दी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं में भी बालसाहित्य पर्याप्त मात्रा में लिखा गया है। जैसा कि स्पष्ट है—भारत की विभिन्न भाषाओं के होते हुए भी, भारतीय साहित्य की आत्मा एक है। अत विभिन्न भाषाओं में जो बालसाहित्य लिखा गया, वह शुद्ध भारतीय परिवेश, सभ्यता तथा संस्कृति के अनुकूल ही लिखा गया। लेकिन चूंकि सभी भाषाओं का अपना स्वतंत्र रूप, साहित्य तथा क्षेत्र है, इसलिए उनके बालसाहित्य की अपनी कुछ विशेषताएं तो हैं ही। ये विशेषताएं कुछ भाषाओं में समान हैं और कुछ की मौलिक हैं। यदि इन भाषाओं में विद्यमान बालसाहित्य पर एक सिंहावलोकन प्रस्तुत करें तो, इस तुलनात्मक अध्ययन में—विशेषकर हिन्दी बालसाहित्य के सन्दर्भ में अधिक उपयोगी होगा।

(अ) भारतीय भाषाओं के बाल साहित्य का संक्षिप्त परिचय

१. असमिया :

असमिया का बालसाहित्य बहुत पुराना नहीं है। किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् इसमें कई उल्लेखनीय प्रकाशन हुए। इनमें से अधिकांश ऐसे थे जो कि पौराणिक

आख्यानो पर आधारित थे। इस कारण इन्हे अधिक प्रोत्साहन नही मिला। इस सम्बन्ध मे डा० सत्येन्द्रनाथ शर्मा का मत है, "आरम्भ मे जो भी बालसाहित्य की पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं वे बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण नही हैं और न ही उनमे किसी घटना या विषय की ही विवेचना मिलती है।" किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् इस दिशा मे प्रयत्न किए गए और कई महत्त्वपूर्ण प्रकाशन हुए। इनमे कुछ अग्रेजी के अनुवाद प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है जैसे बसत बरुआ का 'वागनरार साधु', रोमेश्वर शर्मा कृत ईसपर साधू (ईसप कथा), तथा 'अनिफनला' का अनुवाद। पौराणिक कथा-ग्रथो के आधार पर भी कुछ पुस्तकें लिखी गई है। तारानाथ बारपुजारी कृत महाभारत माउ बिचानी इन्द्रेश्वर राजखोवा कृत हितोपदेश, बिरिचिकुमार बरुआ कृत जातक माला' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

बडो के जीवन से परिचित कराने के उद्देश्य से बच्चो के लिए कई मौलिक पुस्तकें असमिया मे लिखी गई हैं। कमलेश्वर चालिहा ने इस दिशा मे काफी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। 'लोरार सकर देव', 'विश्वकवि रवीन्द्रनाथ', 'दीन बन्धु एन्ड्रूज', 'ईश्वरचन्द्र विद्यासागर' आदि कुछ प्रमुख पुस्तक हैं।

असमिया बालसाहित्य मे नाटको का विशेष अभाव है। प्रकाशित बालनाटको मे मुक्तिनाथ बोरदोलाई का 'भक्त प्रह्लाद', कीर्तिनाथ हजारिका कृत 'फलुकार फेन', प्रसन्नलाल चौधरी का 'अवेश्वरी', तथा लख्याधर चौधरी का 'एकलव्य' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लेकिन ये नाटक बच्चो की वास्तविक आवश्यकता पूर्ति करने मे समर्थ नही सिद्ध हुए।

बच्चो के लिए यात्रा सस्मरण भी असमिया मे बहुत कम है। केवल बिरिचि कुमार बरुआ कृत स्विट्जरलैड भ्रमण' और ज्ञानदाभिराम बरुआ कृत 'बिलातेर चीठी' ही उल्लेखनीय हैं।

आज के वैज्ञानिक-जगत् से परिचित कराने वाला साहित्य भी असमी बच्चो के लिए प्रचुर मात्रा मे लिखा गया है। इस दिशा मे उल्लेखनीय प्रयास आसाम-विज्ञान समिति ने किया है। अन्य लोकप्रिय वैज्ञानिक प्रकाशनो मे डा० रोहिनीकुमार बरुआ कृत 'विज्ञानार साधू, डा० कालीनाथ शर्मा कृत 'प्रकृतिर पुतला खेला,' जोगेन्द्रनाथ बरुआ का 'विज्ञानार खेल' और गजेन्द्रकुमार देव राय का 'विनानार साधू उल्लेखनीय हैं। रघुनाथ चौधरी की पुस्तक 'मानव सभ्यता' मानव सस्कृति की कहानी बताती है। डा० प्रसन्नचन्द्र गोस्वामी की पुरस्कृत पुस्तकें—'फूलार साधू' और 'जन्तुर साधू बडी ही सरल और रोचक शैली मे फूलो तथा जीव-जन्तुओ की जानकारी प्रस्तुत करती है। जोगेन्द्रनाथ साइकिया की पुस्तक 'पनगार कथा' अनेक कीडा मकोडा का परिचय प्रस्तुत करती है। डा० हरिप्रसन्नदास की पुस्तक 'अविष्कारार कहिनी' मे अनेक देशो के खोज की कहानिया दी गई है। मानवशास्त्र के विशेषज्ञ डा० भुवनमोहनदास की दो बालोपयोगी पुस्तकें भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। ये है—'आदिम जुगार आदि कथा'—जिसमे मानव तथा मानव सभ्यता के आदिम रूप की कहानी प्रस्तुत की गई है और

'अमर दोरे मिहातो मानव' यह सिद्ध करती है कि यद्यपि विश्व के बच्चों में संस्कृति, भाषा तथा धर्म के मामले में विभिन्नता है फिर भी वे एक हैं। उनकी *'मानवार आदि कथा'* में *आदिम युगीन मानव के जीवन तथा संस्कृति पर प्रकाश* डाला गया है। 'यातायात और परिवहन' में मोहम्मद ताहिर ने आदिम युग से आज तक के संचार-साधनों का रोचक-विवरण प्रस्तुत किया है। अभी हाल ही में असम विज्ञान समिति ने असमी बच्चों के लिए एक 'साइन्स इन्साइक्लोपीडिया' तैयार कराने का कार्य आरम्भ किया है। इस तरह असमिया के बालसाहित्य में प्रचुर मात्रा में वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित हुआ है और असम-विज्ञान-समिति की योजनानुसार उस दिशा में अभी काफी प्रगति अपेक्षित है। इससे असमी-बाल-साहित्य बहुत समृद्ध होगा।

सम्पूर्ण असमी बालसाहित्य का मूल्यांकन करने पर कुछ कमियां भी सामने आती हैं। एक तो यह कि अधिकांश लेखक बालसाहित्य लिखते समय यह तथ्य सम्भवतः भूला बैठते हैं कि वे बच्चों के लिए लिख रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि न केवल भाषा, बल्कि विषय-वस्तु भी ऐसी होनी चाहिए जो बाल-पाठकों की समझ में सरलता से आ जाय। दूसरे, असमी बालसाहित्य के प्रस्तुतीकरण में बहुत-सी कमियां मिलती हैं। चित्रों का अभाव बहुत ही खटकने वाला है। इसके अतिरिक्त पुस्तकों की छपाई, कवर-डिज़ाइन, साज-सज्जा आदि भी इतनी आकर्षक नहीं होती कि वह बाल-पाठकों का मन लुभा सके।

सन्तोष का विषय यही है कि इस दिशा में निरन्तर प्रयास हो रहे हैं और कुछ ही समय बाद में ये कमियां भी दूर हो जाएंगी।[1]

२. उड़िया :

उड़िया बालसाहित्य का उद्भव वास्तव में केसब कोइली की गीतात्मक कविताओं से ही माना जा सकता है। केसब कोइली की कविताएं कई शताब्दियों से उड़िया बच्चों का मनोरंजन कर रही हैं। इसके बाद चौतिसाओं की कृतियां बच्चों का मन लुभाने की दृष्टि से लिखी गईं। इस प्रकार के साहित्य का प्रचार सन् १८०३ तक रहा। अंग्रेजी शासन के अधिकार के बाद उड़िया भाषा और उसमें स्कूलों की पढ़ाई का प्रश्न उठा। इस कारण बालसाहित्य की प्रगति में थोड़ी बाधा आई। जो कुछ भी बच्चों के लिए पुस्तकें लिखी गईं उनका उद्देश्य, बच्चों को स्कूल में पढ़ाने के लिए पुस्तकें तैयार करना मात्र था। कोई सौ वर्ष तक इसीलिए किसी प्रकार की उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई।

सन् १६०३ में इस कार्य को आगे बढ़ाने का श्रेय गोपबन्धु दास को है, जिन्होंने बालसाहित्य की प्रगति तथा विकास के लिए स्वयं भी पुस्तकें लिखी। इनमें 'ईसप

---

१. डा० भुवन एम० दास, विभागाध्यक्ष, मानव शास्त्र विभाग, गोहाटी विश्वविद्यालय गोहाटी, द्वारा भेजी गई सामग्री के आधार पर।

की कहानियां', 'हितोपदेश' और 'ग्रिम की कहानियां' प्रमुख हैं।

पहले महायुद्ध के बाद सन् १९२०-२१ में कविताओं का एक दल 'सबूज-दल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'सबूज' का शाब्दिक अर्थ 'हरा' है। इसमें सबसे अधिक उल्लेखनीय कार्य कालिन्दीचरण पाणिग्रही ने किया। उन्होंने बच्चों के लिए हर तरह की रचनाएं लिखीं और उड़िया बालसाहित्य का भंडार भरा। इसके साथ ही उडिया में बच्चों के लिए कटक ट्रेडिंग कम्पनी ने 'पंचामृत' मासिक का प्रकाशन आरम्भ किया, किन्तु यह अधिक समय तक नहीं चल सका। इसके बाद बालकृष्ण कार ने बच्चों के लिए उड़िया में इन्साइक्लोपीडिया तैयार की, जिसका नाम था—'सिसु सब्दावली'। इसमें बच्चों के लिए अनेक प्रकार की सामग्री दी गई थी, किन्तु इसकी भाषा बालसुलभ नहीं थी। इसमें चित्रों का प्रयोग भी ठीक से नहीं किया गया था, क्योंकि किसी-किसी पृष्ठ में चित्रों की भरमार थी तो कोई-कोई बिलकुल चित्रहीन थे।

दूसरे महायुद्ध के बाद उड़िया बालसाहित्य में अभूतपूर्व प्रगति हुई। बालसाहित्य प्रकाशन-क्षेत्र में लोगों ने काफी उत्साह और रुचि से हिस्सा लिया। राज्य सरकार द्वारा श्रेष्ठ बालसाहित्य की पुस्तकों पर पुरस्कार दिए जाने लगे। स्कूलों में भी बाल-साहित्य की पुस्तकों का महत्त्व बढ़ा और इससे बिक्री में सहायता मिली। इतिहास, भूगोल, विज्ञान, आत्मकथा आदि जैसे विषयों की ओर भी लेखकों का ध्यान गया और उन्होंने बच्चों के लिए उपयोगी, बालसाहित्य की रचना की। इनमें चनधर महापात्र कृत 'बातागिया', कनकमंजरी कृत 'कलिंग की कहानियों का संग्रह', सचिन कलिंग कहानी', कृष्णचन्द्र कार कृत 'साधना ओ सिद्धि', डा० गोकुलनन्द उपाध्याय कृत 'मदाम क्यूरी' और कनक बाला त्रिपाठी कृत 'हीरा-मोती मानक' विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी अवधि में कुछ अनुवाद भी प्रकाशित हुए। 'डान क्विक्जोट' का अनुवाद सहदेव प्रधान ने प्रस्तुत किया। इसके अलावा 'ग्रिम की कहानियां', 'पिनोकी' आदि का भी अनुवाद हुआ। जगमोहन घटनायक की पुस्तक 'सरल कहानी' में बैताल पच्चीसी, हितोपदेश तथा ग्रीक-इतिहास की कहानियां प्रस्तुत की गई।

नाटकों में उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। रवीन्द्रनारायण मिश्र का 'सिसु अभिनय'—एकांकी नाटक संग्रह अवश्य है, किन्तु अभी इस दिशा में अधिकाधिक रचनाएं अपेक्षित हैं।

वास्तव में उड़िया बालसाहित्य की पर्याप्त प्रगति नहीं हो पाई है। अभी वैज्ञानिक साहित्य की विशेष कमी है। पुस्तकों की छपाई-सफाई में भी काफी प्रगति अपेक्षित है।[1]

---

१. प्रो० बिनोदचन्द्र नायक, सुन्दरगढ कालेज, सुन्दरगढ (उड़ीसा) द्वारा प्रेषित सामग्री के आधार पर।

३. कश्मीरी :

कश्मीरी भाषा मे बालसाहित्य-लेखन हाल ही में आरम्भ हुआ है। इसकी वजह सम्भवतः कश्मीरी भाषा की कोई लिपि न होना था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इस दिशा में कई सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रयत्न हुए और कश्मीरी मे साहित्य लिखा जाने लगा।

आरम्भ मे कश्मीरी लोक-कथाओ को बच्चो के लिए प्रस्तुत किया गया। फिर मीठी-मीठी लोरियों को सग्रहीत किया गया। सन् १९५९ में पहली बार कश्मीरी बालसाहित्य की पुस्तक 'बालयार' को भारत सरकार ने पुरस्कृत किया। इसके लेखक थे श्री शंभूनाथ भट्ट। इससे पूर्व बालसाहित्य का कश्मीरी भाषा के लिए पुरस्कार, प्रतियोगिता मे कोई पुस्तक न आने के कारण किसी को नही दिया जाता था। सन् १९६० मे श्री शंकरनाथ कौल की पुस्तक 'मार्चा पिपिज ता चाची पुपूत' को पुरस्कार मिला। इस तरह अनेक उत्साही लेखको ने बाल-साहित्य रचना आरम्भ की। इस समय कश्मीरी बालसाहित्य की प्रमुख कृतिया है—नाजी मुनव्वर और अवतार कृष्ण कृत 'मोक्ता लार', बंसी निराश कृत 'कूमक शायर', सोमनाथ साधू कृत 'पोशी मल', फजील कश्मीरी कृत 'शमा ए वतन' तथा प्रकाशन विभाग की 'भारत ची लोक-कथा' और 'देश-विदेश ची लोक-कथा'।

इस तरह कश्मीरी में अभी बहुत थोड़ी ही बालसाहित्य की रचनाएं लिखी गई है। किन्तु जो प्रयास हुए है वे इस दिशा मे समृद्धि की आशा प्रदान करते है।[१]

४. कन्नड़ :

कन्नड का आरम्भिक बाल-साहित्य छोटी-छोटी रीडरो के ही रूप में लिखा गया। आरम्भ मे बालबोध के दो भाग निकले थे। पहले के लेखक थे मैसूर के च० वासुदेवय्य तथा दूसरे के श्रीनिवास राव। इसके बाद ए० एस० पुटण्णजी ने 'नीति चिन्तामणि' की रचना की। दूसरी ओर धारवाड़ में भी इसी समय शांत-कवि, वेंकट रगाशेट्टी, येप्युटि चेन्नवसप्पा आदि ने बालसाहित्य रचना आरम्भ कर दी थी। बाद मे मगलूर मे 'बालसाहित्य मण्डल' की भी स्थापना हुई और इस ओर सक्रिय प्रयास आरम्भ हो गये। इस दिशा मे डा० शिवराम कारतजी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। डा० शिवराम कारतजी ने बच्चों के लिए शिशु गीत तथा कथाएं लिखीं। आपने बच्चों की एक सस्था बनाई थी 'मुनकल कूट' अर्थात् बच्चो की टोली। इसके लिए आपने अनेक अभिनय एकाकियो की भी रचना की। आपने बच्चो के लिए कन्नड मे पहली बार तीन भागो मे बाल-विश्वकोष की रचना की जिसका नाम था—'बाल प्रपच'। बाद मे मैसूर की 'चिल्ड्रन बुक काउंसिल' ने

---

२. श्री शंकरलाल कौल, पब्लिक रिलेशन्स आफिसर, यूनीसेफ, जोरबाग, नई दिल्ली द्वारा प्रेषित सामग्री के आधार पर।

भी बालसाहित्य के विकास में योगदान दिया। इस क्षेत्र में श्री जी० पी० राजरत्नम का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपने बच्चों के लिए कहानी, नाटक तथा अन्य ललित गद्य लिखा।

कन्नड के बालसाहित्य में कहानियों का बाहुल्य है। मौलिक रचनाओं में अधिकांशत वे कहानियां है जो लोकमानस में सजो रखी थी। अन्य भाषाओं की कहानियों का अनुवाद तो नहीं किन्तु कथानक लेकर भी कई पुस्तकें लिखी गयी है। इनमें सस्कृत से 'मुद्राराक्षस', 'कुमार सभव', 'स्वप्न वासवदत्ता', अग्रेजी से 'महाप्रवासी मार्कोपोलो', 'राबिन्सन क्रूसो', 'आलिबाबा नलवतु कलहरू', 'अद्भुत लाकेदल्लि आलिस', वेनिस्सिन वर्तक', 'सिन्दबाद नाविक', 'राबिनहुड' आदि प्रमुख हैं। अन्य कथा पुस्तकों में एस० रामानन्द कृत 'पुराणद कथेगलु', 'बैबलिन कथेगलु', 'अरबेयदइरुलु', रा० न० मलगी कृत 'ईसोपन नीति कथेगलु', हुयिलगोल कृत 'जनपद कथेगलु', मनोहर कृत 'ठक्कर गुरू' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

कन्नड में बच्चों के लिए पद्य साहित्य का अभाव है। फिर भी जो उल्लेखनीय प्रकाशन हुए है उनमें—म० बा० जहागीरदार कृत 'गीतलीले', 'मक्कलगीतगलु', होयिसल कृत 'चन्दुमाम', 'कोलुकुदुरे', कुवेपुजी कृत 'किंदरजोगी' और 'हालूरू', बि० वी० सनादि कृत 'गृहपचमी', 'गुलाबी गोवलु', 'जिलेबी भुणभुण', अजितकुमार कृत 'कारजी', काव्यानन्द कृत तुप्प रोट्टि गेगगे', और शं० गु० बिरादार का 'मन्नहाडु' प्रमुख हैं।

बच्चों के लिए नाटक भी कन्नड में बहुत कम लिखे गये हैं। इनमें जो कुछ है भी वे किसी न किसी कारण पूर्णत अभिनय नहीं कहे जा सकते। फिर भी जो उल्लेखनीय नाटक हैं उनके नाम है होयिसलजी कृत 'समाज सेवे', श्रीपाडुरग कृत 'गुरवे देवनु', तथा 'दीपावली'। अन्य कुछ उल्लेखनीय रचनाए है—'मत्रको माविनकाई,' 'मुद्रमणि', 'ग्रीनरूम गलाटे,' आदि।

कन्नड में बालसाहित्य का भण्डार भरने की अभी बहुत आवश्यकता है। यो अन्य भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियों का अनुवाद कन्नड में किया गया है किन्तु हिन्दी से बहुत कम अनुवाद हुए है। इनमें एक तो हैं राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह कृत 'भारत के पक्षी' का अनुवाद और दूसरा है हरिकृष्ण देवसरे के उपन्यास 'डाकू का बेटा' का अनुवाद 'दरोडेगारन मग'। इसे श्री पचाक्षरी हिरेमठ ने किया है।

सन् १९६२ में भारत सरकार ने बालसाहित्य के लेखकों की एक कवि गोष्ठी का आयोजन किया था। इसमें लगभग पन्द्रह लेखकों ने भाग लिया। बाद में इन सभी की कविताओं का एक सग्रह 'मक्काला मुट्टू' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त श्री उलवीरा की 'गोम-बच्चा बेनय्या तुड्गा' और 'कोटला' पुस्तकें भी बच्चों में बहुत लोकप्रिय हुई है। शिशु सगमेश की पुस्तक 'मानर मारि मठदतारा कठेगेनु' भी काफी रुचिकर सिद्ध हुई है।

इन सभी प्रकाशनो से आशा है कि भविष्य मे कन्नड बालसाहित्य और अधिक विकसित होगा।[१]

५ गुजराती

गुजराती मे बालसाहित्य का प्रकाशन आधुनिक युग से ही आरम्भ हुआ। सबसे पहले बच्चों के लिए गीत लिखने वाले कवि थे श्री दलपतराम। उन्होंने स्कूलो मे पढने वाले छोटे-छोटे बच्चों के लिए गीत लिखे थ। उन गीतो मे से कुछ के शीर्षक थे—'बावनी पिपर', 'दरबर्मा', 'अधरे वका' आदि। इसके बाद कई लेखको ने इस दिशा मे कदम उठाए। सन् १९१५ मे श्री हिम्मतलाल गनेश जी अजारिया ने 'मधुबिन्दु' शीर्षक से बच्चो के लिए काव्य सग्रह प्रकाशित किया था। इसमे नरसिंहराव, नवलराम खाबरदार, ललित आदि कवियो की रचनाए सकलित थी। एक और प्रकाशन इसी समय हुआ—कवि नान्हालाल की बाल-कविताओं का सग्रह 'सच नौ सिपआई'। इसके नर्सरी गीत बच्चो मे सर्वाधिक लोकप्रिय हुए।

आजादी की लडाई प्रारम्भ होने तथा देश मे गाधीवादी विचारधारा के प्रसार से बालसाहित्य लेखन-प्रकाशन की प्रवृत्ति मे भी अन्तर आया। इस समय सबसे अधिक उल्लेखनीय कार्य करने वाले थे गिजू भाई। गिजू भाई ने गुजराती बालसाहित्य मे एक नये युग का सूत्रपात किया था। उन्होंने अपनी रचनाओं मे जहा एक ओर बच्चा की रुचि और उनकी बुद्धि का ध्यान रखा, वहा दूसरी ओर उनकी आयु और मानसिक विकास की बात भी ध्यान मे रखी। पुरानी शैली का उन्होंने पूरी तरह परित्याग किया और उपदेशात्मक पद्धति को भी छोड दिया। उनका मत है कि रचना मे स्वय इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह बाल-मन पर अपना प्रभाव डाले। अपनी इस विचारधारा पर बल देते हुए गिजू भाई ने बच्चो की भावनाओ, रुचियो और प्रवृत्तियो का अध्ययन किया और तब बाल-साहित्य की रचना की। उनकी भाषा भी अत्यन्त सीधी-सादी और समझ मे आने वाली सिद्ध हुई। सभवत उनकी इन्ही विशेषताओ ने उन्हें गुजराती बालसाहित्य का सर्वश्रेष्ठ लेखक बना दिया।

को उन्नतिशील बनाने का प्रयत्न किया है। चन्द्रवदन मेहता का इनमें विशेष स्थान है। रमनलाल सोनी ने भी कई सुन्दर रचनाएं प्रस्तुत की हैं। उनकी—'काशीनो पंडित', 'गलगलिया', 'पगला' प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। प्रह्लाद पारीख, बमन नाइक, नटवर लाल मालवी, कृष्णनाथ श्रीधरानी, रामनिक अग्रवाल के योगदान भी स्तुत्य हैं।

गुजराती बालसाहित्य में गद्य की बच्चों के लिए सबसे पहली पुस्तक मन्दशंकर कृत 'करन घेला' मानी गई है। अन्य लेखकों की कृतियों में काका साहेब कालेलकर का गद्य साहित्य विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने बच्चों के लिए—'हिमालय नो प्रवास', 'स्मरण यात्रा', 'अउद्राति दिवासो' आदि पुस्तकें लिखी हैं। हसा बेन महता की 'बालवार्तावली' और 'अरुण नू अद्भुत स्वप्न', हरिप्रसाद गुप्त कृत, 'वावोर पटेल', नटवरलाल मालवी की 'मोसल नी मोज' भी उल्लेखनीय हैं। झवेरचन्द मेघाणी ने लोकसाहित्य के माध्यम से कई बाल-कहानी की पुस्तकें लिखी हैं। उनकी अन्य बाल कहानी की पुस्तकें हैं—'दादा जी नी वाता' और 'दोशिमा नी वातो'। नटवरलाल मालवी, नागरदास पटेल और रमनलाल नानालाल शाह ने भी प्रचुर मात्रा में कहानी की पुस्तकें लिखी हैं। इनकी भाषा, शैली सभी बड़ी रोचक है और इनके विषय भी विविधतापूर्ण हैं। निरंजन वर्मा और जयमाल परमार ने भारत की लोककथाएं गुजराती में प्रस्तुत की है। सुभद्रा गाधी ने बड़े रोचक ढंग से विश्व की लोककथाएं प्रस्तुत की हैं। मनुभाई और वसंत जोवानी ने जल-जन्तुओं तथा पशुओं पर पुस्तकें लिखी हैं।

वैज्ञानिक विषयों पर लिखी गई पुस्तकों का भी गुजराती बालसाहित्य में अक्षय भंडार है। विजयगुप्त मौर्य का वैज्ञानिक बाल-उपन्यास 'कामियागार कबीर' (हिन्दी में मनहर चौहान द्वारा 'जादूगर कबीर' शीर्षक से अनूदित), 'ध्रुव नी सफर', 'अवकाश यात्रा' आदि प्रमुख हैं। छोटू भाई सुथार कृत 'आकाश दर्शन', 'धरती और आम' भी उल्लेखनीय हैं।

नाटकों के क्षेत्र में भी काफी कार्य हुआ है। काका साहेब कालेलकर का 'बेकारी', जगतराम दवे का 'अन्वलानो गाद', रमनलाल सोनी का 'वन्देमातरम्', धूमकेतु का 'एकलव्य', सी० सी० मेहता का 'रामकाडुनी दुकान' आदि उल्लेखनीय नाट्य कृतियां हैं—जिन्हें बच्चों ने सफलतापूर्वक मंच पर प्रस्तुत किया है।

इस तरह गुजराती का बालसाहित्य बहुत थोड़े समय में ही काफी समृद्धिशाली बन गया है। लगभग सभी विधाओं में बालसाहित्य रचना, उसकी लोकप्रियता का प्रमाण है।[1]

६ तमिल

तमिल भाषा का आरम्भिक बालसाहित्य दादी नानियों की कहानियों के रूप

---

१. श्री रमनलाल सोनी, मडासा (गुजरात) द्वारा प्रेषित सामग्री के आधार पर।

में ही मिलता है। बच्चों के लिए सबसे पहली तमिल पत्रिका 'बालदी पिकाई' सन् १८४० में प्रकाशित हुई थी। इसका प्रकाशन नागर-कोइन क्रिश्चियन सोसायटी ने किया था। इसके बाद १८४६ में पलायमकोट्टाई क्रिश्चियन एसोसियेशन ने 'सिरु पिल्लियान नेसा थोजन' नामक पत्र प्रकाशित किया। इस तरह तमिल बालसाहित्य का सूत्रपात इन्हीं बाल-पत्रिकाओं ने किया। लेकिन बालसाहित्य के प्रति तमिल जनता में उतनी रुचि न थी जितनी कि होनी चाहिए।

सन् १९२४ में क्रिश्चियन लिटरेचर सोसायटी ने 'पोविवशा वारीनी' नाम का एक पत्र प्रकाशित किया। इसके सम्पादक श्री राजचूडामणि ने तमिल बालसाहित्य की उन्नति के लिए काफी प्रयत्न किए। उन्होंने बच्चों के लिए गीत, कहानियां, लघु नाटक, आदि प्रचुर मात्रा में लिखे। बाद में वह 'पप्पा' और 'अम्बुलिम्मा' मासिकों का भी सम्पादन करते रहे।

बच्चों के लिए तमिल में पुस्तकें प्रकाशित करने का काम मद्रास स्कूल बुक सोसायटी ने शुरू किया। लेकिन इसका उद्देश्य बालसाहित्य की समृद्धि करना नहीं बल्कि पाठ्य पुस्तकों की कमी दूर करना था। इस दिशा में मौलिक प्रयास तो श्री सी० वी० स्वामिनाथ अइय्यर तथा एन० मावर्वय्या ने ही किए। उनकी पुस्तकें 'विवेक चिन्तामणि प्रचुर गल' तथा 'बाल विनोद कथा ईगल' बहुत ही सफल सिद्ध हुई।

तमिल बालसाहित्य का वास्तविक विकास सन् १९५० से हुआ जबकि मद्रास बाल लेखक संघ का गठन हुआ। इस सस्था ने बालसाहित्य की समस्याओं पर विस्तार से विचार किया और जनता तथा सरकार का इस ओर ध्यान आकर्षित किया। इसके अलावा इस सस्था ने बच्चों के लिए सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित करने का भी काम हाथ में लिया। यह सस्था हर साल बालोपयोगी साहित्य की एक प्रदर्शिनी का भी आयोजन करती है जिसमें न केवल तमिल की बल्कि देश की अन्य भाषाओं की भी पुस्तकें प्रदर्शित होती हैं। सन् १९५५ से इस सस्था का एक वार्षिक विवरण भी प्रकाशित होता है। सन् १९६३ में इस सस्था ने एक पुरस्कार योजना भी बनाई है जिसके अन्तर्गत वर्ष के सर्वश्रेष्ठ लेखक, प्रकाशक को पुरस्कार दिया जाता है।

तमिल में बच्चों के कवियों में सी० सुब्रमण्यम भारती, नामसिवा मुदलियार, कविमणि देसिगाविनायकम पिल्लई, कनक सुब्बुरत्नम, मइयाली सिवामूर्ति और आभा वल्लिपा के नाम प्रमुख है। 'इलमथिउरल', 'मालारुम मलइउम' और 'कुजन्डाई चेलवम'—कविमणि देसिगाविनायकम पिल्लई के बाल-गीत-सग्रहों के नाम हैं। मइयाली सिवामूर्ति कृत 'मुथुपदलगल' पर केन्द्रीय सरकार पुरस्कार भी दे चुकी है। आभा वल्लिपा के कविता सग्रह 'मालूरम उल्लम' पर केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारें पुरस्कार दे चुकी हैं। इस पुस्तक की लोकप्रियता केवल इसी तथ्य से प्रमाणित है कि अब तक इसके चार सस्करण प्रकाशित हो चुके है।

कहानी लेखकों मे—पी० राजचूडामणि, राजा जी, थी० जा० रा० पी०

तूरन, कि० वा० जगन्नाथन और ऊविलन के नाम विशेष उल्लेखनीय है। अन्य लेखकों में 'मुथु', राजी (एन० नटेमन), एन० एम० देवासीगमानी, चन्द्रमामा, यगामणि, सि० मा० भक्तवत्सलम आदि हैं। हाल ही में तमिल बाल कहानियों में बच्चों के लिए 'भयानक कहानियां' लिखने का काफी जोर था। इन कहानियों द्वारा बच्चों को कितनी हानि होती है, यह किसी से छिपा नहीं है। लेकिन सौभाग्यवश मद्रास बालसाहित्यकार संघ के प्रयास से यह प्रवृत्ति समाप्त हो गई है।

अब अन्य सामान्य-ज्ञान के विषयों से सम्बन्धित पुस्तकें भी प्रकाशित होने लगी हैं। अभी प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञान से सम्बन्धित हो कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और यात्रा, जीवनी आदि पर अभी पुस्तकें अपेक्षित हैं।

पी० शिरुकुमसुन्दरम पिल्लई, पी० एन० अप्पूस्वामी और थी० जा० रा० ने बच्चों के लिए विज्ञान की पुस्तकें लिखने में उल्लेखनीय प्रयास किया है। इनमें नाटकीय ढंग से प्रस्तुत कहानियों के माध्यम द्वारा अनेक वैज्ञानिक तथ्यों को समझाने का प्रयास किया गया है।

कुल मिलाकर तमिल का बालसाहित्य बड़ी गति से प्रगति की ओर बढ़ रहा है और आशा की जाती है कि कुछ ही समय में वह समृद्धिशाली बन जायगा।[1]

७ तेलुगू

तेलुगू बालसाहित्य की दिशा में आरम्भिक प्रयत्न करने वाले थे—सर्वश्री एन० एन० वेंकटास्वामी, चिन्ता दी क्षितुलु, प्रताप रेड्डी आदि। सन् १९१६ में श्री रंगया चेट्टी ने सबसे पहली पुस्तक 'बालिका भूषणम' प्रकाशित की जिसमें बच्चों के लिए मीठे रसीले गीत संग्रहीत थे। इसके बाद गीतों के कई संकलन प्रकाशित हुए जिनमें एन० गगाधरम का 'सोला येरू', हरि अडदी सिसु कृत 'जनपद वागमय', योल्लोरे कृत 'मधुरे कवितालु' आदि प्रमुख हैं। कहानियों के क्षेत्र में आरम्भिक कृति रावीपति गुरुमूर्तिल शास्त्री द्वारा संग्रहीत 'हनिम्साठा साला बेजिका कडालू' स्वीकारी जा सकती है। इसका प्रकाशन १९१६ में हुआ था।

आधुनिक युग में आकर तेलुगु बालसाहित्य में उल्लेखनीय प्रगति हुई। श्री वेंकटापार्वती स्वराकवुलू की पुस्तक 'बाल गीतावली' ने इसे एक नया जीवन दिया और इससे तेलुगू बालसाहित्य में एक क्रान्तिकारी विचारधारा ने जन्म लिया। यह विचारधारा आधुनिक जीवन के परिवेश में निर्मित थी। इस दिशा में अग्रणी होने वाले अन्य लेखकों में वाल्मीकि वाविकोलानु सुब्बाराव तथा रेन्तारा वकेटा हैं। इनकी पुस्तकें बच्चों में इतनी लोकप्रिय हुई कि लोगों ने यह महसूस

१. श्री ए० नटराजन, तिरुपति विश्वविद्यालय, तिरुपति द्वारा प्रेषित सामग्री के आधार पर।

किया कि बच्चों के लिए स्वतन्त्र रूप से लिखा गया उनका अपना साहित्य भी आवश्यक है।

अब तेलुगू बालसाहित्य में कई नए प्रयोग भी होने शुरू हो गए हैं। मोहम्मद कासिखान ने 'बाल-विज्ञानम् सर्वस्वम्' में बच्चों के लिए सरल विज्ञान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वेमा राजू भानुमूर्ति ने रेडियो, टेलीफोन आदि पर पुस्तकों का पूरा सेट लिखा है। एम० रामाराव की पुस्तक 'माकाठा विन्तारा' में जीवविज्ञान से सम्बन्धित बातों की जानकारी दी गई है।

तेलुगू में बच्चों के लिए उपन्यास प्रचुर मात्रा में लिखे गए हैं। श्री नरला चिरंजीवी ने कई उपन्यास लिखकर महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके उपन्यास —'किनूबोषा', 'वेधीगयाकडु', 'पीनुपेसराचेरु' प्रमुख हैं। रवि कोण्डालाराव का उपन्यास 'दासू' भी काफी ख्याति अर्जित कर चुका है।

नाटकों के क्षेत्र में भी कई उल्लेखनीय प्रयास हुए हैं। तेनेट्टी सूरी का 'गोड्टा कड', नलो चिरजीवी का 'वीणु चिडवू,' कविराव का 'बादिगरालू,' पुतिठोल् के सभा का 'परिक्षा पलितालू' सुन्दर व सफल नाटक हैं।

सक्षेप में तेलुगू का बालसाहित्य काफी समृद्ध है और उसमें युग के अनुरूप रचनाएं लिखी जा रही हैं। श्री कवि राव ने तो एक 'इन्साइक्लोपीडिया' भी तैयार की है।[1]

८. पंजाबी :

पंजाबी भाषा में पुस्तकों की आवश्यकता अंग्रेजी शासन-काल में ही हुई थी जबकि स्कूलों में बच्चों के लिए पढ़ाने की पुस्तकें नहीं थीं। उस समय जो भी पुस्तकें तैयार की गईं उनका मूल आधार अलिफलैला, पचतत्र आदि पुरानी पुस्तकें ही थीं। किन्तु मास्टर करतारसिंह गगावाला ने पंजाबी बालसाहित्य में एक क्रान्ति को जन्म दिया। उन्होंने बच्चों के लिए ऐसी पुस्तकें लिखीं जो उनकी रुचि को सवारती थीं। इसके बाद गियानी लालसिंह ने प्रयास किए। उन्होंने बच्चों के लिए सन् १९३४ में 'बालक' नाम का एक मासिक पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया। यह बहुत बढ़िया छपता था और इसके चित्र भी आकर्षक होते थे। इसमें धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक तथा जीवन-कथाएं प्रकाशित होती थीं। इसके प्रमुख लेखक थे—सर्वश्री लालसिंह, धनीराम चात्रिक, विधातासिंह तीर, मोढासिंह मुश्ताक आदि।

सन् १९४२ में गुरबख्शसिंह ने 'बाल संदेश' प्रकाशित किया और इसमें उन्होंने सरल-सुबोध शैली में बच्चों की रुचि की अनेक रचनाएं प्रस्तुत कीं। उन्होंने कई पुस्तकें भी लिखीं जिनमें 'घोघर खान' उल्लेखनीय है।

---

१. श्री कवि राव, बालसाहित्य परिषद्, रिपेल्ली (आन्ध्र प्रदेश) द्वारा प्रेषित सामग्री के आधार पर।

स्वतंत्रता के बाद पंजाबी बालसाहित्य के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण मिला। इस समय गुरुबचनसिंह शास्त्री ने 'बालक' और 'स्कूल' नाम के दो मासिक प्रकाशित किए। 'बालदरबार' का भी प्रकाशन इसी समय जीवनसिंह जौली ने आरम्भ किया। इन पत्रों से पंजाबी बालसाहित्य को समृद्धिशाली बनाने मे बहुत मदद मिली। लोगों ने बच्चों के लिए कहानियां, गीत, पहेलियां आदि प्रचुर मात्रा मे लिखी। लालसिंह ने तो १५ पुस्तकों का एक पूरा सेट तैयार किया।

धनवन्तसिंह सीतल ने धार्मिक, राष्ट्रीय तथा भक्ति सम्बन्धी गीत लिखे। उन्होंने अनेक महापुरुषों की जीवनियां भी लिखी—जिनमे 'दस गुरु', 'नेताजी', 'शिवाजी', 'महात्मा बुद्ध', 'अकाली फूलासिंह,' 'हरिसिंह नलवा,' 'महात्मा गाधी,' 'श्री पटेल,' 'जवाहरलाल नेहरु,' 'बाबा रामसिंह,' 'राजेन्द्रप्रसाद,' 'टैगोर,' 'भगतसिंह' आदि प्रमुख है। उन्होंने हास्य कहानियां तथा पहेलियां भी लिखी। उनकी इस प्रकार की पुस्तकें हैं—'सीतल चुलकातें', 'सीतल बुझारता', 'सीतल खिलौने', 'सीतल फुलवारी' आदि। परीकथाए तथा जादू की कहानियां लिखने मे भी वह पीछे नहीं रहे और उन्होंने 'अलीबाबा चालीस चोर', 'लाल बादशाह', 'जादू दिया कहानियां,' 'परियां दी रानी' जैसी पुस्तकें लिखीं। कुल मिलाकर उन्होंने लगभग १५० पुस्तकें बच्चों के लिए लिखी हैं।

कुलदीपसिंह ने भी अनेक महान् नेताओं की जीवनियां लिखी है। उनकी 'चाचा नेहरू' पुस्तक नाटकीयता से भरी हुई है।

पुराने बालसाहित्य लेखकों का विचार था कि बच्चों की जिज्ञासा केवल कहानी के चमत्कारपूर्ण ढग मे ही शांत की जा सकती है। लेकिन इस दिशा मे विचारधारा परिवर्तन का काम भी गुरदयालसिंह फूल ने किया। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी है। इनमे से 'मतर', 'सच दी जय', 'सयाना बालक', 'अंधेर नगरी' और 'पदमिनी' एकांकी नाटक है। 'साइकिल किवें बनिया', 'टेलीफोन किव बनिया' उनकी आविष्कार की कहानी सम्बन्धी पुस्तकें है।

वर्तमान पंजाबी साहित्य लेखकों मे गुरुबचनसिंह, राज दुलार, शुभचिन्तक, राजिन्दरसिंह आतिश, अवतारसिंह दीपक, करतारसिंह दुग्गल आदि प्रमुख है। गुरुबचनसिंह ने वैज्ञानिक कथा-साहित्य प्रचुर मात्रा मे लिखा है—'अग दी कहानी', 'मोती दी कहानी', 'शहद दी मक्खी दी कहानी' आदि उल्लेखनीय पुस्तक है। ये पुस्तकें बहुत सुन्दर ढग से प्रकाशित हुई हैं और इनकी भाषा बालसुलभ तथा प्रभावपूर्ण है।

अवतारसिंह दीपक भी वैज्ञानिक-कथा-साहित्य लिखने म बहुत रुचि लते है। 'जादू दा कबल', 'इक सी राजा' उनकी विशेष रूप से लिखी गई पुस्तकें हैं। किन्तु ये पुस्तकें पर्याप्त स्तर की नहीं है। कारण यह है कि इनका कहानी-तत्व वैज्ञानिक तथ्यों को दबा लेता है।

राजदुलार बच्चों के लोकप्रिय कवि है। उनकी लगभग ग्यारह पुस्तक प्रका-

शित हो चुकी है। इनमे 'उडीकन', 'कर भला हो भला', हिम्मत दा फल' प्रमुख हैं। उनकी एक अन्य पुस्तक 'अवल दिया गल्ला' है, जिसमे तीन कहानिया है—पहली कहानी का शीर्षक है 'अवल दिया गल्ला,' दूसरी का 'करम दा फल' और तीसरी का 'सोने दी इन्नी'। पहली कहानी एक पुरानी कहानी का नया रूप है, दूसरी कहानी म कर्म, धर्म, धैर्य और भाग्य की चर्चा है—जो सभवत बच्चो के उपयुक्त विषय नही है। तीसरी कहानी मे लालच की बुराई की गई है। 'हिम्मत दा फल' पुस्तक मे एक परीकथा है, जिसे लेखक ने सपने के माध्यम से व्यक्त किया है। 'कर भला हो भला' मे छ छोटी-छोटी कहानिया सग्रहीत हैं। इस तरह राजदुलार की बालकृतियो मे एक महत्त्वपूर्ण भावना यह उभरती है कि वह इनमे शिक्षा, मनोरजन, कौतूहल आदि का सुन्दर सम्मिश्रण छोटी-छोटी कहानिया मे कर लेते है। वह अपने इन प्रयोगो म सफल भी हुए है। राजदुलार बालसाहित्य म प्रयोगवादी लेखन करने के पक्ष मे है। वह बच्चा के लिए आयुसीमा मे बधकर लिखने के विरोधी है।

शुभचिन्तक ने बालमनोविज्ञान का अच्छा अध्ययन किया है और उसी के परिणामस्वरूप वह तीन नाटक तथा एक उपन्यास और परीकथाओं की पुस्तके लिखने मे सफल हुई है। उनका एकाकी नाटक 'स्काउट' बच्चो के लिए बहुत सफल बन पडा है।

करतारसिंह शमशेर ने बच्चा के लिए कई कहानी की पुस्तके लिखी है। इनमे प्रमुख है—'सोने दी कुदाली', 'इन्साफ अन्जीविया तब्बर', 'इक सिपाही इक पठान' आदि। इन सभी कहानिया के आधार या तो ऐतिहासिक है या जीवन की सत्य घटनाए हैं—जिन्हे परियो जैसी कहानियो की शैली मे प्रस्तुत किया गया है। 'सोने दी कुदाली' मे एक अच्छी घरवाली की प्रशसा की गई है।

अन्य लेखका की उल्लेखनीय कृतियो मे बलबीर लेने कृत 'सुआदलिया कहानिया', आशवन्त हूजर कृत 'लन्दन दी सैर', 'हवाई जहाज दी सैर', देवदत्त गापाल कृत 'जादू दा दाना', सरदार सिंह सार कृत 'सूपे दी मासी', 'नीली दा लाला', प्रीतम सिंह राही कृत 'जलजीव', रणवीर वदी कृत 'पुजारी दी सिखिया', 'घोडिया दी फसल', 'पज कहानिया' है।

माडर्न साहित्य अकादमी ने कोई एक दर्जन पुस्तके बच्चो के लिए प्रकाशित की हैं। इनकी विषयवस्तु भाषा, शैली, छपाई, चित्र आदि सभी प्रशसनीय है। इस तरह पजाबी बालसाहित्य की उन्नति के लिए निरन्तर प्रयत्न हो रहे है और उसमे नवीनतम विषयो तथा विधाओ को प्रवेश मिल रहा है।[1]

---

१ श्री गुरुदयाल सिंह फल, खालसा कालज, अमृतसर से प्राप्त सामग्री के आधार पर।

६. बंगला :

बंगला भाषा के बालसाहित्य का सूत्रपात करने का श्रेय ईसाई मिशनरियों को है, जबकि उन्होंने बच्चों के लिए स्कूलों में पढ़ने के लिए पुस्तकें तैयार कीं। इस काम के लिए एक समिति बनाई गई थी जिसके सदस्य थे—श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राधाकान्त देव तथा अन्य कई शिक्षाविद्। इस समिति की सलाह से जो किताबें प्रकाशित हुईं, उनमें 'उपदेश कथा' भी एक है। इसे कलकत्ता बुक सोसायटी ने प्रकाशित किया था। इसके बाद ताराचन्द दत्त ने सन् १८१६ में 'मनोरंजन इतिहास' शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें अधिकांश संस्कृत तथा अंग्रेजी की अनूदित कहानियां थीं। उनकी अन्य पुस्तकों में 'हितोपदेश', 'ज्ञान चन्द्रिका', 'नीति दर्पन' और 'ज्ञान प्रदीप' प्रमुख हैं। इन सभी पुस्तकों की भाषा सरल तथा कथाएं रोचक एवं शिक्षाप्रद सिद्ध हुईं।

लेकिन बंगला बालसाहित्य को नया मोड़ देने का कार्य ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने किया। उन्होंने नई भाषा शैली अपनाकर बच्चों के लिए कई पुस्तकें लिखीं। इनमें से कुछ के नाम हैं—'बैताल पचबिनसती', 'कथामाला', 'आख्यान मंजरी', आदि। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के ही समकालीन लेखकों में मदनमोहन तार्कालंकार ने अनेक लोककथाएं लिखीं। इस बीच दूसरी भाषाओं—प्रमुखत अंग्रेजी—की पुस्तकों के अनुवाद भी होने लगे थे। सन् १८५६ में पहला बाल-उपन्यास 'विजय बसंत' प्रकाशित हुआ था। विज्ञान की पहली पुस्तक तारक गुप्ता कृत 'प्राणि विद्या' थी। एक अन्य विज्ञान की पुस्तक 'बाला बोध' सन् १८६४ में प्रकाशित हुई थी, जिसके लेखक थे प्रसन्न मुखोपाध्याय। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक बालसाहित्य लिखने वाले अन्य लेखक थे—त्रीरेश्वर पांडे, कृष्ण-कुमार मित्रा, स्वर्ण कुमारी देवी। इस अवधि में बच्चों के समाचार पत्रों ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इनके माध्यम से जहां एक ओर अनेक लेखकों को बालसाहित्य लिखने की प्रेरणा मिली वहीं बालसाहित्य लोकप्रिय भी हुआ।

बंगला बालसाहित्य को आधुनिक युगीन दिशा देने का कार्य गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने किया। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने बच्चों के लिए साहित्य लिखने की एक नई शैली को जन्म दिया। उनकी शैली ऐसी थी कि गद्य भी पद्य सा और संगीतमय लगे। उनकी पुस्तकें 'राजकहिनी', 'शकुन्तला', 'खिरेर पुतुल'—बहुत लोकप्रिय हुईं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी प्रचुर मात्रा में बालसाहित्य रचना की। उनके बालसाहित्य की प्रमुख पुस्तकें हैं—'छेले बेला', 'शिशु', 'मुकुट', 'डाकघर', 'हास्यकौमुदी' आदि। इस अवधि में बंगला बालसाहित्य की हर विधा में बहुमुखी प्रगति हुई है। परीकथा, जासूसी-कहानियां, शिशु गीत, कविताएं आदि सभी प्रचुर मात्रा में लिखी गईं। इनमें मोतीलाल गांगुली की 'पावानी फानुस' और ज्ञानदा नन्दिनी देवी की 'टाक डुमाडुम' तथा 'सात भाई चम्पा' प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इन पुस्तकों ने बच्चों को बहुत आकर्षित किया और

लोकप्रिय हुई।

परीकथाएं, शिशु-गीत, लोरियां, लोकगीत तथा दन्तकथाएं बंगाल में प्रचलित तो बहुत थी लेकिन उन्हें संग्रहीत करने का प्रयास अब तक नहीं हुआ था। लाल-बिहारी डे ने पहली बार 'बंगाल की लोककथाएं' पुस्तक में कुछ प्रसिद्ध और रोचक लोककथाएं संग्रहीत कीं। इसके बाद दक्षिणा रंजन मित्रा ने भी लोक-कथाएं संकलित की तथा उन्हें 'ठाकुमार झूली' शीर्षक से पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया। इन लोककथा पुस्तकों की भाषा सरल थी और कहानियां बच्चों का मन लुभाने वाली थीं।

जोगेन्द्रनाथ सरकार ने प्रचुर मात्रा में बालसाहित्य लिखा। उनकी पुस्तकें अत्यधिक लोकप्रिय हुईं और आज भी बच्चे बड़ी रुचि से पढ़ते हैं। उनकी निम्न कविता की पंक्तियां बहुत लोकप्रिय हैं—

आ जा गर तो आम्बे तेरे,
जाम तो अभी खावू पेरे।

बंगला साहित्य की समृद्धि में उपेन्द्रकिशोर राय चौधुरी का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी पुस्तक 'टुन टुनीर गल्प' बच्चों को बहुत पसन्द आई थी।

सुकुमार राय अब तक के सभी बालसाहित्यकारों में सर्वाधिक लोकप्रिय हुए। वह अपनी उन पुस्तकों के माध्यम से बाल पाठकों के प्रिय बने, जिनमें उन्होंने बच्चों के जीवन को बड़े ही आकर्षक और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। उनकी 'अबोल-तबोल', 'अबक जलपान', 'हा-जा-बा-रा-ला', 'पागल दामू' बंगला बालसाहित्य की बड़ी महत्त्वपूर्ण कृतियां हैं।

अब बंगला बालसाहित्य कल्पना, मनोविज्ञान और जीवन के सत्यों का सहारा लेकर लिखा जा रहा है। इस वर्तमान काल की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि—जोगेन्द्रनाथ गुप्ता द्वारा संपादित इन्साइक्लोपीडिया 'शिशु भारती' है। इसके दस भाग हैं और बच्चों के लिए यह बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। इस समय बच्चों के अनेक मासिक-पत्र भी बालसाहित्य की समृद्धि में लगे हुए हैं। वर्तमान लेखकों में ऐतिहासिक कहानियों के लिए जोगेन्द्रनाथ गुप्ता, परीकथाओं के लिए कार्तिकचन्द्र दासगुप्ता, हास्य कथाओं के लिए लीला मजूमदार, हास्य रेखाचित्रों के लिए सुनीरमल बासू, लोककथाओं के लिए—सीता देवी और शान्ता देवी, साहसिक कहानियों के लिए—खगेन्द्रनाथ मित्रा, वैज्ञानिक कहानियों के लिए क्षितीन्द्र नारायण भट्टाचार्य, सामाजिक कहानियों के लिए मनीन्द्र दत्ता, मोहनलाल गांगुली और विष्णु मुकर्जी, जीव जन्तुओं की कथाओं के लिए—सुकुमार सरकार के नाम उल्लेखनीय हैं। धीरेन्द्रलाल धर ने युद्ध-कथाओं में प्रयोग किए हैं।

इस प्रकार बंगला बालसाहित्य में अब निरन्तर प्रगति हो रही है। इसमें वर्तमान विषयों तथा विधाओं का खुलकर समावेश हो रहा है।[१]

---

१ श्री प्रबोध रंजन डे, ४/७ जादव घोष लेन कलकत्ता-८, द्वारा प्राप्त सामग्री के आधार पर।

१०. मराठी .

मराठी मे बालसाहित्य की प्राचीन पुस्तक 'पचतत्र' ही मिलती है, जिसे सभवत पन्द्रहवी शताब्दी मे अनूदित किया गया था। आधुनिक मराठी बालसाहित्य का सूत्रपात महाराष्ट्र पर ब्रिटिश शासन काल से आरम्भ होता है, जबकि ब्रिटिश मिशनरियो ने बच्चो के लिए पुस्तकें प्रकाशित की। सन् १८२२ मे बम्बई मे 'बाम्बे नेटिव एज्यूकेशन सोसायटी' का सगठन हुआ था। इसने बच्चो के लिए 'बालगोष्ठी', ताराचन्द दत्त की पुस्तक का बापू छात्रे द्वारा 'बोधकथा' शीर्षक से अनुवाद, बापू छात्रे द्वारा ही अनूदित 'बाल मित्र' तथा 'नीति कथा' पुस्तकें प्रकाशित की। लेकिन इसके बाद बालसाहित्य की प्रगति अवरुद्ध हो गई।

प्रथम महायुद्ध के बाद बालसाहित्य रचना की ओर लेखको ने गम्भीरता से विचार किया। वासुदेव गोविन्द आप्टे द्वारा सपादित 'आनन्द' बाल मासिक ने इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण योग दिया। इसी समय लिखे गए, नारायण हरि आप्टे कृत 'सुखचा मूलमत्र' तथा 'इनामदारचा बालू' बहुत प्रसिद्ध हुए। इनके अतिरिक्त आचार्य अत्रे का लिखा नाटक 'गुरु दक्षिणा' भी बच्चो ने खूब पसन्द किया।

सन् १९२० से १९४५ के बीच मराठी बालसाहित्य ने अभूतपूर्व प्रगति की। इस काल मे बालसाहित्य, अपने शुद्ध स्वरूप मे लिखा जाने लगा था। उपन्यास, कविताए, कहानिया, नाटक आदि सभी विधाओ मे रचनाए लिखी गई।

वर्तमान समय मे अनेक लेखक उसे समृद्ध बनाने के लिए प्रयत्नशील है। स्व० साने गुरु जी का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। उनकी 'सामची आसी' बडी लोकप्रिय रचना है। अग्रेजी के प्रसिद्ध बाल-उपन्यास 'ट्रैजर आइलैंड', 'ए टेल आफ दि टू सिटीज', 'किंग सलोमन्स माइन्स' आदि का अनुवाद भी हुआ है। महापुरुषो की जीवनिया भी प्रचुर मात्रा मे लिखी गई है—'रामतीर्थ', 'विवेकानन्द', 'तुकाराम', 'ज्ञानेश्वर' आदि कुछ उल्लेखनीय पुस्तक है।

किन्तु अन्य भारतीय भाषाओ की तुलना मे मराठी बालसाहित्य अभी बहुत पीछे तथा न्यून मात्रा मे है।[१]

११ मलयालम

मलयालम के बालसाहित्य की वास्तविक प्रगति स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही हुई है। इस दिशा मे स्थायी कार्य करने वाले है—मैथ्यू कुजेवेरली। उन्होने अब तक लगभग पाच सौ से भी अधिक बालसाहित्य की पुस्तकें लिखी है। वह एक बालमासिक के सम्पादक भी है। उन्होने एक 'बाल-ज्ञान-कोष' भी लिखा है।

---

१ श्री एन० एन० वैद्य, लेक्चरर, पी जी बी टी कालेज, भोपाल द्वारा प्राप्त सामग्री के आधार पर।

वास्तव में मलयालम बालसाहित्य को उन्नति के शिखर पर पहुचाने का श्रेय उन्ही को है। लेकिन छपाई आदि की दृष्टि से मैथ्यू कुञ्ञेवेली की पुस्तके अधिक सुन्दर नही सिद्ध हुई। ऐसा केवल इसलिए हुआ कि वह इस दिशा में काम करने वाले अकेले थे और पुस्तकों को सुन्दरतम रूप में प्रकाशित करने के लिए काफी धन की आवश्यकता थी। एक अन्य दोष यह भी है कि इनमें अधिकाश पुस्तके दूसरी भाषाओं, विशेषकर अंग्रेजी, का अनुवाद या रूपान्तर है। यद्यपि इनसे मलयालम बालसाहित्य को समृद्धि मिली है, लेकिन भारतीय वातावरण में लिखे गए बाल-साहित्य की अधिक आवश्यकता थी।

अब कई आधुनिक कवियो एव कथाकारो ने इस दिशा मे कार्य करना आरभ कर दिया है। इनमें श्री जी० शकर कुरुप, वेलोपिल्ली श्रीधर मेनन, अक्कित्तम अच्युतन नम्बूदिरी, पालनारायणन नायर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

हाल ही मे 'साहित्य प्रवर्तक कोआपरेटिव सोसायटी' कोट्टायम ने भी बाल-साहित्य प्रकाशन का कार्य हाथ मे लिया है। इसके द्वारा प्रकाशित पुस्तको ने, पुस्तकों के प्रस्तुतीकरण को एक नई दिशा दी है। इस सस्था द्वारा प्रति वर्ष बाल-साहित्य की एक प्रतियोगिता का भी आयोजन किया जाता है।

मलयालम मे बच्चो के लिए नाटक भी लिखे गए हैं। 'कुट्टीथम्बुरती'— चेरुकड गोविन्दा पिशरोडी का नाटक है। यह बच्चो द्वारा मच पर भी सफलता-पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

वर्तमान अन्य लेखको मे माली का 'सरकस' विशेष उल्लेखनीय है। इबूर परमेश्वरन, टी० वी० जान, तत्तापुरम, सुकुमारन आदि के नाम भी उल्लेख-नीय है।

इस प्रकार मलयालम का बालसाहित्य अभी शैशवावस्था मे ही है। फिर भी इसमें प्रगति की आशाए तो निहित है ही।[1]

(ब) अन्य भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी बालसाहित्य का तुलनात्मक विवेचन

सभी भारतीय भाषाओ मे समान रूप से एक तथ्य उद्घाटित होता है कि यहा का आरभिक बालसाहित्य लोकसाहित्य के गर्भ मे था और उस रूप मे भी वह पर्याप्त समृद्ध तथा अपने उद्देश्य की पूर्ति करने मे सक्षम था। प्राय. सभी भाषाओ मे धार्मिक तथा नीतिकथाए प्रचलित थी और आज जिस लोकसाहित्य का सग्रह किया गया है वह इस बात का श्रेष्ठ प्रमाण है। पचतन्त्र तथा हितोपदेश की कहानियों के सम्बन्ध मे तो यह बात निर्विवाद रूप से स्वीकार की ही जा सकती है, क्योकि उनकी कहानियो ने न केवल भारतीय, बल्कि विश्व की अनेक

---

१. श्री ए० पी० पी० नम्बूदरी, कालीकट, से प्राप्त सामग्री के आधार पर।

भाषाओं के बालसाहित्य को प्रभावित किया है।

लेकिन छपाई की सुविधाएं प्राप्त होने के बाद भी आरभ मे काफी समय तक अधिकाश भाषाओं जैसे गुजराती, मलयालम, कन्नड आदि के बाल-साहित्य मे विशेष प्रगति नही हुई। हिन्दी, बगला मराठी, उडिया आदि मे जो कुछ सूत्रपात हुआ, उसके लिए ईसाई मिशनरियों को ही श्रेय जाता है। उन्होंने यद्यपि बालसाहित्य की सेवा करने का उद्देश्य लेकर पुस्तकें नही प्रकाशित की थी, तथापि वे पुस्तकें बालसाहित्य का सूत्रपात करने म निश्चय ही सिद्ध हुई।

बीसवी शताब्दी के आरम्भ तक किसी भी भारतीय भाषा के बालसाहित्य मे कोई नवीनता नही दीखती है। उस समय तक प्राचीन भारतीय इतिहास, धर्म और नीति मे ली गई कथाए ही अधिकाशतया बच्चो को दी जाती थी। कई भारतीय भाषाओं जैसे—असमिया म तो बालसाहित्य की रचना का आरभ स्वतत्रता के बाद हुआ। इसलिए बालसाहित्य जितना उपयोगी बनना चाहिए था, नही बन सका।

बीसवी शताब्दी के दूसरे दशक, विशेषकर प्रथम महायुद्ध के बाद बगला और हिन्दी के बालसाहित्य मे विशेष प्रगति हुई। "बगाल मे जब नये विचारो का आह्वान हो रहा था तो उसी समय हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों मे भी अग्रेजी शासनके प्रभाव से अग्रेजी का प्रभाव बढ रहा था। देश मे डाक, तार, रेल, कल-कारखानो की स्थापना होने से पढे-लिखे लोगो के विचारो मे परिवर्तन हो रहा था। लोग प्राचीन परम्परागत रूढियो मे निकलने का प्रयत्न करने लगे थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन लेखको और कवियो ने इसी समय हिन्दी भाषा और साहित्य को परम्परागत रीतिकालीन प्रवृत्तियो के प्रभाव से बाहर निकाल कर नए क्षेत्र और नई दिशाए दी।' भाषा और साहित्य के विकास की दृष्टि से बगला और हिन्दी मे इस समय की परिस्थितियो मे पर्याप्त अन्तर प्रतीत होता है। हिन्दी के लेखको के सामने भावनाओ-विचारो के साथ-साथ, नई भाषा-शैली के विकास की भी समस्या थी। बगला भाषा के सामने ऐसी कोई समस्या नही थी। उसम परम्परागत भाषा और समय की माग के अनुरूप नई भाषा के स्वरूप म ऐसा कोई विशेष अन्तर न था जिससे उसके विकास मे कोई कठिनाई हो। '' इस प्रकार देखने मे ज्ञात होता है कि हिन्दी और बगला—दोनो मे बालसाहित्य के विकास की ओर ध्यान लगभग एक ही समय म आकृष्ट हुआ। पर बगला मे उसका विकास निरन्तर स्वाभाविक गति से होता चला गया और हिन्दी भाषा की कठिनाई तथा अन्य कारणो से उसकी गति अवरुद्ध रही। हिन्दी और बगला—दोनो म बालसाहित्य अग्रेजी के प्रभाव से लिखा जाना प्रारभ हुआ, पर यह कहना उचित न होगा कि वह अग्रेजी की नकल मात्र था। प्रेरणा भले ही अग्रेजी साहित्य की रही हो, पर दोनो भाषाओ के प्रारभिक बालसाहित्य लेखको ने अपनी मौलिकता की रक्षा करते हुए ही इस दिशा मे आगे कदम बढाया था।"[१]

१ बालगीत साहित्य निरकारदेव सेवक पृष्ठ २२३।

स्वतन्त्रता के पश्चात् पिछले बीस वर्षों में सभी भारतीय भाषाओं में बालसाहित्य की अभूतपूर्व प्रगति हुई है। लेकिन स्वातन्त्र्योत्तर काल के पहले दशक तक पुरानी धारणाओं का मोह उसे आवृत किए था। बदलते हुए युग, मूल्यों और समाज के अनुरूप न तो बालसाहित्य लिखा ही गया और न ही भारतीय-जन उसे बच्चों को देने के पक्ष में थे। भारतीय-जन का कहना था कि क्या हम अपने देश की मान्यताओं और परम्पराओं को छोड़ दें। लेकिन इस कथन की सत्यता को स्वीकार करते हुए, इस सत्य से भी मुंह नहीं मोड़ा जा सकता कि आज के युग में हमारी सीमाएं राष्ट्र में नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर पहुंच गई हैं। संभव है आगामी कुछ वर्षों में ये सीमाएं अन्तरिक्ष युग तक पहुंच जायें। यह भी महसूस किया गया कि पुराना इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि उसे ज्यों का त्यों स्वीकार करके लकीर का फकीर बना जाय, बल्कि वह तो सदर्भ है जो नए की ओर आगे बढ़ने में सहायक बनता है। जब यह स्पष्टीकरण हो गया तो स्वातन्त्र्योत्तर काल के दूसरे दशक में बालसाहित्य की नई विचारधारा के अनुरूप लिखने का प्रयास होने लगा।

आज के बालसाहित्य में एक महत्त्वपूर्ण समस्या है—परीकथाओं के कथानक रूप तथा उनके उद्देश्यों में परिवर्तन की। पुरानी विचारधारा के लोग आज भी उन्हें उनके पूर्व तथा परम्परागत रूप में ही देने के पक्षपाती हैं। जहां तक परीकथाओं के उद्देश्य तथा स्वरूप की बात है वह तो निस्सन्देह ही मनोवैज्ञानिकसत्य से प्रमाणित है। लेकिन उसके कथ्य में कुछ परिवर्तन आवश्यक है। यह आवश्यकता युगानुरूप परिवर्तन की है। परीकथाओं के कथानकों में या तो परिवर्तन किया जाय या वर्तमान स्थिति के अनुरूप नई परीकथाएं लिखी जायें। इस दिशा में अभी तक पंजाबी में करतारसिंह शमशेर तथा राजदुलार और हिन्दी में हरिकृष्ण देवसरे ने कई प्रयोग किए हैं। पंजाबी में राजदुलार ने बालसाहित्य को आयु-सीमा से मुक्त स्वीकार किया है। हिन्दी में भी हरिकृष्ण देवसरे ने आयु-सीमा के बंधनों के विरोध में आवाज उठाई है। लेकिन अन्य भारतीय भाषाओं में इस दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई।

वैज्ञानिक बाल-साहित्य रचना की ओर लगभग सभी भाषाओं में प्रयत्न किया गया है। इस दृष्टि से बंगला और गुजराती भाषा का बालसाहित्य बहुत समृद्ध है। अन्य भाषाओं में असमिया, तमिल तथा पंजाबी के भी नाम उल्लेखनीय हैं। बंगला में बच्चों के लिए जहां वैज्ञानिक विषयों पर सरल रोचक पुस्तकें लिखी गई, वहीं वैज्ञानिक-बाल-कथासाहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया। प्रेमेन्द्र मित्र जैसे ख्यातिप्राप्त लेखक ने बच्चों के लिए, 'चींटिया' शीर्षक से एक बाल-उपन्यास लिखा। गुजराती में भी वैज्ञानिक-बाल कथासाहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया। विजय गुप्त मौर्य का बाल उपन्यास 'जादूगर कबीर' जहां बच्चों को अनेक जोखिम उठाकर अन्वेषी बनाता है, वहीं वैज्ञानिक चमत्कारों के प्रति उन्हें आकृष्ट भी करता है। असमिया में कथा-साहित्य तो कम, किन्तु वैज्ञानि

विषयो पर रोचक शैली मे पुस्तकें अधिक लिखी गई है। पजाबी तथा तमिल मे भी कुछ उल्लेखनीय प्रकाशन अवश्य हुए हैं, किन्तु उनमे विशेष महत्त्व प्रतिपादित नही होता। हिन्दी मे विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें आरभ मे आवश्यकता पूर्ति-मात्र के लिए लिखी गईं। फलस्वरूप आविष्कारो तथा आविष्कारो की कहानियो की अनेक पुस्तकें लिखी गईं। बाद मे वैज्ञानिक-कथा-साहित्य की ओर ध्यान गया। लेकिन इस दिशा म अनुवाद अधिक हुए। मौलिक पुस्तकें कम ही लिखी गई। केवल कुछ उपन्यास अवश्य सन् १९६० के बाद प्रकाशित हुए, किन्तु उनका विशेष महत्त्व नही हुआ। आज भी इस ओर बहुत कम प्रयास हो रहा है और केवल कुछ ही पुस्तकें कभी-कभी देखने को मिल जाती हैं।

अन्य कथा-साहित्य की पुस्तको मे प्राय सभी भारतीय भाषाए धनी हैं। अपने प्रदेश की लोककथाओ के अतिरिक्त 'पचतत्र', 'हितोपदेश' तथा 'ईसप' की कहानियो के अनुवाद तो लगभग सभी भाषाओ मे हो चुके है। इनके अतिरिक्त अब नए परिवेश मे नई समस्याओं और स्थितियो पर आधारित कहानिया भी लिखी जा रही है। उपन्यासो मे बगला, गुजराती और तेलुगू का बालसाहित्य बहुत समृद्ध है। बगला के बकिम बाबू के लगभग सभी उपन्यासो का हिन्दी मे बाल-रूपान्तर प्रस्तुत किया जा चुका है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भी अनेक बाल-कहानियो के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। गुजराती और तेलुगू मे भी बच्चो के लिए रोचक उपन्यास लिखे गए हैं तथा उनका कई भाषाओ मे अनुवाद हो चुका है। वैसे हिन्दी के भी कई उपन्यास अन्य भाषाओ मे अनूदित हो चुके हैं। हरिकृष्ण देवसरे के 'चन्दा मामा दूर के' उपन्यास का अनुवाद मलयालम तथा गुजराती मे हो चुका है। इसी प्रकार 'डाकू का बेटा' का अनुवाद कन्नड मे हो चुका है। लेकिन बगला तथा गुजराती की तुलना मे, हिन्दी मे बाल-उपन्यासो की बहुत कमी है। जो लिखे भी गए है—उनके विषयो तथा उद्देश्यो मे विविधता नही है। बालको के सामने आदर्श चरित्र तथा उद्देश्य प्रस्तुत करना ही, हिन्दी बाल-उपन्यासो के लेखको का मूल स्वर रहा है। जब कि अन्य भाषाओ म बाल-समस्या, विज्ञान, यात्रा तथा साहस आदि से सम्बन्धित विषयो पर उपन्यास लिखे गए है।

नाटको मे सम्पूर्ण भारतीय बालसाहित्य अभी बहुत पीछे है। बगला तथा हिन्दी मे इस ओर काफी तेजी से प्रयास आरम्भ हुए हैं, लेकिन अभी वे प्रारभिक अवस्था मे ही हैं।

पत्र-पत्रिकाओ की दृष्टि से लगभग सभी भारतीय भाषाए एक जैसी ही है। गुजराती म अवश्य ही कुछ प्रयास मौलिक हुए है—जैसे बच्चो के लिए साप्ताहिक तथा पाक्षिक पत्रो का प्रकाशन। हिन्दी म भी इन्दौर से 'बच्चो का अखबार' निकला है। किन्तु यदि सभी भाषाओ के बाल पत्रो पर एक दृष्टि डालें तो लगता है कि छपाई की सुविधाए होने के बाद भी बच्चो के लिए रग बिरगे पत्र उस स्तर के नही निकलते हैं, जैसे विदेशो मे आज निकल रहे हैं।

सक्षेप म भारतीय बालसाहित्य स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अधिक प्रगतिशील

हुआ है और आशा है कि अगले दस वर्षों मे वह विश्व की अन्य भाषाओं के बाल-साहित्य के समानान्तर आ जायगा।

(स) पाश्चात्य बालसाहित्य का हिन्दी बालसाहित्य पर प्रभाव

जैसा कि पहले ही कह चुके है कि आरभ मे हिन्दी बालसाहित्य, अंग्रेजी की नकल तो नही, लेकिन उससे प्रेरित-प्रभावित अवश्य रहा है। जब हिन्दी भाषा का स्वरूप तथा शैली निर्माण हो गया, तो उस समय तक विदेशी बालसाहित्य भारत मे आने लगा था और उसने भारतीय बच्चो को बहुत प्रभावित किया था। तद्-युगीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक वातावरण ने हिन्दी बालसाहित्य लिखने की प्रेरणा दी।

बालगीत—हिन्दी बालगीतों की पाश्चात्य बालगीतो से तुलना करते हुए श्री निरकारदेव सेवक का मत है—"अंग्रेजी मे जिस प्रकार के बालगीत आज हम प्रचलित देखते है उनका इतिहास लगभग ढाई सौ वर्ष पुराना है। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी का बालगीत साहित्य आयु मे अंग्रेजी बालसाहित्य से कही अधिक छोटा है। साहित्य के लिए परम्परा का मूल्य बहुत होता है। जिस भाषा की साहित्यिक पृष्ठभूमि जितनी पुरानी और परम्पराएं जितनी स्वस्थ होती है उनमे उतना ही श्रेष्ठ साहित्य लिखा जाता है। हिन्दी भाषा म अभी बडो के लिए लिखे जाने वाली कविताओं की ही पृष्ठभूमि सुस्थिर और स्वस्थ नही बन सकी है तो बाल-गीतो की पृष्ठभूमि के विषय म क्या कहा जाए ? इसलिए बालगीत के पारखी विद्वानो का यह मत है कि हिन्दी का बालगीत साहित्य अंग्रेजी बालगीत साहित्य की अपेक्षा बहुत नीरस तथा फीका है। किन्तु पिछली दो तीन दशाब्दियो म जिस तेजी से हिन्दी बालगीत साहित्य का भण्डार भरा गया है उसे देखते हुए लोगो का यह अनुमान भी गलत नही है कि हिन्दी बालगीत साहित्य की हीनता के बारे मे अब धारणा बदलनी होगी।"[१]

निरकारदेव सेवक के इस कथन से सहमत होते हुए भी इस सत्य को अस्वीकार नही किया जा सकता कि अंग्रेजी के बालगीतो न हिन्दी बालगीतो पर प्रभाव डाला है। भारतेन्दु युगीन कई कवियों ने अंग्रेजी की कविताओं से प्रभावित होकर रचनाएं लिखी। कई ने तो अनुवाद ही कर दिए। उदाहरण के लिए लागफेलो का यह गीत है—

Tell me not mournful numbers
Life is but an empty dream
For the soul is dead that slumbers
And the things are not what they seem

१. बालगीत साहित्य निरकारदेव सेवक, पृष्ठ २०५।

इसका प्रभाव श्रीधर पाठक की कविता 'जगत-सचाई-सार' पर स्पष्ट है.

कहो न प्यारे मुझ से ऐसा झूठा है यह सब संसार,
थोथा झगड़ा जी का रगड़ा, केवल दुख का हेतु अपार।
माना हमने वस्तु जगत की नाशवान है निस्सन्देह,
फिर भी तो छोड़ा नही जाता पल भर को भी उसमें नेह।

श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय ने अनेक अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद किया था। 'दि बी' का अनुवाद 'मधुमक्खी' नाम से, 'दि चाइल्ड एण्ड दि बर्ड' का 'चिड़िया और बालिका', 'दि वैस्प एण्ड दि बी' का 'मधुमक्खी और बर्रैया' शीर्षक से किया था। इसी प्रकार ऋतुओं तथा खेलकूद से सम्बन्धित अनेक गीत अंग्रेजी के प्रभाव में लिखे गए। आज भी अंग्रेजी के श्रेष्ठ बालगीतों के प्रभाव को ग्रहण करने में कवि बुरा नही मानते। अंग्रेजी में सागर-तट पर रहने वाले बालकों का एक गीत है—

I saw a ship a sailing,
A sailing on the sea
And oh, it was laden
With pretty things for thee...

सागर-तट के ही बालकों के लिए आधुनिक कवि रामावतार चेतन ने लिखा है—

सागर दादा, सागर दादा!
नदियों झीलों के परदादा।
तुम नदियों को पास बुलाते,
ले गोदी में उन्हें खिलाते।
झीलों पर भी स्नेह तुम्हारा,
हर तालाब तुम्हें है प्यारा।

अंग्रेजी का प्राचीन गीत है—

The cock doth crow
To let you know
If you be wise,
It is time to rise

इससे प्रभावित होकर निरंकारदेव सेवक ने लिखा—

खेलोगे तुम अगर फूल से तो सुगन्ध फैलाओगे,
खेलोगे तुम अगर धूल से तो गंदे बन जाओगे।
कौए का यदि साथ करोगे तो बोलोगे कड़वे बोल,
कोयल का यदि साथ करोगे तो तुम दोगे मिश्री घोल।[१]

---

१ बालगीत साहित्य निरंकारदेव सेवक, पृष्ठ २२०।

इसी प्रकार हिन्दी मे अब 'नानसेन्स राइम्स' तथा 'नर्सरी राइम्स' लिखने का भी खूब प्रचलन है। यह वास्तव मे अग्रेजी का ही प्रभाव है। उदाहरण के लिए अग्रेजी का यह 'नर्सरी राइम' लें—

Pussy cat, Pussy cat, where have you been ?
I have been to London to visit the queen
Pussy cat, Pussy cat, what did you there ?
I frightened a little mouse under the chair

इसी से मिलता हुआ गगासहाय प्रेमी का यह 'शिशु गीत' देखे—

मौसी बिल्ली, बडी चिबिल्ली
जाकर पहुची दिल्ली।
लाल किले के ठीक सामने
लगी खेलने गिल्ली।
चुहा आया चुहिया आई
आए पिल्ला-पिल्ली।
ताली बजा-बजा मौसी की
लगे उडाने खिल्ली।[1]

इस प्रकार किसी न किसी रूप मे निश्चय ही अग्रेजी के बालगीतो ने हिन्दी बालगीतो को प्रभावित किया है।

बाल-कहानी—कहानियो मे तो यो भारत आदिकाल से समृद्ध रहा है और उसकी कहानियो ने विश्व के बाल साहित्य तक को किसी न किसी रूप म निश्चय ही प्रभावित किया है। लेकिन आधुनिक युग मे यह प्रभाव काफी विस्तृत हो गया है। वैज्ञानिक, यात्रा-सस्मरण तथा बाल मनोविज्ञान से सम्बन्धित कहानिया लिखने की प्रेरणा बहुत कुछ अग्रेजी बालसाहित्य से ही ग्रहीत हुई है। अन्तरिक्ष यात्रा सम्बन्धी काल्पनिक उडान की आधार एच० जी० वेल्स तथा जूलिस बर्न की कहानिया ही अधिक हैं। यात्रा सस्मरण तथा बाल-मनोविज्ञान से सम्बन्धित कहानियों को भी अग्रेजी के प्रभाव से ही लिखा गया है। आज भी अनेक वैज्ञानिक कथाओं की रचना का आधार विदेशी कथाए ही होती हैं। साहित्य मे बालक के स्वतत्र अस्तित्व की स्वीकृति एव उसकी मनोवृत्ति के अनुकूल कहानिया लिखने के लिए अग्रेजी की कथा-पुस्तको ने बहुत प्रभावित किया है। अग्रेजी की प्रसिद्ध कथा पुस्तकें 'राबिन्सन क्रूसो', 'ट्रेजर आइलैंड' आदि का अनुवाद बहुत पहले ही हो चुका है। 'ग्रिम की कथाओ' तथा उनके जीवन ने बाल-लोक-साहित्य की कथाओ का सकलन करने म बहुत प्रेरणा दी है। आज तो लगभग सभी उत्कृष्ट अग्रेजी

---

१ 'पराग', जनवरी १९६६।

बालसाहित्य का अनुवाद हो रहा है। उसी की प्रेरणा से कई लेखकों ने भारतीय वातावरण के अनुकूल कहानियां लिखी है। महात्मा भगवान दीन कृत 'बिल्ली रानी' ऐसी ही पुस्तक है। उन्होंने स्वयं पुस्तक के आरंभ मे लिखा है—"बचपन मे केन साहब की लिखी हुई 'बिल्ली की कहानी' पढी थी। अग्रेजी मे पढी थी। कुछ आनन्द नही आया था। अब सतहत्तर वर्ष की आयु मे एक दिन न जाने कहा से वह बिल्ली की कहानी की किताब मेरे पौत्र अखिलेश के हाथ पड गई। उसने उसे अटक-अटककर पढना शुरू किया। यह देख वह उसमे रस ले रहा है, मेरे मन ने कहा कि इस जैसी या इससे मिलती-जुलती कहानी ऐसी क्यो न लिख दी जाय जो हिन्दुस्तानी बच्चा के काम आये। मेरे विचार का समर्थन मेरी पुत्र-वधू कृष्णा ने किया। मै बोलने बैठ गया, वह लिखने बैठ गई और यह कहानी तैयार हो गयी।"

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद मे विश्व के महान् कहानीकारो की उत्तम कहानियो का सकलन 'सोने का सिक्का' प्रकाशित हुआ। इसी प्रकार आत्माराम एण्ड सस ने विदेशी वैज्ञानिक कथाओं के अनुरूप कई पुस्तक प्रकाशित की है जिनमे—सतोषनारायण नोटियाल कृत 'चन्दा मामा का देश', मन्मथनाथ गुप्त कृत 'आदमी का जन्म', योगन्द्रकुमार लल्ला कृत 'मच्छर और मक्खी की कहानी' आदि उल्लेखनीय है। उमेश प्रकाशन दिल्ली ने 'किशोर उपन्यास माला' के अन्तर्गत शेक्सपियर के नाटको के कथानको का औपन्यासिक रूपान्तर प्रस्तुत किया है। विश्व के महाकाव्य—'ओडिसि', 'यूलिसिस', 'एकिलिस' आदि के कथा-रूपान्तर नशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ने प्रकाशित किए है।

विदेशी लोककथाओ के भी अनेक रूपान्तर तथा अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। पब्लिकेशन्स डिवीजन दिल्ली ने इस दिशा मे काफी महत्त्वपूर्ण काम किया है।

इस प्रकार हिन्दी बालसाहित्य का कथा-क्षेत्र जहा अपनी परम्परागत-स्थिति मे समृद्ध था, वही उसने पाश्चात्य बाल-कथा-साहित्य को समाविष्ट किया। कई लेखकों ने तो अनुवाद करते समय, उन कृतियो का भारतीयकरण कर दिया है। आनन्द प्रकाश जैन कृत 'बुद्धूमल के कारनामे' ऐसा ही उपन्यास है। इसके पात्रो के रूसी नाम बदलकर 'बुद्धूमल', 'कचौराम', 'अरुन पुष्पा' आदि कर दिए है। फिर भी उपन्यास बहुत रोचक और भारतीय जैसा सिद्ध हुआ है।

नाटक—नाटको के क्षेत्र मे पाश्चात्य बालसाहित्य ने अभी तक बहुत थोडे ही अशो मे प्रभावित किया है। आज विदेशो मे विद्यमान बालथियेटरो के समान हमारे यहा एक भी थियेटर नही है। किन्तु इतना अवश्य है कि इस दिशा म अब आवश्यकता महसूस की जाने लगी है और कलकत्ता मे 'चिल्ड्रन लिटिल थियेटर' की स्थापना भी हो चुकी है।

सक्षेप मे, पाश्चात्य बालसाहित्य ने हिन्दी बालसाहित्य को जिस रूप मे

प्रभावित किया, उससे हिन्दी बालसाहित्य की अभिवृद्धि होने के साथ-साथ उसे कई नई दिशाएं भी मिली हैं। आज का पाश्चात्य बालसाहित्य, हिन्दी के वर्तमान बालसाहित्य को युगानुरूप बनाने में बहुत महत्त्वपूर्ण प्रेरणा दे रहा है। अतः हिन्दी बालसाहित्य का पाश्चात्य बालसाहित्य के प्रति सहयोगी भाव होना स्वाभाविक ही है और उपयोगी भी है।

सातवा अध्याय

हिन्दी बालसाहित्य का कला-विधान

बच्चो के मानसिक विकास को समझने मे भाषा का विशेष महत्त्व होता है। बच्चे भाषा के माध्यम से अपने विचारो की अभिव्यक्ति ही नही देते बल्कि भाषा से उनके विचारो मे परिपक्वता भी आती है।...साहित्यिक सौन्दर्य तथा ज्ञान की अभिवृद्धि के लिए विभिन्न शैलियों के माध्यम से लेखक-कवि अपनी बात कहते रहे हैं। इनसे न केवल सामग्री रोचक तथा मनोरजक बनती है बल्कि वह उपयोगी तथा ज्ञानवर्धक भी सिद्ध होती है।

किसी भी भाषा का बालसाहित्य तभी उपयोगी तथा लोकप्रिय बन सकता है, जब उसकी भाषा, शैली तथा विषय का प्रतिपादन बच्चो की रुचि के अनुकूल होगा। जिस पुस्तक मे बच्चो के मन की बातें, उनकी ही भाषा में नही होती, वे बच्चो को स्वीकार्य नही होती। इसलिए बालसाहित्य मे कला-विधान अपने विशिष्ट रूप मे प्रस्तुत होता है। बालसाहित्य का प्रमुख गुण, बाल-मन से तादात्म्य स्थापित करना होता है। इस स्थापना मे कला-विधान को सहायक ही सिद्ध होना चाहिए, बाधक नही। यही कारण है कि सामान्य साहित्य की अपेक्षा बालसाहित्य म कला-विधान विशेष महत्त्व रखता है। अनेक लेखक बालसाहित्य लेखन मे असफल इसीलिए हो जाते हैं कि बालसाहित्य रचना मे जिस कलात्मक पकड की आवश्यकता होती है, वह उनके हाथ नही लगती।

(अ) बच्चो का भाषा-ज्ञान

'किसी जाति के भाषा विकास का इतिहास उसकी बुद्धि-विकास का इतिहास होता है। दूसरे जानवरो मे मनुष्य, भाषा के कारण ही अधिक शक्तिशाली

है। सभ्यता का विकास और भाषा का विकास एक साथ ही होता है। पहल पहल बच्चा प्रत्यक्ष पदार्थों से अपना काम चलाता है, पीछे वह भाषा का काम म लाना सीख जाता है। शिक्षा का एक प्रधान लक्ष्य बालक को ठीक भाषा सिखाना है। किसी भी व्यक्ति की बुद्धि का सर्वश्रेष्ठ माप उसका शब्द भडार है।"[1]

बच्चों के मानसिक विकास को समझने मे भाषा का विशेष महत्त्व होता है। बच्चे भाषा के माध्यम से अपने विचारो को अभिव्यक्ति ही नही देते है बल्कि भाषा द्वारा उनके विचारा मे परिपक्वता भी आती है। इस कारण बाल मनो विज्ञान मे भाषा का महत्त्व इसलिए भी है कि वह विचारा से सम्बन्ध रखती है।[2]

आरभ मे बच्चे अनुकरण द्वारा बोलना सीखते है। जब किसी शब्द को बार-बार वे आसपास सुनते हैं तो अनुकरण करने की प्रवृत्ति उन्ह उस शब्द की ओर आकर्षित करती है और वे उसे याद कर लेते है। फिर अनेक वस्तुआ तथा व्यक्तिया के लिए वे उसी शब्द का प्रयोग करते रहते है। लेकिन इसके साथ-साथ बोलने की प्रक्रिया मे प्रेरित होकर बच्चे अनेक निरर्थक शब्दा को भी बोलते रहते है। जब धीरे-धीरे वे विशेष भाव बोध के लिए विशेष शब्दो से परिचित होने लगते है तो निरर्थक शब्दो को बोलना बन्द कर देते है। इस तरह बालक का शब्द-कोष बढन लगता है।

---

1 The history of the development of language of the race is the history of the growth of intelligence Man's superiority over lower animals can be explained almost completely on the basis of language Language keeps pace with the growth of civilization The same is true in the life of the individual At first the infant deals only with the concrete, later with ideas and language Education consists to some extent in the growth of language habits The best single measure of the intelligence of an individual is the size of his vocabulary

—Dumville, *Fundamentales of Psychology* Page 127

2 This area of child development is one of the most important for child psychology, not only because the possession of the ability to speak is one of the distinguishing characteristics which sets man apart from the lower animals, but also because of the intimate relationship which exists between language and thought

—Dorothea McCarthy From Chapter—*Language Development in Children Manual of Child Psychology* Page 492

बच्चो मे वास्तविक भाषा-ज्ञान तीन वर्ष की आयु से आरभ होता है, जब कि सीखे हुए शब्द उनकी इच्छाओ को तृप्त करने मे सहायक होते है। कुछ मनोवैज्ञानिको का विचार है कि बालको की अपेक्षा बालिकाए अधिक शीघ्रता से भाषा सीखती है। किन्तु वास्तविक तथ्य यह है कि जिस बालक-बालिका मे अनुकरण की प्रवृत्ति जितनी तीव्र होगी वह उतनी ही शीघ्रता से भाषा सीखेगा। बच्चे जिस वातावरण मे रहते है, उसमे हजारो शब्द उनके चारो ओर घूमते रहते हैं। लेकिन उनमें से कुछ ही उन्हे ग्राह्य होते है। यह वास्तव मे अज्ञात सहज-क्रिया के परिणामस्वरूप बालको के मस्तिष्क मे आ जाते है। इसके अलावा कुछ शब्द ऐसे होते है, जिनकी ध्वनिया बच्चों को बहुत अच्छी लगती है और वे उन्हे ग्रहण कर लेते है। 'म्याऊ', 'च्-च्', 'भो-भो' आदि कुछ ऐसे ही शब्द है।

श्री लालजीराम शुक्ल ने बच्चो मे भाषा-विकास की अवस्थाओ का चार भागो मे विभाजित किया है[१]—

१ प्रारम्भिक अवस्था—जन्म से १ साल तक। इस अवस्था मे बच्चे निरर्थक शब्दो का उच्चारण करते हैं। वास्तव मे यह एक अवस्था होती है जब बच्चे भाषा सीखना आरभ कर देते है।

२ दूसरी अवस्था—१ साल से १½ साल तक। इस अवस्था मे बच्चे एक ही शब्द सीखते है। 'मा', 'मामा', 'पापा' आदि ऐसे ही कुछ उदाहरण है। यह एक शब्द ही, वास्तव मे पूरे वाक्य का बोध कराता है। उस समय बालक की क्रियाए अर्थ को अधिक स्पष्ट करती है।

३ तीसरी अवस्था—१½ साल से २½ साल तक। सरल वाक्यो का उच्चारण करने की क्षमता इस आयु मे आ जाती है। इसमे पहले दो शब्दो से मिलकर बनने वाले वाक्यों का प्रयोग होता है जैसे 'पापा आ', 'दूध दो', 'रोटी दो' आदि। फिर धीरे-धीरे शब्द सख्या बढती है और वह बढते-बढते पाच से सात तक हो जाती है।

४. चौथी अवस्था—२½ साल से आगे। इस अवस्था मे बच्चे कठिन शब्दो और वाक्यो को बोलने का प्रयास करने लगते हैं। इन वाक्यो मे व्याकरण के अनेक दोष हो सकते हैं, किन्तु बालक के विचारो की अभिव्यक्ति निश्चय ही सही होती है। चार वर्ष की अवस्था मे पहुचकर उसके वाक्य बहुत सुधर जाते है और उसके पास शब्दो का भडार भी बढ जाता है।

बच्चो के शब्द भडार के बारे मे आर० सीशोर ने अमरीका मे कुछ प्रयोग किए थे। उन प्रयोगो के कुछ निष्कर्ष किसी सीमा तक भारतीय परिवेश मे भी उपयोगी हो सकते हैं। उन्होने सुझाव दिया है कि बच्चो को मुक्त वातावरण मे छोड देना चाहिए, जिससे वे अधिक मे अधिक शब्द सुनें और उन्हे ग्रहण करें। उनमे शब्द-ग्रहण की क्षमता निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायगी—

---

१ बाल मनोविकास, पृष्ठ २५०।

१. चार साल	...	...	५,६०० शब्द
२ पाच साल	...	...	६,६०० शब्द
३. छ साल	...	...	१४,७०० शब्द
४ सात साल	...	...	२१,२०० शब्द
५ आठ साल	...	...	२६,३०० शब्द
६. दस साल	...	...	३४,३०० शब्द।[१]

उपर्युक्त तालिका मे बच्चो मे शब्द-ग्रहण क्षमता दे गई है। यह क्षमता, देश-काल तथा वातावरण के अनुसार कम अधिक भी हो सकती है। अशिक्षित और चातुर्यहीन परिवार के बच्चे साधारण बोलचाल के शब्दो तक सीमित रहने के कारण अपना शब्द ज्ञान नही बढा पाते। किन्तु शिक्षित और चतुर परिवार के बच्चे अधिकाधिक शब्द सीखते है। इसलिए भाषा-ज्ञान के अन्तर्गत बच्चों की शब्द-सख्या सम्बन्धी प्रयोग करने से पूर्व यह बहुत आवश्यक है कि शिक्षित, अशिक्षित, सुसस्कृत, ग्रामीण आदि सभी वर्गो का अलग-अलग सर्वेक्षण किया जाय और प्राप्त निष्कर्षो का अध्ययन किया जाय। भाषा-ज्ञान के विकास मे इन विभिन्न वर्गों का प्रभाव बहुत पडता है। बालक के भाषा-ज्ञान को जानना-परखना बहुत आवश्यक है। सफल बालसाहित्य लेखक वही हो सकता है जो बच्चों की भाषाभिव्यक्ति से भली भाति परिचित हो। तभी वह उनके मन की बात उनके ही शब्दों मे कह सकेगा। प० लालजी राम शुक्ल ने बच्चों के भाषा-ज्ञान को जानने-परखने का एक सहज तरीका बताया है—"बालक जिन शब्दो को बोल-चाल के काम मे लाता है, उनको सकेत लिपि से लिखकर हम बालक के भाषा-ज्ञान का पता भली भाति लगा सकते है। यह सब से सरल तरीका है जिसे सभी माता-पिता काम मे ला सकते हैं। सकेतलिपि के न जानने पर भी हम यह काम कर सकते हैं। यदि हम किसी भी तीन साल के बालक के दिन भर के प्रयुक्त शब्दो को लिखते जायें तो हमे प्राय उसकी पूरी प्रयोग शब्दावली का परिचय हो जायगा।"[२]

लेकिन मनोवैज्ञानिको ने बच्चो का भाषा-ज्ञान जानने के लिए विभिन्न तरीके अपनाए है तथा अनेक सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। इनमे सबसे प्रचलित तरीका टरमन साहब का है। उन्होंने एक शब्दकोश से सौ शब्द चुन लिए। ये शब्द कोई भी हो सकते है। मान लीजिए उन्होंने यह चुनाव इस आधार पर किया कि शब्दकोष के हर १८० शब्द के बाद वाला शब्द लिया जाय। अब इन १०० शब्दो को विभिन्न आयु के बच्चो के सामने रखा गया। मान लीजिये दस वर्ष की आयु का बालक १०० मे से केवल ३० शब्द जानता है तो १८ × ३० = ५४०० शब्दो का भाषा-ज्ञान उस बालक को है। अपने इसी सिद्धान्त के आधार

1. R.Seashore · *A New Light on Children's Vocabularies*, P.163-164

२. बाल-मनोविकास, पृष्ठ २५६।

पर टरमन साहब ने भिन्न-भिन्न अवस्था के बालकों के भाषा-ज्ञान की एक तालिका भी प्रस्तुत की थी जो इस प्रकार थी—

अवस्था	...	शब्द संख्या
१० महीना	...	१
१ वर्ष	...	३
१ वर्ष ६ माह	...	२२
१ वर्ष ६ माह	...	११८
२ वर्ष ६ माह	...	२७२
२ वर्ष ६ माह	...	४४६
३ वर्ष	...	८६६
३ वर्ष ६ माह	...	१२२२
४ वर्ष	...	१५४०
६ वर्ष	...	२५००
८ वर्ष	...	३६००
१० वर्ष	...	५४००
१४ वर्ष	...	६४००

इस प्रयोग से बच्चों की भाषा निश्चित करने मे बहुत सहायता मिल सकती है। वास्तव मे बालक का बुद्धि-विकास, भाषा-विकास पर निर्भर करता है। जो बालक सफलतापूर्वक भाषा का प्रयोग कर लेता है वह अपने विचारों को सगठित कर उन्हे अभिव्यक्ति प्रदान करने मे भी सफल होता है।

(ब) हिन्दी बालसाहित्य में भाषा

बच्चों के आस-पास हजारों शब्द गूजते है। वे उनमे से केवल वही शब्द ग्रहण कर लेते है, जो उनके काम के होते है अर्थात् जिनके माध्यम से उनकी इच्छा पूर्ति हो जाती है। वास्तव में इस प्रकार का शब्द चुनाव, एक सहज प्रक्रिया का परिणाम होता है।

बच्चों का भाषा-ज्ञान दो तरह से विकसित होता है—

१ बातचीत द्वारा।

२. शिक्षा द्वारा।

१ बातचीत करने से बच्चे भाव-प्रकाशन की क्षमता तथा शब्द-ज्ञान अर्जित करते हैं। इसके लिए उन्हे कहानिया सुनानी चाहिए। घुमाते समय तरह-तरह की वस्तुओं के बारे मे बताना और उनकी जिज्ञासा शान्त करना चाहिए।

२ धीरे-धीरे बच्चों को पढना-लिखना सिखाना चाहिए। पढने से बालकों का भाषा-ज्ञान पुष्ट होता है। फिर जैसे-जैसे भाषा-ज्ञान विकसित होता है, उसके साथ ही वस्तु-ज्ञान भी बढता जाता है।

बच्चों का भाषा-ज्ञान विकसित करने मे बालसाहित्य का अपना महत्त्वपूर्ण योगदान है। कहानियो तथा सुन्दर चित्रों के लोभ मे, बच्चे पुस्तकें पढने की ओर आकर्षित होते हैं। किन्तु यदि पुस्तक की भाषा कठिन अथवा बालक की समझ मे न आने वाली हुई तो वह उसे नही पढता। वास्तव मे यह मनोवैज्ञानिक तथ्य ही इस बात का प्रमाण है कि बालसाहित्य मे केवल ऐसी भाषा का महत्त्व है जो बच्चे सरलता से समझ सकें। स्कूल की किताबो की अपेक्षा बालसाहित्य की पुस्तकों में अधिक रुचि लेने का कारण यही है कि वह पहले की अपेक्षा अधिक सरल और मनोरजक होता है। बालक बालसाहित्य को अकेले बैठकर पढ सकता है और उसे समझने के लिए अध्यापक या माता-पिता की सहायता की आवश्यकता नही पडती।

बालसाहित्य की विभिन्न विधाओं मे, बालकों के भाषा-ज्ञान की सीमाओं के अनुकूल, भाषा प्रयोग के पृथक्-पृथक् मानदण्ड है। आगे के विवेचन से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी।

१. **बालगीत**—आरम्भ मे बच्चे निरर्थक शब्द बोलते है और उन्ही के माध्यम से अपने मन के भाव प्रकट करते है। निरर्थक-शिशु-गीत अर्थात् 'नान्सेन्स राइम्स' इसी प्रकार के शब्दो मे लिखे जाते हैं। किन्तु जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं कि ये गीत हमारे लिए निरर्थक हो सकते हैं। बच्चों के लिए तो एक निश्चित अवस्था तक वे ही भावाभिव्यक्ति के माध्यम होते है। इसके बाद जैसे ही बालक अपने आसपास की वस्तुओ, पशु-पक्षियो के बारे मे ज्ञान प्राप्त करने के साथ उन्हे अपना सहचर समझने लगता है तो सरल शिशु-गीतों मे उसे रुचि होने लगती है। उस समय उन शिशु-गीतो के माध्यम से उसके मन की बातें स्पष्ट होने लगती है और वह विभिन्न क्रियाओ से प्रसन्न होने लगता है। उदाहरण के लिए—

मेरी जीजी आशा,
लाई एक बताशा,
जभी बताशा तोडा
उससे निकला घोडा।
घोडा सटपट भागा,
मैं भी चटपट जागा।
घोड़े को जा पकडा,
मुंह लगाम मे जकडा।
ऊपर कूद लगाई,
पी पी बीन बजाई।

(लगन, 'पराग', अगस्त १९६५)

इस तरह के गीतो मे छोटी आयु के बच्चों की लयात्मक तथा [illegible]

शब्द बहुत अच्छे लगते है। लयात्मक होने के कारण ही बच्चो को लोरिया अच्छी लगती हैं। जिन शब्दो की ध्वनिया कोमल होती हैं उन्हे ग्रहण करने मे बच्चो को सरलता होती है। वे उनका उच्चारण सुगमता से कर लेते हैं। किन्तु सयुक्ताक्षर या कई मात्राओ वाले शब्दो को बोलने मे कठिनाई होती है। अत शिशु-गीतो मे इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि शब्द लयपूर्ण, कोमल ध्वनियो वाले तथा छोटे आकार के हो। कई अक्षर वाले शब्द शिशु के मस्तिष्क के लिए बोझिल सिद्ध होते हैं।

जब भाषा ज्ञान विकसित होने लगता है तो बच्चे अन्य गीतो को गाने पढने लगते हैं। खेल गीत इस तथ्य की पुष्टि मे सर्वप्रथम आते है। बच्चे खेल-खेल मे अनेक गीत दुहराते रहते है। किन्तु इन गीतो मे ऐसे शब्दो की प्रचुरता होती है जो बार-बार दुहराए जाते हैं। भले ही उसका अर्थ कुछ न निकले, किन्तु खेल का आनन्द लेने तथा गीत गाने की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर बच्चे एक ही शब्द दुहराते रहते है—उदाहरण के लिए—'कोडा है जमालशाही''' कोडा है जमालशाही' '' या 'हुड कबड्डी आलताल'' आलताल '' आदि।

गीतो के माध्यम म भाषा-ज्ञान प्राप्त करने की यह प्रक्रिया आगे चलकर अन्य गीतो जैसे कोयल, कुत्ता, तोता, मैना आदि के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। इन गीतो मे भाव तथा भाषा दोनो की प्रधानता समान रूप से होती है। सरल तथा गेय शब्दो मे बच्चो के मन की कल्पनाभिव्यक्ति करने वाले गीत बच्चो का मन लुभाते हैं—

छुट्टी हुई खेल . की।
चढी कढाई तेल की।।
सुर-सुर उठता बुलबुला।
छुन-छुन सिकता गुलगुला।।
भुरभुरा और फुलफुला।
बडे मजे का गुलगुला।।
गुलगुला जी गुलगुला।
मीठा - मीठा गुलगुला।।

उपर्युक्त गीत मे शब्दो की आवृत्ति, लय तथा कोमल ध्वनि के माध्यम से गुलगुला बनने, उसके स्वाद तथा आनन्द की अभिव्यक्ति बडी कुशलता से हुई है।

इसी तरह गीतो का स्तर बढता जाता है। नये-नये शब्द जुडते जाते है। प्रयाण गीत तथा सामूहिक गीतो मे वीरता तथा साहस का भाव जगाने वाले शब्दो का प्रयोग होता है। प्रार्थना तथा ईश वन्दना मे विनय भाव की अभिव्यक्ति करने वाले शब्द प्रयुक्त होते है। लेकिन इनके मूल मे, जैसा कि हम कह चुके हैं, सरलता तथा गेयता का गुण प्रमुख होता है।

२ बाल कहानी—कहानियो को सुनाते समय या लिखते हुए इस बात का

ध्यान विशेष रूप से रखना चाहिए कि कोई ऐसा शब्द न आने पाये जिसके अर्थ के लिए बालक को भटकना या टोकना पड़े। इससे कथा-रस में बाधा पड़ती है। कहानी में अलग-अलग घटनाओं तथा स्थितियों का वर्णन प्रस्तुत करते समय, अलग-अलग शब्दों का प्रयोग करना चाहिए, जो उस घटना या स्थिति के अनुकूल हो तथा निश्चित वातावरण का निर्माण कर सकें।

छोटे बच्चों को कहानी सुनाते समय केवल यह कहने से काम नहीं चलता कि 'बिल्ली पूछने लगी कि मैं क्या खाऊं?' इसे तो इस तरह सुनाना या लिखना होगा—"बिल्ली बोली—म्याऊ···म्याऊ···पूछने लगी मैं क्या खाऊ···मैं क्या खाऊ···म्याऊ···म्याऊ।" सुनाते समय यदि बिल्ली की आवाज निकाले तो और भी आनन्द आएगा। इस तरह बालक यह विश्वास कर लेता है कि बिल्ली ने सच-मुच ऐसे कहा होगा।

धीरे-धीरे बालक जब आश्चर्यजनक कहानिया सुनने-पढ़ने में रुचि लेने लगे तो भाषा के माध्यम से प्रस्तुत विभिन्न चित्र ही आनन्द देते है। सरल किन्तु मुहावरेदार तथा सशक्त भाषा बालकहानियो के प्रभाव को द्विगुणित कर देती है। जहा तक सम्भव हो वाक्य छोटे हो। उन्हे समझने मे बच्चो को आसानी होती है। वे कहानी क्रम से समझते जाते हैं।

कई कहानियो मे पद्य भी होते हैं और उनकी पुनरावृत्ति होती है। ऐसे पद्य भी बहुत सरल होने चाहिए।

दो उदाहरण प्रस्तुत है, जो उपर्युक्त दोनो प्रकार के भाषा रूपों को स्पष्ट करते हैं।

(१) एक बार एक मुर्गा था और एक थी मुर्गी। एक रोज मुर्गा बगीचे में जमीन खोद रहा था। खोदते-खोदते उसे सेम का एक दाना मिला। 'कुडक-कुडक-कुडक', मुर्गा चिल्लाया। 'मुर्गी, ले सेम का दाना ला।' 'कुडक-कुडक-कुडक, धन्यवाद मुर्गे।' मुर्गी ने जवाब दिया, 'इसे तुम्ही खा लो।'
मुर्गे ने सेम के दाने मे चोंच मारी और उसे उठाकर निगल गया। सेम का दाना उसके गले मे अटक गया।

(२) 'गुलगुले, ओ गुलगुले। मैं तुझे खा जाऊगा।' खरगोश ने कहा। 'नही···नही, मुझे न खाओ, खरगोश। मैं तुम्हे एक गीत सुनाए देता हू—

मैं हू गोल गुलगुला,
खस्ता और भुरभुरा।
आटे के कुठार को
खुरच खुरच खुरच कर,
अनाज के कुठार को
भाड़ कर बुहार कर

जितना आटा मिल गया,
मलाई उसमे डालकर
गूंध गूंध कर बना
गोल गोल गुलगुला।
घी म सेंक भूनकर
खस्ता और भुरभुरा।
ठडा करने के लिए,
खिडकी म धरा गया।
मैं नही हू बेवकूफ
वहा से मैं लुढक चला,
बाबा को नही मिला,
दादी को नही मिला,
ओ मिया खरगोश राम
तुमको भी नही मिला।'

और खरगोश पलक भी न मार पाया कि गुलगुला लुढकता हुआ आगे निकल गया।

डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' का मत है—"बालक के प्रयोग में आने वाली शब्दावली का विकास उसके वातावरण और शिक्षा से होता है। बाल-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं में जो शब्द प्रयुक्त होते हैं उनका चुनाव प्राय इन सीमाओं म नही होता। अपनी बात को पुष्ट करने के लिए यहा उदाहरण देना आवश्यक है। 'पराग' बालकों के लिए प्रकाशित होने वाली एक प्रसिद्ध पत्रिका है। इस पत्रिका में प्रकाशित 'दिन वसन्त के' शीर्षक एक कविता की कुछ पंक्तिया इस प्रकार हैं—

आता नही दूध वाला अब
तडके ओवर कोट पहनकर।
मम्मी सुबह न आग सेंकती,
पापा नही जलाते हीटर।
लगी भीड बढने पनघट पर,
कुंज आम के बौराए है।
लगी कूकने कोयल, उसने
खोए स्वर फिर से पाए है।
('पराग', मार्च १९६४)

"इन पंक्तियों में प्रयुक्त शब्द, उनके अर्थ और अर्थ के माध्यम से प्रस्तुत होने वाले चित्र, लेखक के ज्ञान के बिखरे सदर्भ तो प्रकट करते हैं, किन्तु बालक के ज्ञान

के सदर्भो की पूर्णत उपेक्षा करते है। प्रथम छन्द मे एक ऐसा सन्दर्भ है, जो नगर के मध्यम श्रेणीय बालक के ज्ञान की भाषा से जुडा हुआ है। वह बालक 'दूधवाला', 'मम्मी' और 'पापा' के अभिधेय अर्थ को ग्रहण भी करता है और व्यक्त भी कर सकता है। उसकी 'एक्टिव' और 'पैसिव' दोनो ही प्रकार की शब्दावली मे 'पनघट', 'बौराए आम' और 'कूकती कोयलें' नही है। पनघट की जगह वह नल से पानी भरने वाला की भीड पहचानता है, कूकनी कोयला की जगह वह दरवाजे पर भाकते पालतू कुत्ते को समझता है। बौराए आमो का अर्थ ग्रहण करने के स्थान पर वह बगला या पाठशालाओ की चारदीवारी के घास-फूला का बोध रखता है। निश्चय ही यह कविता भाषा की दृष्टि से न तो बालक की स्मृति से जुडी है, न उसमे धीरे-धीरे विकसित होते 'तर्क' का साथ देती है और न उसकी रुचि, उत्सुकता, अवधान आदि को ही झकझोरती है। बालक के लिए रचना प्रस्तुत करके हर कुशल लेखक बालक की भाषा मे समाए अर्थो को 'स्मृति', 'अवधान', 'तर्क', 'रुचि' और 'उत्सुकता' के माध्यम से ताजगी देता है और इस प्रकार उसके ज्ञान को स्थायी बनाता है और तभी बालक का स्वस्थ मनोरजन भी होता है। किन्तु जब वह बालक की स्मृति म कभी भी न आने वाले अर्थो को बाहरी ज्ञान के आधार पर थोपता है, तब ऐसी रचना बालक की शक्तिया को भी किशोरा और प्रौढो की तरह व्यायाम कराती है। पूर्वोक्त कविताश मे इसी प्रकार की भाषा है, जो बालक को अस्वाभाविक मानसिक व्यायाम कराती है। वसत के आगमन का बोध व्यक्त करने वाला बालक अगर ग्रामीण क्षेत्र का माना जाय तो उसकी स्मृति का सदर्भ द्वितीय छन्द की भाषा से तो जुडता है किन्तु प्रथम छन्द मे प्रयुक्त 'मम्मी', 'पापा' और 'हीटर' शब्दो को उसकी 'एक्टिव' एव 'पैस्सिव' दोना ही प्रकार की शब्दावली म स्थान नही मिलेगा। तब यही सिद्ध होगा कि लेखक जान-बूझकर ग्रामीण बालक को भी 'मम्मी' और 'पापा' के वे अर्थ देना चाहता है, जो उसके व्यवहार से बाहर हैं। रचनाकार पत्रिकाओ म रचना भेजने से पूर्व उसकी शब्दावली एव वाक्य रचना को बालक की मानसिक प्रक्रियाओ, मूलभूत प्राकृतिक शक्तियों तथा स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अनुसार सावधानी से परख लेना चाहिए। उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि बालसाहित्य के निर्माता का उत्तरदायित्व उच्च साहित्य के रचयिता से कही अधिक है। बालक की भाषा स्थूल ग्राहिणी होती है। अत उसके लिए लिखी गई रचनाओ मे शब्दो का प्रयोग करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उनके माध्यम मे और बालक के वातावरण मे समाए ज्ञान का ही विस्तार हो। सभी मनोवैज्ञानिक लोग भी इस तथ्य से सहमत हैं कि बालक के मानसिक विकास म 'रुचि' और 'स्मृति' का प्रथम स्थान है। तर्क तथा 'अज्ञान' के प्रति कुतूहल एव औत्सुक्य भी बालक मे आरभ से रहते हैं, किन्तु वे प्रधान बनकर अपना विकास नही करते, रुचि और स्मृति मे ही जुडे हुए वे धीरे धीरे किशोरावस्था तक पहुचते हैं और वहा प्रधान हो जाते हैं। सस्कृत साहित्य तथा लोककथाओ म ऐसी भाषा मिलती है, जो अज्ञात एव अनदेखे सदर्भो का चित्रण करने

में समर्थ है तथा कल्पना मे उसे इतना कृत्रिम बनाया गया कि भूत-प्रेतों, विचित्र स्थितियों और सन्दर्भों को वह रोचक बनाकर तो प्रस्तुत कर जाती है, किन्तु बालक की स्मृति में जगत का विस्तार नही कर पाती। इस प्रकार के साहित्य ने पिछली शताब्दियों के बालकों मे अनदेखे और विचित्र सदर्भों के रूढ संस्कार जमाकर उनके प्रत्यक्ष ज्ञान-सत्य को दुर्बल बनाया है तथा उनकी स्मृति को जीवन के व्यावहारिक वातावरण से काटे रखा है। ऐसे प्राचीन ग्रन्थ और मौखिक लोककथाएं अब भी जीवित है और उन्हें पढकर वृद्ध हो जाने वाले पाठक अपने बच्चों को उन्ही का स्वाध्याय कराने में रस लेते हैं, किन्तु वे राष्ट्र की भयकर हानि करते है, वे देश की नई पीढी को अनुभूत ज्ञान से पलायन कराके कल्पित और रूढ जीवन से जोड़ते हैं।"[1]

डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' के मत मे सहमत होते हुए यहा यह भी उल्लेखनीय है कि बच्चों के लिए प्रकाशित निबन्धों में भी कभी-कभी लम्बे वाक्य, जटिल शब्दों का प्रयोग मिलता है। लेकिन इससे निबन्धों का विषय अधिक कठिन और न समझ मे आने वाला बन जाता है। बच्चों के लिए निबन्ध लिखना, साहित्यिक लेख या निबन्ध लिखने जैसा नही है बल्कि उसे तो बहुत सरल और प्रभावशील होना चाहिए। उदाहरण के लिए—"असल बात, सोचने की, समझने की बात यह तो है कि हम क्या करें, पर यह भी है कि कब करें और कैसे करें? जीवन में सफलता पाने की कुंजी यह है कि हम क्या, कब, कैसे इन तीनों को मिलाकर चलें। उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी को क्या करना है? उसे पढना है। ठीक है, कब पढना है? क्या सिर्फ परीक्षा के दिनों में? न उसे पूरे साल पढ़ना है। कैसे पढना है? इस तरह पढना है कि मेहनत, आराम और मनोरंजन तीनों साथ-साथ चलते रहें—एक मे कमी न आये। बस फिर जय ही जय है।"[2]

इस प्रकार बालसाहित्य में प्रयुक्त भाषा के सम्बन्ध में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि—

१ सरल तथा शुद्ध शब्दों का प्रयोग किया जाय। लोक बोली के शब्द, जहां तक सभव हो न दिये जाएं। फिर भी यदि कही वातावरण-निर्माण में सहायता प्राप्त करने के लिए आवश्यक ही हो तो लोक-बोली के शब्द प्रयोग किये जा सकते हैं, किन्तु उनका चुनाव इस बात को ध्यान में रखकर करना चाहिए कि वे उस रूप में भी बालक को उसके अर्थ का आभास दें।

२ वार्तालाप तथा सवादों में बालकों की बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया जाय।

३ जो वस्तुएं विद्यमान हैं तथा जो कुछ वातावरण बालक के चारों ओर है,

---

१ 'मधुमती', भारतीय बालसाहित्य विवेचन विशेषांक, पृष्ठ ३९८-४०२।
२ कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' 'धर्मयुग' (बालजगत), २२ अक्टूबर, १९६७, पृष्ठ ५४।

उससे सम्बन्धित शब्दो का प्रयोग अधिक किया जाय।

४ खेलकूद, उल्लास तथा बालसमूहों के बीच बच्चे जिन शब्दों का प्रयोग करते है उन्हे भी प्रयोग मे लाया जाय।

५ मुहावरो तथा प्रतीकात्मक शब्दो का प्रयोग छोटी अवस्था के बालको के साहित्य मे न किया जाय।

६ तुकात शब्दो का उच्चारण करने मे बच्चो को सरलता होती है और आनद भी मिलता है। अत कविताओ मे, कहानिया मे—तुकात शब्दो का प्रचुर प्रयोग उन्हे अधिक बालोपयोगी बनाता है।

७ सयुक्ताक्षरो का प्रयोग छोटी अवस्था के बालको के साहित्य मे न करे।

८ छोटे-छोटे वाक्यो का प्रयोग सामग्री को पठनीय तथा सरल बनाता है।

(स) हिन्दी बालसाहित्य में प्रयुक्त विविध शैलियां

साहित्यिक-सौन्दर्य तथा ज्ञान की अभिवृद्धि के लिए विभिन्न शैलियो के माध्यम से लेखक-कवि अपनी बात कहते रहे है। बालसाहित्य मे लगभग सभी विधाओ मे विभिन्न शैलियो का प्रयोग लेखक करते हैं। इनमे न केवल सामग्री रोचक तथा मनोरंजक बनती है, बल्कि वह उपयोगी भी सिद्ध होती है।

(१) गीत

गीतो के माध्यम से कई शैलियो का प्रयोग सभव हुआ है। इनमे प्रमुख हैं—

(क) गीत-कथाए

(ख) गीत-रूपक

(क) गीत-कथाए : कथाओ को गीतात्मक ढग से प्रस्तुत करने की शैली द्विवेदी-युग से आरभ हुई है। शैली मे कथाए गेय तथा तुकान्त शब्दो के प्रयोग मे बच्चो के लिए रोचक बन जाती हैं। हिन्दी के कवियो मे बच्चो के लिए गीत-कथाए लिखने वाले प्रमुख नाम हैं—स्व० मैथिलीशरण गुप्त, निरकारदेव सेवक, *चन्द्रपालसिंह यादव 'मयक', श्रीप्रसाद, रामवचनसिंह 'आनद', हरिकृष्ण देवसरे* आदि।

इन गीत-कथाओ को कभी-कभी सवादो के रूप मे भी बाट दिया जाता है। ऐसा करने से कथा मे नाटकीयता का पुट आ जाता है और बच्चो को खेल-खेल मे या अपनी कक्षा मे उसे अभिनीत करने मे आसानी होती है।

दोनो प्रकार की गीत-कथाओ के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१) एक रोज जगल के अन्दर, शेर, भेडिया, भालू बदर
चीता बडा तेज तर्रार, हाथी, घोडा और सियार।
चतुर लोमडी और खरगोश, अपने मन मे भरकर जोश
आए मिलकर सभा जुटाई, उसमे यह आवाज उठाई।
"राजा एक चुन लिया जावे, जो जगल मे राज चलावे।

सभी लोग बारी-बारी से, आकर पूरी तैयारी से।
अपनी अपनी बात बनाए, राजा हम क्यो किसे बनाए।"

× × ×

ऐसी बातें हुई वहा थी, सबने अपनी अपनी हाकी
सबका मन था राजा होवें, क्यो हम ऐसा मौका खोवें।
किन्तु बडी थी यह कठिनाई, कैसे हो सबकी मन भाई
राजा तो बस एक बनेगा, और उसी का हुक्म चलेगा।
फिर उन सबने यही विचारा, राजा वह ही बने हमारा
जो सबकी रक्षा कर पावे, जो दुश्मन से जान बचावे।
राजा जो भी जहा रहा है, उसने खुद तो कष्ट सहा है।
किन्तु प्रजा को सुख पहुचाना, दुश्मन से है सदा बचाना
राजा वही सदा हितकारी, जो सब ही को हो सुखकारी।
मतलब साधे मौज उडावे, नही प्रजा का हित कर पावे
ऐसा राजा नही चुनेंगे, उसकी बातें नही सुनेंगे।

('जगल का राजा'—चन्द्रपालसिंह यादव मयक,
'पराग' मई १९६३, पृष्ठ २०-२१)

(२) सुनो बालको, आज सुनाऊ तुमको बात पुरानी,
द्वापर बीत चुका जब जग मे आया कलयुग मानी।
एक दिवस उठ ग्वाले ने गायों का दूध लगाया,
और मिलाने को पानी का एक घडा भर लाया।
दूध खौलने लगा देखकर बात नवीन निराली,
सोचा शायद इस ग्वाले की समझ हुई मतवाली।
लेकिन यह पानी कैसे मुझमे मिलने को आया,
टूट पडा उस पर, रुकता कैसे उबाल था आया।

दूध कैसे आया यहा सवेरे ही ओ पतले पानी,
मुझसे मिलने की क्यो तूने आज हृदय मे ठानी।
आश्चर्य हो रहा मुझे खो गयी बुद्धि क्या तेरी ?
अपने को क्या समझ चला करने बराबरी मेरी।

पानी सुनो मित्रवर, नही चाहिए होना इतना रूखा,
पास तुम्हारे आया हू मैं मित्रभाव का भूखा।
आपे मे बाहर होने का नही समय यह भाई,
बनकर मित्र रहे इसमे ही पडती देख भलाई।

('दूध और पानी'—हरिकृष्ण देवसरे,
'किशोर', जुलाई १९५७)

(ख) गीत-रूपक : ये रेडियो पर अधिक सफलता से प्रस्तुत किये जाते हैं।

सभी संवाद तथा वर्णन गीतों में ही लिखे जाते है। कई पात्र मिलकर इसे प्रस्तुत करते हैं। इसमें सगीत की प्रधानता हो जाने पर ये सगीत-रूपक बन जाते है। गीत-रूपक पठनीय महत्त्व के कम, सुनने के अधिक होते है। एक गीत रूपक के अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :

(पृष्ठभूमि मे कुछ बालक-बालिकाओ की बातचीत तथा
रेडियो से गाने की ध्वनि)

एक बालिका (कौतूहल में)—

भैया सुनो-सुनो यह डिब्बा कैसे गाने गाता है।
बैठा इसके भीतर कोई बाजे विविध बजाता है।
कल इसको बाबूजी अपनी मोटर में रख लाये थे।
और उस समय भी इसने कुछ सुन्दर गाने गाये थे।

दूसरी बालिका—

अरे सवेरे तो यह डिब्बा शान्त और चुप था बैठा।
किन्तु पिताजी ने है जब से पकड कान इसका ऐंठा।
तब से अब तक जाने कितने गाये है इसने गाने।
थका नही, तोडे ही जाता यह मीठी-मीठी तानें।

एक बालक (उत्साहित होकर)

मैं बतलाऊ इसके भीतर रहता लाल बुझक्कड है।
नही इसे खाने - पीने की चिन्ता, यह जादूगर है।
गाने और बजाने मे वह दुनिया भर मे आला है,
उस जादूगर का यह डिब्बा सचमुच जादू वाला है।

तीसरी बालिका—

इसके भीतर लाल बुझक्कड़ है यह मैं क्या जानू ?
जादू का डिब्बा है—पक्की बात तुम्हारी मानू।

दूसरा बालक—

हा जादू का असली डिब्बा नाम रेडियो है इसका,
इसमें सुनते दुनिया भर की बातें, जी चाहे जिसका।
बडे काम का है यह डिब्बा, इस युग मे सच मानो,
सब बिजली की करामात है, झूठ इसे मत जानो।

('जादू का डिब्बा'—हरिकृष्ण देवसरे)

(२) बाल कहानी

बच्चो को कहानिया बहुत पसन्द होती है। हर रोज नई कहानी सुनने की प्रवृत्ति ने ही सभवतः कहानी की विभिन्न शैलियो को जन्म दिया है। साधारण वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त प्रमुख शैलिया ये हैं—

१. आत्मकथात्मक शैली : इसमे जिन वस्तुओ की कथा होती है, उनका मानवीकरण कर दिया जाता है और वे स्वय अपनी कहानी कहती हैं। उदाहरण के लिए 'कोयले की कहानी' के कुछ अश द्रष्टव्य हैं—

"मैं कोयला हू। काला-कलूटा कोयला। तुम लोग मुझे प्रतिदिन देखते हो। मेरा काला रग देखकर तुम मेरी ओर मे मुह फेर लेते हो। हाथ मे उठाने की तो बात ही दूर है, तुम मुझे छूना भी नही पसन्द करते। क्या करू ? मुझे कोई भी सफेद नही बना सकता।"

(मेरी भी सुनो'—नर्मदाप्रसाद खरे, पृ० २७)

आत्मकथात्मक शैली का पद्य मे भी प्रयोग किया जाता है। श्री मैथिलीशरण गुप्त की 'ओला' शीर्षक कविता इसी शैली मे लिखी गई थी—

एक सफेद बडा सा ओला,
था मानो हीरे का गोला।
हरी घास पर पडा हुआ था,
वही पास मैं खडा हुआ था।
मैंने पूछा क्या है भाई,
तब उसने यो कथा सुनाई।
जो मैं अपना हाल बताऊ,
कहने मे भी लज्जा पाऊ।
पर मैं तुम्हे सुनाऊगा सब,
कुछ भी नही छिपाऊगा अब।
जो मेरा इतिहास सुनेंगे,
वे उसमे कुछ सार चुनेंगे।

२ प्रतीक शैली : कुछ अदृश्य तथा अमूर्त पात्रो को जब कथा मे प्रस्तुत किया जाता है तो उनका मानवीकरण कर दिया जाता है। ऐसी कथाए भाव प्रधान अधिक होती हैं और बालको के सरल मन पर अपना निश्चित प्रभाव छोडती हैं। उदाहरण के लिए 'गीत और सगीत' की कहानी यहा प्रस्तुत है—

> गीत की कहानी" सगीत की कहानी" गीत और सगीत की कहानी" बहुत, बहुत पुरानी
>
> एक झील के पास पीपल का विशाल वृक्ष था। जिसकी छाया तले एक कबीला ठहरा था। कबीले मे मर्द भी थे, औरतें भी थी, बच्चे भी थे। वे पेडो की छाल या जानवरो की खाल पहने थे। वे कोई भाषा भी नही जानते थे। केवल सकेतो से बातें कर लेते थे।
>
> कबीले के दो बच्चे हसते-खेलते झील के किनारे आ गए। झील के

मध्य मे देखा···उजले-उजले दो फूल। लडकी ने लडके को फूल दिखाए। दोनो मे सकेतो से बातें होने लगी। लडकी बोली—"चलो तोड लाए।"

"नही, इतनी दूर तैरकर नही जा सकगे।" पर वे दोनो फूल के लिए ललच रहे थे। लडकी पानी मे कूदी तो लडका भी कूद गया। काफी मेहनत के बाद वे फूल तक पहुचे। फूल तोडकर लौट चले। पर दोनो थक गये थे। तैरना मुश्किल हो रहा था। कुछ देर बाद वो दोनो फूल सहित डूब गये।

साझ होने पर जब दोनो बच्चे कबीले मे लौटकर नही गए तो उन लोगो ने आसपास खोजा। नही मिले तो निराश होकर आगे बढ गये।

फिर कुछ दिनो बाद एक और कबीला आया। उसमे भी दो बच्चे थे। वे खेलते-खेलते झील के किनारे पहुचे। लडकी ने झील के बीचो बीच दो सुन्दर लाल फूल देखे। लडके से तोडने की बात कही। दोना भैंस की पीठ पर बैठकर चल दिए। फूल मिल गये। उनसे भीनी सुगध आ रही थी। दोनो उसमे मस्त होकर गुनगुनाने लगे। कबीले के लोगो ने बच्चा को गुनगुनाते सुना तो डर गये। लेकिन कबीले के अन्य लडके-लडकियो ने उन फूलो को सूघा तो वे भी गुनगुनाने लगे।

लडकियों ने जो गुनगुनाया वह सगीत हो गया, लडको ने जो गुन-गुनाया वह गीत हो गया।

गीत और सगीत की कहानी··

दो बच्चो के साहस और बलिदान की कहानी ··बहुत बहुत पुरानी ·।

२ **मुहावरा कथा-शैली :** इस शैली के अन्तर्गत दा तरह की कहानिया लिखी जाती है। एक तो वे जिनके पात्र कोई हो तथा कथानक कुछ भी हो सकता है। लेकिन कहानी के अन्त मे निष्कर्ष वही निकलता है, जो मुहावरे का होता है। इस प्रकार उस मुहावरे की सार्थकता सिद्ध हो जाती है।

किन्तु एक नई शैली आरम्भ की हरिकृष्ण देवसरे ने। इसमे उन्हाने मुहावरे से ही पात्र तथा कथानक निकाले और उन मुहावरों के जन्म, अर्थ तथा प्रयोग—तीनो गुणों को एक साथ चरितार्थ करने वाली कहानी लिखी। जैसे 'अन्धे के हाथ बटेर लगना' है। इसमे एक अन्धा व्यक्ति है, जिसके हाथ अचानक बटेर लग जाती है और उसका भाग्य खुल जाता है। 'सौ सुनार की एक लुहार की' मे सुनार और लुहार के बीच प्रतिस्पर्धा की भावना का चित्रण और अन्त म लुहार का विजयी होना बताया गया है। इस तरह अनेक कहानिया है। उदाहरण के रूप मे एक कहानी यहा प्रस्तुत है—इसका शीर्षक है—'अक्ल बडी कि भैंस'।

"एक जगल था। उसमे एक बहुत बडा तालाब था। जगल के सभी जानवर इसी तालाब मे पानी पीने आते थे। तालाब के किनारे एक पुराना पीपल का पेड था। उस पर अक्लू नाम का बन्दर रहता था। वह बहुत अक्लमद था। इसीलिए

सब उसे अक्लू कहते थे। जगल के जानवर अपने झगडे का फैसला कराने अक्लू के पास आया करते थे।

एक दिन की बात है। दोपहर का समय था। अक्लू अपने पेड पर बैठा हुआ था। इसी बीच एक भैंस आई। वह तालाब मे घुस कर नहाने लगी। बडी देर बाद जब वह तालाब से निकली तो उसकी देह मे मिट्टी और कीचड लगा हुआ था। अक्लू ने उसका यह रूप देखा तो बडी जोर से खी खी' करके हसने लगा।

भैंस तो आखिर ठहरी भैंस। बिगड गई। वह गुस्से से बोली, 'तुझे शर्म नही आती। अपने से बडो पर हसता है।'

'अरे जा अपना काम कर!' अक्लू ने ताने से कहा, 'चली है बडी बनने। इतना बडा डील-डौल है पर अक्ल रत्ती भर नही पाई है।'

इस बार अक्लू और जोर से हसा और खुशी से इधर-उधर दो-तीन बार उछला-कूदा।

भैंस भला अक्लू की बातो को क्यो सहने लगी? उसे ताव आ ही तो गया। वह लाल-पीली होकर बोली, 'तो फिर आ न। इस बात का फैसला हो ही जाय कि कौन बडा है, तू या मैं?'

भैंस और अक्लू की गरमागरम बातें जगल के अन्य जानवरो के कानो तक पहुची। उन्होने तय किया कि किसी न किसी तरह इस झगडे को निपटाना ही चाहिए।

शाम हुई, जगल के सभी जानवर तालाब के किनारे इकट्ठे हुए। सब की राय से तय हुआ कि जो कोई इस तालाब को बीच से पार कर जायगा वही बडा माना जायगा। इस प्रतियोगिता के लिए निर्णायक शेर बना और रेफ्री गीदड।

जगल के सभी जानवर यह मजेदार तमाशा देखने के लिए उत्सुक थे। वे सब तालाब के उस पार जाकर जम गये। इधर अक्लू, भैंस और गीदड रह गये। अक्लू बहुत परेशान था। उसे तैरना तो आता ही न था। आखिर इतना बडा तालाब कैसे पार किया जायगा। जब सारी तैयारिया पूरी हो गई तो गीदड ने दोनो को सावधान किया। उसके 'हुआ' हुआ करते ही दोना को तालाब मे तैरना शुरू करना था।

अक्लू की परेशानी बढ गई। दिल धडकने लगा। घबराहट के कारण कुछ सूझता ही न था। उसे डर था कि कही आज वह जगल के सभी जानवरो के सामने मूर्ख न साबित हो जाय।

अचानक गीदड ने 'हुआ हुआ' की पुकार लगाई। भैंस तैयार खडी थी। वह तालाब मे पिल पडी। अब अक्लू ने भी थोडी सी हिम्मत बाधी और अकल लगाई। अचानक एक तरकीब समझ मे आ गई। अक्लू खुशी से उछल पडा। उसने इस डाली से उस डाली दो चार छलागें लगाईं और तालाब की तरफ झुकी डाल पर जा पहुचा। भैंस अभी थोडी ही दूर गई थी। बस अक्लू वही से कूद पडा और धम्म से भैंस की पीठ पर आकर बैठ गया।

भैंस ने उसे गिराने के लिए दो-चार बार अपनी पूछ चलाई पर अक्लू ने उसे भी पकड लिया। जंगल के जानवर अकलू की चतुराई देखकर चकित रह गये। वे अब यह देखने के लिए उत्सुक हुए कि देखें कौन पहले पहुचता है।

भैंस किसी तरह धीरे-धीरे किनारे पहुची। अभी जमीन थोडी दूर पर थी कि अक्लू फिर जोर से उछला और किनारे पर आकर खडा हो गया। सारे जानवर अक्लू की अक्लमंदी और जीत पर खुशी से चिल्ला उठे। इधर भैंस बेचारी थकी हुई धीरे-धीरे पानी से बाहर निकली। तभी शेर ने फैसला किया कि अक्लू बडा है, भैंस नहीं।

और उस दिन से लोग कहने लगे कि आखिर अक्ल बडी या भैंस ?

४. कहानी से आगे कहानी : यह शैली तमिल भाषा मे बहुत सफल हुई है। इसे भी नरसिंहन ने आरम्भ किया है। इसके हिन्दी मे भी अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। इसमें पचतत्र तथा हितोपदेश की मशहूर कहानियो को लेकर उनके आगे की कथा लिखी गई है। जैसे कछुए और खरगोश की दौड मे कछुआ जब जीत गया तो क्या हुआ ? इसके बाद से ही नरसिंहनजी ने कहानी लिखी कि कछुए का दिमाग खराब हो गया। सब कछुए गर्व से सिर उठाए फिरने लगे आदि।

उदाहरण के लिए 'सियार और कौआ' कहानी ही लें—

"बालको, तुम जानते ही हो कि एक सियार ने एक कौए के मुह से रोटी का टुकडा धोखे से हडप लिया था। बेचारा कौआ सियार की बातो मे आकर टुकडे के बदले धोखा ही खा पाया था।

पहले दिन की इस घटना से सियार इस नतीजे पर पहुचा था कि कौआ बडा बुद्धू है। जब चाहे चिकनी-चुपडी बातो से उसे धोखा दे सकते हो।

यह विचार कर दूसरे दिन भी सियार कौए की खोज मे चला कि कही कौआ मिल जाए तो उसे धोखा दे और उसके मुह का कौर हडप ले। वह दूर पेड की डाली को बडे गौर से देखता जा रहा था।

उधर सब कही लोगो की जबान पर इसी बात की चर्चा थी कि बेचारा कौआ कैसे ठगा गया। यह अपमान एक कौए से सहा नही गया तो ठगे कौए के पास गया कि चार खरी-खोटी सुनाए। ठगे कौए ने अपने मित्र कौए को देखते ही जरा झेंप कर कहा, "भैया कल तो मैं धोखा खा गया। आगे कभी ऐसा न होगा। तुम भी आज इसी पेड की डाल पर बैठे रहना और देखना कि मैं उस धूर्त को कैसा मजा चखाता हू।"

फिर इसके बाद सियार भी मुह की खाता है और कौआ विजयी होता है।

इस प्रकार बाल-कहानिया लिखने मे विविध शैलियों के प्रयोग किए जा रहे है। यह एक शुभ चिह्न है।

(३) बाल-जीवनी

जीवनी लिखने मे अभी तक आम तौर से निबन्ध शैली का ही प्रयोग होता

था। किन्तु अब जीवनी को कहानियो का रूप देकर लिखने की भी शैली अपनाई गई है। इस शैली से जीवनी अधिक रोचक, सजीव तथा प्रभावशाली बन जाती है। दिल्ली के उमेश प्रकाशन ने इस दिशा मे पहला मौलिक प्रयास किया है जो कि बहुत सफल रहा है।

इस प्रकार बालसाहित्य की लगभग सभी विधाओ मे नई शैलियो को अपनाया जा रहा है। अनेक नई शैलिया जन्म भी ले रही हैं और वे काफी प्रभावशाली सिद्ध हुई है।

आठवा अध्याय

बालसाहित्य के विकास में बाल-पत्रों का योग

अधिकाश भाषाओ के बाल-पत्रो का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमारे यहा बाल-पत्रो को बहुत महत्त्व नही दिया जाता। हिन्दी के बाल पत्रो मे पिछले दो दशको मे काफी प्रगति हुई है। फिर भी छपाई की अधुनातन सुविधाओ को देखते हुए विदेशो की तुलना मे बच्चो के पत्र उस स्तर के नही निकलते।

समाचार-पत्र, चाहे बडो के हो या छोटो के, सभी को कम मूल्य मे अधिकाधिक सामग्री देने के साथ, उनकी नियमित पठन-वृत्ति को बढावा देते हैं। समाचार-पत्रो का पाठको के लिए जो महत्त्व होता है, उससे अलग वे साहित्य निर्माण मे भी महत्त्वपूर्ण योग देते हैं। साहित्य की अनेक विधाओ को जन्म देने तथा उन्हे समृद्ध बनाने के साथ—विविधतापूर्ण सामग्री प्रस्तुत करने मे समाचार-पत्रअधिक समर्थ होते है। इनसे साहित्य-निर्माताओ को एक खुला मच प्राप्त होता है, जहा वे अनेक साहित्यिक समस्याओं को सुलझाकर, साहित्य-जगत मे उनकी स्थापना कर सकते हैं। और इन सबके बाद, समाचार-पत्रों द्वारा जो सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न होता है—वह है भाषा की समृद्धि तथा उसका स्वरूप निर्माण। स्वय हिन्दी-खडी बोली और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी इस बात के ज्वलत प्रमाण हैं।

बालसाहित्य के विकास, समृद्धि तथा स्वरूप निर्माण मे, समाचार-पत्रो का बहुत महत्त्व रहा है। प्राय सभी भारतीय भाषाओ मे प्रकाशित 'बाल मासिको' ने साहित्य की अभिवृद्धि के साथ-साथ अनेक लेखको को भी जन्म दिया। इनसे जहा बालसाहित्य को दिशा मिली, वही साहित्य-जगत मे उसके स्वतत्र अस्तित्व

के निर्माण मे भी सहायता मिली।

भारतीय समाचार-पत्र का इतिहास सौ वर्ष पुराना ही है। फिर भी इस क्षेत्र मे जितनी प्रगति हुई है, वह पर्याप्त नही है। इसके लिए अनेक व्यावहारिक कारण भी है। इन कारणो तथा कठिनाइयो को ध्यान मे रखते हुए यदि समस्त भारतीय भाषाओ के बाल-मासिको के इतिहास, जीवन तथा सामग्री का अध्ययन करें तो स्पष्ट हो जाता है कि इस अल्पावधि मे 'बालसाहित्य' जैसी विधा मे भी अभूतपूर्ण प्रगति हुई है।

(अ) भारतीय भाषाओं के बाल-पत्र तथा बालसाहित्य को उनका योगदान

असमिया—असमी भाषा मे, बालसाहित्य का बीजारोपण, असमी-मासिक 'ओरुनदाइ' द्वारा हुआ था। यह असमी का पहला मासिक-पत्र था और इसका प्रकाशन सन् १८४६ मे सिबसागर नामक स्थान से अमरीकी मिश्नरियो ने आरभ किया था। विभिन्न प्रकार की कथा-कहानिया—उदाहरणार्थ बाइबिल की कहानिया, बच्चो को नैतिक उपदेश देने वाली कहानिया, दूसरे देशों मे प्रचलित कहानियों के असमी रूपान्तर आदि इसमे प्रस्तुत किए जाते थे।

लेकिन स्वतत्र रूप से बालसाहित्य को समुन्नत बनाने वाला बाल-मासिक 'लोरा-बन्धु' था। इसका प्रकाशन नौगाव (असम) से करुणाभिराम बरुआ ने सन् १८८८ मे किया था। इसके सम्पादक भी बरुआजी ही थे। इसका प्रकाशन बहुत सुन्दर ढग से हुआ था, परन्तु अधिक समय तक नही चल सका। सन् १९१६ मे हेमचन्द्र गोस्वामी के सम्पादन मे गोहाटी से 'आकोन' का प्रकाशन आरभ हुआ। यह दो साल तक नियमित रूप से प्रकाशित होने के बाद बन्द हो गया। सन् १९२३ मे 'मैना' का प्रकाशन हुआ और इसके सम्पादक रघुनाथ चौधरी ने इसे श्रेष्ठतम रूप मे निकालने का प्रयत्न किया। सन् १९२६ मे माधवदेव शर्मा ने 'अरुण' का प्रकाशन किया। हरेन्द्रनाथ शर्मा ने १९३३ मे एक बहुत सुन्दर और सचित्र मासिक 'पाखिला' का प्रकाशन किया। सन् १९४० मे दीनानाथ शर्मा ने 'पारिजात' का प्रकाशन बडी सफलतापूर्वक किया। इब्राहीम अली के सम्पादकत्व मे भी 'कांचिजोन' का प्रकाशन हुआ था।

इस तरह असमी बालसाहित्य की समृद्धि मे योगदान करने के लिए अनेक पत्रो का प्रकाशन हुआ। लेकिन उनमे से कोई भी अधिक समय तक नही चल सका। विरिंचिकुमार बरुआ द्वारा सस्थापित और आरभ मे सम्पादित 'आकोन' मासिक शुरू मे बहुत लोकप्रिय हुआ था। बरुआजी ने भी इसे सुन्दर ढग से प्रकाशित किया था। इस पत्र द्वारा असमी-बालसाहित्य के विकास मे बडी मदद मिली। लेकिन कुछ समय बाद यह भी बन्द हो गया। १९४८ मे बरुआजी ने एक नया प्रयास किया और बच्चो के लिए एक श्रेष्ठ बाल-मासिक की पूर्ति करने

के लिए 'रगघर' का प्रकाशन आरभ किया। इसके प्रकाशित होने पर बहुत-सी आशाए बधी थी, किन्तु इसका जीवन भी बहुत कम रहा।

इन दिनो बच्चो के लिए केवल दो ही मासिक प्रकाशित हो रहे है। ये दोनो गोहाटी से निकलते है। इनमे से एक है—'दीपक' जिसके सम्पादक है गौरीशकर तालुकेदार। दूसरा है—'जोनबाई' जिसके सम्पादक असमी के प्रख्यात कवि नवकान्त बरुआ हैं।

इन बाल-पत्रो के अतिरिक्त, असमी बालसाहित्य की श्रीवृद्धि तथा बच्चो का मन बहलाने के लिए कई मासिक तथा दैनिक पत्र भी बच्चो के लिए अलग स्तभ छापते हैं। इनमे 'असोम वानी' (साप्ताहिक), 'नतुन असमिया' (दैनिक) और 'आसोम-बातोरी' (सप्ताह मे दो बार) प्रमुख हैं।

इन सभी बाल-मासिको और बडो के पत्रो मे प्रकाशित 'बाल स्तभो' ने असमी बालसाहित्य की समृद्धि तथा विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। असमी के लोक-जीवन, देश के अन्य प्रदेशो की जानकारी तथा विदेशी सस्कृति से, असमी बच्चो को परिचित कराने मे इन पत्रो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।[१]

२ उडिया—उडिया मे बच्चो के लिए सर्वप्रथम बाल-मासिक का प्रकाशन कटक ट्रेडिंग कम्पनी ने 'पचामृत' नाम से किया था। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद उडिया बालसाहित्य मे हुई प्रगति का एक उदाहरण यह भी था। इसके दस वर्ष बाद बालकृष्ण कार ने अपने ही सम्पादकत्व मे 'जान्हा मामू' (चन्दामामा) का प्रकाशन आरभ किया। इसका प्रसार खूब हुआ और उडिया बच्चो मे बहुत लोकप्रियता प्राप्त की। बीसियो लेखको और कवियो ने, बालसाहित्य की समृद्धि के लिए इस पत्र मे रचनाए लिखी। इनमे कुजविहारीदास, उपेन्द्र त्रिपाठी और चक्रधर महापात्र के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन लेखको ने प्राचीन काव्य-शैली का ही अनुसरण किया, क्योकि उस समय वही लोकप्रिय थी और कवियो के लिए भी सुगम थी। किन्तु आर्थिक कठिनाइयो के कारण 'पचामृत' तथा 'जान्हा मामू'—दोनो का ही प्रकाशन स्थगित हो गया। काफी दिनो के बाद इस कमी को पूरा किया—मद्रास से प्रकाशित 'चन्दामामा' के उडिया सस्करण ने। यह आज भी बहुत लोकप्रिय है और भारतीय इतिहास, सस्कृति तथा परम्परा की जानकारी देने मे अग्रणी है।

उडिया बच्चो के लिए प्रकाशित अन्य पत्रो मे प्रजातत्र-प्रचार समिति का 'मीना बाजार' और गोदावरी महापात्र का 'टुआ टुई' भी उल्लेखनीय हैं, जो आजकल उडिया बालसाहित्य की समृद्धि मे अपना योग दे रहे है।

सक्षेप मे, उडिया मे बच्चो के लिए प्रकाशित पत्रो की सख्या बहुत कम है

---

१ श्री भुवन एम० दास, अध्यक्ष, नृतत्व-शास्त्र विभाग, गोहाटी विश्वविद्यालय, गोहाटी के सौजन्य से।

और इस दिशा मे अभी बहुत प्रगति की आशा है।[1]

३. गुजराती—गुजराती बालसाहित्य को उन्नतिशील बनाने मे गुजराती के बाल-पत्रो का भी योगदान रहा है। पिछले चालीस वर्षों से प्रकाशित 'कुमार' इससे भी पहले *अर्थात् पैंतालीस वर्षों से प्रकाशित 'बालमित्र'* तथा *'बालजीवन'* ने गुजराती बालसाहित्य की सभी विधाओ का भडार भरने के साथ-साथ अनेक लेखको को भी जन्म दिया है।

बच्चो के लिए साप्ताहिक-पत्र के प्रकाशन की परम्परा गुजराती द्वारा ही आरम्भ हुई है। आज वहा चार बाल-साप्ताहिक प्रकाशित होते है। इनके नाम है—'जगमग', 'बालसदेश', 'सबरस', और 'रमरजन'। इन पत्रो ने बहुत लोकप्रियता प्राप्त की है, क्योकि ये बच्चो के लिए प्रति सप्ताह नूतन एव रोचक सामग्री प्रस्तुत करते है। इनकी बिक्री दस से चालीस हजार प्रतिया तक होती है।

बच्चो के साहित्य की सेवा तथा उनका मनोरजन करने के लिए गुजराती मे प्रकाशित बडो के पत्र भी 'बाल-स्तभ' प्रकाशित करते हैं।

इस तरह गुजराती मे बच्चो के लिए पूरे सप्ताह, पूरे महीने—पुस्तको के अतिरिक्त पढने की रोचक सामग्री उपलब्ध रहती है। ये गुजराती-बालसाहित्य की समृद्धि का परिचय भी प्रस्तुत करते हैं।[2]

४. तमिल—तमिल मे सबसे पहले नागरकोइल क्रिश्चियन एसोसिएशन द्वारा सन् १८४० मे 'बालदीपिकाई' त्रैमासिक का प्रकाशन हुआ था। इसके बाद १८४६ मे पलायमकोट्टाई क्रिश्चियन एसोसियेशन ने 'सिरु पिल्लई नेसा थोजन' प्रकाशित किया। जफना से १८५६ मे 'बालियारनेसन' का प्रकाशन हुआ। इसे अमरीकी बाइबिल सोसायटी ने प्रकाशित किया था। इस प्रकार तमिल मे *यही तीन बाल-पत्र आरभ मे प्रकाशित हुए थे। यद्यपि यह आरंभ अच्छा था,* फिर भी ये आर्थिक कठिनाई के कारण अधिक समय तक बालसाहित्य तथा बाल-पाठको की सेवा नही कर सके। 'बालियारनेसन' के प्रकाशन के लगभग ५० वर्ष बाद तक कोई बाल-पत्र नही प्रकाशित हुआ। हा, इतना अवश्य हुआ कि बडो की पत्र-पत्रिकाओ मे बच्चो के लिए कुछ विशेष पृष्ठ प्रकाशित होने लगे। इन पत्र-पत्रिकाओ मे कुछ प्रमुख थी—'विवेकचिन्तामणि', 'ज्ञानविनोदिनी', 'थामिभारनेसन' आदि। 'थामिभारनेसन' के नियमित लेखको मे ए० माधवय्या का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने बच्चो के लिए गद्य-पद्य की अनेक रोचक रचनाए लिखी।

'बालियारनेसन' के बाद सन् १९१८ मे एक और बाल-पत्र 'बालविनोदिनी'

---

१. श्री विनोदचन्द्र नायक, सुन्दरगढ़ कालेज, सुन्दरगढ़ (उडीसा) के सौजन्य से।

२ श्री रामनलाल सोनी, मडासा (गुजरात) के सौजन्य से।

प्रकाशित हुआ। इसके सचालक थे वाराकवि ए० सुब्रामणियम भारती। सन् १९२४ मे क्रिश्चियन लिटरेचर सोसायटी, मद्रास ने 'पोक्किशा वारानी' नामक पत्र निकालना शुरू किया। इसके सम्पादक पी० चूडामणि थे। श्री चूडामणि ने इस पत्र का सफल सम्पादन करने के साथ-साथ तमिल वालसाहित्य की भी सेवा की। उन्होंने अनेक कहानिया, कविताए तथा नाटक लिखे। वह वाद मे 'पापा' और 'अम्बुलिमामा' बाल मासिकों के भी सम्पादक रहे।

इसी समय वडो के पत्रो—'कलाईमगाल', 'कल्कि' और 'आनन्दविकातन' ने भी बच्चो के स्तभ प्रकाशित करना आरभ किया था, किन्तु वाद मे ये स्तभ या तो बन्द हो गए या समय-समय पर निकलते रहे। लेकिन १९४२ मे तमिलनाड के तिरुचि जिले के अतर्गत रायावरम् नामक स्थान से मुथुनारायनन ने 'पप्पामलार' नामक बाल-पत्र का प्रकाशन किया जो कि अव तक प्रकाशित सभी बाल-पत्रो मे श्रेष्ठ था और उसने लोकप्रियता ग्रहण करने के साथ-साथ बालसाहित्य की भी सेवा की। इसके सम्पादक थि० जा० रा० इसलिए बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने 'पाप्पा' के माध्यम से, तमिल-वाल पत्रो मे सर्वप्रथम वैज्ञानिक विषया पर सामग्री प्रकाशित की।

सन् १९४२ से १९५७ के बीच काफी सख्या मे तमिल बाल-पत्र प्रकाशित हुए। इनमे प्रमुख थे—'सगू', 'युवन', 'मयील', 'दामारम', 'रेडियो', 'मुथू', 'डिगडाग', 'वालरमालर', 'अनिल', 'सिरुमि', 'कालकण्डु', 'वानरसेनाय', 'चिट्टिर-कुल्लन', 'जिलजिल', 'जिगली', 'कारुम्बू', 'पुजोलाइ', 'रवि', 'कन्नन',' अम्बुलि-मामा', 'वालभारती', 'वालरमुरामु' और 'अहल'। इनमे से 'पुजोलाइ', 'बालर-मालर' तथा 'बालरमुरामु' मे बच्चो के लिए रोचक, मनोरजक तथा ज्ञानवर्धक विषयो पर सामग्री प्रकाशित होती थी। वास्तव मे इन बाल पत्रो ने बच्चा मे पाठन-रुचि का निर्माण किया। लेकिन दुख यही है कि इनमें से अधिकाश का जीवन बहुत सक्षिप्त रहा। इसका मूल कारण यही था कि इनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ न थी। वैसे एक कारण यह भी था कि कुछ पत्रो की सम्पादन-नीति, सामग्री आदि भी वालोपयोगी स्तर की न थी—इसलिए वे लोकप्रिय नहीं हुए।

तमिल के वे बाल-पत्र जो आज भी तमिल वालसाहित्य की सेवा कर रहे हैं, उनके नाम हैं—'वालकण्डु', 'कन्नन', 'अम्बुलिमामा' और 'पोक्किशा वारानी'। इनमे 'कन्नन' द्वारा बच्चों के लिए कहानी, उपन्यास, कविता आदि की अनेक प्रतियोगिताए आयोजित की जाती हैं, जिससे वालसाहित्य लेखको को बहुत प्रोत्साहन मिलता है। 'अम्बुलिमामा' मे अधिकाशत धार्मिक, यात्रा-सम्बन्धी तथा अन्य ऐसे ही विषयो पर कहानिया प्रकाशित होती हैं। 'पोक्किशा वारानी' मे ८ से ११ साल की आयु के बच्चो के लिए पर्याप्त मात्रा मे सामग्री प्रकाशित होती है।

इस प्रकार तमिल वालसाहित्य मे बाल-पत्रो की सख्या सभी … भाषाओं की तुलना मे सर्वाधिक है। हालाकि आर्थिक तथा अन्य कठिना

बच्चों के लिए स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित बाल-पत्रों में 'बाला' का स्थान सर्वप्रथम है। इसके सम्पादक राघव राव इसे बहुत अच्छे ढग से निकालते थे। लेकिन किन्हीं अज्ञात कारणों से वह बन्द हो गया।

इस प्रकार तेलुगु बालसाहित्य की समृद्धि के लिए, बाल-पत्रों के प्रकाशन की ओर प्रयत्न हो रहे हैं। किन्तु इस दिशा में अभी स्थायी प्रकाशकों का अभाव है।[१]

६ **पंजाबी**—सन् १९३१ में ग्यानी लालसिंह गुजरावाला, पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने यह महसूस किया था कि पंजाबी में, बच्चों की बौद्धिक क्षुधा शान्त करने वाला साहित्य होना चाहिए। इसलिए उन्होंने जनवरी १९३२ में 'बालक' का प्रकाशन आरंभ किया। यह मोटे टाइप में, चित्रों से सुसज्जित और कई रगों में प्रकाशित होता था। इसकी सामग्री—अधिकांशत पुरानी धार्मिक कथाएं, पहेलियां—बुझौवल, गीत तथा नाटकों के अंश ही होती थी। इसमें लिखने वाले थे—लालसिंह, धानीराम चात्रिक, विधातासिंह तीर, दसौधासिंह मुश्ताक आदि। इस बाल-पत्र की सफलता का रहस्य यही था कि इसकी रचनाएं बच्चों को मनोरंजन के साथ ज्ञानवर्धन भी प्रदान करती थी। किन्तु जब ग्यानी लालसिंह भारत की आजादी के लिए अंग्रेजों से हो रही लड़ाई में शामिल हो गए तो यह बन्द हो गया। लेकिन 'बालक' के स्तर का कोई पत्र आज तक प्रकाशित नहीं हो सका। आज के अधिकांश बाल-पत्र 'बालक' की ही पुरानी फाइलों से सामग्री लेकर प्रकाशित करते रहते हैं।

कारण ये बन्द होते गये, किन्तु इतना तो निश्चित हीं है कि तमिल के लेखकों तथा प्रकाशकों मे बालसाहित्य के उत्थान के लिए आरभ से ही अद्‌भुत उत्साह एव रुचि का बाहुल्य रहा है। यही कारण था कि इतनी अधिक सख्या मे बाल-पत्र प्रकाशित करने के प्रयास हुए।

आज भी जो बाल पत्र प्रकाशित हो रहे है वे बडी कुशलता से सम्पादित होकर मुद्रित होते है। तामिल बालको म अपने बाल-पत्रों को पढने की विशेष रुचि होती है, जिसका निर्माण उनके माता पिता करते है। इससे जहा बच्चो को लाभ हाता है, वही बाल पत्र मे सुदृढता आती है और वे बालसाहित्य की समृद्धि म योग देते है।[१]

५ तेलुगू—तेलुगू म बच्चा का सबसे पहला पत्र सन् १६०४ मे प्रकाशित हुआ था। इसे श्री सीतापति ने, श्री इवातुरी कनकाचलम् के सहयोग से प्रकाशित किया था। इस 'चन्दामामा' के प्रकाशन से तत्कालीन अनेक लेखकों-कवियों को बालसाहित्य लिखने की प्रेरणा मिली। अव्यागरी वीरभद्रराव ने इस पत्र में अनेक रचनाए लिखी और वे तेलुगू बालसाहित्य के शीर्ष-लेखकों मे गिने जाते हैं।

सन् १६४० मे 'भारती' के सम्पादक डा० जी० वी० सीतापति ने उसम 'बालआनन्दम्' शीर्षक से बच्चो के लिए कुछ पृष्ठ प्रकाशित करना आरम्भ किया था। उन्होने अपने कुशल-सम्पादन द्वारा 'बालआनन्दम्' को बहुत लोकप्रिय बनाया और उसके साथ ही तेलुगू बालसाहित्य को भी एक निश्चित दिशा दी।

स्वातन्त्र्योत्तर काल म सबसे अधिक उल्लेखनीय कार्य न्यापति दम्पत्ति न 'बाल' के प्रकाशन-सम्पादन द्वारा किया। उनका यह बाल पत्र न केवल बालसाहित्य की समृद्धि म सहायक हुआ, बल्कि लोगो के मन के अनुकूल होने के कारण बच्चा म भी लोकप्रिय हो गया।

गोपाराजू लवानम् ने 'माने मघम' नाम का एक बाल-पत्र प्रकाशित किया। मद्रास म प्रकाशित 'चन्दामामा' का तेलुगू सस्करण भी बहुत लोकप्रिय हुआ है। यह बच्चा की रुचि को धार्मिक, नैतिक तथा साहित्यिक रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

कुछ समय पूर्व पनिबन्दला माधव शर्मा न 'बालप्रभा' नामक एक बाल-साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया था, पर वह बन्द हो गया। यह बेजवाडा से प्रकाशित हुआ था। यही स्थिति तेनाली से प्रकाशित 'बालकेसरी' की हुई।

आजकल अनेक मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक तथा दैनिक पत्र बच्चो के लिए विशेष स्तभ प्रकाशित कर बालसाहित्य को समृद्ध बनाने मे प्रयत्नशील है। इनमे—'आन्ध्र-पत्रिका', 'आन्ध्र प्रभा', 'प्रजामाता', 'विशाल आन्ध्र', 'आन्ध्र ज्योति' आदि प्रमुख है। अनेक प्रतिष्ठित तथा प्रसिद्ध लेखक इनमे अपनी रचनाए लिखते है और उनसे तेलुगू बालको का मनोरजन तथा ज्ञानवर्धन होता है।

---

१ श्री ए० नटराजन, तिरुपति के सौजन्य से प्राप्त सामग्री के आधार पर।

बच्चों के लिए स्वतंत्र रूप से प्रकाशित बाल-पत्रों में 'बाला' का स्थान सर्वप्रथम है। इसके सम्पादक राघव राव इसे बहुत अच्छे ढंग से निकालते थे। लेकिन किन्हीं अज्ञात कारणों से वह बन्द हो गया।

इस प्रकार तेलुगु बालसाहित्य की समृद्धि के लिए, बाल पत्रों के प्रकाशन की ओर प्रयत्न हो रहे हैं। किन्तु इस दिशा में अभी स्थायी प्रकाशकों का अभाव है।[1]

६ पंजाबी—सन् १६३१ में ग्यानी लालसिंह गुजरावाला, पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने यह महसूस किया था कि पंजाबी में, बच्चों की बौद्धिक क्षुधा शान्त करने वाला साहित्य होना चाहिए। इसलिए उन्होंने जनवरी १६३२ में 'बालक' का प्रकाशन आरंभ किया। यह मोटे टाइप में, चित्रों से सुसज्जित और कई रंगों में प्रकाशित होता था। इसकी सामग्री—अधिकांशत पुरानी धार्मिक कथाएं, पहेलियां—बुझौवल, गीत तथा नाटकों के अंश ही होती थी। इसमें लिखने वाले थे—लालसिंह, धानीराम चात्रिक, विधातासिंह तीर, दसौंधासिंह मुस्ताव आदि। इस बाल-पत्र की सफलता का रहस्य यही था कि इसकी रचनाएं बच्चों को मनोरंजन के साथ ज्ञानवर्धन भी प्रदान करती थी। किन्तु जब ग्यानी लालसिंह भारत की आजादी के लिए अंग्रेजों से हो रही लड़ाई में शामिल हो गए तो यह बन्द हो गया। लेकिन 'बालक' के स्तर का कोई पत्र आज तक प्रकाशित नहीं हो सका। आज के अधिकांश बाल-पत्र 'बालक' की ही पुरानी फाइलों से सामग्री लेकर प्रकाशित करते रहते हैं।

अमरीकी तथा पाश्चात्य बालसाहित्य से प्रभावित होकर सन् १६४२ में गुरबख्शसिंह ने 'बालसन्देश' का प्रकाशन आरंभ किया। यह आज भी प्रकाशित होता है। इसकी भाषा बहुत सरल तथा सुबोध होती है। इसमें बच्चों के लिए वही सामग्री दी जाती है जो उनमें आधुनिक चेतना का संचार करे।

पंजाबी बालसाहित्य के विकास के लिए गुरचरणसिंह ने बच्चों के लिए पत्र निकाले। पहला था—'बालक' जो सन् १६४६ में प्रकाशित हुआ और दूसरा 'स्कूल' था, जो सन् १६५१ में प्रकाशित हुआ। जीवनसिंह जौल्ली ने भी 'बाल दरबार' नामक बालमासिक इसी समय प्रकाशित किया था। इन सभी पत्रों ने स्वतंत्र भारत के बच्चों को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया। लेकिन आधुनिक युग के अनुरूप बच्चों को बनाने में ये बाल-पत्र सफल नहीं हुए।[2]

७ बंगला—बंगला बालसाहित्य की उन्नति के लिए सन् १८१८ में स्कूल बुक सोसायटी ने 'दिग्दर्शन' नामक पत्र प्रकाशित किया था। यही बंगला का पहला बाल पत्र है। इसमें विभिन्न विषयों पर निबंध, कहानियां, तथा विदेशी

---

१ श्री कविराव इवोला, रिपल्ली, आन्ध्र प्रदेश के सौजन्य से प्राप्त सामग्री के आधार पर।

२ श्री गुरदयालसिंह फूल, खालसा कालेज, अमृतसर के सौजन्य से प्राप्त सामग्री के आधार पर।

कारण ये बन्द होने गये, किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि तमिल के लेखकों तथा प्रकाशकों मे बालसाहित्य के उत्थान के लिए आरभ मे ही अद्भुत उत्साह एव रुचि का बाहुल्य रहा है। यही कारण था कि इतनी अधिक सख्या मे बाल-पत्र प्रकाशित करने के प्रयास हुए।

आज भी जो बाल-पत्र प्रकाशित हो रहे है वे बडी कुशलता से सम्पादित होकर मुद्रित होते है। तामिल बालको मे अपने बाल-पत्रों को पढने की विशेष रुचि होती है, जिसका निर्माण उनके माता-पिता करते है। इससे जहा बच्चो को लाभ होता है, वही बाल-पत्र म सुदृढता आती है और वे बालसाहित्य की समृद्धि मे योग देते हैं।[१]

५ तेलुगू—तेलुगू म बच्चा का सबसे पहला पत्र सन् १६०४ मे प्रकाशित हुआ था। इसे श्री सीतापति ने, श्री इवातुरी ननकाचलम् के सहयोग से प्रकाशित किया था। इस 'चन्दामामा' के प्रकाशन से तत्कालीन अनेक लेखको-कवियो को बालसाहित्य लिखने की प्रेरणा मिली। अय्यागरी वीरभद्रराव ने इस पत्र म अनेक रचनाए लिखी और वे तेलुगु बालसाहित्य के शीर्ष-लेखको मे गिने जाते हैं।

सन् १६४० मे 'भारती' के सम्पादक डा० जी० वी० सीतापति ने उसमे 'बालआनन्दम्' शीर्षक से बच्चों के लिए कुछ पृष्ठ प्रकाशित करना आरम्भ किया था। उन्होंने अपने कुशल-सम्पादन द्वारा 'बालआनन्दम्' को बहुतलोकप्रिय बनाया और उसके साथ ही तेलुगू बालसाहित्य को भी एक निश्चित दिशा दी।

स्वातत्र्योत्तर काल मे सबसे अधिक उल्लेखनीय कार्य न्यापति दम्पत्ति ने 'बाल' के प्रकाशन-सम्पादन द्वारा किया। उनका यह बाल-पत्र न केवल बालसाहित्य की समृद्धि मे सहायक हुआ, बल्कि लोगो के मन के अनुकूल होने के कारण बच्चों मे भी लोकप्रिय हो गया।

गोपाराजू लवानम् ने 'माने सघम' नाम का एक बाल-पत्र प्रकाशित किया। मद्रास मे प्रकाशित 'चन्दामामा' का तेलुगू सस्करण भी बहुत लोकप्रिय हुआ है। यह बच्चो की रुचि को धार्मिक, नैतिक तथा साहित्यिक रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

कुछ समय पूर्व पतिवन्दला माधव शर्मा ने 'बालप्रभा' नामक एक बाल-साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया था, पर वह बन्द हो गया। यह बेजवाडा से प्रकाशित हुआ था। यही स्थिति तेनाली से प्रकाशित 'बालकेसरी' की हुई।

आजकल अनेक मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक तथा दैनिक पत्र बच्चो के लिए विशेष स्तभ प्रकाशित कर बालसाहित्य को समृद्ध बनाने मे प्रयत्नशील है। इनमे—'आन्ध्र-पत्रिका', 'आन्ध्र प्रभा', 'प्रजामाता', 'विशाल आन्ध्र', 'आन्ध्र ज्योति' आदि प्रमुख हैं। अनेक प्रतिष्ठित तथा प्रसिद्ध लेखक इनमे अपनी रचनाए लिखते है और उनसे तेलुगू-बालको का मनोरजन तथा ज्ञानवर्धन होता है।

---

१ श्री ए० नटराजन, तिरुपति के सौजन्य से प्राप्त सामग्री के आधार पर।

बच्चों के लिए स्वतत्र रूप से प्रकाशित बाल-पत्रों मे 'बाला' का स्थान सर्व-प्रथम है। इसके सम्पादक राघव राव इसे बहुत अच्छे ढग से निकालते थे। लेकिन किन्ही अज्ञात कारणों से वह बन्द हो गया।

इस प्रकार तेलुगू बालसाहित्य की समृद्धि के लिए, बाल-पत्रों के प्रकाशन की ओर प्रयत्न हो रहे है। किन्तु इस दिशा मे अभी स्थायी प्रकाशकों का अभाव है।[१]

६. पंजाबी—सन् १६३१ मे ग्यानी लालसिंह गुजरावाला, पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने यह महसूस किया था कि पजाबी मे, बच्चों की बौद्धिक क्षुधा शान्त करने वाला साहित्य होना चाहिए। इसलिए उन्होंने जनवरी १६३२ मे 'बालक' का प्रकाशन आरभ किया। यह मोटे टाइप मे, चित्रों से सुसज्जित और कई रगो मे प्रकाशित होता था। इसकी सामग्री—अधिकाशत पुरानी धार्मिक कथाए, पहेलिया—बुझौवल, गीत तथा नाटकों के अश ही होती थी। इसमे लिखने वाले थे—लालसिंह, धानीराम चात्रिक, विधातासिंह तीर, दसौधासिंह मुश्ताक आदि। इस बाल-पत्र की सफलता का रहस्य यही था कि इसकी रचनाए बच्चों को मनो-रजन के साथ ज्ञानवर्धन भी प्रदान करती थी। किन्तु जब ग्यानी लालसिंह भारत की आजादी के लिए अग्रेजो से हो रही लडाई मे शामिल हो गए तो यह बन्द हो गया। लेकिन 'बालक' के स्तर का कोई पत्र आज तक प्रकाशित नही हो सका। आज के अधिकाश बाल-पत्र 'बालक' की ही पुरानी फाइलो से सामग्री लेकर प्रका-शित करते रहते है।

अमरीकी तथा पाश्चात्य बालसाहित्य से प्रभावित होकर सन् १६४२ मे गुरुबख्शसिंह ने 'बालसन्देश' का प्रकाशन आरभ किया। यह आज भी प्रकाशित होता है। इसकी भाषा बहुत सरल तथा सुबोध होती है। इसमे बच्चों के लिए वही सामग्री दी जाती है जो उनमे आधुनिक चेतना का सचार करे।

पजाबी बालसाहित्य के विकास के लिए गुरुचरणसिंह ने बच्चो के लिए पत्र निकाले। पहला था—'बालक' जो सन् १६४६ मे प्रकाशित हुआ और दूसरा 'स्कूल' था, जो सन् १६५१ मे प्रकाशित हुआ। जीवनसिंह जौल्ली ने भी 'बाल दरबार' नामक बालमासिक इसी समय प्रकाशित किया था। इन सभी पत्रों ने स्वतत्र भारत के बच्चो को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया। लेकिन आधुनिक युग के अनुरूप बच्चों को बनाने मे ये बाल-पत्र सफल नही हुए।[२]

७ बंगला—बगला बालसाहित्य की उन्नति के लिए सन् १८१८ मे स्कूल बुक सोसायटी ने 'दिग्दर्शन' नामक पत्र प्रकाशित किया था। यही बगला का पहला बाल-पत्र है। इसमे विभिन्न विषयों पर निबध, कहानिया, तथा विदेशी

---

१. श्री कविराव इकोला, रिपेल्ली, आन्ध्र प्रदेश के सौजन्य से प्राप्त सामग्री के आधार पर।

२. श्री गुरदयालसिंह फूल, खालसा कालेज, अमृतसर के सौजन्य से प्राप्त सामग्री के आधार पर।

लोककथाए आदि प्रकाशित होती थी।

सन् १८२२ मे एक और बाल-मासिक 'पश्वर्वलि' प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक कृष्णमोहन मित्रा थे। इसमे मुखपृष्ठ पर किसी एक पशु का चित्र होता था और अन्दर उसके बारे मे रोचक जानकारी होती थी। इसके अलावा कहानिया तथा निबध भी विभिन्न विषयो पर प्रकाशित होते थे। सन् १८३१ मे रामचन्द्र मित्रा तथा कृष्णमोहन मित्रा ने मिलकर 'ज्ञानोदय' का प्रकाशन किया, किन्तु यह अल्पायु मे ही बन्द हो गया। इसके बाद और भी कई बालपत्र प्रकाशित हुए जिनमे—'पाकिर विवरन', 'विद्यादर्पण', 'सत्य प्रदीप', 'अबोद बन्धु' आदि उल्लेखनीय है। लेकिन 'बालक-बन्धु' इनमे सबसे महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि इसमें ही सबसे पहले विशेष रूप से बच्चो के लिए लिखी रचनाए प्रकाशित हुई थी। इसके सम्पादक केशवचन्द्र सेन थे और प्रकाशन १८७८ मे हुआ था। इसका उद्देश्य बच्चो को मनोरजन के साथ नैतिक शिक्षा देना था। इस पत्र के प्रकाशन से बगला-बालसाहित्य को एक नया स्वरूप मिला। अनेक लेखको ने बालसाहित्य का महत्त्व समझते हुए रचनाए लिखी। सन् १८८१ मे इसी प्रेरणा के फलस्वरूप ही 'अर्जुन कहिनी' का प्रकाशन आरभ हुआ था और यह बगला मे बच्चो के लिए प्रकाशित पहला बाल-पत्र था। सन् १८८३ मे 'सखा' बालमासिक का प्रकाशन आरभ हुआ। इसके सपादक प्रमोदचरण सेन थे। उनके ही परिश्रम तथा लगन के फलस्वरूप यह बाल-पत्र इतना लोकप्रिय सिद्ध हुआ।

सन् १८९३ मे 'साथी' का प्रकाशन, 'सखा' के साथ मिल गया और एक नया पत्र 'सखा-ओ-साथी' प्रकाशित होने लगा। इससे पूर्व ढाका मे सन् १८८३ मे 'बालिका' और 'बाल्यबन्धु'—दो मासिको का प्रकाशन आरभ हुआ था। सन् १८८५ मे जोरासाका से टैगोर परिवार ने 'बालक' का प्रकाशन आरभ किया था जो बाद मे 'भारती' मे सम्मिलित हो गया था। सन् १८८८ मे जेस्सोर से 'मुखी-पुखी' मासिक का प्रकाशन हुआ था। इसका उद्देश्य बच्चो को नैतिक-शिक्षा देना था। सन् १८९५ मे ब्रह्म समाज रविवारीय स्कूल ने 'मुकुल' निकाला था। इसके प्रथम सम्पादक शिवनाथ शास्त्री थे।

इनके अलावा सन् १८९६ मे चिटगाव मे 'शैशव सखा' तथा 'अजलि,' १९०७ मे 'प्रकृति', 'सोपान' तथा 'तोषिणी' १९१० मे ढाका से 'पिता' १९१२ मे तथा १९१३ मे 'बाल्याश्रम', १९२१ मे 'किशोर', १९२५ मे 'खोका खुकू' तथा १९२६ मे 'मासपोल्या' का भी प्रकाशन हुआ था। लेकिन ये सब बाद मे बन्द हो गए।

आधुनिक काल मे बच्चो की अनेक पत्र-पत्रिकाए प्रकाशित हुई, लेकिन उनमे से कुछ ही ऐसी हैं, जो आज भी विद्यमान हैं। सबसे पुराना 'मोचक' है। इसमे दो लेखक—हेमेन्द्रकुमार राय तथा सुरेन्द्रमोहन मुखोपाध्याय, विशेष रूप से लिखते थे। हेमेन्द्र राय की 'झाकेर धान' और 'आबार भाकेर धान' विशेष रूप मे लोकप्रिय हुई। 'रविवार' साप्ताहिक, 'किशोर एशिया' सप्ताह मे दो बार,

'रामधनु मिमुमाथी' तथा 'मुक्तारा' आज भी प्रकाशित होते हैं। यहा यह भी उल्लेखनीय है कि बगला मे पहली बार बच्चों के लिए 'किशोर' दैनिक पत्र का प्रकाशन आरभ हुआ था। इसके सम्पादक खगेननाथ मित्रा थे। इसकी आयु लगभग एक वर्ष ही रही, किन्तु यह प्रयास इतना मौलिक था कि किसी भी भारतीय भाषा मे अभी तक नही हुआ।

इस प्रकार बगला मे अधिक तो नही, किन्तु जो भी बाल-पत्र प्रकाशित हुए या हो रहे हैं—उन्होने बालसाहित्य उन्नति के पथ पर ले जाने मे कोई कसर नहीं छोडी।[1]

८ मराठी—मराठी मे सबसे पहले वासुदेव गोविन्द आप्टे ने बच्चों के लिए 'आनन्द' मासिक प्रकाशित किया था। यह बच्चो मे बहुत लोकप्रिय भी हुआ था। इसकी सफलता देखकर ही कई लोग इस तरफ भी झुके और बाल-पत्र निकालने लगे। 'खेलगाडी मुलाचे' मासिक, 'भगिनी' तथा 'कुमार' उल्लेखनीय बाल-पत्र हैं। इनके अतिरिक्त कई दैनिक तथा साप्ताहिक पत्र भी बच्चो के लिए स्तभ प्रकाशित करते हैं।

किन्तु मराठी बालसाहित्य की प्रगति के इतने ही प्रकाशन पर्याप्त नहीं हैं। इस दिशा मे अभी बहुत प्रगति अपेक्षित है।[2]

उपर्युक्त भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त कश्मीरी, कन्नड और मलयालम मे बाल-पत्रो का नितान्त अभाव है। जिन भाषाओं मे बाल पत्र प्रकाशित हो रहे हैं, उनमे भी सन्तोषजनक प्रगति हो रही है। अधिकाश भाषाओ के बाल-पत्रो का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमारे यहा बाल-पत्रो को बहुत महत्त्व नहीं दिया जाता। इसी कारण यदि कोई बाल पत्र निकलता है तो उसका आर्थिक ढाचा ही कमजोर हो जाने के कारण बन्द हो जाता है। वास्तव मे जब तक बच्चो के लिए प्रकाशित बाल-पत्र खरीदने की आदत का निर्माण नहीं होगा, तब तक इनकी प्रगति सतोषजनक ही रहेगी, अत्युत्तम या उत्तम नहीं।

(ब) हिन्दी बाल-पत्रों का इतिहास : बालसाहित्य के विकास में उनका योग

हिन्दी मे बाल पत्रो की परम्परा को जन्म देने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। उन्होंने सन् १८७४ म 'बाल-बोधिनी' पत्रिका का प्रकाशन आरभ किया था और उसका पहला अक १ जून १८७४ को प्रकाशित हुआ था। इसके मुद्रक, सम्पादक तथा प्रकाशक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही थे। यह नागर-अग्रेजी म निकलती थी और इस म ८ मे १२ पृष्ठ होते थे।

---

१ श्री प्रोवासरजन डे, ४/२ जादव घोष लेन, कलकत्ता के सौजन्य म।

२ श्री एन० एल० वैद्य, पी० जी० बी० टी० कालेज, भोपाल के सौजन्य मे।

भारतेन्दु की ही प्रेरणा से सन् १८७६ में 'काशी पत्रिका' का प्रकाशन आरंभ हुआ। "आगे चलकर यह स्कूल के बालकों की पत्रिका बना दी गई। बालकों के पढ़ने योग्य विषय ही इसमें होने लगे। थोड़े दिनों बाद इसकी भाषा उर्दू हो गई, केवल अक्षर नागरी रहे। इसके सम्पादक बाबू बालेश्वर प्रसाद ने, स्कूल मास्टर से डिप्टी कलक्टर बनने के बाद इसका सम्पादन भार रायबहादुर लक्ष्मी शंकर मिश्र को दे दिया। उनके समय में यह बिलकुल स्कूली पत्रिका बन गई और सरकारी सहायता पर चलने लगी। स्कूलों में ही इसकी खपत थी।"[1]

सन् १८९१ में लखनऊ से बच्चों के लिए 'बालहितकर' का प्रकाशन आरंभ हुआ था, किन्तु यह अल्पायु में ही बन्द हो गया। काशी रामनारायणजी ने भी एक मासिक 'विद्याप्रकाश' का प्रकाशन किया था, लेकिन उसके भविष्य का कुछ पता नहीं चलता। सन् १९०६ में बाबू शिवचरणलाल ने अलीगढ़ से 'छात्र हितैषी' निकाला था। इसी समय किशोरीलाल गोस्वामी के सम्पादकत्व में बी० एम० एस, बनारस के यहां से, 'बाल प्रभाकर' निकला था। इसमें बच्चों के लिए भरपूर रोचक सामग्री होती थी।

'बालहितैषी' का प्रकाशन १९११ में मेरठ से हुआ था। बाद में यह काशी से निकलने लगा था। इसके सम्पादक विनोदबिहारी सेन राय थे। यह १९१६ तक निकलने के बाद बन्द हो गया था। इसका आकार ८॥ × ६॥ था और वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपया तथा एक अंक का ३ आने था।

सन् १९१२ में नरसिंहपुर से 'मानीटर' का प्रकाशन हुआ था और यह १९१६ तक निकलता रहा। इसके बाद का इतिहास नहीं प्राप्त है। प्रयाग, हिन्दी प्रेस से पं० रामजीलाल शर्मा के सम्पादकत्व में सन् १९१४ में 'विद्यार्थी' निकला था। यह विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी था, क्योंकि इसमें उनकी ही रुचि तथा ज्ञानवर्धन के लिए विशेष रूप से रचनाएं प्रकाशित होती थीं। इसका आकार १० × ६॥ था और वार्षिक मूल्य २ रुपये था। एक अन्य पत्र 'हितकारी' मुलतान से प्रकाशित हुआ था जो १९१७ तक प्रकाशित होता रहा। आगर (मालवा) से पं० गणेशदत्त शर्मा वैदिक इन्द्र ने 'बालमनोरंजन' प्रकाशित किया था जो सन् १९१५ तक चलता रहा। इसमें बच्चों को मनोरंजन देने वाली सामग्री को प्रमुखता प्राप्त थी।

सन् १९१५ में शिशु का प्रकाशन हुआ। इसकी सम्पादिका, पं० सुदर्शनाचार्य की पत्नी गोपाल देवी थीं। पं० सुदर्शनाचार्य इसके सम्पादक थे। यह काफी दिनों तक निकलता रहा और सन् १९५० के आसपास बन्द हो गया। इसने हिन्दी बालसाहित्य के विकास में बहुत योगदान किया है। इसमें छोटी-छोटी सरल कविताएं, कहानियां आदि प्रकाशित होती थीं। इन्हें छोटे-बड़े सभी आयु के बच्चे पढ़-

---

१ बालमुकुन्द गुप्त 'समाचारपत्रों का इतिहास'—अम्बिका प्रसाद वाजपेयी। पृष्ठ १४७।

कर रस लेते थे। इसका आकार बहुत छोटा था और आजीवन यह 'शिशु आकार' का ही रहा।

सन् १९१६ मे कलकत्ता के हेयर-स्कूल के हिन्दी के विद्यार्थियो ने 'हयर स्कूल पत्रिका' निकाली। इसके सम्पादक-प्रकाशक लाहौर के देवतासिंह सेवक थे। १९१७ मे फुटकर प्रकाशनो मे 'विद्या', 'विद्यार्थी सखा', 'स्कूल मास्टर' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। लेकिन इसी वर्ष 'बालसखा' का प्रकाशन उल्लेखनीय घटना है। इसके प्रकाशन से हिन्दी बालसाहित्य के विकास के लिए एक खुला मार्ग मिल गया। अनेक तत्कालीन लेखको ने 'बालसखा' के माध्यम से बालसाहित्य की सेवा की। इसमे मनोरजक तथा ज्ञानवर्धक सामग्री प्रकाशित होती थी। इसके पहले सम्पादक प० बदरीनाथ भट्ट थे। बाद मे देवीदत्त शुक्ल, गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', श्रीनाथसिंह, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, देवीदयाल चतुर्वेदी भी रहे और आज कल लल्लीप्रसाद पाण्डेय हैं। यह आज भी बच्चो की सेवा कर रहा है और इसके सम्पादन मे कविवर सोहनलाल द्विवेदी का भी योग है।

'स्कूल मास्टर' का प्रकाशन फूलचन्द द्वादशश्रेणी ने किया था। इसमे अधिक-तर स्कूली विषयो पर सामग्री प्रकाशित होती थी। इसे बच्चो के लिए, स्कूली साहित्य का सहायक माना जा सकता है। बालसाहित्य की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व न था।

सन् १९२० मे जबलपुर मे 'छात्र-सहोदर' निकला। लेकिन इसका इतिहास अन्धकारमय है। सन् १९२४ मे दिल्ली मे किन्ही माधव ने 'वीर बालक' का प्रकाशन आरम्भ किया था। इसका वार्षिक मूल्य एक रुपया ग्यारह आने था। काशी से इसी समय 'उत्साह' निकला था जिसका आकार १० × ७॥ था और इसके सम्पादक महादेव गोविन्द कानिटकर थे। प्रकाशक थे टी० एन० स्कूल के श्री रामदुप। इसका वार्षिक मूल्य २ रुपये था। एक पत्रिका 'आशा' भी निकली थी। कलकत्ते से प्रकाशित इस पत्रिका को श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय के छात्र चलाते थे।

सन् १९२६ मे प० रघुनन्दन शर्मा के सम्पादकत्व मे 'खिलौना' मासिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ, जो १९६० तक निकलता रहा। कालाकाकर के राजा सुरेशसिंह ने सन् १९३० मे 'कुमार' का प्रकाशन आरम्भ किया। सन् १९३१ म रामनरेश त्रिपाठी ने 'वानर' मासिक का प्रकाशन प्रयाग से किया था। उदयपुर मे श्री के० एल० श्रीमाली के सम्पादन मे 'बालहित' का प्रकाशन शुरू हुआ था।

सन् १९३४ मे १९३८ तक इलाहाबाद के दश सेवा प्रेस स सम्पादक-प्रकाशक श्री रामकिशोर अग्रवाल 'मनोज' न 'अक्षय भैया' मासिक का प्रकाशन किया था। इसके प्रमुख लेखक शिवार्थी, चिन्तामणि नायसवाल, स्वर्ण सहोदर आदि

इन्ही दिनो यानी मार्च १९३६ म मुरादाबाद मे 'बालविनोद' का प्रकाशन

प्रारम्भ हुआ था। इसके आरसीप्रसाद सिंह, हसकुमार तिवारी, ज्वालाप्रसाद दी० ए० मदनमोहन व्यास आदि प्रमुख लेखक थे।

पटना से प्रकाशित 'बालक' (१९१६) आज भी प्रकाशित हो रहा है। इसके सम्पादक प्रकाशक प० रामलोचन शरण ने इसे बहुत सुन्दर रूप मे प्रकाशित किया था। किन्तु अब यह घटिया किस्म के न्यूज प्रिंट पर साधारण रगीन चित्रो मे छपता है।

सन १९५४ मे प्रयाग से दो मासिक निकले थे— लल्ला और 'किशोर-भारती। लेकिन ये जल्दी ही बन्द भी हो गये। इलाहाबाद से इन दिनो 'मनमोहन' निकल रहा है। माया प्रेस से छपकर, सत्यव्रत द्वारा सम्पादित—इस पत्र की कहानियाँ आदि बच्चो मे जासूसी ज्ञान का सृजन करती है।

पटना से ही प्रकाशित एक अन्य मासिक 'किशोर' पिछले २० वर्षो से बाल-साहित्य की सेवा कर रहा है। इसकी सामग्री बाल तथा किशोर—दोनो आयु के बच्चो के लिए होती है। किन्तु इसके अन्दर रगीन छपाई का अभाव खटकता है। मुख पृष्ठ भी साधारण ही होता है।

प्रकाशन विभाग, दिल्ली से भारत सरकार की पत्रिका 'बालभारती' भी पिछले १९ वर्षो से बालसाहित्य की सेवा कर रही है। इसके सम्पादक प्रयाग-नारायण त्रिपाठी, देवकीनन्दन निगम रह चुके है और पिछले लगभग १० वर्षो से श्रीमती सावित्रीदेवी वर्मा हैं। वे स्वय भी बालसाहित्य की अच्छी लेखिका है। इधर कुछ वर्षो मे उन्होने 'बालभारती' के कई उपयोगी विशेषाक प्रकाशित किए है। इनमे विज्ञान अक,' 'खेलकूद अक, 'यान नखत्र अक' विशेष महत्त्व के होते है।

इडियन प्रेस आफ इंडिया प्रेस, बम्बई से 'पराग' बाल-मासिक का प्रकाशन पिछले आठ वर्षो से हो रहा है। यह इन दिनो प्रकाशित बाल पत्रो मे सर्वश्रेष्ठ है। इसके सम्पादक पहले सत्यकाम विद्यालकार थे, किन्तु इधर अनेक वर्षो से आनन्दप्रकाश जैन सजा सवार रहे है। आनन्द जी ने 'पराग' के माध्यम से बाल साहित्य का बहुत समृद्ध बनाया है। पराग मे प्रकाशित सभी रचनाओ के पीछे सम्पादक की मनोवैज्ञानिक दृष्टि होती है। इसकी रचनाओ के विषय ऐसे होते हैं जो बच्चो को आधुनिक और भविष्य के ससार के प्रति तैयार करती हैं। बच्चो के मनोरजन तथा ज्ञानवर्धन के लिए 'अग्गड बग्गड' स्तभ मे प्रश्नोत्तर दिए जाते हैं। इसके अतिरिक्त उनमे कला मे अभिरुचि जागृत करने के लिए रग भरो प्रतियोगिता भी होती है। अन्य कई प्रतियोगिताए ऐसी भी है जिनमे बच्चे पुरस्कार प्राप्त करते है। पराग मे रागबाहिक उपन्यासो के प्रकाशन की सुदर परम्परा है। अब तक इस माध्यम से दस से अधिक उपन्यास बच्चो को मिल चुके है। एकाकी के क्षेत्र मे 'पराग' का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। ये एकाकी न केवल रोचक और पठनीय ही होते है बल्कि अभिनय भी होते हैं। इनके चयन के पीछे सपादक का यह आग्रह होता है कि मच सम्बन्धी व सभी निर्देश अवश्य

दिए जाएं जो बच्चो को उसे प्रस्तुत करने मे सुविधा प्रदान करें। 'पराग' की छपाई-सफाई भी बहुत अच्छी होती है।

हाल ही मे हिन्दुस्तान टाइम्स दिल्ली ने भी 'नन्दन' बाल-मासिक का प्रकाशन किया है। इसकी छपाई फोटो आफसेट पर होने के कारण, यह बहुत आकर्षक लगता है। लेकिन इसकी सामग्री 'खिचड़ी' है। न तो वह बच्चो को आधुनिक बनाती है और न ही बच्चो को परम्परागत-सास्कृतिक ज्ञान देती है। सम्पादक राजेन्द्र अवस्थी अब तक इसको कोई ऐसा रूप नही दे सके है कि वह भारतीय बच्चों को एक निश्चित दिशा दे सके। बालसाहित्य की समृद्धि मे भी अभी तक इसका कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नही सिद्ध हो सका है।

पिछले अनेक वर्षो मे मद्रास मे 'चन्दामामा' का प्रकाशन हो रहा है। इसमे पौराणिक, धार्मिक तथा नीति-परक कहानिया ही छपती है। ये सामग्री भले ही रोचक हो किन्तु बच्चो को भविष्य के लिए तैयार करने मे असमर्थ है। इसके चित्र भी 'भयानक-भाव' का सचार करने वाले होते है। बच्चो के लिए यह बहुत उपयोगी पत्रिका नही कही जा सकती।

सन् १६५० से १६६६ तक जबलपुर से भी रामकिशोर अग्रवाल के सम्पादन मे 'चन्दा' मासिक का प्रकाशन होता रहा। लेकिन आर्थिक कठिनाइयो के कारण यह पत्र बद हो गया। इसमे छोटे बच्चो के लिए सरल और रोचक सामग्री होती थी।

हिन्दी मे प्रकाशित अन्य बाल-पत्रो मे 'राजा भैया', 'मिलिन्द', 'शेर सखा', 'रानी बिटिया', 'बाल जगत', 'मनमोहन' आदि के नाम भी उल्लेखनीय है। 'राजा भैया' दिल्ली से निकलता है। इसकी सपादिका अन्ना दीदी है। 'मिलिन्द' भी दिल्ली से निकलता है। सम्पादक रत्नप्रकाश शील इसे सुन्दरतम रूप मे निकालते हैं। इसकी कहानिया जासूसी अधिक होती है। 'शेरसखा' कलकत्ते मे निकलता है। इसके सपादक शभूप्रसाद श्रीवास्तव है। 'रानी बिटिया' हिन्दी मे अकेली बालिकाओं की पत्रिका है। इसके सम्पादक शिवनारायण उपाध्याय हैं।

इधर एक वर्ष से हिन्दी मे पहली बार इन्दौर से 'बच्चो का अखबार' साप्ताहिक-प्रकाशन शुरू हुआ है। बच्चो के लिए समाचार तथा विचार देने वाला यह अकेला साप्ताहिक है। सम्पादक महेन्द्र जोशी इसमे ज्ञान-विज्ञान, खेल-कूद तथा अन्य रोचक सामग्री का सयोजन बडी कुशलता से करते हैं।

हिन्दी मे इन दिनो प्रकाशित बाल-पत्रो द्वारा बालसाहित्य के लेखन-प्रकाशन मे बहुत सहायता मिल रही है। इनके माध्यम से अनेक लेखक बालसाहित्य लिखने की ओर प्रेरित हुए है।

किन्तु हिन्दी पाठको मे, बाल-पत्रो के प्रति विशेष रुचि नही है। यही कारण है कि अनेक बाल-पत्र अल्पायु मे ही बन्द हो जाते है। जो बाल-पत्र प्रकाशित होते हैं उनकी सख्या इतनी कम है कि वे मिलकर भी बच्चों के लिए पूरे महीने भर पढने की सामग्री नही जुटा पाते।

एक दोष और है। अधिकांश बाल-पत्रों के प्रकाशन के पीछे व्यावसायिक दृष्टिकोण होता है। यह कोई बुरी बात नहीं है। किन्तु जब यह दृष्टिकोण संकीर्ण होकर पत्र को घटिया बनाने लगता है, तब उसका स्वयमेव अहित होता है। आज भी हिन्दी में अनेक ऐसे बाल-पत्र हैं जो बड़े ही घटिया रूप में प्रकाशित होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि न तो वे स्वयं अपनी दशा सुधार पाते हैं और न बालसाहित्य की समृद्धि में ही योगदान दे पाते हैं।

बड़ों के साप्ताहिक तथा दैनिक—पत्रों में भी बच्चों के लिए विशेष स्तंभ प्रकाशित होते हैं। साप्ताहिकों में 'धर्मयुग' तथा 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के नाम उल्लेखनीय हैं। 'धर्मयुग' में 'बालजगत' के दो पृष्ठ प्रकाशित होते हैं। पृष्ठ ५३ पर छोटे बच्चों के लिए कहानियां, गीत, चित्र-कथा तथा ज्ञान-विज्ञान की विविध सामग्री होती है। एक ही पृष्ठ में इतनी विविधतापूर्ण सामग्री देने का प्रयास स्तुत्य है। पृष्ठ ५४ पर धारावाहिक लेखमाला (सचित्र) प्रकाशित होती है। इसमें बच्चों के लिए अनेक उपयोगी विषयों का चुनाव करके सामग्री प्रस्तुत की जाती है। पूरी सामग्री रंगीन चित्रों से सुसज्जित तथा रोचक होती है। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' की 'बच्चों की फुलवारी' में रोचक कथाएं, सरस गीत तथा ज्ञानवर्धक सामग्री होती है। कभी-कभी इसमें धारावाहिक बाल-उपन्यास भी प्रकाशित होते हैं।

दैनिक पत्रों में 'नवभारत टाइम्स', 'आज', 'भारत', आदि उल्लेखनीय हैं। 'नवभारत टाइम्स' में 'बालजगत' की रचनाएं—अधिकांशत बच्चों द्वारा ही लिखी होती हैं। 'आज' तथा 'भारत' में प्रकाशित बालपृष्ठों की सामग्री भी बच्चों द्वारा ही रचित होती है। लेकिन अनेक बार बच्चे बड़ों की रचनाएं चुराकर छपा देते हैं। फिर भी, इनसे बाल-लेखकों को प्रोत्साहन तो मिलता ही है।

बड़ों के प्रायः सभी पत्र अब बालसाहित्य तथा बच्चों की मनोवैज्ञानिक समस्याओं विषयक निबन्ध भी प्रकाशित करने लगे हैं। इन निबन्धों द्वारा जहां बालसाहित्य का मूल्यांकन करने में सहायता मिली है, वहीं बालसाहित्य के प्रति बड़ों के मन में महत्त्व निर्धारित करने का भी कार्य हुआ है। हाल ही में राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर ने अपनी पत्रिका 'मधुमती' का 'भारतीय बालसाहित्य विवेचन विशेषांक' प्रकाशित किया है। इसमें भारतीय भाषाओं के बालसाहित्य का विशद परिचय, उसकी प्रगति तथा संभावनाओं, समस्याओं आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। १४ नवम्बर चाचा नेहरू का जन्म-दिवस होने के कारण अनेक साप्ताहिक तथा दैनिक पत्र 'बाल-विशेषांक' प्रकाशित करते है। 'बाल-विशेषांकों' की परम्परा इलाहाबाद से प्रकाशित दैनिक 'भारत' ने चलाई। उसका 'बाल विशेषांक' बड़े आकार में सन् १९५४ में निकला था। इसके बाद हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' ने इसे आगे बढ़ाया।

इस प्रकार हिन्दी में बालसाहित्य की श्रीवृद्धि करने में बाल पत्रों का बहुत

महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। विशेषकर पिछले दो दशकों मे इनके द्वारा विशेष उन्नति हुई है। किन्तु भविष्य मे अभी और भी अपेक्षाए है।

(स) अंग्रेजी के बाल-पत्रो का इतिहास तथा वालसाहित्य को उनका योगदान

भारतीय भाषाओ तथा हिन्दी मे प्रकाशित बाल पत्रों के ऐतिहासिक तथा समीक्षात्मक अध्ययन के पश्चात् अंग्रेज़ी के बाल पत्रों का इतिहास और बाल-साहित्य को उनके योगदान के सम्बन्ध मे भी अध्ययन कर लेना उपयोगी होगा।

अंग्रेज़ी मे वच्चो के लिए पत्र-पत्रिकाए उन्नीसवी शताब्दी के आरभिक समय से ही प्रकाशित होने लगी थी। सन् १८२४ मे 'दि चाइल्ड्स कम्पेनियन' अथवा 'सण्डे स्कालर्स रिवार्ड' का प्रकाशन आरभ हुआ था,और वह बीसवी शताब्दी तक होता रहा। 'दि चिल्ड्रन्स फ्रेंड' का आरभ १८२५-२८ के बीच हुआ था और १८६० के लगभग वन्द हो गया।

इगलैंड मे सन् १८२३ मे 'दि यूथ मन्थली विज़िटर' का प्रकाशन-उद्देश्य दोनों—बालक-बालिकाओं के ठोस विकास के लिए था। वाद मे इसका नाम बदलकर 'दि यूथ्स मिसलेनी आफ नालेज एण्ड इण्टरटेनमेंट' रख दिया गया था। लेकिन इसका विशेष महत्त्व नही हुआ, क्योंकि इसमे प्रकाशित अधिकाश सामग्री नैतिकता एव आदर्श की शिक्षा देने वाली ही थी।

वच्चो के लिए वास्तविक वाल पत्र का प्रकाशन, १८५२ मे हुआ। इसका नाम था दि चार्म। इसके सम्पादक एडे, स्वय एक अच्छे लेखक थे और उन्होंने इसे सुचारु रूप मे प्रकाशित किया था। उन्होने लिखा था कि 'इस पत्र मे उन सभी दन्तकथाओं तथा नम्र जीवो को स्थान मिलगा, जो परियों के लोक मे रहते है।'[1] लेकिन दुर्भाग्यवश यह दो ही वर्षों बाद बन्द हो गया। वास्तव मे जिस प्रकार की कल्पनाशील कथाए 'दि चार्म' मे प्रकाशित हुई थी, वे उस युग के अनुरूप नही थी। यह तो उस युग के लिए एक क्रान्तिकारी प्रयास था, जिसे जनता का प्रश्रय नही मिला और वह वन्द हो गया। इन दिनों अधिकाश लोग बच्चों की बौद्धिक क्षुधा के लिए नैतिक और शिक्षाप्रद कथाए ही देने के पक्ष मे थे। ये कथाए १८५७ म जान एण्ड मेरे बेनेट द्वारा सम्पादित 'दि व्वायज एण्ड गर्ल्स कम्पेनियन फार लेज़र आवर्स' मे 'दि कम्पेनियन फार यूथ' तथा 'दि यूथ्स इन्स्ट्रक्टर' मे प्रकाशित होती थी। 'दि यूथ्स इन्स्ट्रक्टर' बाद म 'दि ब्वायज ओन मैगज़ीन मे सम्मिलित हो गया था। 'दि ब्वायज ओन मैगज़ीन' उस समय का सब से श्रेष्ठ और लोकप्रिय प्रकाशन था। इसकी कीमत भी कम थी। यही

---

1 *A Critical History of Children's Literature*—Cornelia Meigs Page 271

कारण था कि इसका प्रसार बढ़कर चालीस हजार प्रतियों तक पहुँच गया था लेकिन इसकी लोकप्रियता, सस्ती कीमत के कारण न थी। वास्तव मे इसके सम्पादक-दम्पति इसे बच्चों की रुचि और प्रवृत्ति के अनुकूल निकालते थे। वे यह सोचकर सामग्री देते थे कि बच्चे क्या पसन्द करते हैं और बडो को उन्हे क्या देना चाहिए। इसमे किंग्सटन और जे० सी० एडगर की साहसिक कथाए प्रकाशित होती थी। ऐतिहासिक कथाओ मे राजाओ तथा उनके सरदारो से सम्बन्धित कहानिया प्रकाशित होती थीं। रसायन शास्त्र सेना, वनस्पति-विज्ञान आदि से सम्बन्धित रचनाए भी प्रकाशित होती थी। अन्तिम पृष्ठ पर सुन्दर पहेलिया होती थी। इसमे आयोजित प्रतियोगिताओ म विजेता-पाठको को घडिया, पैंसिले जैसी बालोपयोगी वस्तुए पुरस्कार रूप मे दी जाती थी। पत्रिका का आकार अठपेजी था। इसमे सामग्री दो कालमो म विभाजित करके छापी जाती थी। कहानी के अनेक रोमाचक दृश्यों को चित्रों द्वारा सजाया जाता था।

इस प्रकार १८६० के बाद बच्चो के पत्र स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित होने लगे थे। उनका बच्चो के मनोरजन तथा शिक्षा देने के लिए महत्व स्वीकार किया जाने लगा था। इनके सम्पादको ने भी अपनी विचारधारा को काफी विस्तृत बना लिया था। बच्चों के लिए अधिकाश कहानिया पहले इन पत्रो मे ही प्रकाशित होती थी। उदाहरण के लिए चारलेट यग की वे सभी कहानिया पहले 'दि मथली पैकेट' मे ही प्रकाशित हुई थी, जिन्हे उसने बाद मे पुस्तक रूप मे प्रकाशित कराया।

सन् १८६८ मे 'आण्टी जूडीज मैगजीन' प्रकाशित हुई जिसने जन-मानस पर अपना निश्चित प्रभाव डाला। इसमे हैस एण्डरसन की अनेक कहानिया प्रकाशित हुई थी। लेविस कैरोल ने इसमे 'ब्रूनोस रिवेन्ज' शीर्षक से लम्बी कहानी लिखी थी। कोई एक साल बाद इसमे पुस्तक समीक्षाए भी प्रकाशित होने लगी थी। सब से पहले 'एलिस इन दि वण्डरलैंड' और 'हैंस एण्डरसन्स फेयरी स्टोरीज' की समीक्षा प्रकाशित हुई थी।

२६ नवम्बर १८६६ को 'दि ब्वायज आफ इग्लैंड' पत्र का प्रकाशन आरभ हुआ था। इसका उद्देश्य बच्चो को भयानक और आश्चर्यजनक कथा-साहित्य देना था। भयानक से तात्पर्य युद्ध, मारधाड आदि से था। यह पत्र इतना लोकप्रिय हुआ कि छ महीने मे ही इसकी एक लाख पचास हजार प्रतिया बिकने लगी। यह अनेक चित्रो के साथ बहुत सुन्दर रूप मे छपता था। इसकी लोकप्रियता इसलिए भी थी कि इसमे अनेक प्रतियोगिताओ म उपयोगी पुरस्कार मिलते थे।

इससे पहले यानी १८६३ मे रेवरेन्ड जे० एर्सकिन क्लार्क ने 'दि चिल्ड्रस प्राइज' नामक एक पत्र निकाला था जिसका नाम बाद मे केवल 'दि प्राइज' हो गया था। क्लार्क महोदय ने १८६६ मे एक और पत्र 'चेटरबाक्स' निकाला। क्लार्क महोदय ने अपनी इन दोनो पत्रिकाओ के माध्यम से बालसाहित्य की बडी सेवा की। उन्होंने अपने सहयोगी लेखको को न केवल प्रकाशित किया, बल्कि

उन्हे शुद्ध भी किया। उन्होने स्वय भी बालसाहित्य रचना प्रचुर मात्रा मे की। 'चेटरबाक्स' मे कहानिया, जीवनिया, वैज्ञानिक लेख और चित्र आदि होते थे। लेकिन कुल मिलाकर 'चेटरबाक्स' बहुत प्रभावशाली न था। इसके रूपरग तथा सामग्री की निन्दा जान रस्किन तक ने की। लेकिन फिर भी यह निकलता रहा और बाद मे तो इसका अमरीकी सस्करण भी निकला।

सन् १८६७ से ७७ तक 'गुड वर्ड्स फार दि यग' का प्रकाशन हुआ। आरभ मे डा० नार्मन मैक्लाड और बाद मे जार्ज मैक्डानल्ड द्वारा सम्पादित इस पत्र मे अनेक तत्कालीन प्रसिद्ध लेखक लिखते थे। इनमे मुख्य थे चार्ल्स किंगसले, विलियम ब्राइटी रेण्डस, थामस हुड आदि। यह पत्र अपने श्रेष्ठ चित्रो, अच्छी कविताओ तथा रोचक कहानियो और ज्ञानवर्धक निबन्धो द्वारा बहुत लोकप्रिय हुआ था।

सन् १८७१ मे 'अवर यग फोक्स वीक्ली बजट' का प्रकाशन हुआ। यह बाद मे भी इसलिए बहुत लोकप्रिय हुआ कि स्टीवेंसन का विश्व प्रसिद्ध उपन्यास 'ट्रेजर आइलैंड' सबसे पहले इसी मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था।

लेकिन ये अब तक प्रकाशित पत्र बाल-पत्रो की धारा के प्रवाह को वह गति नही दे सके जो देनी चाहिए थी। १८७९ मे एक पत्र 'दि ब्वायज ओन पेपर' निकला। इसने निश्चय ही अपना स्वतत्र मार्ग निश्चित किया और इसी कारण यह १९१२ तक निकलता रहा। इसके पहले सम्पादक डा० मैकाले थे। इस पत्र ने अपने अन्तिम दिनो तक एक निश्चित आदर्श, चरित्र और विशेषताए बनाए रखी। इसके लेखको मे अनेक ख्याति प्राप्त व्यक्ति भी थे—फ्रैंक बकलैंड, टालबोट बेनिस रीड, जूलीस वर्न, एस्काट होप आदि। इस पत्र ने इगलैंड मे अपनी सिलवर जुबली भी मनाई थी।

उधर अमरीका मे भी बच्चो के लिए पत्र-पत्रिकाए प्रकाशित होनी शुरू हो गई थी। पहली पत्रिका 'दि जुवेनाइल मिसलेनी' सन् १८२७ मे प्रकाशित हुई थी जिसकी सम्पादिका मेरिया चाइल्ड थी। इसके बाद १८२९ मे 'दि चिल्ड्रन्स मैगजीन' का प्रकाशन हुआ। सन् १८४३ से १८५३ तक 'दि चाइल्ड्स फ्रैंड' का प्रकाशन होता रहा। यह पत्र देखने मे सुन्दर था, पर इसकी सामग्री साधारण थी। सन् १८४० और १८५० के दशको मे चार्ल्स फिथियन ने 'दि ब्वायज एण्ड गर्ल्स पेनी जर्नल' और 'फिथियन्स मिनिएचर मैगजीन' का प्रकाशन किया। इनमे कहानिया, जीवनी तथा विदेशी और स्वदेशी समाचार प्रकाशित होते थे।

बच्चो के लिए सर्वाधिक उपयोगी पत्र सन् १८६७ मे निकला—'दि रिवर-साइड मैगजीन'। यद्यपि इसका जीवन बहुत कम यानी तीन वर्ष का ही था, फिर भी इसके सम्पादक होरेस ई० स्कूडर ने इसे बहुत ठोस रूप मे निकाला था। वह स्वय भी बालसाहित्य के अच्छे लेखक थे और वह बच्चो को सर्वश्रेष्ठ बालसाहित्य देने के पक्ष मे थे। इसलिए वे बालसाहित्य पुस्तको की तीव्र आलोचना के पक्ष-पाती भी थे। स्कूडर, हैंस क्रिश्चियन एण्डरसन के अच्छे मित्र थे। इसलिए

एण्डरसन की अनेक कहानिया इस मे छपी थी।

सन् १८६५ से १८७३ तक 'अवर यग फोक' पत्र निकलता रहा। चार्ल्स डिकेन्स की कहानी 'दि स्टोरी आफ ए बैड ब्वॉय' इसमे ही १८६८ के अकों म छपी थी। इसके बहुत सुन्दर चित्र होते थे।

१८७५ म मेरी मैप्स डाज को 'सेंट निकोलस ए मैगजीन फार ब्वायज एण्ड गर्ल्स' का सम्पादक नियुक्त किया गया। श्रीमती डाज ने इस पत्र की सपादकीय नीति निर्धारित करते हुए लिखा—

- हर युग के बच्चो को स्वच्छ और मजेदार खेल देना।
- बालक-बालिकाओ के श्रेष्ठ उदाहरण बच्चो के लिए प्रस्तुत करना।
- चित्रमय जगत द्वारा उनमे कलात्मक अभिरुचि जागृत करना।
- उपयोगी दिशाआ मे कल्पना को उर्वर बनाना।
- देश, घर, प्रकृति, सत्य, सौन्दर्य तथा गभीरता के लिए प्यार जगाना।
- जीवन के अनुकूल बालक-बालिकाओ को बनाना।
- उनकी इच्छाआ को प्रोत्साहित करना—लेकिन प्रगति के पथ के अनुकूल।
- विश्व की हर गति विधि से तालमेल रखना।
- ऐसी पठनीय सामग्री देना, जिसे हर माता पिता अपने बच्चो को सुना सकें।[1]

यह पत्र बहुत लोकप्रिय हुआ। इसे पढकर बच्चो ने अपना जीवन प्रशस्त बनाया और साथ ही पठनीय रुचि का भी निर्माण किया। यह पत्र १९३९ तक प्रकाशित होता रहा।

१९४१ मे 'दि अमेरिकन ब्वॉय' प्रकाशित हुआ लेकिन यह बाद मे 'दि यूथ्स कम्पेनियन' मे सम्मिलित हो गया। 'यूथ्स कम्पेनियन' अनेक बधनो एव सिद्धान्तों को लेकर प्रकाशित हुआ था। इसमे 'तम्बाकू', 'अलकोहल' तथा 'प्यार' जैसे शब्दो के प्रयोग निषिद्ध थे। लेकिन इसके बाद भी यह इतने रोचक ढग से सामग्री प्रस्तुत करता था कि लोग इन बन्धनो को समझ ही नही पाते थे।

इन दिनो अग्रेजी की पत्र पत्रिकाओ मे 'ब्वॉयज लाइफ', 'हैप्टी डैम्टी', 'जूनियर रिव्यू', 'फाइण्डिग आउट', 'ब्वॉयज टू डे, गर्ल्स टू डे', 'दि चिल्ड्रस फ्रेंड', 'ब्वॉयज़ वर्ल्ड' तथा 'दि चाइल्ड्स मैगज़ीन' है। ये सभी अग्रेजी बालसाहित्य को समृद्ध बनाने मे अपना योग दे रहे है।

अग्रेजी बालसाहित्य लेखको म एक विशेष बात यह है कि वे कितने ही महान् लेखक क्यों न हो, उनमे बालसाहित्य तथा बच्चो की पत्रिकाओ मे लिखने मे किसी

---

1. *A Critical History of Children's Literature*—Cornelia Meigs Page 280

प्रकार की हीनता का भाव नही होता। इसके विपरीत वे बाल-मनोविज्ञान का अध्ययन कर, अपने बचपन तथा बच्चो के जीवन के व्यावहारिक ज्ञान द्वारा ही बालसाहित्य लिखते है।

(द) भारतीय तथा पाश्चात्य बाल-पत्रों का तुलनात्मक अध्ययन

यो तो पाश्चात्य बाल-पत्र, भारतीय बाल-पत्रो से भी पहले प्रकाशित होना आरभ हो गए थे, फिर भी उनमे कई तुलनात्मक तत्त्व विद्यमान होने के कारण इस विषय पर विचार कर लेना अधिक उपयोगी होगा।

इगलैड तथा अमरीका मे छपाई की सुविधाए शीघ्र मिल जाने तथा बाल-साहित्य लेखन-प्रकाशन का सूत्रपात हो जाने के कारण उन्नीसवी शताब्दी के तीसरे दशक से ही बाल पत्रो का प्रकाशन आरभ हो गया था। भारत मे उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे यह परम्परा आरभ हुई और कुछ भाषाओ मे तो बीसवी शताब्दी तथा कई मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बाल-पत्र प्रकाशित होना आरभ हुए। लेकिन भारत से पचास वर्ष आगे होने के बाद भी अग्रेजी के बाल-पत्रो के मूल्याकन की समस्या बनी ही रही। यही कारण था कि अनेक पत्र प्रकाशित तो हुए लेकिन बन्द होते गए। बालसाहित्य तथा बच्चो के लिए उसकी उपयोगिता को बीसवी शताब्दी के आरभ मे ही परखा गया। इधर भारत मे भी यही स्थिति थी और बच्चो के लिए बाल पत्रो का वास्तविक महत्त्व बीसवी शताब्दी के दूसरे दशक मे ही महसूस किया जा सका। लेकिन इसके बाद भी अनेक बाल-पत्र प्रकाशित हुए और बन्द हो गए।

अग्रेजी के बाल-पत्रो मे आरभ मे तो पौराणिक कथाओ, सिद्धान्तो तथा विचारो का महत्त्व मिला। लेकिन शीघ्र ही यह महत्त्व कम हो गया और बच्चो को आधुनिक जगत से परिचित कराने वाला साहित्य दिया जाने लगा। विज्ञान के विषय ने प्रमुखता प्राप्त कर ली और इस तरह बच्चो का निर्माण नई दुनिया के लिए होने लगा। भारतीय भाषाओ के बाल पत्र आरभ मे ही नही बल्कि स्वतन्त्रता के पूर्व तक वही पुरानी मान्यताओ तथा विचारधारा का पोषण करते रहे। स्वतन्त्रता के बाद ही बच्चो को नई दुनिया से भी परिचित कराने की आवश्यकता समझी गई और इस दिशा मे प्रयास हुए।

अग्रेजी तथा भारतीय भाषाओ के पत्रो मे एक प्रमुख भेद यह भी रहा है कि जहा अग्रेजी के पत्र सुन्दर रग-बिरगे चित्रो से सुसज्जित होकर प्रकाशित होते थे, वही भारतीय भाषाओ मे आज भी अधिकाश बाल पत्र बहुत साधारण ढग से छपते हैं।

अग्रेजी के बाल-पत्रो मे, बच्चो के लिए अनेक ख्यातिप्राप्त लेखक भी लिखते है और लिखते रहे है। लेकिन भारतीय भाषाओ के लेखक इस दिशा मे कोई रुचि

नही लेते। यदि उनका ध्यान आकृष्ट भी किया जाय तो वे उस मनोवैज्ञानिक पकड़ के साथ बालसाहित्य नही लिखते, जो कि उसकी सफलता का रहस्य होता है।

इस प्रकार अंग्रेजी के बाल-पत्र अभी भी भारतीय भाषाओ के बाल-पत्रो से बहुत आगे है। सामग्री, सम्पादन, कला, छपाई आदि सभी दृष्टियो से वे बहुत आगे हैं और इस दिशा मे भारतीय बालसाहित्य को क्रान्तिकारी परिवर्तन करना ही होगा। आज पाश्चात्य देशो मे बच्चो के लिए पत्रिकाए एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बन गई है। भारतीय भाषाओ की पत्रिकाए अभी अपना इतना महत्त्व निर्धारित नही कर पाई हैं, जो कि एक बडी कमी है। इसके लिए प्रकाशक तथा अभिभावक दोनो ही उत्तरदायी हैं।

(इ) हिन्दी में हस्तलिखित पत्रिकाओं का आन्दोलन

साहित्य मे रुचि लेने वाले अनेक उत्साही छात्र अपने साहित्य को प्रकाशित न करा पाने के कारण अथवा आरंभिक रूप मे प्रोत्साहन के लिए हस्तलिखित पत्रिका निकालते है। उत्साहवर्धन तथा प्रयोग के रूप मे यह एक स्वस्थ परम्परा है और काफी दिनो से चल रहा है। जब छपाई की सुविधाए सर्वत्र उपलब्ध न थी और छपाई महगी भी बहुत थी, तब अनेक छोटी छात्र-सस्थाए तथा पाठशालाए इन हस्तलिखित पत्रिकाओ का ही सहारा लेती थीं। इनसे बच्चो को प्रोत्साहन मिलता था और अनेक नई प्रतिभाए आगे आती थीं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी में बालसाहित्य के बढते हुए महत्त्व, माग तथा बच्चो की साहित्य के प्रति रुचि ने देशभर मे अनेक हस्तलिखित पत्रिकाओ को जन्म दिया। यद्यपि सन् '४६ से यह कार्य आरभ हो गया था, पर सन् '४८ से यह एक प्रकार से आन्दोलन के रूप मे आरभ हुआ। उन दिनो बच्चो की पत्रिकाए कम होने के कारण तथा बालसाहित्य को अधिक प्रोत्साहन न मिलने के कारण बाल-लेखको के लिए अपनी आत्मतुष्टि हेतु यह एक अच्छा माध्यम था।

इस आन्दोलन ने धीरे-धीरे बहुत गति पकडी। 'बालसखा' के सन् '४६, '४७, '४८ के अक देखने से पता लगा कि उसमे अनेक सूचनाए इन हस्तलिखित पत्रिकाओं के बारे मे छपती थीं। ये सभी सूचनाए क्रम से यहा प्रस्तुत हैं। इनसे हस्तलिखित पत्रिकाओ को निकालने के पीछे छिपी भावना, कठिनाइया तथा प्रोत्साहन पाने की लालसा स्वयमेव स्पष्ट हो जाएगी।

(१) "मण्डावा मे छात्र-साहित्य-सघ नामक नवोदित सस्था का जन्म हुआ है। दीपावली के शुभ अवसर पर इसने 'छात्रसखा' नाम से हस्तलिखित मासिक पत्रिका प्रकाशित करनी आरभ की है। विद्यार्थियो मे इस समय हिन्दी के प्रति सराहनीय अनुराग है। भिन्न-भिन्न अवसरो जैसे जयन्ती, गोपाष्टमी, दीपावली आदि पर बालक साहित्य का सृजन करते हैं और जनता मे बेधडक सुनाते है। वे अन्धविश्वासी

जनता में सुधार, प्रगति सम्बन्धी भावना भरने की चेष्टा करते हैं। नवसन्तति में इस प्रकार के उन्नत भाव होना राष्ट्र के उत्थान का सन्देश है। पढाई सम्बन्धी देखरेख भी चंचल विद्यार्थी अवैतनिक रूप से करते हैं—

मंत्री, छात्र-साहित्य संघ, मण्डावा।"
(बालसखा, अप्रैल १९४६)

(२) "हमने 'प्रभात' नाम की हस्तलिखित पत्रिका निकाली है। इसमें लेख, कविताएं, कहानी, चुटकुले, पहेलियां इत्यादि निकलती हैं। हमारा उद्देश्य नये लेखकों और कवियों को प्रोत्साहन देना है। 'प्रभात' के लेखकों और कवियों को उनकी सर्वोत्तम रचना पर हर अंक में तीन पुरस्कार मिलते हैं। हर एक बालक और बालिका को अपनी रचनाएं भेजनी चाहिए।

—सम्पादक 'प्रभात'
पो० फारबिस गंज, पूर्णिया।"
(बालसखा, सितम्बर १९४६)

(३) "हम शारदा पुस्तकालय से 'शारदा' नामक बालोपयोगी मासिक हस्तलिखित निकाल रहे हैं। उसके लिए रचनाओं की आवश्यकता है।

—रघुवरदयाल गुप्त (सम्पादक 'शारदा')"
(बालसखा, सितम्बर १९४६)

(४) "हम बालसखाओं के लिए एक हस्तलिखित मासिक 'वीर बालक' जुलाई १९४७ से निकाल रहे हैं। बाल लेखकों को प्रोत्साहन देने के लिए हम 'वीर बालक' में प्रकाशित प्रत्येक रचना पर पुरस्कार देते हैं। अतएव बालसखाओं से निवेदन है कि वे हमें सहयोग दें।

सम्पादक 'वीर बालक'—इतवारी, नागपुर"
(बालसखा, मई १९४८)

(५) "कुमार साहित्य परिषद् के तत्वावधान में हस्तलिखित मासिक पत्रिकाएं 'भारती' और 'धरती के लाल' क्रमशः कुमार तथा बाल-बन्धुओं के लिए १ अगस्त से निकाली जा रही हैं। सुविधा के अनुसार उनका प्रकाशन शीघ्र आरम्भ हो जायगा। बाल-कुमार भाई बहन रचनाओं द्वारा सहयोग दें। रचना पर लिख दें कि किस पत्रिका के लिए भेजी गई है।

नेमिचन्द जैन 'भावुक'
कुमार साहित्य परिषद्, जोधपुर"
(बालसखा, अगस्त १९४८)

(६) "हमारे यहां से 'बाल वाचनालय' के तत्वावधान में 'बापू' नाम से

एक हस्तलिखित पत्रिका १५ अगस्त से निकलने लगी है। पत्रिका बाल लेखकों से आशा करती है कि उसे प्रति मास रचना देकर अनुगृहीत करें।"

—बुद्धमल डोगरा,
बापू कार्यालय, खुजनेर (मालवा)
(बालसखा अक्टूबर १९४८)

(७) "हमने यहां पर 'बाल विनोदी संघ' खोला है जो साक्षरता प्रचार में हाथ बटाता है। वह हस्तलिखित साप्ताहिक 'भारत' निकालता है। लेख, कविता और समाचार इस पते पर भेजिये—

—सम्पादक हस्त० साप्ता० 'भारत'
द्वारा श्री दरबार माध्यमिक शाला, सादडी (मारवाड)'
(बालसखा, दिसम्बर १९४८)

(८) "किशोर समिति, शिलांग द्वारा आसाम जैसे अहिन्दी प्रान्त में एक हस्तलिखित हिन्दी मासिक पत्रिका 'किशोर' अक्तूबर १९४८ से सचित्र प्रकाशित हो रही है। इसमें ३६ पृष्ठ रहते हैं। विशेषांक में ५० पृष्ठ होते हैं। पत्रिका का उद्देश्य किशोरों की सेवा और हिन्दी प्रचार करना है।"

(बालसखा, मार्च १९४९)

(९) ठाकुर वीरसिंह उच्चतर माध्यमिक विद्यालय टूंडला (आगरा) से 'छात्रबंधु' नामक मासिक हस्तलिखित पत्रिका शास्त्री बिहारीदत्त जी शर्मा साहित्यरत्न तथा ब्रजेन्द्रपालसिंह के सम्पादकत्व में निकली।

इस प्रकार सारे हिन्दी प्रदेश में बच्चों की हस्तलिखित पत्रिकाओं की धूमसी मच गई। ये सब कुल मिलाकर लगभग २८ थीं। और भी रही होंगी, पर इन पक्तियों के लेखक को जितनी सूचना प्राप्त हो सकी है, उस आधार पर निम्नलिखित सूची तैयार की है—

१ 'आशा'— सम्पादक—मधुसूदन 'मधुप', २७ स्नेहलतागंज, इन्दौर।

२. 'तरुण'— सम्पादक—रमेशचन्द्र अनिल, रामपुरा, कोटा।

३. 'परिन्दे'— सम्पादक—रामदास वाणी, जे० आर० सिटी हाई स्कूल, धुलिया।

४. 'जीवन'— सम्पादक—श्रीनाथ द्विवेदी, उतरू, कोटा।

५. 'आलोक'— सम्पादक—कन्हैयालाल, ८० दरियागंज, दिल्ली।

६. 'भरी'— सम्पादक—शिवकुमार श्रीवास्तव म्युनिसिपल हाई स्कूल, सागर।

के प्रचार-मन्त्री श्री केशरीचन्द जैन ने 'बालसखा' मार्च १९४९ के अक मे लिखा था—"समस्त भारत के हस्तलिखित पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों एव कुमार पत्रकारों को एक सूत्र मे सगठित करने और उनकी गतिविधियों मे एकता लाने के लिए, कई प्रान्तों के उत्साही कार्यकर्ताओं के सहयोग से 'अखिल भारतीय हस्तलिखित पत्रकार सघ' की स्थापना की गई है। अस्थायी चुनाव हो गया है। सभापति श्री फतहचन्द्र शर्मा आराधक (दिल्ली), प्रधान मन्त्री—श्री नेमिचन्द जैन (जोधपुर), महेली हस्तलिखित पत्रकारों की सगठनकर्त्री सुश्री पुष्पा सक्सेना (कानपुर) है। कार्यकारिणी मे हर प्रान्त मे सदस्य, बिना दलबदी के लिए गए है और लिए जा रहे हैं। मद्रास, उडीसा, और पजाब प्रान्तों के बालकुमार, कार्यकारणी के लिए अस्थायी रूप से स्वय अपने नाम भेजे। हस्तलिखित सम्पादक साथी कार्यालय से अस्थायी विधान प्राप्त कर शीघ्रता मे सघ के सदस्य बने।"

बच्चों की इन हस्तलिखित पत्र पत्रिकाओं को सबसे अधिक प्रेरणा मिली थी 'बालसखा' के 'हस्तलिखित पत्रिका अक' से जो नवबर १९४६ मे प्रकाशित हुआ। इसे प्रकाशित करते हुए सम्पादक 'बालसखा' श्री लल्लीप्रसाद पाण्डेय ने टिप्पणी लिखी थी—"बालसखा का यह अक हस्तलिखित पत्रों का अक है। अखिल भारतीय कुमार सघ के मत्री श्री वीरेन्द्रकुमार आदिया, बी०ए० ने इसका सम्पादन बडे परिश्रम से किया है। जितने हस्तलिखित पत्र आपको प्राप्त हो सके, उनमें से छापने योग्य सामग्री लेकर यह अक प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी में ऐसा अक निकालने का सुझाव आप का ही था। ऐसा ही एक अक अब गुजराती मे निकालने का यत्न हो रहा है।"

'बालसखा' द्वारा हिन्दी की हस्तलिखित पत्रिकाओं को इस प्रकार प्रोत्साहन देने की योजना की सभी ने सराहना की थी। अपनी सम्मति मे प० रामदहिन मिश्र, सम्पादक 'किशोर' पटना ने लिखा था, "हस्तलिखित पत्रिकाओं का बहुत ही सीमित क्षेत्र रहता है और उनमे प्रकाशित उत्तम सामग्री से पाठक लाभ नही उठा सकते। आपके प्रयत्न से वह सामग्री सर्वसाधारण के समक्ष आ जाएगी, जिससे बहुत लाभ होगा। कुमारों, किशोरों के उपयुक्त जैसा साहित्य चाहिए वैसा हिन्दी मे प्रकाशित नहीं हो रहा है। बगला, मराठी और गुजराती मे किशोरों के उपयुक्त अच्छा साहित्य, कथा-कहानी, नाटक, उपन्यास, भ्रमण जीवन वृत्तान्त आदि निकल रहा है। वैसा ही हिन्दी मे भी माला के रूप मे विविध साहित्य तथा मनोरजक विषयों पर पुस्तकें निकालना आवश्यक है। आपका यह सदुद्योग सफल हो, यही मेरी कामना है।" इसी प्रकार काका कालेलकर ने लिखा था—"हस्तलिखित मासिक अकों के प्रति मुझे विशेष प्रेम है। यह प्रवृत्ति उत्साह और निश्चय के बिना नहीं हो सकती।"

उन दिनों हस्तलिखित पत्रिकाएं निकालना भी एक कठिन तथा महत्वपूर्ण काम था। उसे यू ही साधारण रीति से नहीं निकाला जा सकता था। श्री वीरेन्द्र कुमार आदिया का हस्तलिखित पत्रिकाओं की समस्याओं पर विस्तार से एक

निबन्ध लिखा था। बालसाहित्य के महत्व, उसके विकास में हस्तलिखित पत्रिकाओं के योगदान तथा उनको निकालने में बाधक कठिनाइयों एव समस्याओं की चर्चा करते हुए आपने लिखा था—"आज हमें प्राणवान् साहित्य रचते देखकर किसे दुःख न होगा। हिन्दी में कुमारोपयोगी साहित्य नही के बराबर है। ऐसे समय में कौन-सा साहित्य लिखा जाय और कौन-सा पढ़ा जाय, इसका निर्णय कर लेना चाहिए। अंकों में देश-प्रेम का साहित्य भी थोडा-सा है। भारत माता की मुक्ति की आराधना और साधना कुमारों के लेखों में बिलकुल स्वाभाविक है। खास करके हस्तलिखित अंक कैसे होने चाहिए इसके बारे में मैंने जिन विचारों को पढ़ा, सुना और अनुभव किया, उनको यहा लिखता हू—

१ हस्तलिखित पत्रिकाओं का कागज शुद्ध स्वदेशी और हो सके तो हाथ का बना हो।

२ बहुत तेज रग या चित्रों वाले अंक अधिक सुन्दर नही होते। चित्र लेखन और लेख आदि सप्रमाण हो।

३ लेखक अपने हाथ से लेख लिखें तो यह पद्धति अनुकरणीय है। इससे अक्षर सुधरेंगे और कार्य बट जायगा।

४ त्रैमासिक या द्वैमासिक निकालने से अधिक सुविधा होगी। अपना सारा समय और शक्ति अंकों के लिए ही देना पडे, ऐसी फुर्ती से अंक प्रकट करने में लाभ नही।

५ अंक में विविध विषय—राजनीति, समाज नीति, इतिहास, भूगोल और विज्ञान हो।

६ चित्र, कटाक्षचित्र, तुषारचित्र, नाखूनचित्र और छाया चित्रों का उपयोग अंकों में रहे। ऐसे नवीन कलाकारों के उचित परिचय भी अंक में देना चाहिए।

७ हस्तलिखित पत्रिका निकालने का उद्देश्य द्वेष भाव का न हो। इसमें यह भावना रहनी चाहिए कि हम लेखनतत्र की साधना कर रहे है। सहन-शक्ति तो हर एक हस्तलिखित पत्रिका के सम्पादक में होनी चाहिए।

८. चोरी का साहित्य और मुद्रित अंकों से अस्वीकृत निकम्मा साहित्य हस्तलिखितों में स्थान न पावे।

९ मासिक अंक के जैसे विविध विषयों का निरीक्षण करके खास व्यक्तिगत प्रबन्ध लिखना, चार-पाच व्यक्तियों को मिलकर हर एक सप्ताह में एक ही विषय पर निबन्ध माला बनाना, समय-समय पर जानकारी बढ़ाने वाले खास अंक निकालना और ऐसे अंकों की वार्षिक, अर्द्धवार्षिक या मासिक प्रदर्शनी करना भी महत्त्व का कार्य है।"

इन सभी कठिनाइयों तथा समस्याओं के होते हुए भी हस्तलिखित ·
काफी निकली। इन पत्रिकाओं ने निस्सन्देह अनेक उदीयमान बाल ले·

प्रोत्साहन और पत्रकारिता की दिशा मे एक नयी परम्परा को जन्म दिया। इस ओर अभी तक बहुत कम लोगों का ध्यान गया है कि बालसाहित्य तथा बालपत्रो के विकास मे हिन्दी की हस्तलिखित पत्रिकाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आशा है यहा प्रस्तुत सामग्री इस दिशा मे और अधिक अध्ययन-अनुसन्धान के लिए मार्ग दर्शन करने मे सहायक होगी।

नवा अध्याय

परिशिष्ट

(१) बालसाहित्य और अनुवाद

"अच्छा गद्य लिखना कवि की कसौटी है, उसी प्रकार साहित्यिक कृति का सफल अनुवाद करना अनुवादक की कसौटी है।"[१] अनुवाद कार्य वास्तव में उतना सरल नहीं है जितना समझा जाता है। केवल शब्द कोष से शब्दार्थ ढूंढकर किये गए अनुवाद का कोई महत्त्व नहीं होता। "किसी भी अनुवादक के लिए यह वाछनीय नहीं है कि वह केवल मूल पुस्तक की विषय-वस्तु को ही रूपान्तरित करे और उसके कलापक्ष का सर्वथा परित्याग कर दे। उसे अनुवाद में मूल के रस और सगीत का भी अन्तरण करना होता है। हम कोई भी अनुवाद निदेशिका उठा लें, परन्तु हम देखेंगे कि सभी में लेखन शैली की सरलता पर बहुत बल दिया गया है। उसमें प्राय इस बात को सिद्धान्तत स्वीकार कर लिया गया है कि अनुवाद की भाषा लोक-भाषा के अधिकाधिक निकट होनी चाहिए।"[२] यह कथन सही है। हमारी भाषा जितना अधिक लोक-भाषा के निकट होगी, वह अनुवाद उतना ही सरल, सजीव तथा प्रभावशाली होगा। इसीलिए सफल अनुवाद के कुछ मूलभूत तथ्य इस प्रकार बताए गए हैं—"आपको अपने शब्दों का चयन करते समय बड़ा सावधान रहना चाहिए। प्रयत्न करें कि वाक्य छोटे और सरल हों। पंडिताऊ शब्दों और वागाडम्बर से बचें और आपने जितने सुन्दर शब्द तथा वाक्यांश चुने

---

१. माधवसिंह दीपक—'साहित्यिक कृति का अनुवाद', 'अनुवाद' (त्रैमासिक) वर्ष २, अक ४, पृष्ठ ४५।

२. डा० भीष्म साहनी—'अनुवाद मे भाषा व शैली की समस्या', 'अनुवाद', वर्ष २, अक ४, पृष्ठ २५।

है उन सभी का प्रयोग करने की आवश्यकता नही। भाषा अति मुहावरेदार न हो। सवादो मे प्रवाह हो, वे पढने के लिए नही, बोलने के लिए लिखे गए हों और रेडियो तथा सिनेमा के सवादो की तरह सजीव तथा सुबोध हों। भाषा ग्राम्य अर्थात् एकदम बोलचाल की भी न हो और उसमें क्लिष्ट शब्द, समस्त पद तथा जटिल वाक्यांश न हो। अनुवाद की भाषा सरल और अभिव्यक्ति स्पष्ट होनी चाहिए।"[1]

अनुवाद कार्य इतना कठिन तथा सीमाओ से घिरा हुआ होता है कि अनुवादक को थोडी भी छूट नही होती। मूल रचना उसे इतना बाध लेती है कि न वह उसे घटा सकता है न बढा सकता है। लेकिन इसके साथ ही उसे पूरी तरह सजग रहना पडता है कि भाषा शिथिल न होने पाए, उसमे एकदम बोलचाल या गवारूपन न आने पाए। साथ ही मूल रचना के भाव तथा विचार विकृत न होने पाए।

किसी भी रचना का अनुवाद करते समय उसकी शैलीगत विशिष्टताओ की रक्षा पहले करनी होगी। लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि शैली-निर्माण मे हम अपनी भाषा की व्याकरणगत विशेषताए छोड दें। इससे भाषा कठिन होने का भय रहेगा। फिर भी यदि आवश्यक ही हो तो अपनी भाषा के अनुरूप शैली में ही अनुवाद करना ठीक होगा।

मुहावरो का अनुवाद एक समस्या होती है। कुछ लोगो का विचार है कि मुहावरों का शब्दशः अनुवाद कर देना चाहिए। लेकिन इससे कभी-कभी मूल भाव नही प्रकट हो पाता। इसलिए अच्छा यही होता है कि उससे समानान्तर आपकी भाषा मे जो मुहावरा हो उसका ही प्रयोग करें। यही स्थिति हास्य के अनुवाद मे होती है। जिन शब्दो तथा उनके श्लिष्ट अर्थो से मूल भाषा मे हास्य उत्पन्न होता है, उसका शब्दानुवाद करने पर आवश्यक नही है कि अनूदित भाषा मे भी हास्य उत्पन्न हो जाय। अतः ऐसी दशा मे भी अपनी ही भाषा का सहारा लेकर समानार्थी शब्दो के आधार पर अनुवाद प्रस्तुत करना होगा।

(ख) भारतीय भाषाओं के बालसाहित्य में अनुवाद और उसकी समस्यायें :

अखिल भारतीय पजाबी सम्मेलन की एक सभा मे २३ जुलाई, १९६१ को स्वर्गीय नेहरु ने कहा था, "अग्रेजी के महाकवि मिल्टन ने एक जगह लिखा था कि तुम मुझे किसी देश की कोई भाषा दिखाओ और मुझे उस देश का हाल कुछ भी मालूम न हो—कैसे लोग है, क्या करते है, अच्छे हैं, बुरे है, तगडे हैं, कमजोर हैं, मैं कुछ भी न जानू, खाली उनकी भाषा देखू, तो भी मैं तुम्हे बता दूगा कि उस देश के लोग कैसे है। वे जानदार हैं, या बेजान हैं, तेज दिमाग हैं, या कम दिमाग

---

१. डा० भीष्म साहनी—'अनुवाद मे भाषा व शैली की समस्या', 'अनुवाद', वर्ष २, अक ४, पृष्ठ २६।

है। यह सब मै महज उनकी भाषा देखकर बता दूगा। यानी एक भाषा, एक कौम की तस्वीर दिखाती है, जैसे आइने मे तस्वीर आ जाय। भाषा के तो बहुत से हिस्से हैं, लेकिन सबसे बडी बात भाषा की एक ताकत होती है।

"अब आजादी आई तो हम एक पिंजरे से निकले। एक और पिंजरा है, उससे भी ज्यादा जबरदस्त और खतरनाक पिंजरा। यह दिमाग का पिंजरा है, जो दिमाग को पकड लेता है, कैद कर लेता है। हिन्दुस्तान मे ऐसे बहुत पिंजरे है जो हमारे दिमाग को गिरफ्तार करके बन्द कर देते है। यह भाषा का सवाल भी, मैं हर तरफ और जिधर से देखता हू, मुझे एक पिंजरा नजर आता है।"[१] भाषाई समस्याए हमारे देश मे आज भी काफी विवाद का विषय बनी हुई है। यह भारतीय साहित्य के विकास तथा प्रगति के अशुभ लक्षण हैं। इसीलिए श्री नेहरू ने कहा था, "अगर भाषा के हिसाब से सब अलग-अलग हो जाए तो हमारे देश के टुकडे हो जाते हैं। यह बात आप खासकर समझ ले कि भाषाए सब मिलकर बढती है। एक दूसरे से विरोध करके नही बढती है। विरोध मे वे एक दूसरे को दबा लेती है।"[२]

आज विभिन्न भारतीय भाषाओ के साहित्य के अनुवाद मे भाषाई-विवाद की प्रवृत्तिया बहुत बाधक है। जबकि एक दूसरे के साहित्य का आदान-प्रदान अनुवाद के ही माध्यम से सभव है। अनुवाद की ये समस्याए भारतीय बाल-साहित्य के आदान-प्रदान एव विकास मे भी बाधक है। प्राय सभी भाषाओ मे आजकल मौलिक बालसाहित्य का सृजन हो रहा है। यदि सभी भाषाओ मे आपस मे बालसाहित्य का आदान-प्रदान होने लगे तो देश के बच्चे, अन्य प्रान्तो के बच्चो के रहन-सहन, खेल-कूद, वेश-भूषा आदि से परिचित होकर उनके अधिक निकट आ सकेगे और वे तब भविष्य के भारत को न केवल राष्ट्रीय दृष्टि से बल्कि भावनात्मक रूप मे भी अधिक शक्तिशाली तथा अखड बना सकेंगे। लेकिन इस दिशा मे अभी तक किसी प्रकार की कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई है। इस सम्बन्ध मे श्री जितेन्द्र कुमार मित्तल के ये शब्द विचारणीय है—"साहित्य देश के विभिन्न हिस्सो के नागरिको को एक-दूसरे के रहन-सहन, रीति-रिवाज, विश्वासो आदि से परिचित कराकर उन्हे एक दूसरे के और निकट ला सकता है, बशर्ते कि विभिन्न भारतीय भाषाओ के लेखक तथा अनुवादक अपनी भूमिका बहुत ईमान-दारी तथा निष्ठा के साथ निभायें। जरूरत इस बात की है कि हम देश के बच्चो के सामने जो देश के भावी कर्णधार हैं, साहित्य के माध्यम से एक ऐसी अखण्ड तस्वीर प्रस्तुत करें, जिसमे विभिन्नता के कैनवास पर एकता के रग बखूबी उतारे गए हो और जो बच्चो के दिल मे गहरे उतरते चले जायें। हाल ही मे अपने देश मे

---

१. 'भारत की बुनियादी एकता'—जवाहरलाल नेहरू, प्रकाशन विभाग दिल्ली, पृ० ६०।
२. वही, पृष्ठ २६-३१।

प्रान्तीयता की जो दूषित और सकीर्ण प्रवृत्तिया उभरती हुई नजर आ रही है, उनके सदर्भ मे यह बात और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। मेरे ख्याल से यह अखण्ड तस्वीर का कार्य विभिन्न भारतीय भाषाओ के बालसाहित्य को एक दूसरी भाषा मे अनूदित करके किया जा सकता है और इसी प्रकार राष्ट्रभाषा हिन्दी के बालसाहित्य का सहवर्ती भाषाओं म अनुवाद किया जाना अपरिहार्य बन जाता है।"[१]

किन्तु सभी भारतीय भाषाओ मे एक दूसरे का अनुवाद करने की अपनी समस्याए हैं। एक मुख्य कारण है—साहित्य जगत मे अनुवादक की उपेक्षा। श्री रा० विलीनाथन् ने ठीक ही लिखा है—"साहित्य जगत अनूदित साहित्य के प्रति सौतेला व्यवहार करता है। यह कोई भुक्तभोगी ही बता सकता है कि मौलिक रूप से रचना करना जितना आसान है, उतना अनुवाद करना नही।''' पर हा, यह सोचने की बात है कि क्या यह स्थिति वाछनीय है ? अनेक भाषा-भाषियों के होते हुए भी भारत एक है। एकता का यह तन्तु न टूटे, इसलिए साहित्य के आदान-प्रदान से बढकर और कोई साधन नही है। यह काम अनुवादक ही कर सकता है। साहित्य के क्षेत्र मे उसे ऐसा प्रमुख स्थान मिलना चाहिए जिससे उसका उत्साह दुगुना-तिगुना हो। हर प्रदेश के बालको के मन मे प्रेम का पुल बाधने का काम अनुवादक ही कर सकता है।"[२]

लेकिन विभिन्न भाषाओं के विद्वानो ने अनुवाद न होने के कारणो पर बहुत तीखे प्रहार भी किए हैं। हिन्दी बालसाहित्य का विभिन्न भाषाओं मे अनुवाद न होने के कारणो पर प्रकाश डालते हुए श्री र० शौरिराजन ने लिखा है—"कठिनाई यह है कि सुरुचिपूर्ण, विशिष्ट तथा उपादेय बालसाहित्य का हिन्दी मे भी अभाव है। प्राय सभी बालसाहित्य अग्रेजी या पडोसी भाषाओं से ही हिन्दी मे आ रहा है। यह सुलभ मार्ग तमिल या अन्य भारतीय भाषाओ के लिए भी खुला है। अगर साहित्य अग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं से ही लेना है तो फिर उसे हिन्दी माध्यम से ही क्यो लिया जाये ?"[३] लेकिन यह विचार एकागी तथा पक्षपातपूर्ण और हिन्दी-विरोधी अधिक ध्वनित होता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि सभवत शौरिराजन महोदय को हिन्दी बालसाहित्य का न तो ज्ञान है और न वे उसकी मौलिक कृतियो तथा उनकी मौलिक विचारधारा से परिचित ही है। वास्तव मे हिन्दी मे इस प्रकार का बालसाहित्य प्रचुर मात्रा मे है और कई ऐसे भी प्रयोग हुए हैं जो अब तक अन्य किसी भाषा मे नही हुए। इसके ठीक विपरीत हिन्दी भाषा का बालसाहित्य इस दिशा मे अधिक उदार है कि उसने भारतीय भाषाओं की अनेक उत्कृष्ट कृतियो के अनुवाद स्वीकार किए है।

बालसाहित्य के अनुवाद मे प्रान्तीयता तथा जातीयता की भावना भी बाधक

---

१. 'मधुमती', भारतीय बालसाहित्य विवेचन विशेषाक, पृष्ठ २८६।
२ वही, पृष्ठ २६१।
३ वही, पृष्ठ २८६।

है। मराठी मे बालसाहित्य अनुवाद की समस्याओ पर दृष्टिपात करते हुए श्री शरद मोभरकर ने स्पष्ट लिखा है—"चूंकि मराठी मे बाल पत्रिकाए काफी निकलती हैं, इसलिए उनके बाल-लेखकों की भी कमी नही है। अपनी सकीर्ण मनोवृत्ति के कारण वे पहले 'कठीभाऊ' की ही रचनाए छापेंगे, बाद में जरूरत महसूस हुई तो हिन्दी से उधार लेंगे।...इससे महाराष्ट्रियों की जातीयता तथा प्रादेशिक सकीर्णता का स्पष्ट बोध होता है और यही वृत्ति मराठी सम्पादकों तथा प्रकाशकों मे भी देखने को मिलती है। वे हिन्दी को हेय दृष्टि से देखते हैं और उनके अनुसार मराठी मे ही उत्कृष्ट बालसाहित्य का विपुल भण्डार भरा पडा है।"[1]

फिर भी कुछ ऐसी कठिनाइया अवश्य हैं जिन्हे यदि हल कर लिया जाय तो बालसाहित्य के अनुवाद मे बहुत प्रगति हो सकती है। अनुवाद सम्बन्धी ऐसी कुछ कठिनाइया तथा उनके निराकरण के सुझाव हमीदुल्ला खा ने बडे विस्तार से प्रस्तुत किये हैं जो इस प्रकार हैं :—

"हिन्दी भाषा के ग्राम्य तथा जन प्रयोगों का अनुवाद कैसे किया जाय ? उनका शाब्दिक अनुवाद करके उनके प्रसाद गुण को नष्ट कर दिया जाय अथवा अनुवाद की भाषा मे उनके प्रति-प्रयोग ढूढे जायें ? हिन्दी के ऐसे शब्दो का अनुवाद किस प्रकार किया जाय जिनके पर्याय सहवर्ती भाषाओं मे उपलब्ध नही हैं ? हिन्दी भाषा के ऐसे शब्दो का अनुवाद करने के लिए क्या अनुवादो की भाषा मे नये शब्दो का निर्माण किया जाय या बिना अनुवाद किये उन्हे ज्यो-का-त्यो रख दिया जाय ?" ये कुछ प्रश्न हैं जो श्री हमीदुल्ला खा ने उठाये हैं। पहले प्रश्न के उत्तर मे स्पष्ट है कि ग्राम्य तथा जनप्रयोग का अनुवाद उस भाषा के अनुकूल किया जा सकता है, जिसमे अनुवाद हो रहा है। दूसरे प्रश्न के उत्तर मे—प्रति-प्रयोग ढूढना अधिक समीचीन होगा। तीसरे प्रश्न का उत्तर यही है कि उन शब्दो को ज्यो-का-त्यो ले लिया जाय, जिससे हिन्दी भाषा तथा प्रदेश के प्रति भी पाठक के मन मे रुचि जागृत होगी और उसका भाषा-ज्ञान बढेगा। अन्तिम प्रश्न के बारे मे श्री हमीदुल्ला खा ने स्वय ही स्वीकार किया है—"नये शब्दो का निर्माण करते रहने से शायद यह समस्या ठीक तरह हल नही होगी, क्योंकि नई शब्दावली को प्रसारित करने तथा लोकप्रिय बनाने मे न केवल अधिक समय लगता है बल्कि अथक परिश्रम की भी जरूरत होती है।" उन्होंने आगे लिखा है, "मेरा मत है कि हिन्दी बालसाहित्य का सहवर्ती भाषाओं मे अनुवाद करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए कि अनुवाद ऐसा हो कि बाल पाठकों को ऐसा लगे मानो वे अपनी स्वय की भाषा मे मूल रचना पढ रहे हों।"[2]

---

१. 'मधुमती', भारतीय बालसाहित्य विवेचन विशेषाक, पृष्ठ २९४।
२. वही, पृष्ठ २९८।

लेकिन इन कठिनाइयो के बावजूद भी सभी भारतीय भाषाओं के बाल-साहित्य मे अनुवाद हुए है। इन अनुवादो से यह तो स्पष्ट है ही कि भाषाई विवाद समाप्त हो जाने पर सभवत ऐसी स्थिति अवश्य आ जाएगी जब प्रचुर मात्रा मे बालसाहित्य का आदान प्रदान होने लगेगा।

असमी भाषा मे अग्रेजी से कई ग्रन्थ अनूदित हुए है। 'रबिन्सन क्रुचो', 'ददाइर पजा', 'मेनिचर साउद', 'वेगनारर साधु', 'ईछपर उपकथा', 'ईछार साधु', 'गालिभारर भ्रमण', 'उनकुइलचोंट', आदि पुस्तकें उल्लेखनीय हैं।

कन्नड मे सस्कृत, अग्रेजी तथा अन्य भाषाओ से प्रचुर मात्रा मे बालसाहित्य अनूदित हुआ है। 'सस्कृत से मुद्राराक्षस', 'मृच्छकटिक', 'कुमार सभव', अग्रेजी से 'महाप्रवासी मार्कोपोलो', 'जाक एन्ड जिल', 'राबिन्सन क्रूसो', 'अद्भुत लोक-दल्लि आलिस', 'राबिन हुड' आदि हैं, हिन्दी से श्री राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह की 'भारत के पक्षी' पुस्तक का अनुवाद 'नम्महविक्कगलु' तथा हरिकृष्ण देवसरे के 'डाकू का बेटा' (उपन्यास) का अनुवाद 'दरोडेगारन मग' के नाम से हुआ है।

तेलुगू मे सस्कृत, अग्रेजी, जर्मन, रूसी, फ्रेंच आदि अनेक भाषाओ की कृतियो को बालोपयोगी बनाकर प्रस्तुत किया गया है। अनेक कृतियो की कथाओ को अनेक लेखको ने रूपान्तरित भी किया है। सस्कृत से 'मालती माधव', 'स्वप्न वासवदत्ता', 'मुद्राराक्षस', 'रत्नावली', 'हितोपदेश कथाए', 'कथासरित्सागर', इत्यादि अनूदित पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। अग्रेजी तथा अन्य भाषाओ से अनूदित कृतियो मे 'विचित्र यात्रलु' (गुलीवर्स ट्रैवल्स), 'प्रपचकथलु', 'विदेशी कथलु', 'ईसप नीति कथलु', 'टालस्टाय कथलु' आदि प्रमुख है। भारतीय भाषाओ मे बगला तथा हिन्दी से ही कुछ कृतिया अनूदित हुई है—'बलि', 'चित्रागद', 'मालिनी', 'रानी राजु', 'कन्नतडि', 'कलिंग कथलु' आदि।

पजाबी के बालसाहित्य मे भी अनेक श्रेष्ठ बालसाहित्य की पुस्तको के अनुवाद हुए हैं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बच्चो के लिए लिखी कविताओं का अनुवाद 'बच्चया लई टैगोर' पुस्तक मे हुआ है। श्रीमती फूलारानी ने अग्रेजी की 'दी गोल्ड फ्लीस' कहानी का अनुवाद किया है। श्री सुखदेव मादपुरी ने 'जरी दा टोपा', शीर्षक से एक लोककथा पुस्तक का अनुवाद तथा सपादन किया है। इसमे चीन, यूनान, अमरीका, कोरिया, तुर्की, अरब, इटली, तिब्बत, जापान, रूस आदि की लोककथाए प्रस्तुत की गई हैं। इसके अतिरिक्त 'राबिन्सन क्रूसो' तथा 'ट्रेजर आइलैंड' का भी अनुवाद हुआ है।

इस प्रकार अनेक भारतीय भाषाआ मे अनुवाद की प्रवृत्तिया तो विद्यमान है, लेकिन भाषागत वैमनस्य तथा प्रादेशिकता की भावना के कारण इसे अधिक बल नही मिल रहा है जो कि एक अशुभ लक्षण है।

हिन्दी बालसाहित्य और अनुवाद

हिन्दी बालसाहित्य के आरभिक काल मे 'हितोपदेश' का अनुवाद डाक्टर

वैलेन्टाइन के परामर्श से सन् १८६२ मे प्रकाशित हुआ था। सभवत यही सबसे पहली बाल-कथा-साहित्य की अनूदित पुस्तक है। इसका अनुवाद प० बद्रीलाल ने किया था। इसमे चुनी हुई कहानिया रखी गई थीं। इसके बाद जैसे-जैसे बाल-साहित्य की माग बढी, मौलिक और अनूदित पुस्तकें प्रकाशित होने लगी। लेकिन उस समय चूकि खडी बोली गद्य के विकास के लिए अधिक प्रयत्न किये जा रहे थे इसलिए अनुवाद को केवल उतना ही महत्त्व मिला जितना वह इस कार्य मे सहायक सिद्ध हो सकता था।

अनुवाद की दिशा मे द्विवेदी युग मे कई प्रयास हुए। अनुवाद का महत्त्व भी समझा गया। इडियन प्रेस, प्रयाग से सस्कृत के कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो के अनुवाद प्रकाशित हुए। इसके अलावा प्रयाग के ओकार प्रेस से भी जो 'चवन्नी सीरीज' निकली, उसकी पुस्तकें अधिकाश या तो अनुवाद थी या कथासार। तत्कालीन मासिक पत्रो मे भी बच्चो के लिए दूसरी भाषाओं से अनूदित कहानिया प्रकाशित होती थी। इन मे गुजराती और बगला भाषाए प्रमुख थी। किन्तु अनुवाद कार्य मे बहुत कम लोग ही सफलता प्राप्त कर सके। जो अनुवाद हुए भी उनका उचित मूल्याकन नही हुआ। इस कारण इस कार्य मे अधिक गति नही आ सकी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जब बालसाहित्य की माग बढी और लोगो ने भावी पीढी के विकास की बात सोची तो विदेशी तथा अन्य भारतीय भाषाओ मे प्रकाशित बालसाहित्य के अनुवाद की ओर लोगो का ध्यान गया। किशोर गर्ग ने अग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासो का अनुवाद प्रस्तुत किया। 'प्रेरी के मैदानो मे', 'ससार के चिडियाघरो मे' और 'ब्राज़ील के वनो मे' उल्लेखनीय अनुवाद हैं। इन उपन्यासो मे बालमनोवृत्ति को ध्यान मे रखते हुए लेखक ने विभिन्न भू-भागो की प्राकृतिक बनावट, जलवायु, पशु-पक्षी, पैदावार आदि का ज्ञान किशोर पाठको को उत्तेजनशील, कुतूहलमयी, प्रवाहदायिनी कथाओ के रूप मे प्रस्तुत किया है। इन अनुवादो की भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण है।

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ने ससार के प्रसिद्ध महाकाव्यो का कथासार अपनी 'काव्योपन्यास माला' के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है। इनमे 'ओडिसियस', 'मेघदूत', 'सीगफ्रिड' तथा 'एकिलिस' विशेष उल्लेखनीय हैं। इन काव्योपन्यासो से बच्चो का न सिर्फ मनोरजन, बल्कि ज्ञान-वर्धन भी होता है।

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी से प्रकाशित 'बालबकिम कथा माला' के अन्तर्गत बगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार बकिमचन्द्र चटर्जी के उपन्यासो का किशोरोपयोगी रूपान्तर बहुरगे मुखपृष्ठ, दो रगे, इकरगे चित्रो से भरपूर है। इनमे 'चन्द्रशेखर', 'दुर्गेशनन्दिनी', 'मृणालिनी', 'कृष्णकान्त का वसीयतनामा', 'विषवृक्ष', 'कपालकुण्डला' तथा 'राधारानी इन्दिरा' विशेष उल्लेखनीय है। इन अनुवादो मे मूल पुस्तक के भाव, भाषा और शैली को प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत किया गया है।

विभिन्न भारतीय लोकभाषाओ की लोककथाओ का भी अनुवाद प्रस्तुत

आज विज्ञान से सम्बन्धित पुस्तकों की बहुत आवश्यकता है। विदेशो मे वैज्ञानिक साहित्य सर्वाधिक लिखा गया है। उन्ही पुस्तकों में से चुनकर कुछ उपयोगी प्रकाशनो का अनुवाद हाल ही मे दिल्ली की शिक्षा भारती, प्रकाशन सस्था ने किया है। ये पुस्तकें न्यूयार्क से प्रकाशित 'हाउ एण्ड व्हाई वण्डर बुक्स' सीरीज से ली गई है। हिन्दी मे इसका नाम 'क्यो और कैसे' रखा गया है। इनके प्रकाशन मे भारत सरकार के शिक्षा-मत्रालय ने सहयोग दिया है। 'हवाई जहाज' हेरल्ड जोजेफ हाइलैण्ड की पुस्तक का अनुवाद श्री रामचन्द्र तिवारी ने किया है। जार्ज बोन्सल की पुस्तक का अनुवाद श्रीकान्त व्यास ने 'मौसम' शीर्षक से किया है। इसी अनुवादक द्वारा ही नार्मन हास की 'सितारें', इर्विग राबिन की 'साहसपूर्ण यात्राए' और मार्टिन कीन की 'हमारा शरीर' पुस्तकों का भी अनुवाद किया गया है। सभी पुस्तकों की छपाई, चित्र आदि सुन्दर है। कई चित्र तो मूल पुस्तक से ही ले लिए गए है। प्रत्येक पुस्तक मे विषय का प्रतिपादन बडी ही रोचक और बोधगम्य शैली मे किया गया है। बाल-पाठको के लिए ये प्रकाशन उपयोगी बन गए है। इनमे उनके लिए 'प्रयोग और परीक्षण करो' की भी व्यवस्था की गई है। इतनी सुन्दर और सस्ती पुस्तके हिन्दी बालसाहित्य मे पहली बार ही प्रकाशित हुई है। वास्तव मे ऐसी पुस्तकों की माग एक अरसे से रही है। आशा है इनसे अधिक से अधिक बच्चे लाभान्वित होंगे।

करने का प्रयास एक प्रमुख प्रकाशक ने किया था। आवश्यक सम्पादन की कमी रह जाने के कारण एक ही लोककथा कई भाषाओं मे आ गई है।

ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड से प्रकाशित हिमाशु श्रीवास्तव तथा गोविन्दसिंह की पुस्तकें अच्छी सिद्ध हुई है। 'रवीन्द्र बाल भारती' मे श्री हिमाशु श्रीवास्तव ने सत्य, परिश्रम और सम्मान पर लिखी गई रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं के अनुवाद प्रस्तुत किए हैं। साहस, न्याय तथा राष्ट्रीय एकता पर आधारित कहानियो का भी हिन्दी रूपान्तर 'रवीन्द्र बाल कथाएं' प्रस्तुत किया गया है।

इडियन प्रेस, इलाहाबाद से कई महत्त्वपूर्ण कृतियो के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। 'सोने का सिक्का' मे विश्व के महान् कहानीकारो—विक्टर ह्यू गो, एटन चेखव, आदि की २१ कहानियों का यह सग्रह सुन्दर तथा उपयोगी है। आस्कर वाइल्ड के एकाकी नाटक 'सलोमी' का इसी नाम से हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। लारा एगल्स के 'बडे वन मे छोटा घर', तथा कार्ल सैण्डबर्ग के 'प्रेरी नगर का बालक' के अनुवादक हैं हरवशराय शर्मा। लॅग्स्टन ह्यूजेज कृत 'प्रसिद्ध अमरीकी नीग्रो' के अनुवादक हैं रामअवतार अग्रवाल। सत्य प्रकाश त्रिपाठी ने 'प्रसिद्ध वैज्ञानिक' शीर्षक मे डब्ल्यू ओ० स्टीवेंन्सन की पुस्तक का अनुवाद किया है। अन्य प्रमुख अनूदित कृतियो के नाम है—'चन्द्रलोक की परिक्रमा', 'भूगर्भ की यात्रा', 'आकाश मे युद्ध' आदि।

'योर वन्डरफुल वर्ल्ड आफ साइन्स' का हिन्दी अनुवाद श्री नरेश वेदी ने 'विज्ञान का अद्भुत ससार' नाम से किया है। इसमे पृथ्वी तथा ब्रह्माण्ड के निर्माण की कहानी कही गई है। अनुवाद काफी रोचक तथा सरल भाषा मे हुआ है। छपाई, चित्र आदि भी सुन्दर हैं, इसलिए पुस्तक बच्चो के लिए उपयोगी बन गई है।

राजपाल एण्ड सस, दिल्ली ने कई महत्त्वपूर्ण अनूदित बालसाहित्य की पुस्तकें प्रकाशित की है। ज्ञान-विज्ञान पुस्तक माला के अन्तर्गत 'घडी की कहानी', 'राकेट की कहानी', 'उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव की कहानी', 'समुद्र की कहानी' प्रमुख पुस्तकें हैं जो कि विषय-वस्तु की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है और हिन्दी बालसाहित्य मे इतनी रोचक शैली मे लिखी गई पुस्तको मे बेजोड है। किशोरो के लिए उपन्यास और कहानिया पुस्तकमाला के अन्तर्गत प्रकाशित विदेशी भाषा की सर्वश्रेष्ठ बाल पुस्तको के अनुवाद प्रस्तुत किये गए है। 'गुलीवर की यात्राएं', 'राबिनहुड', 'बर्फ की गुडिया', 'कठपुतला', 'डेविड कापरफील्ड', 'बहादुर टाम' आदि अच्छे प्रकाशन है। ऐसी पुस्तको का हिन्दी मे अभिनव प्रकाशन का पहला प्रयास है।

उमेश प्रकाशन, दिल्ली ने शेक्सपियर के नाटको के कथानकों को औपन्यासिक रूप देकर प्रकाशित किया है। शत्रुघ्नलाल शर्मा द्वारा रूपान्तरित इन उपन्यासो के नाम है—'हैमलेट', 'मेकबेथ', 'तूफान', 'जूलियस सीजर', 'राई से पहाड', 'राजा लियर', 'रोमियो जूलियट', 'भूल पर भूल', 'वेनिस का सौदागर'।

आज विज्ञान से सम्बन्धित पुस्तकों की बहुत आवश्यकता है। विदेशों में वैज्ञानिक साहित्य सर्वाधिक लिखा गया है। उन्ही पुस्तकों में से चुनकर कुछ उपयोगी प्रकाशनों का अनुवाद हाल ही मे दिल्ली की शिक्षा भारती, प्रकाशन संस्था ने किया है। ये पुस्तकें न्यूयार्क से प्रकाशित 'हाउ एण्ड व्हाई वण्डर बुक्स' सीरीज से ली गई है। हिन्दी मे इसका नाम 'क्यों और कैसे' रखा गया है। इसके प्रकाशन मे भारत सरकार के शिक्षा-मन्त्रालय ने सहयोग दिया है। 'हवाई जहाज' हेरल्ड जोजेफ हाइलैण्ड की पुस्तक का अनुवाद श्री रामचन्द्र तिवारी ने किया है। जार्ज बोन्सल की पुस्तक का अनुवाद श्रीकान्त व्यास ने 'मौसम' शीर्षक से किया है। इसी अनुवादक द्वारा ही नार्मन हास की 'सितारे', इर्विंग राबिन की 'साहसपूर्ण यात्राएं' और मार्टिन कीन की 'हमारा शरीर' पुस्तकों का भी अनुवाद किया गया है। सभी पुस्तकों की छपाई, चित्र आदि सुन्दर है। कई चित्र तो मूल पुस्तक से ही ले लिए गए हैं। प्रत्येक पुस्तक में विषय का प्रतिपादन बड़ी ही रोचक और बोधगम्य शैली मे किया गया है। बाल-पाठकों के लिए ये प्रकाशन उपयोगी बन गए है। इनमें उनके लिए 'प्रयोग और परीक्षण करो' की भी व्यवस्था की गई है। इतनी सुन्दर और सस्ती पुस्तकें हिन्दी बालसाहित्य में पहली बार ही प्रकाशित हुई है। वास्तव में ऐसी पुस्तकों की माग एक अरसे से रही है। आशा है इनसे अधिक से अधिक बच्चे लाभान्वित होगे।

बच्चों की पत्र-पत्रिकाओं मे भी अनूदित साहित्य समय-समय पर प्रकाशित होता रहता है। 'पराग' में कई अनूदित उपन्यास प्रकाशित हो चुके है। इनमें 'टाम काका की कुटिया', 'राजा और भिखारी', 'वीर विक्रमादित्य', 'सरकस' प्रमुख है। 'बालभारती' के सन् १६६५ के अंकों मे लियो टाल्स्टाय के उपन्यास का हिन्दी अनुवाद 'काकेशस का कैदी' प्रकाशित हुआ था। 'नन्दन' में भी विश्व की महान् कृतियां के कथासार समय-समय पर प्रकाशित होते है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिन्दी मे पर्याप्त मात्रा मे अनूदित बालसाहित्य उपलब्ध है। रूसी बालसाहित्य की श्रेष्ठ कृतियों के अनुवाद भी बहुत सस्ते दामों में मिलते हैं। इन अनुवादों ने भी हिन्दी बालसाहित्य में श्रेष्ठ प्रकाशनों के लिए प्रेरणा दी है। वैसे भारत मे जो अनुवाद हुए हैं वे निश्चय ही बालसाहित्य की समृद्धि मे सहायक हुए है। इनसे बालसाहित्य की अनेक विधाओं में नए प्रयोग करने की प्रेरणा मिली है।

(२) पहेलियां और बच्चे

बच्चे अक्सर इस तरह की पहेलियां बुझाते हैं—

हरी थी मन भरी थी, लाख मोती जड़ी थी।
बाबा जी के बाग मे, दुशाला ओढ़े खड़ी थी।

लेकिन आनन्द तो उन्हें तब आता है जब उनसे कोई बड़ा पहेलियां बुझाये। वास्तव में बच्चे बड़ों द्वारा बूझी गई पहेलियों का उत्तर बता देने में गौरव समझते

है। अगर किसी पहेली का उत्तर वे बता देते है तो चट से कहते है 'एक और बूझो।' फिर किसी तरह बडी देर तक वे पहेलिया बूझने रहेंगे। लेकिन उत्तर न बता पाने की स्थिति मे भी उन्हे अनोखा आनन्द मिलता है। जब उन्हे उत्तर बता दिया जाता है तो वे अपने को धिक्कारते है कि वह तो उनकी जानी हुई वस्तु थी, वे क्यो नही बता पाये। अच्छा अब की बार पूछी गई पहेली का उत्तर तो वे दे ही देंगे। और वे दुबारा पूछी गई पहेली का उत्तर देने के लिए पूरी मुस्तैदी से तैयार हो जाते है। भला क्यो न उन्हे आनन्द आएगा ?

पहेली बुझाने की कला को यदि ज्ञान वृद्धि का एक माध्यम या सामान्य ज्ञान की बालोपयोगी परीक्षा कहा जाये, तो अत्युक्ति न होगी। वास्तव मे यह एक ऐसा खेल है कि इसमे बच्चो को आनन्द भी आता है और ज्ञान-वर्धन भी होता है। अपने बडे-बूढो को बच्चे घेर लेते है। फिर पहेली कही जाने के बाद उन्हे तुरन्त उत्तर बताने की उतावली होती है। वे कहते हैं, 'हम बतायें, हम बतायें।' तब पहले एक-एक करके सबके उत्तर सुनने पडते हैं और बाद मे सही उत्तर बताया जाता है। जब तक सही उत्तर नही बताया जाता तब तक उनमे उसके बारे मे जो उत्सुकता होती है, उसे खोजने और समझने के लिए जब वे अपना मस्तिष्क खरोचते है—वे सब स्थितिया विशेष आनन्ददायी होती है। इसीलिए पहेली बुझाने की कला इतनी प्राचीन होने के बाद आज भी बालमनोविज्ञान से सम्मत एक ऐसा माध्यम है, जो बच्चो को अनेक बातो के रूप, गुण, रग, आकार आदि का ज्ञान कराता है।

वास्तव मे पहेलिया उतनी ही पुरानी है, जितनी मानव सभ्यता। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य मे प्रकृति और ससार के विभिन्न तत्त्वो को जानने की जिज्ञासा निरन्तर बलवती होती गई है और आज भी अपने उसी रूप मे है। इन चीजो के बारे मे एक दूसरे को बताने और उनके बारे मे ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम पहेलिया ही रही है। न समझ मे आने वाली बात के लिए भी इसीलिए कहा जाता है कि पहेलिया बुझा रहे हो। वास्तव मे ये पहेलिया अभिव्यक्ति का माध्यम भी रही है। जिन वस्तुओ के गुण, नाम आदि से कोई परिचित नही है, वह निश्चय ही उसके आकार या रग की बात कहकर जानना चाहेगा कि वह क्या है ? बस, जिज्ञासा की इसी प्रक्रिया का नाम पहेलिया पड गया है। भारतीय साहित्य मे इन पहेलियो के अनेक उदाहरण मिलते है, जिन्हे इस कथन की पुष्टि मे रखा जा सकता है। ऋग्वेद मे एक मत्र है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समान वृक्ष परिषस्वजाते।
तयोरन्य पिप्पलस्वाद्वत्यन
श्नन्नयो अभि चाकशीति ॥

अर्थात् दो पक्षी है, दोनो सग-सग रहते हैं और दोनो मित्र हैं। दोनो एक ही वृक्ष

पर बैठे है पर एक स्वादिष्ठ फल खा रहा है और दूसरा बैठा ताक रहा है। वास्तव मे इसका अर्थ यह है कि परमात्मा और आत्मा साथ रहते है और मित्र बनकर एक ही शरीर मे निवास करते है, फिर भी एक कर्म करता है और उसका फल प्राप्त करता है और दूसरा केवल देखता है। इसे एक विद्वत्तापूर्ण और साहित्यिक पहेली कहा जा सकता है। किन्तु इससे इतना तो निश्चित है कि इस प्रकार से ज्ञानार्जन तथा जिज्ञासा का एक माध्यम अवश्य था और उसे आज पहेली या बुझौवल की सज्ञा दे दी गई है।

पहेली बुझाने की कला बहुत प्राचीन है। विश्व के अन्य कई देशो मे भी इनके प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं। मिस्र मे इनका बहुत प्रचलन था। अरब और फारस मे भी काफी पुरानी पहेलिया मिलती है। फ्रान्स मे अठारहवी शताब्दी मे पहेलियो का इतना प्रचलन था कि वहा एक ऐसा सग्रह उपलब्ध हुआ है, जिसमे लगभग डेढ हजार पहेलिया सग्रहीत हैं। बहुत-सी ऐसी कथाए भी प्रचलित है, जहा पहेलियो के माध्यम से सन्देशो का आदान-प्रदान हुआ है। कहते है कि एक बार अकबर के पास ईरान के बादशाह ने कहलाया था कि उनके यहा नवरत्न है। वह अगर थोडी सी अक्ल भेज दे तो बडी कृपा हो। अन्त मे अक्ल भेजने का काम बीरबल को मिला। उसने तीन ऐसे घडे बनवाये जिनका मुह बहुत सकरा था और आकार काफी बडा। फिर उसने बढिया किस्म का तूबे का बीज मगाकर उगाया। जब उसमे फूल लग गए तो एक फूल उन मे डाल दिया। जब वे बढकर पूरा तूबा बन गये तो बीरबल ने उन्हे काट लिया और घडा का मुह बन्द करके उन्हे ईरान के बादशाह के पास इस सन्देश के साथ भिजवा दिया कि इन घडो से अक्ल निकाल लें और घड़े वापस भेज दे। ईरान का बादशाह पहले तो यही नही समझ पाया कि आखिर कैसे इतने बडे तूबे इन घडो मे रखे जा सके होंगे। उन्हे निकालना तो एक समस्या थी ही। आखिर जब वह इस पहेली का अर्थ समझा तो अपनी बेवकूफी पर बहुत हसा।

पडित रामनरेश त्रिपाठी ने पहेलियो को 'बुद्धि का खेल' कहा है। उनके अनुसार, "न जाने किस युग से चली आ रही ज्ञान की घुमावदार नदी को अभी तक लोग आगे ही बढ़ाये लिए जा रहे है, उसे उन्होने सूखने नही दिया है।"[1] यही कारण है कि इनके जन्मदाता के बारे मे किसी को पता नही होता। युगो से पहेलिया बनती आ रही हैं और उनमे आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी होते रहते है। लेकिन उन पर सबका समान अधिकार होता है और वे बच्चो की ही नही, लोकरजन की वस्तु बन जाती है। यही कारण है कि जहा बच्चे उनमे लाभान्वित होते हैं वही बडे-बूढे इसे ज्ञान के आदान-प्रदान का एक सुसस्कृत और सुन्दर माध्यम भी मानते रहे हैं।

पहेलिया कई तरह की होती है। इनके प्रमुख भेद इस प्रकार हो सकते हैं

---

१. ग्राम साहित्य, तीसरा भाग, पृष्ठ २९०।

गुण, रूप, रंग, आकार, उपयोग और स्वभाव, समान ध्वनि वाले शब्द, गणित, शब्द प्रयोग वाली पहेलियां आदि। अपने ज्ञान की सीमा के अनुसार लोग इन पहेलियों को बनाते रहे हैं और इनका उपयोग होता रहा है। आगे के विवेचन से इन पहेलियों के विभिन्न रूपों के बारे में स्पष्ट हो जायगा

पहेलियों के विषय मुख्यतः ये ही मिलते हैं—

सूर्य, चन्द्रमा, तारे, अंधेरा, ओस, बादल, धुआं, वर्ष, महीना, दिन, समय, नदी, कुआं, नार, मोट, बाबी, पानी, पसीना, गाय, भैंस, थन, हिरन, मोर, भौंरा, बिल्ली, केंचुल, बिच्छू, जोंक, ऊंट, घुन, घोड़ा, चील, सारस, हाथी, अक्षर, पुस्तक, सड़क, मोरी, आग, दृष्टि, अरहर, उड़द, मूंग, गन्ना, मक्का, जलेबी, तुलसी, मूली, हल्दी, प्याज, लहसुन, मिर्ची, सिंघाड़ा, फूट, आम, जामुन, खिरनी, खरबूजा, कटहल, नीम, बबूल, पान, सुपारी, कत्था, चूना, दूध, दही, मक्खन, मट्ठा, तवा, कढ़ाई, पूरिया, चलनी, साकल, किवाड़, मूसल, चक्की, फाड़, हेंगा, दीपक, तेल, बत्ती, लाठी, हाथ, पैर, अंगुलियां, दांत, जीभ, कौर, पकौड़ी, ओंठ, आंख, काजल, दातुन, मन, सेर, छटांक, तराजू, आरी, चारपाई, चूड़ी, सुई, तागा, मृदंग, शंख, सींग, कोल्हू, निहाई, हथौड़ा, कुम्हार, चाक, मिट्टी, कहार, डोली, हल, रहट, दवात, कंघी, हुक्का, चिलम, मोढ़ा, झूला, दर्पण, ताला, चाबी, चरखा, रुपया आदि। इनमें बच्चों को हर एक चीज के बारे में कुछ-न-कुछ ज्ञान और वह भी सूखे तौर पर नहीं, बल्कि बड़े ही मनोरंजक ढंग से होता है। पहेलियां किसी सभा-समाज में प्रशंसा पाने के इरादे से नहीं बनतीं, इसी से अधिकांश में बनाने वाले का नाम ही नहीं होता। अतएव वे किसी व्यक्ति विशेष की नहीं बल्कि सार्वजनिक वस्तु हैं। सबका समान अधिकार होता है। बल्कि उन पर अधिकार करने के लिए सब को प्रेरणा और प्रोत्साहन पहेलियों के ही अन्दर से मिलता है, जो उनके कहने के ढंग में व्याप्त रहता है। कुछ पहेलियों में उनके बनाने वालों के नाम भी मिलते हैं जैसे अमीर खुसरो, लालबुझक्कड, घाघ, बिगहपुर के पंडित और खगिनिया आदि।[1]

अनेक वस्तुओं के रूप गुण को लेकर अनेक पहेलियां कही गई हैं। इनमें विशेष बात यह होती है कि उस वस्तु का गुण कुछ इस तरह वर्णित होता है कि शीघ्रता से समझ पाना कठिन काम होता है। जैसे—

दुइ मुंह छोट, एक मुंह बड़ा,
आधा मानुस लीले खड़ा।
बीचो बीच लगावे फांसी,
नाम सुनो तो आवे हांसी।

अर्थात् उसके दो मुंह छोटे हैं और एक बड़ा है। उसने आदमी के शरीर को आधा

१ रामनरेश त्रिपाठी, ग्राम साहित्य, तीसरा भाग, पृष्ठ २८६।

निगल लिया है। उसने बीचोबीच फासी लगा रखी है। उसका अगर नाम सुनो तो हसी आए। उत्तर है पैजामा। इसी तरह—

नीचे उजली ऊपर हरी,
खडी खेत मे उल्टी परी।

इसमें उस वस्तु का वर्णन है जो खेत मे ऊपर हरी दिखती है और मिट्टी के नीचे सफेद दिखती है। अर्थात् मूली।

पिया बजारे जात हो चीजें लइयो चार,
सुआ, परेवा, किलकिला, बगुला की अनुहार।

यहा वस्तुओ के रग की तुलना पक्षियो के रगो से की गई है और उन्हे साकेतिक ढग से कहा गया है। वास्तव मे आशय पान, सुपारी, कत्था, चूना से है।

समान ध्वनियो वाले शब्दों या समान शब्दों के विभिन्न अर्थो की भी कई पहेलिया प्रचलित हैं। जैसे सारग शब्द को ही लीजिए। यहा इसके अर्थ क्रमश. घडा, स्त्री, बादल, कपडा, पानी, मोर, मेढक और मोर की बोली है—

सारग ले सारग चली, सारग पे दई दीठ।
सारग ले सारग धरी, सारग गई पईठ॥
सारग ने सारग गह्यौ, सारग बोल्यो आय।
जो सारग सारग कहे, सारग मुख ते जाय॥

गणित की सख्याओ को आधार बनाकर कही गई पहेलिया भी अत्यन्त रोचक और ज्ञानवर्धक होती हैं। उनसे जहा मनोरजन होता है वही गणित के अध्ययन मे तीक्ष्णता भी आती है—

तीतर आगे तीतर पीछे,
तीतर के दो आगे पीछे।

इसमें तीन तीतरो की सख्या को लेकर भ्रम मे डाला गया है। साधारणतया सोचने से लगता है कि पाच तीतरे होंगे, किन्तु खेल तीन का ही है। कुछ पहेलियों मे एक लम्बी क्रिया का वर्णन होता है और उस पूरी क्रिया का अर्थ समझने पर ही उस वस्तु का नाम निकलता है—

एक पछी है चतुर सुजान,
जिसके दो नैन नही।
दो नैन नही क्या अन्धा है,
अन्धा नही सरखन्धा है।
सरखन्धा है क्या गोरू है,
गोरू नही, सरक चले।

सरक चले क्या अजगर है,
अजगर नही, बैठ पताल पर बम्ब करे।
बैठ पताल पर बम्ब करे क्या शम्भू है,
शम्भू नही, आन पार पर बैठ रहे।
आन पार पर बैठ रहे क्या बगुला है,
बगुला नही, तिरिया असवारी करे।
तिरिया असवारी करे क्या रसिया है,
रसिया नही घर बसिया है।

इसमे पानी से भरे घडे का वर्णन है। उसके दो नैन नहीं हैं, फिर भी वह गुणी है कि सबकी प्यास बुझाता है। उसका गला रस्सी से बाधा जाता है, लेकिन वह जानवर नही है। सरक कर वह कुए के अन्दर जाता है, लेकिन अजगर नही है। पाताल मे बैठकर बम-बम करता है, लेकिन शम्भू नही है। इस पार से उस पार आ जाता है, लेकिन बगुला नही है। वह तिरिया के सिर पर सवारी करता है लेकिन रसिया नही है, और वह घर मे रहता है।

यह वास्तव मे मुकरियो की शैली है। अमीर खुसरो ने ऐसी मुकरिया बहुत लिखी है। किसी वस्तु के समान अन्य वस्तु का नाम बताकर भ्रम मे डालना और फिर सही उत्तर बताना ही इन मुकरियो की विशेषता होती थी। अमीर खुसरो ने 'साजन' के बहाने अनेक मुकरिया लिखी है—

वरस-वरस वह देस मे आवे,
मुह से मुह लगाय रस प्यावे।
वा खातिर मैं खरचे दाम,
क्यो सखि साजन ? नहिं सखि आम।

करके छाती पकडे रहे,
मुह से बोले बात न कहे।
ऐसा है कामिनी का रंगिया,
क्यो सखि साजन ? ना सखि अगिया।

शब्द ज्ञान की अभिवृद्धि के लिए बहुत सी पहेलिया प्रचलित है। इनमे किसी शब्द का आदि, अन्त तथा मध्य काटकर उसे अलग शब्द बनाया जाता है और उनके अर्थों के भ्रम में डालकर उस मूल शब्द को पूछा जाता है। जैसे—

बेदुम मूस करो मत भूल,
धड गायब फिर भी है मूल।
कटा शीश छोटा है माल,
पूरे तन का है क्या हाल।

यहा मूसल शब्द पहले मूस अर्थात् चूहे के रूप मे बनता है, फिर मूल अर्थात जड

बन जाता है और अन्त मे सल अर्थात् 'साल' का लघुरूप बनता है। लेकिन थोड़ी सी चतुराई से शब्द जाना जा सकता है। यही ज्ञान और चतुराई पहेलियों के माध्यम से विकसित होती है और इसी के लिए बच्चों को पहेलिया बुझाई जाती हैं।

अब विज्ञान के युग मे नई-नई वस्तुओ और उनके रूप, गुण, आकार तथा स्वभाव आदि को लेकर भी पहेलिया कही जाती है। यह सही है कि युगानुरूप उनमे परिवर्तन भी होता रहता है, लेकिन उनका उचित उपयोग भी उतना ही आवश्यक है। बच्चों के लिए यह सबसे सरल और उत्तम माध्यम है। उन्हे इसका अधिकाधिक अभ्यास कराना चाहिए। इनसे वे अपने आसपास के वातावरण की वस्तुओं से परिचित होते हैं, उनके बारे मे जानते है और अपने ज्ञान की अभिवृद्धि करते हैं।

(३) कहानी सुनाने की कला

बच्चो को हर रोज नई कहानी सुनाने की कठिनाई हर माता-पिता के सामने होती है। कुछ माता-पिता तो ऐसे होते है जिनके पास कहानियो का भण्डार नही होता। तब समस्या और गम्भीर हो जाती है और बच्चे उन लोगों मे ज्यादा रुचि लेने लगते हैं जो उन्हे कहानी सुनाते है। एक ठाकुर साहब ने तो इसीलिए मुझे ट्यूशन पर रखा था कि मैं हर साल गर्मियो मे रोज एक घण्टे बच्चों को कहानिया सुनाया करू। इसका परिणाम यह होता था कि एक घण्टे के बजाय मुझे कम-से-कम दो घण्टे वहा रुकना पड़ता था और अगर वे बच्चे कभी बाजार मे या किसी मित्र के यहा मिल जाते तो तुरन्त कहानी की फरमाइश कर देते। इसलिए उनसे मुझे बहुत सावधान रहना पड़ता था। इम्तहान के दिनों मे तो मैं उस मुहल्ले की ओर जाता ही न था। पर इम्तहान खतम होते ही वे ठाकुर साहब से 'कहानी वाले मास्टर जी' को बुलाने की फरमाइश करने लगते और मुझे तब जाना ही पड़ता था।

सरक चले क्या अजगर है,
अजगर नही, बैठ पताल पर बम्ब करे।
बैठ पताल पर बम्ब करे क्या शम्भू है,
शम्भू नही, आन पार पर बैठ रहे।
आन पार पर बैठ रहे क्या बगुला है,
बगुला नही, तिरिया असवारी करे।
तिरिया असवारी करे क्या रसिया है,
रसिया नही घर बसिया है।

इसमे पानी से भरे घड़े का वर्णन है। उसके दो नैन नही है, फिर भी वह गुणी है कि सबकी प्यास बुझाता है। उसका गला रस्सी से बाधा जाता है, लेकिन वह जानवर नही है। सरक कर वह कुए के अन्दर जाता है, लेकिन अजगर नही है। पाताल मे बैठकर बम-बम करता है, लेकिन शम्भू नही है। इस पार से उस पार आ जाता है, लेकिन बगुला नही है। वह तिरिया के सिर पर सवारी करता है लेकिन रसिया नही है, और वह घर मे रहता है।

यह वास्तव मे मुकरियो की शैली है। अमीर खुसरो ने ऐसी मुकरिया बहुत लिखी है। किसी वस्तु के समान अन्य वस्तु का नाम बताकर भ्रम मे डालना और फिर सही उत्तर बताना ही इन मुकरियो की विशेषता होती थी। अमीर खुसरो ने 'साजन' के बहाने अनेक मुकरिया लिखी हैं—

बरस-बरस वह देस मे आवे,
मुह से मुह *लगाय* रस प्यावे।
वा खातिर मैं खरचे दाम,
क्यो सखि साजन ? नहि सखि आम।

करके छाती पकड़े रहे,
मुह से बोले बात न कहे।
ऐसा है कामिनी का रगिया,
क्यो सखि साजन ? ना सखि अगिया।

शब्द ज्ञान की अभिवृद्धि के लिए बहुत सी पहेलिया प्रचलित है। इनमे किसी शब्द का आदि, अन्त तथा मध्य काटकर उसे अलग शब्द बनाया जाता है और उनके अर्थो के भ्रम मे डालकर उस मूल शब्द को पूछा जाता है। जैसे—

बेदुम मूस करो मत भूल,
धड गायब फिर भी है मूल।
कटा शीश छोटा है साल,
पूरे तन का है क्या हाल।

यहा मूसल शब्द पहले मूस अर्थात् चूहे के रूप मे बनता है, फिर मूल अर्थात जड

बन जाता है और अन्त मे सल अर्थात् 'साल' का लघुरूप बनता है। लेकिन थोडी सी चतुराई से शब्द जाना जा सकता है। यही ज्ञान और चतुराई पहेलियो के माध्यम से विकसित होती है और इसी के लिए बच्चो को पहेलिया बुझाई जाती हैं।

अब विज्ञान के युग मे नई-नई वस्तुओ और उनके रूप, गुण, आकार तथा स्वभाव आदि को लेकर भी पहेलिया कही जाती है। यह सही है कि युगानुरूप उनमे परिवर्तन भी होता रहता है, लेकिन उनका उचित उपयोग भी उतना ही आवश्यक है। बच्चो के लिए यह सबसे सरल और उत्तम माध्यम है। उन्हे इसका अधिकाधिक अभ्यास कराना चाहिए। इनसे वे अपने आसपास के वातावरण की वस्तुओ से परिचित होते हैं, उनके बारे मे जानते है और अपने ज्ञान की अभिवृद्धि करते हैं।

(३) कहानी सुनाने की कला

बच्चो को हर रोज नई कहानी सुनाने की कठिनाई हर माता-पिता के सामने होती है। कुछ माता-पिता तो ऐसे होते है जिनके पास कहानियो का भण्डार नही होता। तब समस्या और गम्भीर हो जाती है और बच्चे उन लोगो मे ज्यादा रुचि लेने लगते हैं जो उन्हे कहानी सुनाते है। एक ठाकुर साहब ने तो इसीलिए मुझे ट्यूशन पर रखा था कि मैं हर साल गर्मियो मे रोज एक घण्टे बच्चो को कहानिया सुनाया करू। इसका परिणाम यह होता था कि एक घण्टे के बजाय मुझे कम-से-कम दो घण्टे वहा रुकना पडता था और अगर वे बच्चे कभी बाजार मे या किसी मित्र के यहा मिल जाते तो तुरन्त कहानी की फरमाइश कर देते। इसलिए उनसे मुझे बहुत सावधान रहना पडता था। इम्तहान के दिनो मे तो मैं उस मुहल्ले की ओर जाता ही न था। पर इम्तहान खत्म होते ही वे ठाकुर साहब से 'कहानी वाले मास्टर जी' को बुलाने की फरमाइश करने लगते और मुझे तब जाना ही पडता था।

कुछ भी हो बच्चो के लिए कहानी एक आकर्षण की वस्तु है—यह एक निर्विवाद सत्य है। बच्चे कहानी सुनने के लिए अपना खाना पीना तक छोड सकते हैं। लेकिन इसके साथ ही कहानी सुनाने की कला भी उतनी ही आवश्यक होनी चाहिए। यदि बच्चो की रुचि के अनुकूल कहानी न सुनाई गई तो दूसरे दिन से बच्चे आपसे कहानी नही सुनेगे।

बच्चो को कहानी सुनाना एक कला है। पुराने जमाने मे किन्ही रोचक और रोमाचक घटनाओ से प्रेरित होकर जीवन के महत्त्वपूर्ण अनुभवो को लोग कहानियो के रूप मे सुनाया करते थे। ये कहानिया बच्चे विशेष रुचि से सुनते थे। जाडे की लम्बी रातो मे आग का अलाव जलाकर लोग बैठ जाते थे और कहानी शुरू हो जाती थी। चूकि उनमे कथा तत्त्व इतना शक्तिशाली और रोमाचक होता था कि सुनने वाले को चाहे जम्हाई ही क्या न आने लगे, पर उठकर जाने की

इच्छा नही होती थी। लेकिन यदि कहानी सुनाने वाला, उसकी कला से अनभिज्ञ हुआ तो सुनने वाले को कहानी मे कोई रस नही मिलता था। 'अलिफ लैला' की रचना, कहानी सुनाने वाली शाहजादी की कुशलता का ही परिणाम है। वह हर रात एक कहानी सुनाती थी और जब वह समाप्त होने लगती थी तो उसमें दूसरी कहानी जोड कर उसे बढा देती थी। सुनने वाला बादशाह उसकी कहानियो मे इतना रस लेता था कि वह उसे कत्ल करने के बजाय क्षमा कर देता था जिससे वह बाकी कहानी सुन सके। यह कहानी कहने की कुशलता का ही प्रभाव था। कई ऐसे प्रमाण भी मिलते है कि पुराने जमाने मे लोग बादशाह और उनके शहजादो को सिर्फ किस्सा सुनाने वाले नौकर थे। ऐसे लोग पेशेवर किस्सागो कहलाते थे और वे अपने इस फन मे माहिर हुआ करते थे। इसलिए बच्चो को कहानी सुनाने के पहले, कहानी सुनाने की कला की कुछ मूलभूत बातो को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

कहानी कहते समय यह आवश्यक है कि श्रोता-वर्ग की आयु का ध्यान रखा जाये। उसके लिए शब्दो का प्रयोग और वाक्यविन्यास उसी तरह के होने चाहिए जिन्हे अल्प बुद्धि सरलता से ग्रहण कर लें। कहानी की घटनाओं को अधिक-से-अधिक वर्णनात्मक ढग से प्रस्तुत करें और उसमे इतना अवसर उपस्थित करें कि सुनने वाले बालक के मन मे अनेक बातो के प्रति जिज्ञासा का भाव जागृत हो तथा वह प्रश्न पूछ सके। इससे कहानी को बढाने तथा उसे अधिक समय मे सुनाने का अवसर तो मिलेगा ही, साथ-साथ बालक कहानी को बहुत अच्छी तरह समझ जायेगा और उसका निश्चित प्रभाव भी अवश्य पडेगा। यह ध्यान रखना चाहिए कि जब आप कहानी सुनाते है तो श्रोता बालक आपके एक-एक शब्द पर ध्यान देता है और उसे समझने की कोशिश करता है।

जब बच्चे कहानी सुनते है तो उसके साथ-साथ उनके मस्तिष्क में उस घटना विशेष का एक काल्पनिक चित्र बनता चलता है। इसके अलावा उससे सम्बद्ध अन्य कोई देखी वस्तु या अनुभूति भी उनके मस्तिष्क में अनजाने ही चलती रहती है। इस तरह बच्चे कहानी सुनते समय अनेक नये-नये सपनों में खोए रहते हैं जो उनकी अपनी दुनिया की सीमा में होते हैं। ऐसी दशा मे यह आवश्यक है कि जहा तक सभव हो बच्चो के मन मे उस समय उठने वाली हर सभव शका का उचित समाधान प्रस्तुत करना चाहिए। बहुत से लोग यह कहकर टाल देते है कि 'यह तो कहानी है' या कह देते है कि 'मान लो भाई, यह तो झूठी बात है।' जहा तक इस तरह के उत्तरों की बात है—इन्हे नही कहना चाहिए। इससे बच्चो मे निराशा का भाव तो जागृत होता ही है, उनका ज्ञान भी अपरिपक्व रह जाता है। यदि आपको वे बातें नही मालूम है तो आप या तो स्वय मालूम करके बतायें या फिर ऐसी सामग्री उपलब्ध कर दें जिससे बच्चे अपनी उन शकाओ का समाधान खोज सकें। लेकिन बच्चो मे किसी भी कहानी के बारे मे यह कभी न कहें कि यह तो झूठ है। यदि वह वास्तव मे झूठ है तो ऐसी कहानी सुनायें ही नही। झूठी कहानी सुनाने से

बढकर कोई अपराध नही हो सकता। ऐसी कहानी सुनाने का अर्थ है बच्चो के मन और मस्तिष्क पर पडे हुए प्रभाव को पोंछ देना।

कहानी कहने की कला का एक महत्त्वपूर्ण गुण यह है कि कहने वाला उस घटना का एक काल्पनिक चित्र खडा कर दे। बच्चे सुनते-सुनते इतने डूब जाए कि सोचने लगें—सफेद पखो वाला घोडा वैसा ही होगा जैसा कि उस दिन एम० पी० साहब परेड लेते समय घोडा लिए हुए थे। यह कहानी तथा उसे सुनाने वाले की बहुत बडी सफलता है। इसके अलावा कहानी कहते समय घटना और स्थिति विशेष के अनुरूप आवाज बनाना और सवादो को बोलना भी प्रभावकारी सिद्ध होता है। हाव-भाव और कभी-कभी उछल-कूद भी कहानी की रोचकता बढाते हैं। इनका भी पूरा ध्यान रखना चाहिए। कहानी मे यदि कुछ गेय अश हो तो उन्हे उसी तरह सुनाना चाहिए। इन सबसे कहानी बच्चो को बहुत अच्छी लगेगी और वे उसे जीवन भर नही भूलेंगे।

(४) बच्चों के लिए पुस्तकालय

अक्सर बच्चे अपने स्कूल की किताबो मे छिपाकर उपन्यास और कहानी की किताबें पढते देखे गए हैं। अभिभावको और माता-पिता के सामने ऐसी घटनाए अक्सर आती हैं, पर उनके समाधान का उपाय कम ही मा-बाप ढढते हैं। उपन्यास ही क्या, बच्चो मे आजकल सभी तरह की पुस्तकें पढने की क्षुधा पहले से बहुत अधिक देखी जा रही है। वे अपने मनोरजन तथा अपनी जिज्ञासाओ की शान्ति के लिए सभी पुस्तकें पढना चाहते हैं जिनमे उनके मन की बातें उन्ही की भाषा मे लिखी गई हो। शायद इससे पहले कभी ऐसा जमाना नही आया जबकि बच्चो के लिए इतनी सख्या मे पुस्तकें उपलब्ध हुई हो। यदि गम्भीरता से इस विषय पर सोचें तो यह समझना चाहिए कि बच्चो मे पढने की प्रवृत्ति किसी शौक या स्पर्धा की भावना से अनुप्राणित नही है, बल्कि इसके पीछे वह वैज्ञानिक तथ्य छिपा है जो बच्चा के भावो को उन छपे शब्दा के अर्थ बताकर शान्त करता है। बच्चे उसे पढकर खुश होते हैं, उनका ज्ञान-पिपासु मन शान्त होता है। किन्तु यदि इस भावना को दबाया गया या उसकी पूर्ति न की गई तो बच्चे छिपाकर किताबें पढना आरम्भ कर देते हैं। अमरीका मे श्रीमती मिनर्वा एल० साण्डर्स के सामने भी ऐसी ही समस्या आई थी और उन्होने इसका समाधान सन् १८७७ मे अपनी लाइब्रेरी का एक हिस्सा बच्चो के लिए बनाकर किया था। उन्हाने इसके बाद कहा था, "ऐसा करना ठीक ही था, क्योकि मुझे यह महसूस हुआ कि बडा के पढने मे भी बाधा नही पडेगी और जो बच्चे किसी अभाव या डर के कारण घर पर पुस्तकें नही पढ पाते वे यहा पढ सकेंगे। अब उन बच्चो को अपनी पाठ्य पुस्तको मे छिपा कर उपन्यास नही पढना पडेगा, क्योकि यहा उन्हे पूरी छूट होगी।"[1]

---

1 In 1877 Mrs Minerva Saunders Librarian at Pawtucket,

पुस्तकालय हैं ? यह कोई ऐसी बात भी नही है कि जिसमे सरकार का मुह ताका जाय। कुछ थोडे से उत्साही व्यक्तियो के प्रयास से ही यह काम हो सकता है।

पुस्तकालय का नियोजन तथा बच्चो के लिए पुस्तकें पढने के अवसर प्रदान करना एक महत्त्वपूर्ण बात है। अमरीका मे प्राय सभी शहरो मे बच्चो के लिए पुस्तकालय हैं या पुस्तकालयो मे बालकक्ष अलग से बने हैं। इनका पुस्तकालयाध्यक्ष बालमनोविज्ञान तथा बालसाहित्य का ज्ञाता होता है। वह बच्चो मे इतना घुल-मिल जाता है कि बच्चे उसकी हर बात मानते हैं, जब वह बच्चो को ठीक से बैठकर पढना, सम्हाल कर पृष्ठ उलटना रुचि के अनुकूल पुस्तक चुनना, तरतीब से पुस्तक रखना, निकालना आदि बताता है।

बच्चो के लिए पुस्तको का चुनाव सर्वप्रथम तथ्य है। किसी भी पुस्तक सूची को आधार बना कर पुस्तकें खरीद लेने से पुस्तकालय कभी उपयोगी और समृद्ध नही बन सकता। पुस्तकें चयन करते समय उन्हें बालसाहित्य की कसौटी पर कसकर उनकी उपयोगिता देखना अत्यन्त आवश्यक है। आज के युग मे रगीन कवर और मोटे अक्षरो मे छपी किताबें खूब मिलती हैं। बालसाहित्य के नाम पर खूब व्यापार भी किया जा रहा है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि प्रत्येक पुस्तक की अच्छी तरह जाच-पडताल करके उसे खरीदा जाय। यह काम तभी हो सकता है जबकि पुस्तको का चयन करने वाला व्यक्ति बाल मनोविज्ञान और बालसाहित्य का ज्ञाता हो।

पुस्तकालयाध्यक्ष मे उपर्युक्त गुण होने से पुस्तक चयन मे ही मदद नही मिलेगी बल्कि पुस्तकालय व्यवस्था तथा बच्चो का निर्देशन भी उचित रूप से हो सकेगा। इसलिए दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य पुस्तकालयाध्यक्ष को बालमनोविज्ञान और बालसाहित्य का ज्ञाता होना है।

बच्चो के पुस्तकालयो की व्यवस्था भी एक निश्चित उद्देश्य को पूरा करने वाली हो। वास्तव मे यह उद्देश्य है—मनोरजन। यदि पुस्तकालय का वातावरण पूर्णत अनुशासित तथा कुण्ठा जागृत करने वाला हुआ तो एक दिन के बाद दूसरे दिन उसमे बच्चे नही आयेंगे। इसलिए पुस्तकालय ऐसा हो जहा बच्चे अपना मनोरजन करने आयें, खेल खिलौनो की दुनिया से हटकर पुस्तको के साथ ज्ञान अर्जित करने के लिए।

पढने मे बच्चों को यही अनुभव होगा कि वे फिर किसी क्लास रूम में बैठ गए। किन्तु खुली और फैली हुई जगह मे कही भी वे स्वतन्त्रतापूर्वक बैठकर पुस्तकें पढ सकते हैं।[1]

इस तरह सुनियोजित बालपुस्तकालय बच्चों में पढने की अभिरुचि तो जागृत करते ही हैं, साथ ही उनमे ज्ञान का अकुर उपजाते है। अब तक जिन शहरो में इस दिशा मे प्रयास हुए है, वहा बच्चो की बालसाहित्य पढने की एक निश्चित रुचि का विकास हुआ है। दिल्ली मे इस दिशा मे काफी उपयोगी प्रयास हुए है। वहा बच्चो की रुचियों का अध्ययन यूनेस्को द्वारा किया गया तथा अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले—जो बालसाहित्य लेखन तथा उसके विकास के लिए बहुत उपयोगी है।

ये निष्कर्ष यह सिद्ध करते हैं कि बदलते हुए युग और वातावरण द्वारा बच्चों की मनोवैज्ञानिक रुचि में भी परिवर्तन होता है। रिपोर्ट के निष्कर्ष[2] निम्नलिखित हैं—

(१) यात्रा, आविष्कार, वैज्ञानिक-कथाए और खोज सम्बन्धी कथाओं की सर्वाधिक माग है। उद्यपि वे सर्वप्रथम महत्त्व उन साहस-भरी कथाओं को देते हैं, जिनके कथानक भारतीय होते हैं और जिनके पात्र भारतीय इतिहास से लिए गए होते है। वैसे दूसरे देशो और लोगो की साहसिक कथाओ को पढने मे भी उन्हे उतना ही आनन्द आता है।

(२) अ—जहा तक कथा से इतर साहित्य का सम्बन्ध है उसमें कविता, नाटक और निबन्ध पहली पसन्द होते है। कथा से इतर साहित्य में से २८ २ प्रतिशत ऐसी ही पुस्तकें पसन्द की जाती है। बच्चे साहित्यकारों की

---

1. The manner in which books are stored and displayed is most important. Children like whenever possible to see the cover of a book. So somekind of shelving where books can be laid flat or stood against the wall is preferable. In a library or a book shop, where some books are laid out flat and others are stood side by side with only their spines showing, it is those books whose covers can be seen which attract the attention of the young children Young children are attracted by the covers of the books rather than their titles

—Lillian Hollamby : *Young Children Living and Learning*, Page 105.

2. *Reading Interests of Indian Children* by D. R Kalia From the book "*Writing for Children Today*", Page 20. Published by Balbhavan, New Delhi.

कृतियों मे जितनी रुचि लेते हैं, उतना ही उनके जीवन के बारे में भी जानने के लिए उत्सुक होते हैं। लेकिन लेखकों के जीवन के बारे में बहुत कम सामग्री उपलब्ध है।

ब—कविता, नाटक और निबन्ध के बाद धार्मिक पुस्तकों का नम्बर है। ये पुस्तके १८ प्रतिशत पढी जाती हैं। लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नही है कि भारतीय बच्चे, अन्य देशों के बच्चों की उपेक्षा अधिक धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। रामायण और महाभारत तथा उनके पात्र राम और कृष्ण भारतीय बच्चों मे बहुत लोकप्रिय हैं। य ऐसी पुस्तकें हैं जो इनके जीवन और कार्यों का परिचय देती हैं। लेकिन यह कहना गलत होगा कि परम्परागत या अन्धविश्वास वाली धार्मिक पुस्तकों मे भारतीय बच्चे रुचि लेते हैं। वास्तव मे ऐसी पुस्तकें बच्चो को बहुत कम प्रिय है।

स—तीसरा नम्बर जीवन-कथाओं अथवा जीवनियो का है जो ११.८ प्रतिशत पढी जाती हैं। यहा भी उनकी रुचि केवल उन्ही व्यक्तियों के जीवन-चरित्र पढने मे होती है जो किसी-न-किसी सन्दर्भ मे उनके परिचय-ज्ञान की सीमा मे आ चुके होते हैं।

द—और अन्त मे नम्बर है उपयोगी साहित्य का जिसमे कला ७.६ प्रतिशत, सामाजिक विज्ञान ७.४ प्रतिशत, इतिहास ४.८ प्रतिशत, विज्ञान ४.२ प्रतिशत, भाषा २.८ प्रतिशत, ललित कला २.० प्रतिशत, अन्य १.६ प्रतिशत और मनोरजन १.६ प्रतिशत तथा दर्शन १.५ प्रतिशत है।

यह सर्वेक्षण सिद्ध करता है कि भारतीय बच्चों की रुचि और उनके मनोविज्ञान मे कुछ स्वाभाविक परिवर्तन हो रहे हैं। आठ साल की अवस्था पार करते ही बच्चों मे अनुसन्धानात्मक और विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति प्रभावशाली होने लगती है। इसीलिए वे यात्रा, आविष्कार, साहसिक कथाओं आदि मे विशेष रुचि लेने लगते हैं। भारतीय बच्चो का मनोवैज्ञानिक विकास स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तक पुरानी धार्मिक और परम्परागत मान्यताओ के ही आधार पर होता रहा है। यहा बड़े लोग सदैव अपनी ओर से यही प्रयास करते रहे है कि बच्चे भारतीय इतिहास, सस्कृति और परम्परा के अनुसार ही विकसित हों। यह मान्यता बुरी नही थी, क्योंकि उनका भी एक निश्चित महत्त्व तो है ही। किन्तु इस भावना के पीछे कोई नवीन विचारधारा नही थी जो नए समाज और ससार के साथ सामजस्य स्थापित करने योग्य उन्हे बना सकती। इस काम को बच्चों को स्वय करना पडा और इसीलिए नई पीढी सदैव आलोचना की पात्र बनी रही। किन्तु स्वतत्रता के बाद बच्चों के इस मनोवैज्ञानिक परिवर्तन को आशिक रूप मे समझा गया। यह वास्तव मे पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव तथा अनुकरण अधिक, भारतीय परिवेश मे उसका स्फुरण कम था। इससे बच्चो मे जागरण और चेतना तो आई पर वह दिखावा

अधिक थी। यह समस्या भी आखिर समय से ही उभर आई और अब धीरे-धीरे बाल मनोविज्ञान का महत्त्व समझा जाने लगा है। पहले बच्चो की पुस्तकें या पत्र-पत्रिकाओं के खरीदने का अधिक महत्त्व न था। यदि खरीदी भी जाती थी तो उनके पीछे कोई ऐसी भावना नही होती थी कि बच्चो को स्वस्थ बालसाहित्य दिया जाय। केवल स्कूल की पुस्तकें खरीदना ही कर्तव्य समझा जाता था। किन्तु अब शिक्षा के प्रसार तथा सामाजिक उन्नति के कारण बालसाहित्य का महत्त्व समझा जाने लगा है। शहरों मे प्राय सभी पुस्तकालयों मे बच्चों की रुचि के अनुकूल पुस्तकें उपलब्ध है और कई बडे पुस्तकालयों मे तो पृथक् कक्ष भी है। इन सब ने बच्चों की रुचि और मनोवृत्ति को भी प्रभावित किया है और वे अब यह समझने लगे हैं कि समाज मे उनका भी एक निश्चित महत्त्व है।

(५) चुटकुलो की कहानी

चुटकुलो की कहानी उतनी ही पुरानी है जितनी आदमी की हसने की आदत। आदमी ने जब से इस दुनिया के रहस्यों को जाना-समझा, उसे सुख-दुःख का पता चला तब से वह हसने भी लगा। जिन बातों मे उसे हसी आती उनका ही एक रूप चुटकुला है। जब कोई आदमी मजेदार बात सुनाता और लोगों को हसी आती तो उन्हे सुनने वाले याद कर लेते और फिर अपने अन्य साथियो को सुनाकर हसाते। इस तरह वे बातें युग-युग तक चलती रही—जैसे आज भी बहुत से चुटकुले मशहूर है। हसने-हसाने की इस बातचीत को 'चुटकुला' नाम दो शब्दो को मिलाकर दिया गया। एक शब्द है 'चुट' और दूसरा 'कुला'। ''चुट' का अर्थ है चुटकी। बच्चों मे एक दूसरे के चुटकी काटने की आदत होती है, पर यहा इसका अर्थ उस चुटकी काटने से नही है जिससे दर्द होता है—बल्कि उस मुहावरे से, है जिसे—'चुटकी लेना' कहते हैं। यहा चुटकी का अर्थ है मजाक बनाना या हसना। दूसरा शब्द 'कुला' 'कुलेल' से बना है। कुलेल यानी गुदगुदी। इस तरह चुटकुला का अर्थ हुआ गुदगुदाने वाली चुटकी।

कहते है चुटकुला देवताओ के समय से चला आ रहा है। कभी-कभी देवताओं को भी हसने की जरूरत होती थी और तब चुटकुले कहे-सुने जाते थे। एक चुटकुला उसी समय का इस प्रकार है। जब प्रह्लाद की रक्षा के लिए भगवान ने नरसिह का अवतार लिया और उसके पिता हिरण्यकश्यप को मार डाला तो भगवान को बहुत क्रोध आ गया था। यह क्रोध इतना था कि शान्त ही न हो रहा था। इससे देवतागण बडी चिन्ता मे थे। आखिर इस काम के लिए गणेश जी आगे बढे। उनकी सवारी है चूहा। वह अपने चूहे पर बैठकर भगवान के पास गए। भगवान ने उन्हे दूर से आते देखा तो यह सोचकर मन-ही-मन हसने लगे कि देखो कितना भारी भरकम शरीर जरा से चूहे पर सवार है। इधर गणेश जी जैसे ही उनके नजदीक पहुचे कि भगवान के 'आधे सिह और आधे मानव' वाले शरीर को देखकर चूहा डर गया और चुपके से सरक कर भाग गया। उसके भागते ही

गणेश जी धड़ाम से गिर कर लुढ़क गए। यह दृश्य इतना मजेदार था कि भगवान को जोर से हसी आ गई और वह खिलखिला कर हस पड़े।

इसी प्रकार देवताओं के युग की अनेक कहानिया ऐसी मिलती हैं जो चुटकुला के स्वरूप को लिए हुए थीं। उस युग के चुटकुलों के प्रमुख पात्र नारद मुनि माने जा सकते हैं। सीता स्वयंवर के समय शिवजी के गण जब उनका मजाक उड़ाते है—वे सब चुटकुले ही तो है। नारद मुनि का चुटकुलो वाला स्वरूप ही आज भी फिल्मों या रामलीला के दर्शकों को अपने उसी ढंग से हसाता है।

चुटकुलों का लिखित रूप पहली-दूसरी शताब्दी में लिखी गई पुस्तक 'कथा-सरित्सागर' की कहानियों में मिलता है। उस जमाने में लोग पैदल और नावों पर मीलों लम्बी यात्रा किया करते थे। समय काटने और यात्रा का कष्ट कम करने के लिए लोग किस्से-कहानिया कहा-सुना करते थे। इनमे बहुत-सी ऐसी भी कहानिया होती थी जो हसाती-गुदगुदाती थी। बहुत से लोग अपने जीवन के ऐसे अनुभव सुनाते थे जो हसाने-गुदगुदाने वाले होते थे। इनमें हसी के साथ बुद्धि की चतुराई या मूर्खता का भी परिचय मिलता था।

इसके बाद चुटकुलों के बारे में जानकारी राजाओं के दरबार में रहने वाले विद्वानों तथा विदूषकों की अनेक हसाने वाली बातों से मिलती है। राजा भोज के दरबार में विद्वानों का बहुत आदर होता था। वहा अनेक विद्वान् अपनी बुद्धि का परिचय देने जाते थे। राजा भोज के दरबारी भी विद्वान् ही थे। उन सभी से अक्सर ऐसी बातें होती थी जो संक्षिप्त, चतुराई और बुद्धि से पूर्ण तथा गुदगुदाने वाली होती थी। एक बार राजा भोज जब अपनी रानी के महल में गए तो रानी उस समय दासी से कुछ बात कर रही थी। राजा भोज के अचानक इस तरह पहुच जाने पर रानी ने बहुत धीरे से कहा—'मूर्ख!' लेकिन राजा भोज ने यह सुन लिया और चुपचाप दरबार में लौट आए। वहा आने वाले हर विद्वान् को वह 'मूर्ख' कहते और चुप हो जाते। अन्त में एक कवि जब आया और उसे भी राजा भोज ने 'मूर्ख' कहा तो वह बोला—'हे राजन, न तो मैं रास्ते में खाता हुआ चलता हू, न हसते हुए बोलता हू, न गई बात का सोच करता हू, न किए हुए पर पछताता हू और न बात करते हुए दो जनों के बीच जाकर खड़ा होता हू, फिर भला मैं मूर्ख क्यों हू?' यह सुनते ही राजा भोज समझ गए कि रानी ने मूर्ख शब्द का उच्चारण क्यों किया था?

इसी तरह एक बार राजा भोज के कमरे में एक चोर आकर छिप गया। रात में राजा भोज की नींद अचानक ही खुल गई और वह अपने सुख के बारे में सोचते हुए बोले—"मेरी रानिया सुन्दर हैं, मेरे सभी मित्र मुझे प्यार करते हैं, मेरे नौकर भी स्वामिभक्त हैं, मेरे पास धन-दौलत भी है..." अभी राजा भोज का वाक्य पूरा नही हुआ था कि कोने में छिपा हुआ चोर बोल उठा, 'लेकिन आखें बन्द हो जाने पर तो कुछ भी नही है।" यह सुनकर राजा भोज बहुत खुश हुए और उसका अपराध क्षमा कर उसे पुरस्कार दिया।

विद्वत्ता भरे इस तरह के चुटकुले सुनाने वाले अनेक चुटकुलेबाज बहुत से राजाओं के यहा थे। यह परम्परा काफी दिनों तक चली। इनके अलावा नाटकों मे हसाने वाले विदूषक भी चुटकुलो की कहानी आगे बढाने मे बहुत आगे रहे हैं। ऐसे पात्र तो विदेशी प्राचीन नाटकों मे भी मिलते हैं। इनका काम ही हसाना था। नाटक मे जब काफी देर तक गम्भीर दृश्य दिखा दिए जाते थे तो बीच मे मनोरजन तथा गम्भीरता भग करने के लिए विदूषक को प्रस्तुत किया जाता था। वह अपने रोचक चुटकुलो द्वारा दर्शकों को हसाता था जिससे वे हल्के होकर नाटक की आगे की कथा देखने को तैयार हो जाते थे।

भारतीय इतिहास मे राजाओ तथा बादशाहो के यहा रहने वाले चुटकुलेबाजो मे तेनालीरमन्, गोपाल भाड, बीरबल, मुशी इशाअल्ला खा आदि आज भी प्रसिद्ध हैं। ये न केवल गुदगुदाने वाली बातें कहते थे बल्कि उस माध्यम से कभी-कभी बहुत गहरी और पते की भी बात कह जाते थे। कहते हैं कि विजय नगर के महाराजा कृष्णदेव राय के दरबार मे एक महापडित पधारे। उन्होंने राजदरबार के पडितो को वादविवाद के लिए ललकारा। महाराज कृष्णदेव राय के दरबार मे वेदण्णा, निम्मण्णा, शूरण्णा आदि जैसे अनेक विद्वान् उपस्थित थे पर वे कोई भी उस महापडित को हरा न पाए। तब महाराज का विदूषक तेनालिरमन् आगे आया और अगले दिन वादविवाद करने के लिए महापडित को तैयार किया।

अगले दिन जब तेनालिरमन् आए तो साथ मे किसी पुस्तक का बडा सा गट्ठर भी लाए। महापडित ने उत्सुकतावश पूछा कि यह कौन सी किताब है ? तेनालिरमन् ने कहा—'यह पुस्तक है तिलकाष्ठमहिष बन्धनम्। और आज इसी पर चर्चा होगी।' पुस्तक का यह नाम सुनकर महापडित घबरा गया। उसने काफी देर तक सोच-विचार किया और अन्त मे हार मानकर भाग गया। तब महाराज कृष्णदेव राय ने भी तेनालिरमन् से उस पुस्तक के बारे मे पूछा। तेनालिरमन् बोले—'इसमे कुछ नही है। इसमे तो तिल के दान, लकडी और भैंस को बाधने की रस्सी है। यही है तिलकाष्ठमहिष बन्धनम्।' यह सुनकर सभी दरबारी तेनालिरमन् की चतुराई पर न केवल हसे बल्कि उसकी प्रशसा भी की।

उत्तर भारत मे चुटकुलों के लिए अकबर और बीरबल सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। कहते हैं अकबर पहले जन्म मे मुकुन्दा ब्रह्मचारी नाम का तपस्वी था और उसका शिष्य था महेश दास। दूसरे जन्म मे जब अकबर बडा होकर बादशाह हुआ तो उसे महेशदास की चिन्ता हुई। इसलिए उसने ऐलान कराया कि मुकुन्दा ब्रह्मचारी कौन था ? इस प्रश्न का उत्तर जो जानता हो वह मुझसे आकर मिले। महेशदास ने काल्पी मे जन्म लिया था और उसका नाम था बीरबल। वह इसका उत्तर देने जब अकबर के पास पहुंचे तो दोनो एक दूसरे को पहचान गये। तब से बीरबल अकबर के पास ही रहे। अकबर की बेगम हालाकि बीरबल को निकालना चाहती थी और कई बार कोशिश भी की पर बीरबल की चतुराई के कारण सफल नही हुई। अकबर और बीरबल के बीच होने वाली बातचीत तथा

अनेक कामो को लेकर हजारो की सख्या मे बने चुटकुले आज भी प्रसिद्ध हैं। इनकी सख्या इतनी है कि इनमे बहुत से लोगो ने अपने बनाए चुटकुले भी अकबर बीरबल के नाम से चला दिए। पर इतना तो सच है कि बीरबल बहुत चतुर थे और उनके अनेक चुटकुले बहुत ही चोखे है। एक बार अकबर ने बीरबल से कहा—'बीरबल, हमने बहुत-सी लडाइया लडी है। क्यो न तुम हमारा भी एक महाभारत लिखो।' बीरबल मान गये। कुछ दिनो बाद अकबर ने बीरबल को महाभारत की याद दिलाई तो बीरबल बोले कि बस जल्दी ही लेकर आऊगा।

आखिर एक दिन बीरबल ने चार बैलगाडियो मे रद्दी कागज भरवाया और लाकर महल के नीचे खडी कर दी। दरबार मे पहुचकर बीरबल ने कहा—'हुजूर, महाभारत ले आया हू। लेकिन उसमे केवल एक बात लिखना बाकी है। वह आपसे नही बल्कि बेगम साहिबा से पूछनी है।' बेगम साहिबा बुलाई गयी। बीरबल ने कहा—'बादशाह हुजूर ने हुक्म दिया था कि उनकी बहादुरी का वर्णन करने के लिए मैं उनका महाभारत लिखू। वह लिख गया है लेकिन एक बात लिखना शेष है कि द्रौपदी के पाच पति थे। आपके एक पति का नाम तो मालूम है पर बाकी चार का नही मालूम। उन्हे बता दें तो लिखकर मैं पुस्तक पूरी कर दू।' यह सुनते ही बेगम साहिबा आग बगूला हो उठी और उन्होने अपने सामने गाडी पर लदे सारे कागजो मे आग लगवा दी।

इस तरह बीरबल अनेक अवसरो पर अपनी बुद्धि की चतुराई का परिचय देते रहते थे। इन चुटकुलो मे जहा हसी के फव्वारे छूटते हैं वही बुद्धि की चतुराई तथा चुस्ती भी झलकती है। आज भी अनेक चुटकुले अकबर-बीरबल के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ लोगो ने तो इस नाम से आधुनिक युग के चुटकुले भी जोड दिए है जैसे एक बार अकबर ने बीरबल से पूछा कि बीरबल टेलीफोन क्या है ? बीरबल ने अवसर आने पर बताने को कह दिया। काफी समय बाद एक दिन शाम के वक्त आगे-आगे बेगम साहिबा, बीच मे बीरबल और सबसे पीछे अकबर घूमने जा रहे थे। अकबर को कुछ हसी सूझी तो उन्होने बीरबल की पीठ पर चुटकी काट ली। बीरबल ने तुरन्त बेगम साहिबा के चुटकी काट ली। बेगम साहिबा इस बेवकूफी की हरकत से नाराज हो गई और उन्होंने उलटकर बीरबल को एक चाटा मारा। बीरबल ने उसी ताव से उलटकर अकबर को एक चाटा मारा। अकबर परेशान होकर बोले, 'अरे भाई, ये क्या है ?' बीरबल चट से बोले, 'हुजूर, यही तो टेलीफोन है। इधर की बात उधर पहुच जाय और उधर से बात का जवाब आ जाय।'

चुटकुलो की इस परम्परा ने उनका रूप भी निश्चित कर दिया है। चुटकुलो की विशेषता यह मानी गई है कि वे छोटे हो और अधिक-से-अधिक हसा सकें। दरअसल यह आकार उस छोटी चुटकी के समान ही हो तो दुख नही पहुचाती बल्कि गुदगुदाती है। इसलिए सफल चुटकुलेबाज वही कहलाते हैं जो कम-से-कम शब्दो मे अपनी चतुराई भरी बात कहकर हसा दें। लेकिन चुटकुले ऐसे होने चाहिए जो किसी के मन को चोट न पहुचाए। किसी धर्म, समाज या जाति पर

इसलिए जहा तक हो सके नए-से-नए चुटकुले सुनने सुनाने का प्रयास करना चाहिए। विदेशो मे रिश्तो को लेकर चुटकुले खूब कहे जाते है। वहा समधिन और सास के चुटकुलो की भरमार है। हमारे यहा भाभी, साले तथा बहनोई के रिश्तो को लेकर चुटकुले कहे जाते है, पर वे बडे लोगो की चीज है। बच्चो के लिए वे लोग आदरणीय होते हैं इसलिए इस तरह के चुटकुले बालसाहित्य मे नही आते।

चुटकुलो से ही गप्प और हवाई फैलाने की तरकीबो का जन्म हुआ है। गप्प चुटकुलो का वह रूप है जो बिलकुल विश्वास करने योग्य न हो। हवाई मे कुछ ऐसी सनसनीखेज बात कही जाती है जिसे सुनकर सहसा लोग चौंक उठें और घबरा जाए किन्तु अन्त मे वह झूठ निकले। गप्प और हवाई मे मुख्य अन्तर यही है कि गप्प मे विश्वास न करने की गुजाइश रहती है पर हवाई मे एक क्षण के लिए विश्वास करना ही पडता है। जैसे अगर कोई कहे—अजी, कल रात मैंने एक ऐसा हवाई जहाज उतरते देखा जो एकदम लाल था। उसमे से फुटबाल की शकल का एक आदमी उतरा। उसने बन्दूक चलाई जिससे नीली रोशनी निकली। फिर वह अपने उस हवाई जहाज पर बैठकर उड गया। इसमे शक करने की गुजाइश है। लेकिन यदि आपके उस दोस्त के बारे मे अगर कहा जाय जो अभी-अभी सवारी जहाज लेकर गया है कि—अजी, टण्डन का जहाज एक पहाड से टकराकर टूट गया। अभी-अभी वायरलेस से सदेश आया है। तो इसमे एक क्षण के लिए आप चौंक उठेंगे और जब तक विश्वस्त सूत्र से खबर की पुष्टि न करा लेंगे तब तक आपको चैन नही मिलेगा क्योकि खबर सच होने की भी सभावना तो है ही। जब वह झूठ साबित हो जायगी तब आप कहेंगे कि वह भी अजीब आदमी है। कैसी हवाई छोडी थी ?

चुटकुले यात्रा भी करते हैं। आजकल तो छपाई के साधन होने के कारण ये दूर देशो की भी सैर करते हैं। इनकी कहानी खुद एक मजेदार चुटकुला है।

सहायक-पुस्तक-सूची

हिन्दी-ग्रन्थ

क्रम	पुस्तक	लेखक/प्रकाशक
१.	कथासरित्सागर	अनु० केदारनाथ शर्मा सारस्वत
२	कमल और केतकी	पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली
३	ग्राम साहित्य, भाग-३	रामनरेश त्रिपाठी
४	जातक कथाएं	सावित्री देवी वर्मा
५	निमाड़ी और उसका साहित्य	डा० कृष्णलाल हंस
६	पंचतंत्र	सत्यकाम विद्यालंकार
७	पश्चिम भारत की लोककथाएं	पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली
८	प्रेमघन समुच्चय	बदरीनाथ चौधरी 'प्रेमघन'
९	बालमनोविज्ञान	लालजीराम शुक्ल
१०	बाल-शिक्षण	लालजीराम शुक्ल
११	बालगीत साहित्य	निरंकारदेव सेवक
१२	बालमनोविकास	लालजीराम शुक्ल
१३	भारतीय लोकसाहित्य	डा० श्याम परमार
१४	भारतेन्दु ग्रन्थावली	ब्रजरत्नदास
१५	भाषा की शिक्षा	सीताराम चतुर्वेदी
१६	राजस्थान की लोककथाएं	पुरुषोत्तमलाल मेनारिया
१७	रवीन्द्रनाथ के निबन्ध	साहित्य अकादमी
१८	रूसी लोककथाएं	ए० पोमेरात्सेवा
१९	लवटकिया	पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली
२०	भरत नाट्यमाला	नर्मदाप्रसाद मिश्र
२१	सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा	महात्मा गांधी
२२	हमारी लोककथाएं, भाग-२	हंसराज रहबर
२३	हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, १६वां भाग	राहुल सांकृत्यायन
२४	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल
२५	हिन्दी नाट्य साहित्य	ब्रजरत्नदास
२६	हिन्दी साहित्य कोश, भाग १-२	ज्ञान मंडल लि०, काशी
२७	हिन्दी किशोर साहित्य	ज्योत्स्ना द्विवेदी
२८	हिन्दी नाट्य साहित्य	डा० सोमनाथ गुप्त

अंग्रेजी ग्रन्थ

1 A Critical History of Children's Literature — Cornelia Meigs
2 A Critical Approach to Children's Literature — Lillian H Smith
3 Books, Children & Men — Paul Hazard
4 Contemporary Indian Literature — Sahitya Akademi
5 Childhood in Contemporary Cultures — Editors Mead & Wolfenstein
6 Childhood & Adolescence — J A Hadfield
7 Educational Psychology — Editor Charles E Skinnor
8 Everything & Anything — Dorothy Aldis
9 Jawaharlal Nehru's Speeches 1949 to 1953 — Publications Division
10 Literatures in Modern Indian Languages — Editor V K Gokak
11 Mental Physical Growth of Children — Peter Sandiford
12 Manual of Child Psychology — Editor L Carmicheel
13 Standard Dictionary of Folklore Vol I & II
14 Studies in Indian Folk Culture — Shanker Sen Gupta
15 Teaching of Social Studies — Edger Bruce Wesby
16 The Teaching of Reading & Writing — William S Grey
17 The Mental Growth of Child — Karl Buhler
18 Writing for Children Today — Balbhavan, Delhi
19 Young Children Living & Learning — Lillian Hollamby

पत्र-पत्रिकाए

१ बालसखा	२ चन्दामामा	३ खिलौना	४ बालक,
५ किशोर	६ बाल विनोद,	७ पराग,	८ नन्दन
९ मधुमती	१० कादम्बिनी,	११ शिशु	१२ शृंगार,
१३ शिक्षा,	१४ चमचम,	१५ वानर,	१६ कुमार